# प्रस्तुत संस्करण

सत-परपरा मात्र वैष्णव धर्म की एकात विशेषता कभी नही रही है। उसके द्वार अन्य सभी धर्मो के लिए सदा उन्मुक्त रहे है। सत रहस्यवादी इसलिए न थे कि परम तत्त्व अथवा चरम सत्य उन्हे अनुभवगम्य नही रहा है। वास्तव मे वह अज्ञात की अपेक्षा अनिर्वचनीय रहा है। वहाँ कठिनाई अनुभव से अधिक अभिव्यक्ति की रही है।

सत्यनिष्ठ सतो की सदाचार-मूलक दृष्टि उनकी सामाजिक चेतना को भी उजागर करती है। सत-साहित्य के माध्यम से एक ऐसी संश्लिष्ट सास्कृतिक चेतना अभिव्यक्ति पा सकी है जिसने जीवन-मूल्य को नई गरिमा एव महिमा प्रदान की है -- इसमे सहज हृदयोद्गार ही नही, स्वानुभूत विचार भी समाहित है। इसी कारण कहीहै कही देश-कालवद्ध शास्त्रो तक की तीखी आलोचना पायी जाती है और उनके अनु-यायियो को कडवी फटकारे भी सुनने को मिल जाती है। श्रम-साधना भी वहाँ समादृत और सच्ची अनुभूति को ही वहाँ खरी कसौटी माना गया है। वे आत्म-निरीक्षण के साथ-साथ परिस्थिति-परीक्षण को भी महत्त्व देते है और उनका आत्मोद्धार सहज ही लोक कल्याण का पर्याय बन जाता है। सोऽह मे अह का लय हो जाने से कुंठा के लिए भी अवकश या अवसर शेष नही रह जाता है। जड सस्कारो के प्रति वे असहिष्णु दिखायी देते है और सुप्त लोक-चेतना को वे झकझोर कर जागृत कर देते है। वे मृतप्राय रूढ परपरा के पोषक नही, जीवत प्रगतिशील भविष्य के समर्थक है।

'सत-काव्यधारा' पूर्ववर्ती 'सत-काव्य' का ही परिवर्तित नामकरण है। 'सत-काव्य' के रूप मे इसका सक्षिप्त सस्करण प्रकाशित किया गया है। ऐसा करते समय दोनो के भूमिका-भाग को यथावत् रहने दिया गया है, परतु पाठ-भाग को कम करते समय भरसक इस बात का ध्यान रखा गया है कि उसकी क्षेत्रीय उपयोगिता तथा साप्रदायिक विशेषता को कोई व्याघात न पहुँचने पावे।

सत-साहित्य मे लोक-प्रचलित धर्म, दर्शन एव आचार-विचार का निदर्शन है। उनका धर्म न तो ऐश्वर्य का पुजारी या अधविश्वास-विहारी है, न दर्शन ही बुद्धि-विलास या वाग्व्यापार का मात्र वैभव-प्रदर्शन। उनकी कथनी-करनी की एकरूपता ही उसके आचार-विचार की रीढ है। उनकी भाषा-शैली भी प्रचलित लोक-परपरा से सपृक्त तथा अनुप्राणित है। उसका क्षेत्र प्रयोग, प्रगति और मौलिकता के लिए वर्जित नही है।

आगामी सस्करण को अधिकाधिक सम्पन्न तथा प्रतिनिधि बनाने मे सुधी पाठको एव विद्वानो के सुझाव और सहयोग का स्वागत किया जायेगा।

२३६ चक, इलाहाबाद-३
सवत् २०३७ विक्रमी

—नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

# प्रस्तावना

प्रस्तुत सग्रह मे आदि सत कवि जयदेव से लेकर स्वामी रामतीर्थ के समय तक की चुनी हुई रचनाएँ सम्मिलित की गई है। ये भिन्न-भिन्न सतो की कथन-शैली वा रचना-पद्धति का प्रतिनिधित्व करती है। फिर भी ये अपने रचयिताओं के अनुभूति-जन्य भावो की भी परिचायिका है। इस प्रकार इनके द्वारा सत-साहित्य के प्रमुख विषय का कुछ आभास मिल जाना भी सभव हो सकता है। सतो ने इन्हे न तो अपना काव्य-कौशल प्रदर्शित करने के उद्देश्य से लिखा था, न इनकी रचना द्वारा उनका प्रधान लक्ष्य कभी सगुणोपासक भक्तो की भाँति, अपने इष्टदेव का गुणगान करना ही रहा। वे इन्हे आत्मचिन्तन एव स्वानुभूति के आधार पर समय-समय पर निर्मित करते गए थे। इस प्रकार, इनकी रचना विशेषत उनके व्यक्तिगत उद्‌गारो अथवा उपदेशो के ही रूप मे हुई थी और इनका जो कुछ भी महत्त्व है, वह केवल इसी के अनुसार समझा जा सकता है। सतो मे से अधिकाश को न तो पूरी शिक्षा मिली थी, न उनमे से अधिकतर काव्य-कला मे किसी प्रकार परिचित ही थे। अपने वर्ण्य-विषय की तीव्र अनुभूति एव मत-प्रचार की अभिलाषा ने उन्हे पद्य-रचना की ओर प्रवृत्त किया था और उन्होंने इसे ढग से ही निबाहा था।

सतो ने इन रचनाओ मे भरसक अपनी पारिभाषिक शब्दावली के ही प्रयोग किये हैं और अपने भावों को अपनी शैली-विशेष के ही माध्यम से व्यक्त करने की ओर प्राय. सर्वत्र ध्यान देना उचित समझा है। यह बात पहले के सतो मे विशेष रूप से उल्लेख-नीय है और आधुनिक सतो मे से भी कुछ ने पूर्वपरिचित शब्द-भाडार से ही अधिक लाभ उठाया है। किन्तु मध्ययुग के सतो मे से अधिकाश ने उन रचना-शैलियो को भी अपनाया है जो उनके समय मे प्रचलित थी। अतएव सतो के पदो एव साखियो की रचना-शैली का अनुकरण जहाँ पहले क्रमश कृष्णोपासक भक्तो तथा सूक्तिकारो ने किया था, वहाँ रीतिकालीन सतो ने दूसरो के अनुकरण मे कवित्त-सवैये आदि छदो को भी अपना लिया और कभी-कभी भाषा-चमत्कार के प्रदर्शन तक की ओर प्रवृत्त हो गए। फिर भी उन्होने अपने प्रधान विषय को सदा ध्यान मे रखा और वर्णन-शैली के फंर मे पडकर भी, उसे भरसक अपने शब्दो द्वारा ही प्रकट किया।

/वास्तव मे, सत लोग न तो साहित्यिक थे, न उनकी रचनाओ को साहित्य-शास्त्रीय मानदड के अनुसार परखना ही उचित है।/ उनकी भाषा मे व्याकरण-सम्बन्धी अनेक दोष मिल सकते हैं और उनके पद्यों मे छदोनियम का पालन भी बहुत कम पाया जा सकता है। उनके साधना-सम्बन्धी विवरणो मे नीरस पक्तियो की ही भरमार दीख पड़ेगी और उनके उपदेशो मे भी कोई आकर्षण विशेष नही जान पड़ेगा। उनके सिद्धात-सम्बन्धी वर्णनों, मे भी, इसी प्रकार दार्शनिक व्याख्या की ही गध मिल सकती है और उनकी विनयो मे कोरी स्तुतियाँ पायी जा सकती है, किंतु सतो की रचनाएँ केवल इन्ही कतिपय बातो के सम्बद्ध नही है। उनमे दिया गया गहरी स्वानुभूति, का अस्फुट परिचय, उनकी चेतावनियो की चुटीली उक्तियाँ तथा उनमे पाये जाने वाले स्वत-स्फूर्त हृदयोद्‌गार ऐसे है जो नि.सदेह सरस एव सुन्दर कहला सकते है। इनका माधुर्य और सौदर्य कुछ अपने ढग का है और इनकी मर्मस्पर्शिता सिद्ध करने के लिए रीति-कालीन मानदड का प्रयोग उचित नही। रस, अलकार वा अन्य काव्य-सम्बन्धी चमत्कारो के जो उदाहरण इन रचनाओ मे दीख पड़ते है, वे किसी साहित्यिक प्रयास या प्रशिक्षण के परिणाम नही है।

सतो की रचना-पद्धति एव सत-काव्य की विशेषता के सम्बन्ध मे 'भूमिका' मे विचार किया गया है। प्रसगवश उसके अन्तर्गत कुछ ऐसे उदाहरण भी दे दिये गए है जो साहित्य-शास्त्रीय दृष्टिकोण से भी काव्य की कोटि मे आते है। इसके सिवाय सतो के अनुसार निश्चित काव्य के आदर्श, उनके सगीत-प्रेम, उनके द्वारा प्रयुक्त छदो की विविधता तथा उनकी भापा के बहुरगेपन की भी चर्चा की गई है। वहाँ यह दिखलाया गया है कि किस प्रकार वे इन सभी वातो के प्रति प्राय उदासीन-से रहते आए है। कात्य-रूप से कही अधिक ध्यान उन्होने उसकी विषय-वस्तु की ओर ही दिया था और उसे भी सदा अपने रग मे ही रँग कर प्रस्तुत किया।

सत-परपरा के सभी प्रमुख सतो की रचनाएँ उपलब्ध नही है और कई एक की केवल थोडी-सी ही पायी जाती है। जिन सतो की कृतियाँ अधिक सख्या मे नही मिल पाती, किन्तु जो कई अन्य कारणो से बहुत प्रसिद्ध है, उनके पद्यो को भी उदाहरण-स्वरूप सगृहीत कर लिया गया है जिनसे कम-से-कम उनकी भाषा एव वर्णन-शैली का कुछ-न-कुछ पता चल जाता है। अधिक लिखने वाले सतो के सग्रहो मे से पद्य-चयन करते समय उनके वर्ण्य-विषयो पर भी विचार किया गया है और भरसक इस बात का प्रयत्न किया गया है कि एक ही सत की विषयानुसार परिवर्तित शैली की अनेकरूपता का भी कुछ परिचय मिल सके। बड़े-बडे पद्यो और विशेषत पदो के लिए उपयुक्त शीर्षक भी दे दिये गए है जो उनमे व्यक्त प्रमुख विशेषताओ के परिचायक है।

सभी सतो की भिन्न-भिन्न सस्करणो मे प्रकाशित, अथवा अनेक हस्तलिखित प्रतियो मे सगृहीत रचनाओ के न पाये जाने के कारण उनके पाठातरो के रूप देने अथवा उनके सुधारने का अवसर मुझे कम मिल पाया है। जो पाठ जहाँ से मिला है, वहाँ से उसे लगभग उसी रूप मे ले लिया गया है और पाठातर केवल उन्ही के दिये गए है जिनके विपय मे ऐसा करने का सुयोग मिल सका। ऐसे पाठातर अधिकतर सत कबीर साहब, रविदासजी आदि कुछ सतो की ही रचनाओं के दिये जा सके है और उनके उल्लेख पद्यो के अन्त मे कर दिये गए है। सगृहीत पद्यो के नीचे उनमे आए हुए कठिन शब्दो अथवा वाक्याशो के अर्थ यथास्थान टिप्पणी के रूप मे दे दिये गए है। कही-कही पर साथ ही ऐसी अन्य पक्तियाँ भी उद्धृत कर दी गई है जो दूसरे रचयिताओ की होने पर भी, समान भाव व्यक्त करती है। ऐसी पक्तियो मे कही-कही भावसाम्य के अतिरिक्त शब्दसाम्य तक के उदाहरण स्पष्ट दीख पडते है।

प्रस्तुत सग्रह मे अपेक्षाकृत सरल एव सुबोध रचनाओ को ही अधिकतर स्थान दिया गया है। इस बात का ध्यान रखा गया है कि उनमे उल्टवाँसियो जैसे गूढार्थवाची पद्यो का वहुत कम प्रवेश हो पाये। फिर भी सतो के प्रयोग मे बहुधा आने वाले उन पारिभाषिक शब्दो की एक सूची भी अत मे दे दी गई है जो सगृहीत पद्यो मे किसी-न-किसी प्रकार आ गए है। सगृहीत पद्यो मे से कई के---अनेक शब्दो और वाक्याशो के---अभिप्राय पूर्णत स्पष्ट करते समय सतोप नही हो पाता। ऐसी कठिनाई विशेपत वहाँ आ पडती हैं जहाँ पर पद्यो का पाठ या तो सदिग्ध रह गया है अथवा उनके रचयिताओ ने उनका वेतुके ढग से प्रयोग कर दिया है। केवल थोड़ी-सी असावधानी के कारण उनमे न्यूनाधिक जटिलता का समावेश हो गया है। ऐसी समस्या कभी-कभी उस समय भी आ उपस्थित होती है जब देशज अथवा स्थानीय शब्दो और मुहावरो के प्रयोग मिलते है और उनके समुचित ज्ञान का अभाव पद्यो मे व्यक्त किए गये गभीर भावो के अतस्तल तक पहुँच पाने मे हमे असमर्थ-सा वना देता है। ऐसे एकाध स्थल इस सग्रह के

कतिपय पदों मे भी दीख पडेंगे और उन पर दी गई टिप्पणी भी इसी कारण बहुत कुछ अनुमान पर ही आश्रित जान पडेगी। शब्दो एव वाक्याशो के अभिप्राय कही-कही उनके प्रतीकार्थों द्वारा भी स्पष्ट कर दिये गए है।

सत-परपरा के अन्तर्गत साधारणत वे ही सत सम्मिलित किये जाते है जिन्होने सत कबीर साहब अथवा उनके किसी अनुयायी को अपना पथ-प्रदर्शक माना है। किन्तु उनमे ऐसेअन्य सतों की भी गणना कर ली जाती है जिन्होने उनके द्वारा स्वीकृत सिद्धातो को किसी-न-किसी रूप मे अपनाया है। इसके सिवाय उसमे कभी-कभी वैसे महात्माओ को भी स्थान दिया जाता है जो सूफी, वेदाती, सगुणोपासक भक्त, जैनी या नाथपथी समझे जाते हुए भी, अपने विचार-स्वातत्र्य एवं निरपेक्ष व्यवहार के कारण संतवत् माने जाते रहे है। इस सग्रह मे ऐसे सभी प्रकार के सतो की कुछ-न-कुछ बानियाँ सगृहीत है। इनका वर्गीकरण भिन्न-भिन्न युगो के आधार पर किया गया है और प्रत्येक युग की प्रवृत्ति विशेप का परिचय देने के लिए उसके पहले 'सामान्य परिचय' जोड दिया गया है। फिर भी सतो का रचनाओं तथा उनके जीवन-वृत्तो मे घनिष्ट सम्बन्ध है। इस कारण पद्यो के पहले उनकी सक्षिप्त जीवनी भी दे दी गई है। सगृहीत पद्यो को जिन ग्रंथो वा स्थलो से लिया गया है तथा जिनसे भूमिकादि लिखने मे किसी-न-किसी प्रकार की सहायता मिल सकी है, उनकी एक सूची पुस्तक के अत मे 'सहायक साहित्य' के नाम से दे दी गई है। सभव है, उसमे कई उल्लेखनीय नामो का समावेश नही हो पाया हो, किन्तु ऐसी वात भूल से ही हो पायी है।

प्रस्तुत सग्रह का सपादक उन सभी लेखको, प्रकाशको वा साहित्य-प्रेमियो का आभारी है जिनसे उपलब्ध होने वाली सामग्रियो का उसने किसी-न-किसी रूप मे उपयोग किया है अथवा जिनकी विचारधारा एव सकेतो द्वारा उसे कोई प्रेरणा मिल पायी है। स तो की अधिकाश रचनाएँ वहुत कुछ उपेक्षित-सी ही वनी रहती आई हैं और अभी तक केवल कुछ ही साहित्य-मर्मज्ञों ने इस दिशा की ओर अपना समुचित ध्यान दिया है। अत इस विषय के प्राय अछूता-सा रह जाने के कारण सपादक की अनेक बाते विचित्र-सी लग सकती है और उसके कथनो मे अनधिकार चेष्टा का भी प्रतीत होना संभव है। फिर भी उसे विश्वास है कि इस पुस्तक मे सगृहीत अनेक रचनाएँ उसे इस प्रकार के आरोपो से बचाने मे स्वय समर्थ हो सकेंगी।

अत मे, मैं उन सज्जनो के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होने मुझे इस प्रकार का एक सग्रह निकालने के लिए अपना सुझाव दिया था अथवा जिन्होने इसके लिए सामग्रियाँ प्रस्तुत कर दी। इस सम्बन्ध मे यहाँ विशेषकर मेरे अनुज श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी का नाम उल्लेखनीय है जिन्होने इस कार्य मे मुझे अनेक प्रकार की सहायता पहुँचायी है और इसे पूरा करने मे सदा सक्रिय सहयोग प्रदान किया।

—परशुराम चतुर्वेदी

वलिया,
कार्त्तिकी पूर्णिमा
स० २००८

# विषय-सूची

# भूमिका

## काव्य-परिचय

'काव्य' के सम्बन्ध मे अनेक साहित्यज्ञो ने बहुत कुछ विचार किया है। उन्होने इसकी भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ भी दी है। भरत मुनि से लेकर आधुनिक विद्वानो तक ने इस ओर सदा अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार ध्यान दिया है और उसी के आधार पर उन्होंने इसका परिचय भी देने के प्रयत्न किये है। उदाहरणार्थ, यदि किसी ने ऐसा करते समय इसके उद्देश्य या परिणाम को अधिक महत्व दिया है तो दूसरे ने इसकी कतिपय विशेषताओ को ही प्रधानता दी है। इसी प्रकार यदि कुछ लोगो ने इसके मूलतत्व या आत्मा की ओर निर्देश किया है तो अन्य लेखको ने इसके बाह्य रूप को ही सब कुछ मान लिया है। वर्तमान आलोचको द्वारा इसी कारण, उनकी विभिन्न परिभाषाएँ कभी-कभी एकागी एव अनुपयुक्त ठहरा दी जाती है और उन पर पूर्ण सतोष नही प्रकट किया जाता। फिर भी अपनी-अपनी परिभाषा देने की परम्परा अब तक लगभग पूर्ववत् ही चली आ रही है। अपने पूर्वकालीन साहित्यज्ञो के ऐसे 'दोषपूर्ण' वक्तव्यो को सुधारने के प्रयत्न मे ये लोग अपनी ओर से भी कुछ-न-कुछ नवीनता लाते आ रहे है। इन विद्वानो मे कुछ ऐसे व्यक्ति भी है जिन्होने यदा-कदा उक्त भिन्न-भिन्न अङ्गो का समन्वय करने की चेष्टा भी की है। यदि इस प्रकार के लोगों की दृष्टि से विचार किया जाय तो सच्चा काव्य केवल उस प्रभावपूर्ण वाक्य या वाक्यसमूह को ही कह सकेंगे जिसके शब्द सारगर्भित हो, जो गहरी अनुभूतिजन्य होने के कारण अपनेआप, किन्तु किसी कलात्मक ढङ्ग से अभिव्यक्त हुआ हो और जो अपने उदात्त भावो के कारण, आनन्द के साथ-साथ मानव-जीवन की प्रगतिशीलता मे सहयोग भी प्रदान कर सकता हो।

परन्तु उपर्युक्त सभी गुणो से युक्त काव्य कोई आदर्श कृति ही कही जा सकती है जिसके उदाहरण भी बहुत कम मिल सकेंगे। ऐसी दशा मे सारे बहुमान्य काव्यग्रथो मे से अधिकाश को हमे उनसे पृथक् कर देना पडेगा और उन्हे किसी अन्य कोटि की रचनाओ मे स्थान देना होगा। मानव-समाज द्वारा प्रयुक्त वाक्यसमूह आज तक पद्य-गद्य नामक दो भिन्न-भिन्न रूपो मे दीख पडते आए है जिनमे से प्रथम का प्रयोग हमारे वाङ्मय के अन्तर्गत द्वितीय से कदाचित् कुछ पहले आरम्भ हुआ था। उसी की उत्कृष्ट रचनाओ को स्वभावत काव्य की सज्ञा देने की प्रथा भी पहले पहल चली थी। फिर पद्य के वैसे उदाहरणो की ही मुख्य-मुख्य विशेषताएँ काव्य के लक्षण समझी जाने लगी और वे ही उसका मानदण्ड भी बन गई। पीछे आने वाले कवियो ने उन्ही को अपने सामने रखकर अपने काव्यग्रन्थों की रचना की और अपने-अपने समाज मे यश एव धन भी उपार्जित किया। उक्त उत्कृष्ट पद्यो का चुनाव किसी समाज मे उसके सहृदय व्यक्ति की रुचिविशेष के आधार पर ही होता रहा। इसी कारण, देश, काल एव परिस्थिति के अनुसार उक्त मान्य लक्षणो का बहुत कुछ भिन्न-भिन्न हो जाना भी स्वाभाविक था। काव्य की विविध परिभाषाओ मे दीख पडने वाली उपर्युक्त विभिन्नताएँ भी सम्भवत इसी कारण आ गई होगी। किसी एक परिभाषा को स्वीकार कर लेने मे हमे आजकल कुछ कठिनाई भी जान पडती है।

इसके सिवाय भरत मुनि के समय से लेकर आज तक मानव-समाज मे अनेक परिवर्तन भी हो चुके है। भिन्न-भिन्न देशो की जातियाँ अपनी-अपनी सभ्यता एव सस्कृति को साथ लिये हुए क्रमश एक-दूसरे के अधिकाधिक सपर्क मे आती जा रही है। उनकी रहन-सहन, वेश-भूषा एव आचार-विचार-पद्धतियो तक मे कुछ-न-कुछ परिवर्तन होते जा रहे है और उनकी साहित्यिक रुचि पर भी इसका प्रभाव पडता जा रहा है। भिन्न-भिन्न परिभाषाओ के उक्त समन्वय-सम्बन्धी प्रयास का एक यह भी बहुत बडा कारण है। किसी काव्य की रचना करते समय अब उसके रचयिता का अधिक व्यापक दृष्टि से विचार करना स्वाभाविक हो गया है। अब केवल उसी काव्य-कृति का समाज मे अधिक स्वागत होना सम्भव है जो जन-सामान्य की रुचि को भी अधिक-से-अधिक सतुष्ट करने मे समर्थ हो। वैसे काव्य अब कभी चिरस्थायी नही हो सकते जो केवल व्यक्तिगत 'यश' वा 'अर्थ' की अभिलाषा मे किसी ऐश्वर्यशाली पुरुष की छत्र-छाया मे रचे गए हों और जो केवल भाषाविषयक वाह्य विशेषताओ का ही प्रदर्शन करते हो। सच्चे काव्य का मूल्याकन अब उसके केवल मनोरजन मात्र होने मे ही नही, अपितु उसके विषय की व्यापकता, उसके उद्देश्य की महानता तथा उसकी उस शक्ति के आधार पर ही होगा जिससे वह अधिकाधिक जनहृदय के मर्मस्थल को स्पर्श भी कर सकता हो। भाषा वा शैलीगत सौंदर्य अथवा व्यक्तिगत विशेषताओ को इसी कारण, क्रमश गौण स्थान दिया जाने लगा है और विषय का महत्व ही आजकल उसका प्रधान लक्ष्य समझा जाने लगा है।[1]

किसी काव्य मे प्रधानत दो बातें देखने मे आती है। उनमे से एक का सम्बन्ध उसके विषय से होता है और दूसरी का उसकी भाषा के साथ रहा करता है। भाषा की दृष्टि से उसकी उत्कृष्टता प्राय उसके शब्दचयन, वाक्यरचना एव वर्णनशैली मे देखी जाती है और विषय की दृष्टि से उसकी खोज उसके भावगाभीर्य, अर्थगौरव तथा उस उद्देश्य मे की जाती है जिसकी ओर वह सकेत करता है। दोनो मे से किसी एक विशेषता के ही कारण कोई काव्य क्रमश भाषाप्रधान वा भावप्रधान कहा जाता है। पहले प्रकार के काव्य का रचयिता किसी विषय को लेकर उसकी वर्णन-शैली मे अपनी सारी प्रतिभा-पटुता प्रदर्शित करता हुआ लक्षित होता है। वह अपने वाक्यो मे शब्द-सौंदर्य भरता है, विविध अलकारो के प्रयोग करता है, उक्ति-वैचित्र्य का आश्रय लेता है, लय का आयोजन करता है और अपने भावो को ऐसी निपुणता के साथ व्यक्त करता है जिससे उसकी कृति मे एक प्रकार का चमत्कार-सा आ जाता है। परन्तु दूसरे प्रकार का कवि अपने वर्णन के साधनो की ओर उतना ध्यान नही देता। उसका वर्ण्य-विषय उसे इतनी गहराई तक प्रभावित किये रहता है कि उसे ज्यों-का-त्यो व्यक्त कर देने मे ही उसे एक प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है। उसके भावो की व्यजना मे किसी प्रयास की अपेक्षा नही रहा करती और वे उसके शब्दो द्वारा आप-से-आप रमणीयार्थ के रूप मे व्यक्त होते जाते है। भाषा का सौंदर्य यहाँ पर वास्तविक भावो को यथावत् वहन करने वाली उसकी क्षमता मे ही देखा जाता है, उसके वाह्य रूप की सजावट मे नही। यह वात

---

१. तुलनीय—"It may be quite true that fine and telling rhythms without substance (substance of idea, suggestion, feeling) are hardly poetry at all, even if they make good verse."—Letters of Sri Aurobindo (Third Series), p 11

दूसरी है कि भाषा पर अच्छा अधिकार प्राप्त रहने के कारण ऐसा कवि कभी-कभी उसे सँवारने का भी कुछ-न-कुछ प्रयत्न कर देता है।

अतएव, किसी काव्य का वास्तविक महत्व भाषा से अधिक उसके भावो के ही कारण माना जा सकता है। भाव, वस्तुत काव्य-पुरुष का 'स्वभाव' है जब कि भाषा केवल उसका 'शरीर' मात्र ही कही जा सकती है। इस कारण, जिस प्रकार किसी प्रकृत मनुष्य के चरित्र के सुन्दर बने रहते उसके शरीर का भी सुन्दर होना अपेक्षित नही, उसी प्रकार उत्कृष्ट भावो की उपस्थिति मे काव्य के भाषा-सौदर्य का भी होना अनिवार्य नही कहा जा सकता। इसके सिवाय काव्य का कोई भाषागत दोष किसी प्रकार क्षम्य भी हो सकता है, किन्तु उसके भावो की अशोभनता कभी स्पृहणीय नही समझी जा सकती है। काव्यसरिता सुरसरि की भाँति वक्र एव विकृत होने पर भी अपने अन्त पूत सलिला बने रहने के कारण ही अभिनन्दनीय हुआ करती है। इस कारण किसी काव्य को श्रेष्ठ वा साधारण ठहराते समय सर्वप्रथम उसके भावो की दृष्टि से ही विचार करना आवश्यक होता है। यदि उसके भाषा वा शैली सम्बन्धी गुण भी उत्कृष्ट हुए तो वह एक आदर्श काव्य कहा जायेगा, अन्यथा उसे साधारण काव्य की श्रेणी मे रख दिया जाता है। उच्च भावो का अभाव किसी पद्य को हल्का एव नीरस बना देता है। वैसी दशा मे, उसे कोरी तुकबदी से अधिक नही समझा जाता, जहाँ सुन्दर भावो को यथावत् प्रकट करने वाला गद्य भी 'गद्यकाव्य' की सज्ञा पा जाता है। अतएव काव्य की सतोषप्रद परिभाषा न दे सकने का एक प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि इस मूलत भावाश्रित वस्तु का वास्तविक स्रोत हृदयक्षेत्र है, जहाँ पर किसी सीमा की वैसी इयत्ता नही प्रतीत होती जिसके आधार पर कोई रूपरेखा निर्धारित की जा सके और उसे सर्वसाधारण के समक्ष उपस्थित किया जा सके। ऐसा प्रयत्न करने वालो की बाते इसी कारण बहुधा दार्शनिक वा रहस्यमय तक बनकर रह जाती है और काव्य की कोई उपयुक्त परिभाषा देने की अपेक्षा उसका किसी-न-किसी रूप मे परिचय दे देना ही उस के लिये पर्याप्त समझा जाने लगता है।

किसी काव्य के उत्कर्ष मे श्रीवृद्धि करने वाली जिन दो प्रमुख बातो की चर्चा साहित्यज्ञो ने विशेष रूप से की है, वे रस-परिपाक एव अलकारो का समुचित वि[illegible] है। 'रस' का वास्तविक अभिप्राय उस 'साहित्यिक स्वाद' से है जो सहृदय व्यक्तियो की रुचि को बढाने वाली काव्य-शक्ति के रूप मे अनुभूत होता है। परन्तु उसका एक अन्य अर्थ उन विविध सहानुभूतियो के रूप मे लक्षित होने वाले कवि के विशेष भावो अपना काव्यरचना के पात्रो के विशेष अनुभवो के साथ सगमन करती है। उन्हे कतिपय मु[illegible] मानसिक वृत्तियो के रूप मे शृगार, वीर, हास्य, अद्भुत, शान्त, रौद्र, वीभत्स, करुण तथा भयानक के पारिभाषिक नामो द्वारा नव प्रकार से गिनने की परिपाटी चली आती है। इस दूसरे प्रकार का रस उस न्यूनाधिक स्थायी प्रभाव का परिचायक है जो किसी काव्य के पाठक वा श्रोता के ऊपर पड सकता है और उसके मनोभाव मे कुछ परिवर्तन लाने मे भी समर्थ होता है। इसके विपरीत, अलकार किसी ऐसी रचना के विभिन्न भावो [illegible] उनके यथेष्ट रूप मे ग्रहण करते समय उनके स्पष्टीकरण मे सहायक हुआ करता है। जिस रचना के अन्तर्गत रसविशेष का परिपाक इष्ट प्रभाव का उत्पादन न कर सकता हो उसमे रसभग वा रस-दोष आ जाता है और वह कृति अनौचित्य प्रदर्शित करती है।[1]

---

१ ध्वनिकार आनन्द वर्धनाचार्य ने इनके विपरीत अनौचित्य को ही रसभग का कारण बतलाया है जो आलोचनात्मक दृष्टिकोण के कारण है और वह भी ठीक ही है।

इसी प्रकार जब किसी अलकार के प्रयोग द्वारा भावविशेष का अभीष्ट रूप हृदयगम नही हो पाता, अपितु वह केवल चमत्कारवर्द्धक ही सिद्ध होता है, तो वह एक प्रकार के काव्य-दोष का कारण बन जाता है। काव्य के उत्कर्ष का आधार समझी जाने वाली कतिपय साहित्यज्ञो द्वारा प्रस्तावित 'ध्वनि' एव 'रीति' नामक शक्तियो की चर्चा भी क्रमश रस एव अलकार का वर्णन करते समय ही की जा सकती है। क्योकि ध्वनि एक प्रकार के 'साहित्यिक स्वाद' की ही सृष्टि करती है और अलकार को भी इसी प्रकार, वस्तुत वर्णनशैली के एक ढग विशेष मे अधिक महत्व नही दिया जा सकता।

## हिन्दी काव्यधारा

हिन्दी काव्य का इतिहास कम पुराना नही है। अपभ्रश एव प्राचीन हिन्दी की वेश-भूषा मे इसके उदाहरण विक्रम की ८वी शताब्दी से ही मिलने लगते है जिनमे से कुछ तो प्रबन्धकाव्य हैं और दूसरे फुटकर पदो आदि के रूपो मे दीखते है। उस काल हिन्दी भाषा का क्रमश निखरना आरम्भ हो जाता है और उसका वास्तविक हिन्दी रूप विक्रम की १३वी शताब्दी मे जाकर प्रकट होता है। इस समय तक रची गई काव्यो की सबदियो, चारणो के छप्पयों, भक्तों के पदो तथा अज्ञात कवियो की प्रेम-कहानियो मे हमे इसके अनेक शब्द एव वाक्य कुछ परिचित से समझ पडने लगते है। ऐसा लगता है कि अब हम किसी सुविदित क्षेत्र मे पदार्पण कर रहे हैं। इस समय अपने चारो ओर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि हिन्दी काव्य की सरिता एक से अधिक स्रोतो मे प्रवाहित हो रही है जिनके मूल उद्गमो की परम्पराएँ भिन्न-भिन्न है। उदाहरणार्थ, यदि एक का लगाव योग तथा साप्रदायिक विषयो से है तो दूसरे का श्रद्धा एव भक्ति के साथ है। इसी प्रकार यदि एक अन्य का सम्पर्क प्रेमाख्यानो से है तो दूसरे का वीरगाथाओ तथा कीर्तिगानो के साथ है। इसी बात को यदि साहित्यिक शब्दावली द्वारा व्यक्त किया जाय तो कह सकते है कि प्रथम दो प्रकार की रचनाएँ यदि शातरस-प्रधान है तो तीसरे प्रकार की शृगाररस-प्रधान। उसी प्रकार उक्त अतिम दो की गणना हम वीररस-प्रधान काव्यो मे कर सकते है। कहना न होगा कि उपर्युक्त विषय किसी-न-किसी रूप मे हमारे हिन्दी काव्य की प्रमुख वर्ण्य-वस्तु बनकर प्राय ८०० वर्ष और आगे तक निरतर चले आते हैं। आधुनिक समय तक पहुँचने पर ही हमे उनमे कोई वास्तविक परिवर्तन लक्षित हो पाता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकार उसके काव्य का आरम्भ पहले-पहल अधिकतर वीररस-प्रधान कृतियो से ही किया करते थे और उसका आदिकाल 'वीरगाथा-काल' के नाम से प्रसिद्ध हो चला था। किन्तु इधर की खोजो द्वारा प्राप्त किये गए हस्तलिखित ग्रन्थो के आधार पर अब यह नामकरण कुछ अनुपयुक्त-सा जान पडने लगा है और भिन्न-भिन्न लेखक अब इसे भिन्न-भिन्न नामो से पुकारने लगे हैं। तदनुसार आजकल यदि कोई इसे उस समय की प्रचलित भाषा के आधार पर नाम देना चाहते है तो दूसरे इसकी उपलब्ध कृतियो की पृष्ठभूमि-स्वरूप सामाजिक दशा को महत्व देते है। अन्य लोग इसे केवल आदिकाल वा प्रारभिक युग कहकर ही सन्तोष ग्रहण कर लेते है। विषय की दृष्टि से इस युग मे उक्त तीनों रसो की रचनाएँ प्राय समान रूप से दीख पडती है। बौद्ध सिद्धो, जैन मुनियों तथा इसके उत्तरार्द्ध काल के भक्त कवियो की कृतियो मे शात-रस की प्रधानता है। प्रेम-कहानियो मे शृगाररस प्रमुख बन गया है और जैन प्रबन्ध-काव्यों वा रासो जैसी रचनाओ मे प्रसंगानुसार वीर एव शृगार दोनो ही प्राय एक

समान वर्त्तमान है। इसी प्रकार आगे विक्रम की चौदहवी शताब्दी तक के समय का पूर्वार्द्ध अधिकतर शातरस-प्रधान एव उत्तरार्द्ध शृगाररस-प्रधान है। वीररस के काव्यो की सख्या वैसी कृतियो की अपेक्षा बहुत कम दीख पडती है। पद्रहवी से लेकर सत्रहवी तक फिर इसी प्रकार शातरस-प्रधान काव्यो का ही बाहुल्य रहता है। आगे की उन्नीसवी शताब्दी तक फिर शृगाररस की प्रधानता हो जाती है। वीररस की कृतियो का कोई अपना विशेष युग नही है और वे सदा केवल छिटपुट रूप मे ही दिखलाई पडती है।

दार्शनिक एव धार्मिक विषय हिन्दी काव्यधारा की कदाचित् सबसे प्राचीन वर्ण्य-वस्तु हैं। इनका अस्तित्व उसके अपभ्रश के रूप मे भी पाया जाता है। विक्रम की ९वी शताब्दी मे सर्वप्रथम, हमे बौद्ध सिद्धो की रचनाएँ मिलती है जिनमे वज्रयान एव सहज-यान सम्बन्धी साम्प्रदायिक विचारो और उनकी साधनाओ की चर्चा की गई है तथा उनसे विरोधी सप्रदायो की अनेक बातो की आलोचना भी की गई है। प्राय उसी प्रकार की बाते, हमे आगे चलकर नाथपथी 'जोगियो' तथा जैन मुनियो की भी वैसी उपलब्ध रचनाओ मे दीख पडती है। इनमे प्रधान अतर यह है कि बौद्ध सिद्धो की रच-नाओ मे जहाँ केवल 'बोहि', 'सुन्न' एव 'सहज' का महत्व, नैरात्मा की विविध चेष्टाओं तथा कतिपय यौगिक साधनाओ के ही प्रसग आते है, वहाँ नाथो की रचनाओ मे हमे ईश्वरत्व जैसी आस्तिक भावना भी लक्षित होने लगती है। उस काल की प्राय सभी वैसी रचनाओ मे हमे कुछ नैतिक बातो का भी समावेश स्पष्ट दिखलाई पडता है। ये सभी रचनाएँ अधिकतर साम्प्रदायिक प्रेरणा से ही लिखी गई है और इनमे स्व-भावत उपदेशो की ही भरमार है। फिर भी बौद्ध सिद्धो के चर्या-पदो, नाथो की सबदियो, जैनियो के चरितो एव पुराण-ग्रन्थो तथा उन सभी के अनेक दोहो मे हमे अनेक ऐसे स्थल भी मिलते है जिन्हे हम काव्य के अच्छे उदाहरण कह सकते है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास के ये ४०० वर्ष उसके प्रारभिक युग के ही द्योतक है। यह वस्तुत अपभ्रश वा प्राचीन हिन्दी अथवा राजस्थानी का युग है जिस कारण इस समय की वैसी उपलब्ध कृतियों की गणना हिन्दी काव्यो मे करना उचित नही कहा जा सकता। हिन्दी काव्यधारा का स्रोत इनमे बहुत क्षीण रूप मे ही दीख पडता है।

हिन्दी के उपर्युक्त प्रारम्भिक युग से ही भारत पर मुसलमान आक्रमणकारियो के आक्रमण होने लगे थे। स० ७६९ मे उन्होने सिध प्रदेश पर पहले धावा किया और फिर ११वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल मे महमूद गजनी (स० १०४५–१०८७) के हमले हुए जिनमे यहाँ की सम्पत्ति कई बार लूटी गई। भारत उस समय वास्तव मे, समृद्धशाली देश था और यहाँ की कृषि, कला, एव वाणिज्य की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल चुकी थी। यहाँ के राजा, सेठ एव महत-जैसे लोग विलासिता मे निमग्न रहा करते थे। उनके तथा साधारण जनता के बीच बहुत बडी खाई बन गई थी। राजाओ के दरबार लगते थे जहाँ सेवको तथा चाटुकारो की भीड बनी रहती थी। विलासिता-उत्तेजक सजावटो तथा युद्ध-सामग्रियो मे धन का अपव्यय हुआ करता था। युद्ध भी अधिकतर आपस मे ही हुआ करते थे और विदेशी आक्रमणो की गम्भीरता की ओर यथेष्ट ध्यान नही दिया जाता था। फलत विक्रम की १३वी शताब्दी के मध्यकाल मे जब शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी (स० १२४९–१२६३) के धावे हुए तब स्थिति सम्भाली न जा सकी और दिल्ली शासन को बहुत दिनो के लिए पराधीन बन जाना पडा। गोरी के एक दास कुतुबुद्दीन ऐबक (स० १२६३–१२६९) ने यहाँ पर जमकर शासन करना

आरभ कर दिया। भारतीयो की स्वतत्रता मे अगले प्राय ७५० वर्षो तक निरतर ह्रास होता चला आया। विक्रम की १६वी शताब्दी के अन्तिम चरण मे मुगल राज्य की स्थापना होने के पहले तक कई भिन्न-भिन्न मुस्लिम वशो ने शासन किया। किन्तु शाति एव समृद्धि मे वृद्धि की अपेक्षा बराबर कमी ही होती गई। भारतीय जनसमाज, जाति-पाँति, छुआछूत तथा पारस्परिक कलह आदि के कारण विश्रृखल बनकर आडबर एव मिथ्याचार का भी क्रमश शिकार बनता गया।

विक्रम की १२वी एव १३वी शताब्दियो का युग वैष्णव धर्म के तीन प्रमुख आचार्य श्री रामानुज, निम्बार्क एव मध्व के आविर्भाव का भी समय था जिसमे वेदात-मूलक भक्तिमार्ग का प्रचार सगठित रूप मे आरभ हुआ और दक्षिण से लेकर उत्तर तक बडे वेग के साथ फैलने लगा। इसके मूल सिद्धात उक्त आचार्यो द्वारा निर्मित भाष्यो के अतिरिक्त विष्णु पुराण एव पाचरात्र सहिताओ पर भी बहुत कुछ आश्रित थे। इसकी विविध साधनाएँ वैधमार्गों का अनुसरण करती थीं। वैष्णव धर्म की रागानुगा शाखा का प्रचार कुछ आगे चलकर आरम्भ हुआ जब 'श्रीमद्भागवत' को अधिक महत्व दिया जाने लगा और प्रेममूलक भक्ति का उपदेश दिया जाने लगा। विक्रम की १२वी शताब्दी के ही लगभग यहाँ पर उस नवागत विदेशी धर्म का भी सगठित प्रचार आरम्भ हुआ जिसका नाम 'मजहबे इस्लाम' था और जिसे तत्कालोन मुस्लिम शासकों की राजकीय सहायता भी उपलब्ध थी। इसकी कई बाते भारतीय सस्कृति एव परपरा के प्रतिकूल पडती थी और यह एक आक्रामक के भी रूप मे अग्रसर होता जा रहा था। अतएव, भारतीय समाज को इसके कारण विवश होकर अपने आचार एव सगठन के नियमो मे अनेक परिवर्तन करने पड गए। बौद्ध धर्म इसके बहुत पहले से ही तात्रिक एव योग-क्रियामूलक रूप ग्रहण कर चुका था और नाथ-सप्रदाय के साथ-साथ हिन्दू धर्म के विस्तृत सागर मे क्रमश लीन होता जा रहा था। उत्कल एव महाराष्ट्र जैसे प्रदेशों की विचित्र परिस्थितियो ने तो उन्हे यहाँ तक प्रभावित किया कि वहाँ के वैष्णवो से इनके सहज-यानियो तथा नाथ-जोगियो का कोई विशेष अंतर ही नही रह गया। फलत उत्कल एव बगाल के तत्कालीन वातावरण ने इधर सत जयदेव को उत्पन्न किया और महाराष्ट्र की परिस्थितियो के अनुसार उधर वारकरी सप्रदाय चल निकला जिसके सत नामदेव अपने उत्तरकालीन कबीर साहब आदि के आदर्श बन गए।

## संत-परंपरा

कबीर साहब जैसे सतो की परपरा का सूत्रपात विक्रम की १५वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल मे हुआ जब कि उन्होने अपने कतिपय विचारो को स्वतत्र रूप मे प्रकट करना आरभ किया। स्वामी रामानद, रविदास एव पीपा आदि सत भी प्राय समान भावो द्वारा अनुप्राणित थे और इस नवीन सतमत के प्रचार मे प्राय सभी का सहयोग लगभग एक ही प्रकार का रहा। कबीर साहब साधारण जन-समाज मे उत्पन्न हुए थे। उन्हे धन-सपन्न व्यक्तियो अथवा विद्याव्यसनियो के सपर्क मे आकर अपना जीवन विक-सित करने का भी कभी अवसर नही मिला था। परंतु वस्तुस्थिति को परखने, उसका उचित मूल्याकन करने तथा व्यापक रूप से विचार करते हुए उसके अनुसार अपने सिद्धात निर्धारित करने की उनमे अनुपम शक्ति थी। किसी धर्मग्रथ, सप्रदाय अथवा वर्गविशेष का आश्रय न ग्रहण करते हुए भी वे अपने मतव्यो पर सदा दृढ रहे और उन्होने

उनका पूरी निर्भीकता के साथ प्रचार किया। उन्होंने सभी प्रचलित धर्मों के मूल सिद्धातो के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की, किन्तु उसके बाह्याचारो को गौण स्थान दिया। वे थोथी विडवनाओ के प्रवल विरोधी थे और सत्य वा ईश्वर के नाम पर ढोग रचने अथवा स्वार्थ-साधन करने वालो को खरीखोटी सुनाने मे कभी नही चूकते थे। उनकी सारी बाते निजी अनुभव को ही अपनी कसौटी के लिए लक्ष्य बनाती थी। अतएव उनके हृदय की सचाई के प्रति विश्वास का होना असभव न था और धीरे-धीरे सभी उन्हे श्रद्धा एव सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

प्रसिद्ध है कि कवीर साहब ने स्वामी रामान्द (स० १३५५-१४६७) को अपना दीक्षा-गुरु स्वीकार किया था। सत रविदास, सेन, पीपा, धन्ना आदि उनके गुरुभाई थे। उक्त स्वामीजी के ही उपदेशो से प्रभावित होकर इन सभी लोगो ने सत-परपरा का सूत्र-पात किया था। परन्तु इसके लिए न तो कोई स्पष्ट तथा ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं, न इन सतो की किन्ही रचनाओ द्वारा ही इसकी पुष्टि होती है। इसके सिवाय इन सभी सन्तो का स्वामी रामानद के साथ समसामयिक होना भी सिद्ध नही होता, जिस कारण उनके साथ इन सभी महापुरुषो के किसी प्रत्यक्ष सम्बन्ध के विषय मे अनुमान करना अधिकतर जनश्रुतियो तथा पौराणिक गाथाओ के आधार पर ही सभव कहा जा सकता है। वात यह है कि उस समय के पहले, अर्थात् लगभग ३०० वर्षो से ही सन्त-परपरा की विचारधारा के लिए अनुकूल क्षेत्र तैयार होता आ रहा था। पूर्वी भारत की ओर विशे-षत उत्कल एव बगाल प्रदेशो मे बौद्धधर्म के क्रमश वज्रयान एव सहजयान मे परिणत हो जाने के कारण, उसके तथा स्थानीय वैष्णव सप्रदायो के बीच कोई विशेष अतर नही रह गया था। वे एक-दूसरे के साथ कई बातो का आदान-प्रदान करते हुए निकटतर आने लगे थे। महाराष्ट्र एव राजस्थान की ओर भी इसी प्रकार नाथपथ एव स्थानीय वैष्णव सप्रदायो की विचारधाराएँ आपस मे मिलती जा रही थी। सुदूर कश्मीर तक ऐसी बातो का प्रभाव वहाँ के शैव सप्रदाय की अनेक बातो मे दीख पडने लगा था। फलस्व-रूप पूर्व की ओर सत जयदेव, दक्षिण की ओर सत ज्ञानदेव एव नामदेव, पश्चिम की ओर सत वेनी एव सधना तथा कश्मीर की ओर सत लालद्यद का आविर्भाव स्वामी रामानद से पहले ही हो चुका था। वे कबीर साहब तथा स्वय उनके लिए भी पथ-प्रदर्शन का काम कर सकते थे। स्वामी रामानद श्री-सप्रदाय के अनुयायी श्री राघवानद के दीक्षित शिष्य थे। इन पर नाथपथ की साधनाओ तथा सिद्धातो का भी बहुत कुछ प्रभाव पड चुका था। विस्तृत देशाटन तथा विविध सत्सगो के कारण उनके विचार अपने गुरु से भी कही अधिक व्यापक एव उदार वन गए थे। अतएव स्वामी रामानद कबीर साहब के प्रत्यक्ष गुरु न होते हुए भी उनके अधिक निकट रहने के कारण उन्हे भलीभाँति प्रभावित कर सकते थे। परन्तु यह वात कवीर साहव के सभी समसामयिको के विपय मे भी उसी प्रकार घटायी नही जा सकती।

वास्तव मे इन सतो के सम्वन्ध मे इनके किसी साप्रदायिक दीक्षा-गुरु के रहने वा न रहने का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न भी नही उठता। 'सत' शब्द 'सत्' शब्द का एक अन्यतम रूप है जिसका वास्तविक अर्थ अस्तित्व का वोधक है और जो एक प्रकार से 'सत्य' का भी पर्यायवाची है। सतो का प्रधान लक्षण, इस कारण, यही हो सकता है कि वे सत्य के प्रति पूरी 'आस्था' रखते हैं और उसी के अनुसार अपने जीवन को ढाल भी देते हैं। सत्य की अनुभूति उनमे उसके साथ-साथ तादात्म्य का भाव ला देती है जिस कारण

उनमें सम्यक् दर्शन की शक्ति आ जाती है और उनका जीवन-स्तर बहुत ऊँचा बनकर उनके व्यक्तित्व को नितात शुद्ध, सरल एव सात्विक रूप प्रदान कर देता है। तदनुसार उनमे किसी प्रकार के सकुचित वा सकीर्ण विचारो के लिए कोई स्थान ही नही रह जाता। वे सभी धर्मो, सप्रदायो, जातियो वा वर्गो को समान दृष्टि से देखने लग जाते है। उन्हे यदि गुरु की आवश्यकता भी पडती है तो केवल इसीलिए कि वह उनके प्रारभिक साधारण जीवन की दशा मे उनके सामने कोई-न-कोई एक सकेत वा सुझाव-सा प्रस्तुत कर देता है जिसकी झलक उसके प्रवाह की दिशा को सहसा बदल देती हैं। गुरु उनका इस प्रकार केवल पथ-प्रदर्शन मात्र करता है। 'जीवन' का पूर्ण कायापलट उनकी निजी साधना एव अनुभूति पर ही आश्रित रहा करता है। उनके लिए न तो किसी सप्रदाय-विशेप के रूढिगत नियमो का पालन आवश्यक होता है,न वे इसी कारण किसी व्यक्तिविशेप के ऐसे दीक्षित शिष्य ही कहे जा सकते है जिनके लिए उसने कतिपय विधियो का निर्वाह तथा साधनाओ का अभ्यास किसी प्रकार अनिवार्य बतलाया हो।

कबीर साहब और उनके समसामयिक सतो का काल सत-परपरा के लिए प्रारभिक युग था। उस समय के किसी भी सत ने न तो अपने अनुकरण मे अग्रसर होने वालो का कोई सगठन किया, न उन्हे किसी साधना वा सदेश के प्रचार के लिए कोई प्रेरणा प्रदान की। जहाँ तक पता चलता है, उन लोगो ने जो भी उपदेश दिये, अपने व्यक्तिगत अनुभवो के अनुसार ही दिये और प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी अनुभव की कसौटी पर भलीभाँति उसे परखकर ही स्वीकार करने का परामर्श दिया। किन्तु सत-परपरा की प्रगति के मध्य युग, अर्थात् स० १५५० से लेकर स० १८५० तक के ३०० वर्षों मे इस नियम का ठीक-ठीक पालन न हो सका और गुरु नानकदेव (स० १५२६-१५९५) के समय से सामुदायिक सगठन, शिष्य-पद्धति-निर्माण तथा उपदेश-सग्रह की प्रथा भी चल निकली। उक्त युग के पूर्वार्द्ध काल (अर्थात् स० १५५०-१७००) मे गुरु नानकदेव के नानकपथ के अतिरिक्त न केवल दादू दयाल (स० १६१०-१६६०) के दादूपथ, बावरी साहिबा (१७वी शताब्दी) के बावरीपथ, हरिदास (मृ० स० १७००) के निरजनी सप्रदाय तथा मलूकदास (स० १६३१-१७३९) के मलूकपथ नामक वर्गो की ही सृष्टि हुई, प्रत्युत कबीर साहब के नाम पर कबीर-पथ भी बन कर तैयार हो गया। इसी प्रकार लालपथ एव साधसप्रदाय भी बन गए। इन पथो वा सप्रदायो के भिन्न-भिन्न केंद्र स्थापित हो गए। इनके उपदेश-सग्रहो को धर्मग्रथों का महत्व मिलने लगा। इन पृथक्-पृथक् वर्गो के प्रवर्तको की मूल विचारधारा के कबीर साहब के सिद्धातानुसार होने पर भी इनकी सामुदायिक इकाइयो मे कुछ-न-कुछ विशेषताएँ भी आने लगी। उस समय केवल थोडे ही ऐसे सत थे जिन्होंने उक्त प्रकार के सामूहिक वर्ग-निर्माण की चेष्टा नही की।

फिर भी, मध्ययुगीन सत-परम्परा का उक्त पूर्वार्द्ध काल केवल पथ-निर्माण के सूत्रपात तथा उसके लिए किये गए प्रारभिक प्रयासों के लिए ही प्रसिद्ध है। ऐसे पथो वा सम्प्रदायो की अधिक सख्या उस युग के उत्तरार्द्ध काल (अर्थात् स० १७००-१८५०) मे दीख पडी जब कि सत बाबालाल (स० १६४७-१७१२) के नेतृत्व मे बाबालाली सप्रदाय, सत प्राणनाथ (स० १६७५-१७५१) का धामी सप्रदाय, साध सप्रदाय की एक शाखा के रूप मे सत्तनामी सप्रदाय,बाबा धरनीदास १८वी शताब्दी पूर्वार्द्ध का धरनीश्वरी सप्रदाय, बिहारी दरियादास (स० १७३१-१८३७) का दरियादासी सप्रदाय, मारवाडी दरिया साहब (स० १७३३-१८१५) का दरियापथ, सत शिवनारायण (१८वी शताब्दी उत्त-

राद्ध) का शिवनारायणी सम्प्रदाय, सत चरणदास (स० १७६०-१८३६) का चरणदासी सम्प्रदाय, सत गरीबदास (स० १७७४-१८३५) का गरीब पथ, सत पानपदास (स० १७७८-१८३०) का पानपपथ और सत रामचरणदास (स० १७७८-१८३०) का राम-सनेही मम्प्रदाय नामक भिन्न-भिन्न वर्ग प्रतिष्ठित हो गए। इन सभी का अपने-अपने क्षेत्रो मे सगठित रूप से प्रचार भी होने लगा। इस काल मे दीन दरवेश (उन्नीसवी शताब्दी का प्रथम चरण) तथा बुल्लेशाह (स० १७३७-१८१०) और बाबा किनाराम (मृ० स० १८२६) जैसे कुछ अन्य सत भी हुए जिन्होने सत-मत का किसी-न-किसी रूप मे प्रचार किया। यह समय उस प्रकार के सतो का था जो सत-मत को अधिकतर किसी-न-किसी समन्वयात्मक दृष्टि से देखते थे। इनमे से कई एक सम्राट् अकबर (स० १५९९-१६६२) की भाँति, एक ऐसे मत का प्रचार करना चाहते थे जिसके अतर्गत सभी प्रचलित धर्मो के मूल सिद्धातो का समावेश हो सके। अत धर्मो के प्रमुख मान्य ग्रथो का अध्ययन और सूफियो एव वेदातियो द्वारा प्रभावित विचारो का प्रचार तो हुआ ही, उसके साथ-साथ पौराणिक गाथाओ की सृष्टि, अलौकिक प्रदेशो की कल्पना, भक्तमालो की रचना तथा अपने-अपने श्रेष्ठ ग्रथो की पूजा भी इस काल से आरभ हो गई। कुछ सत एक प्रकार के अवतारवाद को अपनाकर अपने को पूर्वकालीन सतो का प्रतिरूप वा भविष्यकालीन सुधारक, अर्थात् मसीहा तक भी घोपित करने लगे। इस युग मे एक विशेष बात यह भी दीख पडी कि उक्त सम्प्रदायो मे से एकाध ने दिल्ली के तत्कालीन शासको के विरुद्ध विद्रोह का झडा उठाया। सत्तनामी सम्प्रदाय के अनुयायियो ने इसी युग मे सम्राट् औरगजेब (मृ० स० १७६४) के शासन के विरुद्ध स० १७२९ मे विद्रोह किया। गुरु नानकदेव के अनुयायी सिखो ने अपने नवे गुरुगोविंद सिंह (स० १७२३-१७६५) के नेतृत्व मे उसके साम्राज्य के विरुद्ध 'खाल्सा' वीरो के रूप मे डटकर लोहा लिया।

परन्तु सत-परपरा के अतर्गत उक्त प्रकार की साप्रदायिक मनोवृत्तियो का जाग उठना आगे चलकर उसके लिए अहितकर सिद्ध हुआ। भिन्न-भिन्न वर्गो के अनुयायियो का अपने पथ विशेप के प्रति पक्षपात का होता जाना स्वाभाविक था जिस कारण उनमे रूढिवादिता एव सकीर्णता आ गई। वे एक-दूसरे को नितात पृथक् तथा भिन्न समझने लगे। इन मम्प्रदायो के अनुयायी अपने मूल-प्रवर्त्तको एव प्रमुख सतो को राम, कृष्ण, बुद्ध आदि की भाँति देवत्व का स्थान देने लगे। उनकी अर्चना होने लगी। उनका स्तुति-गान आरभ हो गया। उनके सगृहीत उपदेश ग्रथो तक को गुरुवत् गौरव प्रदान किया जाने लगा। उनके चित्रो वा समाधियो की पूजा उनका महत्वपूर्ण कर्तव्य बन गई। उनके सम्मान मे किये गए मेलो मे प्रचलित पर्वो एव तीर्थो का-सा चमत्कार आ गया। उनके जीवन की साधारण-सी घटनाओ पर भी पौराणिकता का रग चढाकर बहुत-सी पुस्तके लिखी जाने लगी और सख्या उत्तरोत्तर बढती गई। अपने-अपने सम्प्रदायो की गणना अब वे लोग भी क्रमश अन्य प्रचलित धर्मो के सम्प्रदायो की भाँति ही करते थे। उनमे विविध बाह्याचारो तथा कल्पित गाथाओ की सृष्टि होती जाती थी जिसका एक परिणाम यह हुआ कि जिन बातो को दूर कर एक शुद्ध एव सात्त्विक धर्म की प्रतिष्ठा का उद्देश्य पहले उनके सामने रखा गया था, वे उनमे फिर भी प्रवेश करने लगी और उनका वास्तविक आदर्श उनकी दृष्टियो से ओझल हो गया। अब सतमत एव अन्य सम्प्रदायो की मान्यताओ मे विशेप अन्तर नही रह गया। फलत उच्च स्तर के सत ऐसी प्रतिकूल भावना की कभी-कभी आलोचना तक करने लगे और कोई-कोई इन पतनोन्मुख प्रवाह की रोकथाम के लिए कटिबद्ध भी हो गए।

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग प्रथम चरण से ही यहाँ पर अंग्रेजो की सत्ता जमने लगी थी। पाश्चात्य ढंग की शिक्षा तथा विदेशी साहित्य के अधिकाधिक अध्ययन के कारण विचारशील भारतीयो मे आत्म-निरीक्षण एव पुनरुद्धार की भावना जागृत हो चुकी थी। विदेशी विद्वानो ने जिस ढंग से हमारे साहित्य, कला एव संस्कृति का अनुसंधान आरम्भ किया था, उसका अनुकरण अब यहाँ के लोग भी करने लगे थे। पाश्चात्य सभ्यता के आलोक मे सभी बातो का मूल्याकन करते हुए वे उनकी प्राचीन बातों की नवीन व्याख्या करने मे भी संलग्न थे। तदनुसार संत-परम्परा के एकाध संतों ने भी ऐसे प्रयत्न आरम्भ किये। वे पुराने सन्त जैसे कबीर साहब, गुरु नानकदेव एव दादूदयाल आदि की अनेक बातो पर अपनी टिप्पणी कर उनके अनुयायियो को सचेत करने लगे थे। सन्त तुलसी साहब (मृ० स० १८९९) तथा राधास्वामी सत्सग के तृतीय गुरु ब्रह्मशंकर मिश्र (स० १९१८-१९६४) ने ऐसे प्रसगो की बुद्धिवादी एव वैज्ञानिक व्याख्या कर संतमत का औचित्य एव महत्व दर्शाया। कबीर पथ के रामरहसदास (मृ० स० १८६६) तथा दादू पथ के साधु निश्चलदास (मृ० स० १९२०) ने अपने-अपने पथो के सिद्धात स्पष्ट करने के उद्देश्य से अपने-अपने ढंग से कतिपय पुस्तकों का निर्माण किया। इसी प्रकार उस समय राजा राममोहन राय (स० १८३५-१८९०) तथा स्वामी दयानन्द (स० १८८१-१९४१) जैसे सुधारको द्वारा प्रभावित वातावरण के अनुसार कुछ कुरीतियो को दूर करने के प्रयास भी होते जा रहे थे। इतना ही नहीं, इस आधुनिक युग के अन्तर्गत जो स्वामी रामतीर्थ (स० १९३०-१९६३) एव महात्मा गाधी (स० १९२६-२००४) जैसे सन्त हुए, उन्होने मानव-जीवन के केवल आध्यात्मिक अग के ही नही प्रत्युत उसकी पूर्णता के भी विकास की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया। व्यक्ति-विकास, पूर्णाङ्ग साधना आदि जिन बातो को कबीर, गुरु नानकदेव तथा सन्त दादूदयाल ने केवल संकेत रूप से ही बतलाया था, उन पर इन्होंने पूरा बल दिया। सन्तो का साधसप्रदाय वाणिज्य एव व्यवसाय की ओर पहले से ही प्रवृत्त था। राधास्वामी सत्सग की एक शाखा शिल्पकला-विकास मे भी लग गई। महात्मा गाधी ने प्राय सभी प्रकार के ऐसे क्षेत्रो मे उन्नति को प्रोत्साहन दिया। इन आधुनिक सन्तो के कारण विचार-स्वातत्र्य, निर्भीकता, विश्वप्रेम, सत्य, अहिंसा, विश्व-शांति एव विश्व-नागरिकता जैसे उच्च नैतिक गुणो को अपनाने की एक बार फिर भी प्रेरणा मिली। सन्तों के 'भूतल पर स्वर्ग' वाले प्राचीन आदर्श की ओर एक बार सारा संसार फिर से आकृष्ट हो गया।

## संतमत

संतमत किसी पंथ वा सप्रदाय के मूल प्रवर्त्तक द्वारा प्रचलित किये गये सिद्धान्तो का सग्रहमात्र नही है। यह उस विधान का भी परिचायक नही जो भिन्न-भिन्न सन्तो के उपदेशो के आधार पर निर्मित किया गया हो। इसे किसी भी ऐसी व्यवस्था वा निर्दिष्ट आदर्श से कोई सम्बन्ध नही जो इसके अनुयायी के भी अनुभव मे आकर अपने को प्रमाणित न कर चुका हो। संत कबीर साहब ने अपने विषय मे चर्चा करते हुए एक स्थल पर कहा है—

"सत गुरु तत कह्यो बिचार, मूल गह्यौ अनभै बिस्तार ॥"[1]

अर्थात् सतगुरु ने तत्त्व के विषय मे विचार कर मुझे बतला दिया वा उसकी ओर संकेत

१. कबीर ग्रन्थावली, पद ३८६, पृ० २६।

कर दिया और मैंने उस मूल वस्तु को अपने निजी अनुभव के अनुसार ग्रहण कर लिया। वे दूसरों के लिए भी यही निश्चय करते हुए जान पडते हैं। इसी सम्बन्ध मे वे एक अन्य पद मे इस प्रकार भी कहते हैं—

"रांम नांम सब कोई बखानै, राम नांम का मरम न जांनै ॥
ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावै तो सुख पावै।
कहै कबीर कछु कहत न आवै, परचै बिना मरम को पावै ॥"[1]

अर्थात् रामनाम की चर्चा करने वाले सभी लोग उसके रहस्य को नही जानते। इसलिए मुझे ऊपर ही ऊपर मे बात कर देने वालो की बात नही जँचती। उसका सुख वही प्राप्त कर सकता है जो उसका स्मरण, उसे स्वय प्रत्यक्ष अनुभव कर लेने पर ही करता हो। यह बात केवल कहने-सुनने की नही है। इसके रहस्य को बिना इसका परिचय प्राप्त किये कोई भी नही जान पाता। स्वामी रामतीर्थ ने भी एक बार लगभग ऐसे ही प्रसग से कहा था, "सत्य को सत्य तुम केवल इसी लिए मत समझो कि उसे कृष्ण, बुद्ध अथवा ईसा मसीह ने कहा है। उसे अपने निजी अनुभव की कसौटी पर परख कर भी देख लो।" सत्य का केवल उतना ही अश हमे काम देता है और हमारे जीवन का अग भी बन सकता है जितने को हम वस्तुत जानते है। वह जैसा है, वैसा उसे पूर्णरूप से कदाचित् कोई भी नही जानता। उसके लिए भिन्न-भिन्न बाते सभी लोग अपने-अपने विचारानुसार गढा करते है। इसीलिए कबीर साहब ने भी एक स्थल पर इस प्रकार कहा है—

"वो है तैसा जानै, ओहि आहि नहि आनै ॥"[2]

अर्थात् वह सत् वा राम जैसा है, वैसा केवल उसी को विदित है। (हम तो केवल इतना ही कहेंगे कि) केवल उसी एकमात्र का अस्तित्व है, उसके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नही है। इसका अभिप्राय दूसरे शब्दो मे यो भी प्रकट कर सकते है कि 'सत्य' का शाब्दिक अर्थ ही अस्तित्व का बोधक है और जो कुछ है, वह इसी कारण उसी की परिधि के अन्तर्गत आ जाता है।

सत लोग न तो दार्शनिक थे, न उन्होने इसके लिए कभी दावा ही किया है। वे लोग धार्मिक व्यक्ति एव साधक थे। परमतत्त्व के विषय मे किसी बात का वैज्ञानिक ढग से निरूपण करना अथवा तद्विषयक प्रत्येक प्रश्न की जाँच के लिए कोरे तर्क की कसौटी लिए फिरना उनका स्वभाव न था। उन्होने उस वस्तु के अनेक नाम दिये है। उन्होने उसे कभी 'राम' कहा है, कभी 'रहीम' कहा है, कभी 'ब्रह्म' कहा है, कभी 'खुदा' कहा है और कभी-कभी उसे केवल 'परमपद' वा 'निर्वाण' जैसी स्थिति-निदर्शक सज्ञा भी प्रदान की है। किन्तु उसके लिए सबसे प्रिय नाम केवल 'नाम' अथवा 'सत्' अर्थात् सत्य मात्र ही है। इन दोनो को एकसाथ मिलाकर वे कभी-कभी 'सत्तनाम' शब्द का प्रयोग करते है और उसे बहुत बडा महत्त्व भी देते है। इन दोनो शब्दो मे से 'सत्' वा सत्य शब्द उस अस्तित्व का सूचक है जो सतो के अनुसार परमतत्त्व का बोधक माना जा सकता है। 'नाम' उस

१. कबीर ग्रन्थावली, पद २१८, पृ० १६२।
२ वही, पृ० २४२।

वस्तु के उस अंशविशेष की ओर सकेत करता है जो साधक के निजी अनुभव मे आ चुका है और जो उसके लिए सभी प्रचलित नामो का एक प्रकार से प्रतिनिधि भी समझा जा सकता है। उस 'नाम' का महत्व सतो ने सब कही दर्शाया है और उसी को सब कुछ मानते हुए उसके स्मरण का उपदेश भी दिया है। इसका प्रधान कारण कदाचित् यही हो सकता है कि सत्य का उतना ही अश उसके लिए परिचित है और उसी की अनुभूति उसके लिए लाभदायक भी सिद्ध हो सकती है। सत दादूदयाल ने एक स्थल पर 'सारग्राही' के प्रसग मे कहा है—

"गऊ बच्छ का ज्ञान गहि, दूध रहै ल्यौ लाई।
सींग, पूंछ, पग परहरै, अस्थन लागै धाइ॥"[1]

अर्थात् हमे ज्ञान का ग्रहण उस बछड़े की भाँति करना चाहिए जो दौडकर गाय के स्तन मे लग जाता है और उसके दूध को पीता है। वह उसकी सीग, पूंछ वा पैरो की ओर दृष्टि तक नही डालता है। सतो के नामस्मरण का भी वास्तविक रहस्य यही प्रतीत होता है।

नामस्मरण सतो के लिए सबसे प्रमुख साधना है। वे ऐसे साधक है जो अपनी साधना से कभी विरत होना नही जानते। उनका लक्ष्य सत् की अनुभूति है। वे चाहते है कि उसके अनुभव की दशा उनमे सदा एकसमान बनी रहे। वे न केवल किसी एकात स्थान मे बैठकर शातचित्त हो उसकी आग को सुलगाते रहना चाहते है, अपितु उनका मुख्य प्रयत्न रहा करता है कि वह किसी-न-किसी प्रकार हमारे साधारण सामाजिक व्यवहारो मे लगे रहने पर भी निरतर उसी भाँति बना रहे। सत् के अनुभव को वे सभी काल मे, सब कही एव सभी स्थितियो मे भी समान स्थिर रखना चाहते है और उसमे एक क्षण के लिए भी कमी का आ जाना उनके लिए असह्य हो जाता है। सगुणोपासक भक्तजन की भक्ति-साधना षोडशोपचार-पूजन एव भजन-कीर्त्तन के रूप मे चला करती है। योगीजन अपनी योग-साधना को समाधि लगाकर पूरी किया करते है। वे अपनी-अपनी साधनाओ मे निरत रहते समय आनद-विभोर हो जाते है। उतने समय के लिए उन्हे व्यावहारिक कार्यों के लिए कोई अवकाश नही मिला करता। दैनिक व्यवहार एव आध्यात्मिक अनुभूति के असामजस्य के ही कारण वे बहुधा ससार से विरक्त बन जाया करते है और निवृत्तिमार्ग को ग्रहण करते है। परन्तु सतो की विचारधारा के अनुसार ऐसा करना उचित नही है। इस कारण अपने सत् की अनुभूति को सदा एकरूप एव एकरस बनाये रखने के लिए वे अपने सारे जीवन मे ही कायापलट ला देना चाहते है। जब उनकी दशा मे एक बार स्थिरता आ गई और उनके दृष्टिकोण मे इसके द्वारा एक बार परिवर्त्तन आ गया तो उसे वैसा ही बना रहना चाहिए और उसमे किसी प्रकार का भी फेरफार नही होना चाहिए। वे अनुभव की 'सुध' को सदा अपने समक्ष रखा करते है। सतों के इस नामस्मरण की विधि भी अपने ढग की है। उसमे तथा साधारण जप की साधना मे महान् अतर है। इसके लिए न तो किसी माला की आवश्यकता पडती है, न इसके अनुसार जप करते समय अपनी उँगलियो मे ही काम लिया जाता है। स्मरण का काम वे किसी प्रकार की गणना वा बार-बार दुहराने की क्रिया द्वारा पूरा नही करते।

---

१ स्वामी दादू दयाल की वाणी (अगवंधू) साखी १५, पृ० २४५।

स्मरण' शब्द को भी उन्होने सत् की ही भाँति उसके ठीक मौलिक अर्थ 'स्मृति' के रूप मे लिया है। उनका विश्वास है कि जो कुछ ब्रह्माड मे है वही ठीक-ठीक हमारे पिंड अर्थात् शरीर के भीतर विद्यमान है। अतएव जिन शब्द (या Logos) को सृष्टि का आदि कारण कहा जाता है, उसका एक प्रतिरूप हमारे शरीर मे भी मधुर ध्वनि के रूप मे वर्तमान है जिसे यदि चाहे तो हम सुन भी सकते है। उनका कहना है कि हमारी जीवात्मा जिसके द्वारा हमारा शरीर अनुप्राणित है, उसके भीतर उस परमतत्त्व की सुध वा 'सुरत' के रूप मे अतर्निहित है। इस कारण, यदि हम इस 'सुरत' को उस 'शब्द' के साथ जोड सकें तो हमे अपने इष्ट 'सत्' की अनुभूति का भी हो जाना सर्वदा सभव है। इतना ही नही, इस सयोग की साधना का महत्त्व उस दशा मे और भी बढ जाता है, जब हम उक्त 'सुरत शब्द-योग' की क्रिया मे सदा एक भाव से लीन रहा करते है। ऐसी दशा में 'सुरत' एक स्रोत की भाँति 'शब्द' की ओर सदा प्रवाहित-सी होती रहा करती है। इस प्रकार हम उस 'सत्' के साथ सदा एकरस मिले-जुले से रहा करते है। फलत हम अपने को उस 'सत्' मे लीन करके उसके साथ तदाकारता ग्रहण कर लेते है। वह 'सत्' ही, वस्तुत हमारे रूप मे 'सत' का भाव ग्रहण कर लेता है। सत के जीवन का इसी कारण विश्वकल्याणमय हो जाना भी अनिवार्य है, क्योकि विश्व मूलत उस सत् का ही स्वरूप है। दोनो मे कोई वास्तविक अतर नही है। सतो की नामस्मरण-साधना, इस प्रकार जप की विधि के स्वय निष्पन्न होते रहने के कारण, 'अजपाजाप' के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी समाधि का नाम भी इसके योगाभ्यासियो द्वारा प्रयासपूर्वक लगायी जाने वाली 'समाधि' से भिन्न होने के कारण 'सहज समाधि' कहलाती है।

सतो ने अपनी रचनाओं के अतर्गत उपर्युक्त योगसाधना की भी कुछ-न-कुछ चर्चा की है। उन्होने योगियो के प्रसिद्ध 'कुडलिनी योग' की विभिन्न बातो का उल्लेख अनेक स्थलो पर किया है। पिंड वा शरीर के भीतर अन्य अनेक नाडियो के अतिरिक्त, तीन प्रमुख नाडियाँ ईडा, पिंगला एव सुषुम्ना नाम की भी वर्त्तमान है। वह हमारी रीढ की हड्डी वा मेरुदड मे नीचे से ऊपर की ओर जाती हुई जान पडती हैं। ईडा एव पिंगला सुषुम्ना के साथ लिपटी हुई-सी प्रतीत होती है। उनमे से पहली का अत बायी नाक तक एव दूसरी का दाहिनी नाक तक हो जाता है। नाक के मूल भाग, अर्थात् दोनो भृकुटियो के बीच वाले स्थान के आगे इन दोनो की भी शक्ति का प्रवाह सुषुम्ना द्वारा ही होने लग जाता है। सुषुम्ना वहाँ से आगे की ओर कुछ टेढी-सी होकर बढती है। अत मे, वह हमारे मस्तिष्क के भीतर उस उच्चतम भाग तक के निकट पहुँच जाती है जो 'ब्रह्मरध्र' के नाम से प्रसिद्ध हैं। वह अपने नामानुसार ही, 'सत्' के मूल स्थान के लिए कल्पित किये गए, किसी सूक्ष्म छिद्र का द्योतक है। सतो ने सुषुम्ना के उक्त अश को 'बकनाल' की सज्ञा दी हैं और ब्रह्मरध्र के लिए एक अन्य नाम 'भँवर गुफा'[1] भी बतलाया है। सुषुम्ना नाडी के इस लम्बे मार्ग मे कई ऐसे स्थल भी मिलते हैं जो विचित्र ढङ्ग मे बने हुए हैं और एक प्रकार से उसकी क्रमिक ऊर्ध्व गति को सूचित करते है। ये सख्या मे सात हैं और नीचे से ऊपर की ओर क्रमश मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र,

---

१ देखिये 'बकनालि के असरैं, पछिम दिसा की बाँट।
नीझर झरैं रस पीजिए, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे।
कबीर ग्रन्थावली, पृ० ८८, पद ४।

मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, अज्ञा चक्र एव सहस्रार के नाम से प्रसिद्ध है। योगियो के अनुसार इनकी रचना कमल-पुष्पो के रूप मे हुई है जिनमे क्रमशः केवल चार से छह, दस, बारह, दो तथा सहस्रों तक दल है और जिनके रग, रूप एव प्रभावादि मे भी बहुत अन्तर लक्षित होता है। मूलाधार चक्र का स्थान सुषुम्ना के सबसे निचले भाग वा उसके लगभग प्रस्थान-विंदु के ही निकट है और स्वाधिष्ठान चक्र की स्थिति लिंग के मूल भाग मे है। मणिपूरक, इसी प्रकार, हमारी नाभि के समीप है, अनाहत हृदय स्थान मे वर्तमान है। विशुद्ध कठ स्थान मे है और अज्ञा चक्र का स्थान दोनो ध्रुवों के मध्य मे जान पडता है। इन सभी के ऊपर जो सहस्रार है, उसकी स्थिति शीर्षस्थान मे बतलायी जाती है। कहा जाता है कि सुषुम्ना वहाँ तक पहुँचने के पहले ही समाप्त हो गई रहती है। सबसे निचले चक्र अर्थात् मूलाधार के समीप ही योगियो ने किसी एक अनुपम शक्ति के विद्यमान होने की भी कल्पना की है। उसे साढे तीन कुडलियो वा घेरो मे सिमटकर बैठी हुई सर्पिणी की भाँति वर्तमान 'कुडलिनी शक्ति' का नाम दिया है। योगियो का कहना है कि साधक जब कुभक प्राणायाम के द्वारा वायु का निरोध करता है तो उक्त कुडलिनी जागृत होकर सीधी हो जाती है और सुषुम्ना द्वारा ऊपर की ओर अग्रसर होने लगती है। यह उसी प्रकार आगे बढती हुई क्रमश उक्त छहो चको का भेदन करती है। अन्त मे, उस सहस्रार तक पहुँच जाती है जहाँ उस 'शक्ति' का 'सत्' वा ब्रह्मरूपी 'शिव' के साथ मिलन हो जाता है। इस प्रकार समाधि लग जाती है जो 'कुडलिनी योग' का लक्ष्य है।

इस कुडलिनी योग की चर्चा सभी सतो ने विस्तार के साथ नही की है, किन्तु इसके प्रसग उनकी रचनाओ मे अनेक स्थलो पर दीख पडते है। सतो ने अष्टागयोग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एव समाधि मे से भी प्राय सभी के उल्लेख किसी-न-किसी प्रकार से किये है, किन्तु उनका सागोपाग वर्णन कही नही किया है। यम-नियमो को उन्होने साधारण सयत जीवन तथा नैतिक नियमो के प्रसग मे लाकर बतलाया है, किन्तु आसनो मे से किसी एक विशेष को महत्त्व नही दिया है। जिस किसी आसन मे सुख एव शाति के साथ बैठकर, नामस्मरण कर सके उसी को उन्होने उपयोगी मान लिया है। प्राणायाम के पूरक, कुभक एव रेचक मे से दूसरे, अर्थात् कुभक को ही उन्होने प्रधानता दी है और अधिकतर उसी को प्राणायाम का समानार्थक तक मान लिया है। प्रत्याहार तथा धारणा की चर्चा उन्होने मन के स्वभावादि का वर्णन करते समय बडे विस्तार के साथ किया है। मनोमारण, मनोयोग तथा मनोवृत्ति सयम के रूपो मे उसकी चर्चा करते हुए उसकी साधना को सबसे आवश्यक ठहराया है। इसी प्रकार ध्यान एव समाधि का वर्णन भी इनकी रचनाओ मे एक विशेष ढङ्ग से ही किया गया मिलता है। इन दोनो की चर्चा करते समय उन्होंने क्रमश 'विरह' तथा 'परचा' (परिचय) के शीर्षक दिये है और इन दोनो के अत्यन्त रोचक एव सजीव चित्र भी खीचे है। सतो के अनुसार 'लययोग' की साधना के लिए 'हठयोग' की क्रियाओ का अभ्यास अनिवार्य नही है। वे अपनी 'सुरत' को 'शब्द' के साथ सयुक्त कर देने का कार्य, केवल कतिपय 'जुगतियो' के आधार पर ही सम्पन्न कर देना चाहते है। अतएव विभिन्न योगियो की रूढिगत बातो वा व्यवस्थाओ पर अधिक आश्रित रहने की उन्हे कोई आवश्यकता नही प्रतीत होती। उक्त योग उनके लिए (सहजयोग) बन जाता है।

संतो की भक्ति-साधना स्वभावत निर्गुण एव निराकार की उपासना के अन्तर्गत

आती है और उसे 'अभेद'-भक्ति का भी नाम दिया जाता है। किन्तु उन्होने अपने इष्ट 'सत्' को कोरे अशरीरी वा भावात्मक रूप मे ही नही समझा है। उनके तद्विषयक प्रकट किये गए उद्गारो से जान पडता है कि उसे सगुण एव निर्गुण से परे बतलाते समय उन्होने एक प्रकार का अनुपम व्यक्तित्व भी दे डाला है। वे उसे सर्वव्यापक राम कहकर उसका विश्व के प्रत्येक अणु मे विद्यमान रहना तथा सभी के रूपो मे भी दीख पडना मानते है। इसके सिवाय वे उसे सत्गुरु, पति, साहब, सखा आदि भी समझते है। इन भावो के साथ उसके प्रति अनेक प्रकार की बाते कहा करते है। वे उसमे दया-दाक्षिण्यादि गुणो का आरोप करते हैं, उसके प्रत्यक्ष न होने पर विरह के भाव व्यक्त करते है और उससे मुक्ति की याचना भी किया करते है। फिर भी वे केवल भजन-भाव मे ही मग्न रहने वाले 'भक्त' नही जान पडते। अपने व्यक्तिगत जीवन मे सदाचरण-सम्बन्धी सामाजिक नियमो का पालन करना भी आवश्यक मानते है। उन्होने अपनी रचनाओ मे इस पर पूरा बल दिया है। वे लोग पक्के प्रवृत्तिमार्गी एव कर्मठ व्यक्ति है। इस बात को उनमे से प्राय सभी ने अपने गार्हस्थ्य-जीवन द्वारा प्रमाणित किया है। उनकी उपलब्ध रचनाओ द्वारा प्रकट होता है कि उनका आदर्श जीवन्मुक्त कर्मयोगी जैसा है।

उनके अनुसार, सत् के साथ मनोवृत्ति के उपर्युक्त प्रकार से तदाकार हो जाने पर साधक की विचारधारा आप-से-आप परिवर्तित हो जाती है। उसमे पूरी उदारता एव व्यापकता आ जाती है और उसके दैनिक आचरण एव व्यवहार मे कोई सकीर्णता नही रह पाती। इस प्रकार का सत सदा आनन्द के भाव मे मग्न रहा करता हैं। अपनी प्रत्येक चेष्टा द्वारा परोपकार मे निरत रहता हुआ, विश्वकल्याण का भी साधन बन जाता है। वह जो कुछ भी विचार करता है, उस पर न तो पक्षपात वा द्वेषभाव का प्रभाव रहा करता है, न वह जिस ढग से रहता है उसमे वाह्याडबर ही दीख पडता है। इस प्रकार का निर्वैर, निष्काम, शुभचिंतन एव आत्मानद का जीवन ही सतो के अनुसार सात्त्विक जीवन है। यही उनका आदर्श है। इसमे स्वानुभूति, विचार-स्वातत्र्य, आत्मनिष्ठा, कर्त्तव्य-परायणता तथा सदाचरण को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। कपट, स्वार्थ, साम्प्रदायिकता एव वाह्याचार जैसी बातो से सदा दूर रहने का परामर्श भी दिया गया है। सत लोग अपनी रचनाओ मे बरावर इसी बात पर विशेष ध्यान देते जान पडते है कि मानव-समाज का सुधार और उसका विकास उसके व्यक्तियो के सुधार एव विकास पर ही अवलबित है। अतएव यह परमावश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति वास्तविक स्थिति को समझे मूलतत्त्व को यथासाध्य पहचाने एव ग्रहण करे और तदनुकूल आचरण मे प्रवृत्त रहे। इस प्रकार स्वय आनदमय जीवन व्यतीत करता हुआ समाज एव विश्व का भी कल्याण करे। सहज जीवन उन्हे प्रिय है।

## सत-साहित्य

सतो की रचनाओ के प्रधान विषय सत् वा परमतत्वरूपी राम के स्वरूप का दिग्दर्शन, उसके प्रति प्रकट किये गए विविध प्रकार के उद्गार, आत्म-निवेदन, नाम-स्मरण की साधना, सात्त्विक जीवन का महत्त्व तथा उसके लिए दिये गए उपदेश आदि कहे जा सकते है। उन्होने सासारिक बातो मे मोहासक्त लोगो का भी वर्णन किया है और उनके साप्रदायिक एव सामाजिक भेदभावो की आलोचना की है। उन्होने आदर्श सत को सत् का प्रतीक माना है और अपने पथ-प्रदर्शक सतगुरु को भी वही महत्त्व प्रदान किया है। अपनी रचनाओ मे ये सर्वत्र उनके सद्गुणो एव आदर्शो की ओर ही ध्यान

देते है। उनके भौतिक जीवन की प्राय· चर्चा नही किया करते। यही कारण है कि हमे बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी, यह विदित नही हो पाता कि वे कौन और कहाँ के थे। इसी प्रकार परमतत्त्व का वर्णन करते समय उसके सभी लक्षण अपनी अनुभूति वा अनुमान पर ही आश्रित करते चले जाते हैं। उसकी न तो कोई दार्शनिक व्याख्या करते हैं, न उसके स्पष्टीकरण मे किसी तर्क का प्रयोग ही करते है। इनके दिये गए परिचय अधिकतर प्रशसात्मक बनकर ही रह गए है और उनके द्वारा किसी मूर्तभाव की स्पष्ट अनूभूति नही हो पाती। सतो ने इसका कारण भी बतला दिया है और कहा कि उसकी जानकारी स्वानुभूति की कोटि मे आ जाती है। इसका ठीक-ठीक वर्णन करना, भाषा जैसे सीमित माध्यम के द्वारा भी सभव नही कहा जा सकता। फिर भी इन्होने उसके स्पष्टीकरण मे अपनी अनेक पक्तियाँ रच डाली है और उनके द्वारा हमे उसे अवगत कराने के बार-बार प्रयत्न किये है। सतो की कृतियो मे इस प्रकार का किया गया विस्तार हमे अन्य विषयो के सम्बन्ध मे भी बहुत अधिक मिलता है और कभी-कभी उनकी पुनरुक्तियाँ भी दीख पडती है। इस प्रकार सत-साहित्य का कलेवर न केवल अपने अनेक रचयिताओ तथा उनको विविध रचनाओ के ही कारण बढा है, अपितु इसके लिए बहुत अशो मे सतो की उक्त प्रकार की प्रवृत्ति भी उत्तरदायी है।

सत-साहित्य की अधिक वृद्धि का एक अन्य प्रमुख कारण उसमे सम्मिलित की जाने वाली साप्रदायिक रचनाओ की बडी सख्या भी कही जा सकती है। सतो के नाम पर चलने वाले पथों के अनुयायियो ने उनके मूलप्रवर्त्तकों को ईश्वरीय महत्त्व दिया है। उनके सम्बन्ध मे पौराणिक पद्धति के अनुसार भिन्न-भिन्न कथाओ की सृष्टि कर ली गई है। उन्होने विश्व की सृष्टि तथा उसके विकास की भी कल्पना की है। इस विपय पर लिखे गए ग्रथो मे प्रसिद्ध पौराणिक देवताओ के विविध प्रसगो की अवतारणा की गई है। उन्होने, इसी प्रकार, 'अमरपुर' अथवा 'सतदेश' जैसे कुछ अलौकिक प्रदेशो के भी वर्णन किये है और पौराणिक देवताओ के साथ अपने आदर्श सतो का सवाद कराया है। कभी-कभी उन्होने ऐसी अर्द्धदार्शनिक रचनाओ को भी प्रस्तुत किया है जिनमे सतमत की अनेक बाते रूपको द्वारा बतलायी गई है। उक्त प्रकार की रचनाओ मे उन्होने अपनी कल्पना से इतना अधिक काम लिया है कि उनमे अलौकिक चित्रो की भरमार-सी हो गई है। ऐसे लेखको की कुछ रचनाएँ सतमत की प्रमुख बातो की व्याख्या के रूप मे भी मिलती है, किन्तु ये भी साप्रदायिक ढग की ही है। पथीय साहित्य का एक बहुत बडा अश उन स्तुतियो तथा प्रार्थनाओ मे भी भरा है जिन्हे ऐसे लेखको ने अपने-अपने सप्रदायो के मूल प्रवर्त्तको को राम-कृष्णादि अवतारो से भी बढकर दिखलाने की चेष्टा मे लिख डाली है। उस वाड्मय के अन्तर्गत ऐसे ग्रन्थो का भी बाहुल्य है जिनमे साप्रदायिक दीक्षा अथवा पूजनादि का विधान बडे विस्तार के साथ किया गया है।

पहले के सतो ने अपनी रचनाएँ किसी व्यवस्थित रूप मे नही की थी। उन्होने अपने भावो को केवल प्रकट मात्र कर दिया था। वे जो कुछ अनुभव करते थे, उसे विविध पद्यो द्वारा व्यक्त कर देते और उनकी ऐसी पक्तियो को लोग बहुधा लिख भी लिया करते थे। पीछे आने वाले सतो मे अपनी ऐसी रचनाओ को स्वय भी लिपिबद्ध करने की प्रवृत्ति दीख पडी। वे अपनी फुटकर पक्तियो के सग्रहो के अतिरिक्त कभी-कभी ऐसे ग्रथ भी लिखने लगे जिनमे सिद्धान्तो का निरूपण रहा करता था। सत सुन्दरदास ने इस प्रकार का एक ग्रथ 'ज्ञानसमुद्र' नाम से लिखा था और चरणदास जैसे कुछ सतो ने इस कार्य को सस्कृत भाषा मे लिखी गई उपनिषदो तथा उपाख्यानो के हिन्दी अनुवादो

द्वारा भी पूरा किया था। गुरु गोविन्दसिंह ने कुछ प्रसिद्ध सस्कृत ग्रथो के अनुवाद दूसरो से भी कराये थे और उनके आधार पर अपने विचारो का स्पष्टीकरण किया था। कुछ सतो की प्रवृत्ति सूफियो के ढग पर लिखी जाने वाली प्रेमगाथाओ के निर्माण की ओर भी थी। बाबा धरणीदास ने अपने 'प्रेम प्रगास' ग्रथ तथा उनके समकालीन सत दुखहरण ने अपनी 'पुहुपावती' की रचना उसी के अनुसार की थी। पथो के अनुयायियो ने आगे चलकर कुछ ऐसी पुस्तके भी लिख डाली जिन्हे हम छोटे-मोटे आधुनिक पुराणो की सज्ञा दे सकते है। सतो के लिखे नाटक भी देखने मे आते है।

फिर भी इन सतो का जितना ध्यान फुटकर पदो, साखियो वा अन्य ऐसे पद्यो के लिखने की ओर था, उतना कथात्मक रचनाओ की ओर नही था। यह प्रवृत्ति इनमे कदाचित् विविध पथो का निर्माण आरम्भ हो जाने पर ही जागृत हुई। पहले के सतो का मुख्य ध्येय अपने सिद्धातो एव साधनाओ का स्पष्टीकरण तथा प्रचार-मात्र था। उसी के लिए वे प्रयत्नशील रहा करते थे। पीछे आने वाले सतो ने अपनी साप्रदायिक प्रवृत्ति के अनुसार अन्य प्रचलित धर्मो वा सप्रदायो की अनेक बातो का अनुकरण भी आरम्भ कर दिया। वे अपनी प्रचार-पद्धति मे उन सभी बातो का समावेश करने लगे जिन्हे दूसरो ने अपना रखा था। विक्रम की १७वी शताब्दी के प्राय आरम्भ से ही सगुणोपासक भक्तो की रचनाओ पर पौराणिक रचनाशैली का प्रभाव पडने लगा था। वे लोग 'रामायण' एव 'महाभारत' के अतिरिक्त 'श्रीमद्भागवत' जैसे पुराणो की विविध कथाओ की भी चर्चा करने लगे थे। लगभग इसी समय सूफी लोगो की मसनवी पद्धति के आधार पर लिखी जाने वाली रचनाओ का आरम्भ हुआ। इस कारण तत्कालीन हिन्दी-कवियो का झुकाव, क्रमश चरितो एव कथाओ के लिखने की ओर भी हो चला। सतो के कुछ पथो का निर्माण तब तक होने लगा था, किन्तु उनके प्रवर्तक सतो की रचना-पद्धति अभी तक कबीर साहब आदि पूर्वकालीन लोगो का ही अनुसरण करती जा रही थी। पीछे आने वाले, सभवत प्राणनाथ एव धरणीदास ने उक्त नवीन शैली को पहले पहल अपनाया और तब से यह भी प्रचलित हो चली।

/सतो की रचनाओ का सबसे प्राचीन रूप उनके पदो एव साखियो मे ही दीख पडता है। पदो की रचना, वस्तुत हिन्दी भाषा के आदियुग वा अपभ्रशकाल से ही होती चली आई है और उनका प्रारम्भिक रूप हमे बौद्धो की चर्यागीतियो मे मिलता है। कहा जाता है कि चर्यागीतियो वा चर्यापदो के पहले से भी कतिपय वज्रगीतियो की रचना होती आ रही थी। वज्रगीतियाँ अभी तक अधिक सख्या मे उपलब्ध नही है, किन्तु जो कुछ भी मिलती है, उनसे जान पडता है कि वे ही चर्यापदो का आदर्श रही होगी। दोनो की रचना अपभ्रश के प्रचलित छद मे ही हुई है। किन्तु चर्यापदो मे कुछ नवीन बातो का भी समावेश पाया जाता है। उदाहरणार्थ, वज्रगीतियो मे जहाँ मात्रा का क्रम १२+१२ का चलता है, वहाँ चर्यापदो के अन्तर्गत वही केवल ८+७ अथवा कभी ८+८+१२ (वा कभी-कभी १० का ही) मिला करता है। पहले मे जहाँ अभी तक द्विपदियाँ ही दीख पडती थी, वहाँ दूसरे मे त्रिपदियाँ भी आ जाती है। इसके सिवाय वज्रगीतियो मे कही किसी ध्रुवपद का स्पष्ट पता नही चलता, किन्तु चर्यापदो की ये दूसरी द्विपदी मे ही आ जाते है। चर्यापदो को प्राय भिन्न-भिन्न रागो के अन्तर्गत सगृहीत करने की प्रथा है और यह उनके किसी-न-किसी रूप मे गेय होने के ही कारण है।

बौद्ध सिद्धो के उक्त चर्यापदो का रूप, इस प्रकार, उन गेय पदो के ही समान है जो सगीतज्ञो के अनुसार, 'प्रवन्ध' कहलाते आए है। प्रत्येक ऐसे प्रबन्ध के पाँच अग हुआ करते थे जिन्हे क्रमश उद्ग्रह, मेलापक, ध्रुव, अन्तरा और आभोग नाम दिये जाते थे। इनमे से उद्ग्रह सबसे पहले आता था और उसके अनन्तर मेलापक का स्थान होता था जो उद्ग्रह और ध्रुव का पारस्परिक मेल वा सम्बन्ध स्थापित करता था। 'ध्रुव' प्रवन्ध अर्थात् पूरे गीत के लिए अनुपद वा बार-बार दुहराये जाने वाले अश का काम देता था और अन्तरा नामक अश इस ध्रुव तथा अत के आभोग का सधिस्थल बन जाता था। आभोग वा प्रबन्ध का अन्तिम अग, इसी प्रकार, पूरी रचना के आशय का परिचायक हुआ करता था। उसी मे अधिकतर उस व्यक्ति का नाम भी रहा करता था जो उसका रचयिता होता था। सगीतज्ञो के इस 'प्रबन्ध' का नाम-सादृश्य हमे उन रचनाओ का भी स्मरण दिलाता है जो दक्षिण भारत मे प्रसिद्ध है और जिन्हे स्वामी रामानुजाचार्य के दादागुरु नाथमुनि (मृ० स० ९७७) ने सर्वप्रथम, 'नाडायिर प्रबन्धम्' (अर्थात् ४००० भजनो का संग्रह) के नाम से सगृहीत किया था और जिनका पाठ वहाँ के मन्दिरो मे अव तक होता आ रहा है। वे भजन प्रसिद्ध आलवार भक्तो की रचनाएँ है। उनके महत्वपूर्ण होने के कारण, उक्त सग्रह कभी-कभी 'तमिलवेद' कहकर भी पुकारा जाता है। उसके भजन दक्षिण भारत के प्रधान मन्दिरो मे बडी श्रद्धा के साथ गाये जाते है। पता नही उस 'प्रबन्धम्' मे सगृहीत पदो की रचना उपर्युक्त प्रकार से हुई है या नही, किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि पीछे आने वाले कवि जयदेव की 'गीतगोविन्द' जैसी रचनाएँ उक्त प्रबन्ध-पद्धति वा बौद्धो के चर्यापदो का ही अनुसरण करती है। विद्यापति एवं चडीदास आदि के पद भी लगभग उसी ढग से लिखे गये मिलते हैं जिन पर लोकगीतो का भी प्रभाव है।

सत कवियो की ये रचनाएँ भी, इसी प्रकार, गेयपदो के रूप मे स्वीकृत की जाती है और ये 'शब्द' वा 'भजन' कहला कर बहुधा गायी भी जाती है। अपने विषय की दृष्टि से ये अधिकतर उन भावो को ही व्यक्त करती है जो स्वानुभूति के परिचायक है। इनमे परमतत्त्व के अनुभूत लक्षण, उसके प्रति प्रदर्शित विविध भाव, ससार की दुरवस्था, आत्मनिवेदन एव चेतावनी आदि विपय ही विशेष रूप मे दीख पडते है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि सतो ने उन्हे अपनी गहरी अनुभूति के अनन्तर अपने व्यक्तिगत उद्गारो के रूप मे ही प्रकट किया है। आकार के विचार से ये छोटे वा बडे सभी प्रकार के पाये जाते है। किन्तु 'ध्रुव' तथा 'आभोग' वाले अग उनमे से प्राय सभी मे वर्तमान रहते है। सतो के पदो मे ध्रुव बहुधा 'टेक' के नाम से आता है और उसे उनके आरभ मे ही दिया जाता है। परन्तु सिखो की प्रसिद्ध मान्य पुस्तक 'आदिग्रथ' मे इसके विपरीत, ध्रुव को 'रहाउ' की सज्ञा दी गई मिलती है और उसका स्थान भी दूसरा रहा करता है। 'ध्रुव' अथवा 'रहाउ' का यह क्रम-सम्बन्धी अन्तर उपर्युक्त प्रबन्धो मे भी दीख पडता है। इससे प्रतीत होता है कि 'आदिग्रथ' के संग्रहकर्त्ता ने कदाचित् पुरानी सगीत-पद्धति को ही स्वीकार किया होगा। सतो की ऐसी रचनाओ को कभी-कभी 'बानी' या 'वाणी' भी कहा जाता है, किन्तु ये नाम वस्तुत उनके सारे वचनो वा उपदेशो को भी दिया जा सकता है।

सतो की बहुत-सी रचनाएँ 'साखी' के नाम से प्रसिद्ध है और इनका रूप अधिकतर दोहों का-सा पाया जाता है। ऐसी रचनाओ के लिए सतो ने 'साखी' शब्द का

प्रयोग किस अभिप्राय से किया है, इसके संकेत उनकी कृतियो मे अनेक स्थलो पर मिल सकते है। यह शब्द 'साक्षी' शब्द का रूपांतर जान पड़ता है जिसका अर्थ किसी बात को अपनी आँखो देख चुकने वाला और, इसी कारण, उसके सम्बन्ध मे किसी प्रश्न के उठने पर प्रमाण-स्वरूप भी समझा जाने वाला व्यक्ति हुआ करता है। सतो की साखियो मे विशेषकर वे बाते ही पायी जाती है जिनका उनके रचयिताओ ने अपने दैनिक जीवन मे भली-भाँति अनुभव कर लिया है। उन्हे अपनी निजी कसौटी पर पहले से कस चुके रहने के कारण साधिकार व्यक्त करने की उनमे क्षमता है। सतो की साखियाँ उनके ऐसे अनुभूत सिद्धातो को प्रकट करती है जो हमे अपनी कठिनाई के अवसरो पर कई प्रश्नो को सुलझाते समय काम दे सकते है। कबीर पथ के मान्य ग्रथ 'बीजक' मे भी, इसी कारण, कहा गया है—

> "साखी आँखी ज्ञान की, समुझि देखु मनमाँहि।
> बिनु साखी ससार का, झगरा छूटत नाँहि॥"[1]

अर्थात् विचारपूर्वक देखने से विदित होता है कि साखियाँ वास्तव मे, ज्ञान-चक्षु का काम देती है, क्योकि ये साक्षी पुरुषो की भाँति, तत्त्व-निर्णायक प्रमाणरूप हुआ करती है। उनके बिना ससार के झगडे का छूटना सम्भव नही हुआ करता। ये छोटी होती हुई भी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

सतो की साखियाँ अधिकतर दोहा छद मे पायी जाती है जो बहुत प्राचीन है। 'दोहा' शब्द को सस्कृत शब्द दोग्धक या दोधक का रूपातर मानते है, किन्तु यह अपभ्रश भाषा का एक स्वतत्र छद भी हो सकता है। दोहे को कभी-कभी दोहरी भी कहा जाता है और उसके अतर्गत, सामान्यत सोरठे का भी सम्मिलित कर लिया जाता है। ऐसा करना उतना अनुचित भी नही कहा जा सकता, क्योकि दोहे के प्रथम और तृतीय चरणो को क्रमश द्वितीय तथा चतुर्थ चरणो की जगह केवल बदलकर रख देने पर ही सोरठे का छद बन जाता है। दोहा छद अपभ्रश मे बहुत प्रचलित रहा है। उसमे की गई सिद्धो, जैनमुनियो एव चारणो की अनेक रचनाएँ आज भी उपलब्ध है। दोहे को राजस्थानी मे 'दूहे' की सज्ञा दी गई है। वहाँ भी इसमे अनेक सूक्तियो तथा प्रेम-कहानियो की रचना की जा चुकी है। सतो ने इन्हे अपनी साखियो के रूप मे अपनाकर इनका महत्त्व और भी बढा दिया। इनके अन्तर्गत उन्होने न केवल दोहो एव सोरठो को ही सम्मिलित किया, अपितु सार, हरिपद, चौपाई, दोही, सरसी, गीता, मुक्तामणि, श्याम उल्लास आदि प्राय बीसो अन्य छदो को भी स्थान दे दिया। दोहो और सोरठो के भी उनमे विविध रूप देखे जाते है जो उनको केवल थोडी-सी मात्राओ के हेर-फेर से ही सिद्ध हो जाते है। 'आदि-ग्रथ' मे इन साखियो को ही 'सलोक' नाम दिया गया है जो सम्भवत श्लोक या अनुष्टुप छद का स्मरण दिलाता है। नाथपथियो की रचनाओ मे हमे साखियाँ या दोहे नही दीख पडते, किन्तु उनमे इनका नाम 'सबदियो' द्वारा लिया गया है जो अन्य प्रकार के छदो मे है।

सतो के साखी-सग्रह विविध अगो मे विभाजित पाये जाते है जिनके नाम अधिकतर 'गुरुदेवको अग', 'सुमिरणको अग', 'परचाको अग', 'विरहको अग', 'सगानको

---

[1] 'बीजक,' 'साखी' ३५३।

अग', आदि रूपो मे दीख पडते है। 'अग' शब्द का अर्थ साधारणत शरीर अथवा उसका कोई-न-कोई भाग समझा जाता है। इस कारण, उक्त प्रत्येक अग को हम साखी या साक्षी पुरुष की देह अथवा उसके अवयव-विशेष का बोधक साक्षी मान सकते है। इस प्रकार 'अग' शब्द से अभिप्राय यहाँ पर साखी-सग्रह के किसी खण्ड का होगा। परन्तु कबीर साहब ने इस शब्द का प्रयोग एक स्थल पर 'लक्षण' के अर्थ मे भी किया है।[1] इससे सूचित होता है कि साखियों के रचयिताओ ने उक्त शीर्षको द्वारा कतिपय विपयो का परिचय देने के प्रयत्न किये होगे। इस कथन के लिए अभी तक कोई भी आधार उपलब्ध नही कि कबीर साहब की साखियाँ आरम्भ से ही इस प्रकार विभाजित थी। इस बात के कुछ उल्लेख अवश्य मिलते है कि दादूदयाल की साखियो मे पहले इस प्रकार का क्रम नही लगा था। उन्हे सर्वप्रथम ऐसे अगों मे विभाजित करने वाले उनके शिष्य रज्जब जी थे। रज्जब ने न केवल उनकी साखियो को ही इस प्रकार क्रमबद्ध किया, अपितु उन्होने उनके पदो के भी भिन्न-भिन्न शीर्षक लगा दिये। उनकी सारी रचनाओ के सग्रह को 'अगवधू' के नाम से तैयार कर दिया। अगो की चर्चा 'आदिग्रथ' मे भी नही है। दादूदयाल की साखियाँ केवल ३७ अगो मे ही विभाजित है जहाँ रज्जब जी की साखियों के १६२ अग दीख पडते है। पीछे के सतों के सवैये, झूलने, अरिल्ल एव अन्य कई रचनाएँ भी अगो मे विभाजित पायी जाती हैं।

सतो ने जिस एक तीसरे ढग की रचनाओ को अधिक अपनाया है, वे दोहो-चौपाइयो मे लिखी पायी जाती है और वे वर्णनात्मक है। दोहो-चौपाइयो का एकसाथ किया गया इस प्रकार का प्रयोग बहुत पहले नही दीख पडता। किन्तु जिस प्रकार कबीर साहब ने अपनी 'रमैनी' मे कतिपय चौपाइयो के अनन्तर दोहे का क्रम बाँधा है, उस प्रकार का प्रयोग स्वयभू कवि की अपभ्रश 'रामायण' मे भी किया गया मिलता है जो स० ८०० के लगभग रची गई थी। इसमे किसी छद की पक्तियाँ 'धत्ता' छद के साथ प्राय वैसे ही क्रम मे पायी जाती है। 'धत्ता' छद का प्रयोग वहाँ दोहे के स्थान पर किया गया जान पडता है जहाँ दूसरे छद की पक्तियाँ बीच-बीच मे चौपाइयो का काम देती है। किसी वस्तु या घटना का किसी एक छद द्वारा वर्णन करते समय बीच-बीच मे एक अन्य छद के प्रयोग द्वारा विश्राम करते चलना दोनो की विशेषता है। चौपाई छद का प्रयोग गुरु गोरखनाथ की समझी जाने वाली कृति 'प्राणसकली' मे भी पाया जाता है, किन्तु उसमे दोहो का अभाव है। कबीर साहब की रमैनी मे ही दोहे और चौपाइयो का उक्त क्रम, सर्वप्रथम दीख पडता है। यह रचना अपनी वर्णन-शैली की दृष्टि से 'प्राण-संकली' से बहुत भिन्न नही कही जा सकती। यह रचना-शैली प्रबन्ध-काव्यो के लिए अधिक उपयुक्त जान पडती है। प्रेमगाथा के कवियो तथा गोस्वामी तुलसीदास आदि ने भी इसे अपनाया है। सतो ने इसका प्रयोग या तो सृष्टि-रचना-सम्बन्धी वर्णनो मे किया अथवा आगे चलकर अपनी पौराणिक रचनाओ एव प्रेमगाथाओ मे दिखलाया है। इस प्रकार के प्रयत्न अधिकतर विक्रम की १७वी शताब्दी के अनन्तर ही दीख पडते है।

ऐसे दोहो-चौपाइयों का उपर्युक्त प्रयोग कबीर साहब की एक अन्य रचना मे भी

---

१ निरबैरी निहकामता, साई सेती नेह।
विषिया सूँ न्यारा रहै, सतनि का अग एह ॥१॥ 'कबीर ग्रथावली', पृ० ५०।

पाया जाता है जो 'ग्रथ बावनी' के नाम से प्रसिद्ध है और जिसका एक यत्किंचित् परिवर्तित रूप सिखो की मान्य पुस्तक 'आदिग्रंथ' मे भी मिलता है। 'आदिग्रथ' मे इसका नाम 'बावन अखरी' दिया गया है जिससे प्रतीत होता है कि इसकी प्रमुख द्विपदियो का आरम्भ बावन अक्षरो, अर्थात् नागरी लिपि के क्रमश अकारादि सोलह स्वरो तथा ककारादि छत्तीस व्यंजनो से होना चाहिए। प्रत्येक अक्षर से अक्षरानुक्रम लिखने की यह प्रणाली भी कम पुरानी नही है और इसका भी प्रारंभ अपभ्रंशकाल से ही बतलाया जाता है।[1] इसके प्रमुख छद दोहे-चौपाई ही है, किन्तु कई रचनाओ मे कवित्त, छप्पय, सवैये वा कुडलियाँ छंद भी पाये जाते है। 'ग्रथ बावरी' के प्रधान अश का आरम्भ ॐकार से होता है और उसके आगे स्वरो को न देकर ककारादि व्यंजनो के ही प्रयोग कर दिये जाते है जिस कारण इसका 'बावनी' नाम सार्थक नही प्रतीत होता। इस रचना मे 'ङ' एव 'ञ' के स्थानो पर केवल 'न' का प्रयोग हुआ है और 'य' का 'ज' तथा 'श' का स' भी कर दिया हुआ दीख पडता है। स्वरो की भाँति, 'क्ष', 'त्र' एव 'ज्ञ' का भीअभाव है और 'स' एवं 'प' का प्रयोग अत की पक्तियो मे दुबारा कर दिया गया है। इस प्रकार यदि 'ङ' तथा 'ञ' के स्थान पर 'न' को, 'य' के स्थान पर 'ज' को तथा 'श' के स्थान पर 'स' को, पुरानी प्रथा के अनुसार मान भी ले, फिर भी केवल व्यंजनों की भी सख्या तैतीस तक ही पहुँचती है और ॐकार को भी लेकर यह चौतीस तक जाती है। संत रज्जब जी की 'प्रथम बावनी' तथा 'बावनी अक्षर उद्धार' मे भी यही बात पायी जाती है। संत हरिदास के 'बावनी योग मे 'क्ष', 'त्र', 'ज्ञ' का केवल क्षकार मात्र छकार के रूप मे आता है और दो अतिम व्यजनो का अभाव फिर भी बना रहता है। संत सुन्दरदास ने, कदाचित्, सबसे पहले स्वरो का भी प्रयोग आरम्भ किया है, किन्तु उनकी 'बावनी' मे 'ऋ', 'ॠ' तथा 'ऌ', 'ॡ' के प्रयोग नही मिलते और न 'त्र' का ही समावेश हुआ है जिस कारण अक्षरो की सख्या ॐकार को लेकर भी, केवल, ८८ तक ही पहुँचती है। सत भीपजन की प्रसिद्ध 'बावनी' मे भी सोलह स्वरो के अतिरिक्त केवल तैतीस व्यजन ही मिलते है। उसमे भी 'क्ष', 'त्र' एव 'ज्ञ' नही दीख पडते। इस प्रकार उसमे प्रयुक्त सभी स्वरो, व्यजनो तथा ॐकार को भी लेकर यह सख्या केवल पचास तक ही जाती है, बावन नही होती। इसके सिवाय, यदि 'बावनी' शब्द को द्विपदियो की सख्या मे भी घटाया जाय, फिर भी वह 'ग्रथ बावनी' मे केवल ४२ ही आती है और 'बावन अपरी' मे भी ४६ से अधिक आगे तक नही पहुँचती तथा भीपजन की 'बावनी' मे यह ५४ हो जाती है।

'बावनी' शब्द का प्रयोग किसी रचना के अतर्गत सगृहीत ५२ भिन्न-भिन्न पद्यो के अर्थ मे भी बहुधा देखा जाता है। इसके लिए कदाचित् सबसे प्रसिद्ध उदाहरण कवि भूपणकृत 'शिवाबावनी' हो सकती है। परन्तु सतो का स्पष्ट उद्देश्य यहाँ पर अक्षरो का क्रमिक प्रयोग करना ही लक्षित होता है और इस बात का प्रमाण उपर्युक्त 'बावनी-ग्रंथ' की ही कुछ पक्तियो के पढने पर मिल जाता है। इसके लिए एक अन्य सकेत कबीर साहब की ही समझी जाने वाली उस रचना मे भी मिलता है जो 'अखरावती' नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रथ के अतर्गत नागराक्षरो के स्वरो अथवा व्यंजनो का कोई नियमित क्रम स्पष्ट नही है, किन्तु इसके प्राय अत मे कहा गया है—

"वा का ज्ञान अखरावति सारा। बावन अच्छर का विस्तारा॥"[2]

---

१ 'मधुकर' (जून-जुलाई, १९४६), पृ० ४९५।
२ अखरावती, 'कबीर साहेब', पृ० २४ (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग)।

अर्थात् उस अद्वितीय तत्त्व का ज्ञान बावन अक्षरो मे व्याप्त है। इसके सिवाय 'बीजक' एव 'कबीरपथी शब्दावली' मे सगृहीत 'ज्ञान चौतीसा' नाम की रचनाओ द्वारा प्रकट होता है कि इस प्रकार की रचनाएँ, केवल व्यजनो के प्रयोगानुसार भी लिखी जाया करती थी। उनमे ॐकार तो रहा करता था, किन्तु 'क्ष', 'त्र' और 'ज्ञ' अक्षर नही होते थे। उक्त 'कबीरपथी शब्दावली' के चौतीसा (सख्या २) मे ॐकार का प्रयोग नही है, किन्तु अक्षरो को चौतीस करने के लिए, 'क्ष' का 'छ' के रूप मे, प्रयोग दीख पडता है और वही रचना कबीर साहब की शब्दावली (चौथा भाग) मे 'ककहरा' नाम से भी दी गई है। इसी प्रकार का एक 'ककहरा' बाबा धरनीदास ने भी लिखा है, परन्तु गुलाल साहब तथा भीखा साहब ने अपने ककहरो मे 'अ', 'इ', 'उ' तथा 'ए' अक्षर भी जोड दिये है।

अक्षरो के ये प्रयोग केवल नागरी की वर्णमाला तक ही सीमित नही है। सतो ने उसी प्रकार फारसी लिपि का भी व्यवहार किया है। यारी साहब ने अपना 'अलिफ-नामा' लिखते समय बतलाया है कि फारसी के "तीसो अच्छर प्रेम के" है और यही उनका 'बडा उपदेस' है। परन्तु फारसी के केवल तीस ही अक्षरो को क्यो महत्त्व दिया गया है, शेष छह को क्यो छोड दिया है, इसका पता नही चलता। तीस ही अक्षरो को महत्त्व देने के कारण ही सत बुल्लेशाह ने भी अपनी 'सीहर्फी' (अर्थात् तीसअक्षरो वाली) नाम की रचना की है। उन्होने ऐसा करते समय 'पे', 'टे', 'डाल', 'ड़े', 'जे' और 'काफ नामक अक्षरो का समावेश नही किया है, किन्तु यारी साहब ने 'पे', 'टे', 'चे', 'डाल, 'ड़े' और 'जे' को छोडा है। यारी साहब का एक और 'अलिफनामा' उनके सग्रहो मे मिलता है जिसमे उक्त छह अक्षरो के अतिरिक्त 'गाफ' अक्षर को भी निकाल दिया गया है और इस बात मे उनका अनुकरण बाबा धरनीदास ने भी अपनी रचना 'अलिफनामा' मे किया है। इन दो कृतियो मे, इस प्रकार तीस की उपर्युक्त संख्या केवल उनतीस ही रह जाती है। जान पडता है कि फारसी के कतिपय अक्षरो को भी इन सतो ने यो ही उसी प्रकार छोड दिया है जिस प्रकार नागरी अक्षरो मे से कुछ का अन्य सतो ने त्याग कर दिया था। 'बावनी' वा 'सोहर्फी' नामो पर विशेष ध्यान नही दिया है। इसके सिवाय 'एक' का 'पहाडा' लिखते समय भी, इसी प्रकार, बाबा धरनीदास ने जहाँ 'दहाई' तक लिखा है, वहाँ गुलाल साहब 'एकादस' तक चले गए है।

सतो की एक रचना-पद्धति उनके काल या समय के भिन्न-भिन्न अशानुसार लिखने मे देखी जाती है। 'गोरखबानी' के देखने से पता चलता है कि गोरखनाथ ने 'पद्रह तिथि' एव 'सप्तवार' शीर्षक दो रचनाएँ, क्रमश तिथियो तथा दिनो के नामानुसार की थी। उसकी एक रचना उस ग्रन्थ के 'परिशिष्ट' मे, 'सप्तवार नवग्रह' नाम की भी आयी है जिसमे नवो ग्रहो का भी उल्लेख है। उक्त 'पन्द्रह तिथि' मे तिथियो की चर्चा अमावस्या से लेकर पूर्णिमा तक की गई है जिससे उनके वस्तुत सोलह नाम आ जाते है। 'सप्तवार' वाली उक्त रचना मे योगसाधना की विविध बाते सक्षिप्त रूप मे बतला दी गई है और 'सप्तवार-नवग्रह' मे इन सभी का 'काया भीतरि' वर्त्तमान होना भी कहा गया है। सत रज्जब जी ने भी एक रचना 'पद्रह तिथि' नाम से की है और उन्होने भी उसी प्रकार अमावस्या से लेकर पूर्णिमा तक सोलह नाम दिये है। सहजोबाई ने अपनी एक ऐसी रचना का 'सोलह तिथि निर्नय' नाम दिया है और कहा है—

"ज्ञान भक्ति और जोग कूं, तिथि मे करूँ बखान।"[1]

अर्थात् इन तिथियो के द्वारा मैं ज्ञान, भक्ति एव योग का वर्णन कर रही हूँ। सत हरिदास ने इस प्रकार की दो रचनाएँ की है जिनके नाम उन्होने क्रमश 'बडी तिथियोग' और 'लघु तिथियोग' रखे है। इनमे से पहली मे छह-छह पक्तियो के तथा दूसरी मे केवल दो-दो पक्तियो के सोलह-सोलह पद आये है। इसी प्रकार सत रज्जब जी ने सात वारो के नाम का प्रयोग करके उपदेश दिये है। सहजोबाई ने उनके द्वारा 'हरि का भेद' बतलाया है और सत हरिदास ने अपनी साधना के निजी अनुभव का वर्णन किया है। सहजोबाई की एक विशेषता यह लक्षित होती है कि उन्होने रविवार की जगह मगलवार से दिनो का आरभ किया है। इस प्रकार, सप्ताह का अत सोमवार मे दिखलाया है जिसका कोई स्पष्ट कारण नही जान पडता।

समय के अनुसार की गई सतो की रचनाओ मे 'बारहमासा' को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। सिखो की मान्य पुस्तक 'आदिग्रथ' मे इस प्रकार की रचना को 'बारहमासा' कहा गया है जिसमे गुरु अर्जुनदेव ने चैत से फाल्गुन तक के नाम लेकर उनमे किये जाने वाले कामो के विषय मे विविध उपदेश दिये है। परतु इसी प्रकार की अपनी एक रचना 'बारहमासा' द्वारा सत सुदरदास ने इस प्रकार का विरह-वर्णन किया है जो एक साधारण विरहिणी नायिका की ओर से भी पूर्णत उपयुक्त कहा जा सकता है। इन दोनो सतो के बारहमासा चैत से आरभ होते है, किन्तु संत गुलाल साहब एव भीखा साहब ने जो बारहमासे लिखे है, वे आषाढ मास से चलते है। इन दोनो मे संतमत-सम्बन्धी कुछ सिद्धातो के वर्णन पाये जाते है, किंतु सत गुलाल साहब की रचना मे कही-कही प्रकृति की छटा भी दर्शनीय है। सत पलटू साहब ने बारहमासापरक एक अपने पद मे विरह का वर्णन सत सुन्दरदास की ही भाँति किया है। किन्तु उसके अत मे उनकी विरहिणी को 'सुन्न मदिल' मे 'इक मूरति' की झलक भी मिल गई है। सत तुलसी साहब ने दो बारहमासे लिखे है जिनमे से पहला लावनी मे है और दूसरा दोहो मे। पहले के अन्तर्गत विरहिणी की दशा के साथ-साथ सतमत की साधना का भी समावेश कर दिया है, किन्तु दोहों मे केवल सतमत का सार बतलाया गया है। इस दोहे वाले बारहमासे की एक यह भी विशेषता है कि इसका आरभ सावन मास से होता है। सत शिवदयाल का बारहमासा इन सभी से बडा है और उनके 'सारवचन' ग्रन्थ के लगभग ५० पृष्ठो मे आता है। उसके अन्तर्गत ससारी जीवो की दशा का वर्णन कर उनके गुरुपदेश एव तदनुसार समाधान द्वारा सँभलने की चर्चा विस्तार के साथ की गई है और प्रसगवश काया के भीतर वर्त्तमान द्वादश कमलो का परिचय भी दिया गया है। इन द्वादश कमलो तक अपनी चेष्टाओ द्वारा पहुँचने वाले को ही इन्होने 'सत सुजाना' बतलाया है तथा ऐसे ही संतो के मत को सर्वोच्च स्थान भी दिया है।[2] संत शिवदयाल के शिष्य सत सालिगराम जी ने भी 'बारहमासा' लिखा है जो उससे छोटा है। 'सुरत' की ऊर्ध्वयात्रा उसका प्रधान विषय है।

सतो की रचनाओ का एक अन्य विभाजन उनमे संगृहीत पदो की सख्या के अनुसार किया गया भी मिलता है। सत कबीर साहब की प्रसिद्ध 'रमैणी' ग्रन्थ मे

१ सहज प्रकाश, पृ० ४५।

२ 'सार वचन', पृ० ५३ ४०२।

'सत पदी', 'वड़ी अप्टपदी', 'दुपदी', 'अप्टपदी', 'वारहपदी' तथा 'चौंपदी' रमैणियो का सग्रह है। परन्तु इनमे से किसी मे भी उक्त नियम का पालन किया गया जान नही पडता। वह ग्रन्थ एक प्रकार से दोहो-चौपाइयो के क्रमिक सग्रह मात्र का एक उदाहरण है, किंतु इन छदो का क्रम भी किसी नियम के साथ वँधा हुआ नही दीख पड़ता। सिखो की मान्य पुस्तक 'आदिग्रथ' के अतर्गत 'असट पदीआ' नाम की कतिपय रचनाएँ गुरु नानक, गुरु अमरदास, गुरु रामदास तथा गुरु अर्जुनदेव की कृतियों के रूप मे आती है जिनमे से कई एक आठ पदवाली नही है। गुरु अमरदास की एक रचना 'असट पदी' नाम उसे औरो से पृथक् करके दिया गया है जिसमे आठो पद वर्तमान है। संत हरिदास ने 'चालीसपदी योग', 'चतुर्दसपदी योग', 'तीसपदी योग' एवं 'वारहपदी योग' नामक इस प्रकार की चार रचनाएँ लिखी है जिनमे से पहली मे ४१ द्विपदियाँ आती है और तीसरी मे उनकी सख्या तीस की कही जा सकती है। किंतु शेप के पदो के क्रमश १४ एव १२ होने पर भी उनकी पंक्तियो की सख्या मे किसी नियम का पालन नही दीख पडता।

सतो की साम्प्रदायिक रचनाओ मे कतिपय 'गोष्ठियों' के भी नाम आते है जो प्रश्नोत्तरो के रूप मे पायी जाती हैं। 'गोष्ठी' शब्द का अर्थ वहुधा उस वार्त्तालाप से लिया जाता है जो ज्ञानवर्द्धन के उद्देश्य से किया गया होता है अथवा जो समान कोटि वाले व्यक्तियो मे कुछ शकाओ का समाधान कराने के लिए, पारस्परिक वातचीत के रूप मे हुआ करता है। ऐसी 'गोष्ठियो' की परपरा कम-से-कम नाथपथी 'जोगियो' के समय से चली आती है जिनके लिए यह प्रसिद्ध है कि वे अपने योगवल द्वारा किन्ही पूर्वपुरुपो की आत्माओ के भी साथ मिलकर वार्त्तालाप कर सकते थे और जिनके यहाँ वैसे लोग वहुधा ज्ञानवर्द्धन के लिए भी आया करते थे। ऐसी गोष्ठियो का एक दूसरा नाम 'वोध' भी पाया जाता है। वह विशेपकर किसी से शिष्य रूप मे प्रश्न करने पर आरभ होता है। 'गोरख-वानी' नामक सग्रह मे 'गोरप गणेश गुष्टि', 'गोरप दत्त गुष्टि' एव 'महादेव-गोरप गुष्टि' नाम की तीन गोष्ठियाँ उसके परिशिष्ट भाग मे प्रकाशित है और 'मछींद्र गोरप वोध' उसके मूल भाग मे है। इन सभी मे प्रश्नोत्तरो के द्वारा नाथपथ की प्रमुख वातो का परिचय दिया गया है और पूछने वाले को कुछ निम्न श्रेणी का प्रदर्शित किया गया है। कवीरपथी साहित्य के अतर्गत 'गोरप-गोप्ठी' तथा 'रामानन्द गोष्ठी' वहुत प्रसिद्ध है और 'लक्ष्मणवोध', 'हनुमानवोध', 'मुहम्मदवोध', 'सुलतानवोध', 'भूपालवोध', 'गरुणवोध', 'जगजीवनवोध' जैसे अनेक वोधग्रथो का एक वृहद् सग्रह उसके 'वोधसागर' मे मिलता है। 'गोष्ठी' नाम का एक ग्रन्थ 'दरिया साहव विहारी' तथा 'रामेश्वर जोगी' के वार्त्तालाप का पाया जाता है जो सभवत काशी मे हुआ था। सत तुलसी साहव की रचनाओ मे ऐसी वातचीतो का नाम 'सवाद' पाया जाता है और उनकी 'घटरामायन', 'रत्नसागर', 'पद्मसागर' तथा फुटकर पदसग्रह की पुस्तको मे वे एक अच्छी सख्या मे दीख पडते है। 'गोष्ठियो' तथा 'वोधो' को 'ज्ञानगुष्ठि' एवं 'आत्मवोध' जैसे नाम देने की भी प्रणाली देखी जाती है। वे अधिकतर एक विशेष विपय से सवद्ध ग्रन्थ हैं जो गुरु एव शिष्यो के वीच की वातचीत के रूप मे रहा करते है। ज्ञानगुष्टि का एक ऐसा उदाहरण 'गुलाल' साहवकृत 'ज्ञानगुष्टि' है जो सत गुलाल साहव तथा उनके शिष्य भीखासाहव का वार्त्तालाप है।

सतो ने इसी प्रकार, 'वणजारा', 'व्याहुलो', आदि से लेकर 'सहस्रनाम' जैसी तक रचनाएँ भी की है। उनकी व्यापार-यात्रा, वैवाहिक प्रसग आदि सम्वन्धी चर्चाओ के

घटनात्मक आधार पर ही नही, अपितु केवल नामो के विवरणो द्वारा भी अपने विचारो को स्पष्ट करने की चेष्टाएँ की है। अतएव, बावनी जैसे उपर्युक्त प्रकार के विविध ग्रन्थो की रचना भी उन्होने किसी साहित्यिक प्रयास के रूप मे नही की है। उन्होने सर्वत्र केवल इसी बात के लिए प्रयत्न किये है कि हमारे सिद्धातो एव साधनाओ का स्पष्टीकरण ठीक-ठीक हो जाय। इसके लिए उन्होने किसी विशेष प्रकार की रचना-प्रणाली का ही अनुसरण करना आवश्यक नही समझा। जिस किसी भी रचनाशैली को उन्होने अपने समय मे प्रचलित या परिचित पाया, उसी को अपना कर अपने उद्देश्य की सिद्धि मे वे लग गए। इसी कारण, हम देखते है कि जिन-जिन ऐसे साधनों को उन्होंने अपने लिए स्वीकार किया है, उनके मौलिक रूपो की ओर उन्होने विशेष ध्यान नही दिया है और न उनके नियमो को ही ठीक-ठीक निवाहा है। वे सदा अपने प्रतिपाद्य विपय को ही अधिक महत्त्व देते रहे है जिस कारण उनकी कृतियो का बाह्यरूप कभी सँभाला नही जा सका है। 'बावनी' नाम की उपर्युक्त कबीर-कृति के एक अन्य नाम 'बावन अषरी' के कारण उसे पढने वाले बहुधा आशा करते है कि उसकी रचना नागरी के सभी सोलह स्वरो तथा सारे छत्तीस व्यजनो के अनुसार की गई होगी। किन्तु उसके रचयिता द्वारा दिये गए कुछ सकेतो के आधार पर उसके विपय मे इस प्रकार का अनुमान करना भी आवश्यक हो जाता है कि उक्त 'अषरी' शब्द का अभिप्राय यहाँ किसी वर्णमाला के अक्षरो से न होकर, उस अक्षर या अविनाशी तत्त्व से है जो उन अक्षरों मे वर्त्तमान कहा जा सकता है।

सतो की प्राय सभी रचनाएँ पद्यो मे ही पायी जाती है। गद्य-ग्रन्थो की सख्या उतनी अधिक नही है। 'गोरखबानी' नाम के सग्रह को देखने से विदित होता है कि गद्य लिखने की परम्परा नाथपथियो के समय से रही होगी। उसके 'गोरप गणेश गुष्टि', 'महादेव गोरप गुष्टि', 'सिष्ट पुराण', 'चौबीस सिद्धि', 'बत्तीस लछन' तथा 'अष्टचक्र' नामक परिशिष्ट के प्रकरणो मे गद्य स्पष्ट दीख पडता है और यह बात उसके मूलभाग की 'रोमावली' नामक रचना मे भी पायी जाती है। किन्तु उनमे लक्षित होने वाले गद्य के रूप को न तो हम शुद्ध, निर्दोष वा अविकृत कह सकते है, न उसके रगढग मे पद्य से बहुत अन्तर जान पडता है। इन रचनाओं मे प्रयुक्त वाक्य अधिकतर तुको का सहारा लेते है और इनमे आये हुए प्रश्नो मे क्रियाओ का अभाव भी लक्षित होता है। इसके सिवाय इनमे दिये गए विवरणो के उल्लेख भी सकेतवत् ही किये गए हैं और वे एक दूसरे की गति का अनुसरण करना चाहते है। गद्य का कोई शुद्ध रूप उस समय की कदाचित् किसी प्रकार की भी हिन्दी रचनाओ मे नही पाया जाता। कबीर साहब के समय से सन्त-परम्परा का आरम्भ हो जाने पर तथा उसके बहुत काल पीछे तक भी सन्तो की गद्य रचनाओ के उदाहरण नही मिलते। कहते है कि सन्त बाबालाल एव सन्त प्राणनाथ के समय, अर्थात् विक्रम की १७वी शताब्दी के चतुर्थ चरण से लेकर उसकी १८वी शताब्दी के मध्यकाल तक, सन्तो की गद्य रचनाओ का आरम्भ हो गया था। किन्तु अभी तक ऐसे ग्रन्थो का कही पता नही चलता। १८वी शताब्दी के अन्तिम चरण के लगभग की समझी जाने वाली कुछ रचनाएँ शिवनारायणी सम्प्रदाय की मिलती है, किन्तु उनके रूपो मे भी कुछ हेरफेर हो गया है। कभी-कभी ऐसा अनुमान होता है कि वे कुछ और पीछे लिखी गई भी हो सकती है। यही बात हम अन्य पथों की ऐसी अनेक रचनाओ के सम्बन्ध मे भी कह सकते है। सन्तो के गद्य साहित्य का वास्तविक आरम्भ इसी कारण, विक्रम की १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल से ही होता है जब कुछ सत लेखक अपने-अपने मान्य ग्रन्थो एव अन्य प्रसिद्ध रचनाओ पर भी अपने भाष्य एव

टीकाएँ रचने लगते है और साधु निश्चलदास जैसे कुछ लोग स्वतन्त्र रचनाओं की ओर भी प्रवृत्त हो जाते है। उस काल से पहले सन्तो के पत्र-व्यवहार तक सभवत पद्य मे ही होते थे जैसा कि जगजोवन साहब के कुछ उपलब्ध पत्रों से भी जान पडता है। सतो के गद्य साहित्य की अभिवृद्धि मे इधर कबीर पथ, दादू पथ, रामसनेही सम्प्रदाय और विशेपत राधास्वामी सत्सग का हाथ रहा है। वर्त्तमान रचना-पद्धति के प्रभाव मे आकर अन्य ऐसे लोगो ने भी इधर बहुत कुछ किया है। 'सत्सग' के महर्पि शिवव्रतलाल ने साधारण प्रवचनो के अतिरिक्त उपाख्यानो, कहानियो, जीवनियो तथा आलोचनाओ, आलोचनात्मक ग्रन्थो की भी रचना की है और सामयिक साहित्य के प्रकाश मे भी भाग लिया है। उस पन्थ के सर आनन्दस्वरूप की नाटक-रचना भी उल्लेखनीय है।

## काव्य का आदर्श

सत-साहित्य की उपर्युक्त सक्षिप्त रूपरेखा से भी स्पष्ट है कि सतो ने उसका निर्माण करते समय अपना ध्यान न तो काव्य-कौशल की ओर दिया था, न उसमे कभी वे पूर्णरूप से सावधान ही रहे। उन्होने अपने विचारो की अभिव्यक्ति एव सिद्धान्तो के प्रचारार्थ ही कुछ रचनाएँ प्रचलित शैलियो के अनुसार प्रस्तुत कर दी। इनकी सख्या मे क्रमश वृद्धि के होते जाने से इनका कलेवर विशाल सत-साहित्य के रूप मे परिणत हो गया। ये रचनाएँ न तो मनोरजन के लिए की गई थी, न इनका उद्देश्य कभी किसी प्रकार के 'यश' या 'धन' के उपार्जन का ही रहा। इनके रचयिताओ ने अपने सामने न तो 'कविता कविता के लिए' का आदर्श रखा, न उन्मुक्त कल्पना के प्रभाव मे विविध भावनाओ की सृष्टि कर अपना मनोराज्य स्थापित करने की कभी चेष्टा की। उनकी 'स्वानुभूति' मे विश्वजनीन अनुभूति की व्यापकता थी और उनके आदर्श पद की स्थिति ठेठ व्यवहार से कही बाहर न थी। अपनी रचना के माध्यम को भी इसी कारण उन्होने न तो उसके विपय से अधिक कभी महत्त्व दिया, न उसके शब्द एव शैली मे चमत्कार लाने के पीछे, उसके भावसौदर्य के प्रति वे कभी उदासीन हुए। इसके सिवाय, अपने उच्च-से-उच्च एव गभीर-से-गभीर भाव को भी वे सदा सर्वसाधारण की ही भाषा मे व्यक्त करते आए। उन्ही के दृष्टातो एव मुहावरो द्वारा उन्होने उसका स्पष्टीकरण भी किया।

सत कबीर साहब के समसामयिक मैथिल कवि विद्यापति अच्छे पडित और साहित्यज्ञ थे। उन्होने कई काव्य-रचनाएँ भी की थी। अपने हिन्दी पदो द्वारा उन्होने नायिकाओ की वय सधि आदि का वर्णन बडे सुन्दर ढग से किया है और अपनी काव्य-शक्ति का उन्हे बहुत बडा गर्व है। वे अपने काव्य की भाषा की प्रशसा मे एक स्थल पर कहते हैं—

> "बालचन्द विज्जावइ भासा, दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा।
> ओ परमेसर हर शिर सोहइ, ईणिच्चइ नागर मन मोहइ॥"[1]

अर्थात् द्वितीया का चन्द्रमा और मेरी काव्यभापा दुर्जनो के हास्य का विपय नही हो सकती, क्योकि चद्रमा शिव के मस्तक पर शोभा देता है और मेरी भाषा नागरिको का मन मोह लिया करती है। वे काव्य के लिए भापा को सरसता को ही सदा अधिक महत्त्व देते जान पडते है, क्योकि इसके आगे वे फिर यह भी कहते है—

---

१ 'कीर्तिलता' (काशी नागरी प्रचारिणी सभा सस्करण), पृ० ४।

"का परमोधञ्जो कमण मणावञ्जो,
किमि नीरस मने रस लए लावञ्जो।
जइ सुरसा होसइ मम्मु भासा,
जो बुज्झइ सो करिह् पसंसा।।"[1]

अर्थात् मैं किस प्रकार प्रबोध कराऊँ, किस प्रकार जतलाऊँ और किस प्रकार नीरस मन मे रस भर दूँ। यदि मेरी भाषा सुरस होगी तो जो कोई समझेगा, वही मेरी प्रशसा करेगा। परन्तु सत कबीर साहब के लिए इस प्रकार के 'कविकर्म' का कभी कोई महत्त्व न था। वे 'राम' के उद्देश्य मे किये गए कार्य को ही उचित समझते थे। उससे विहीन ससार के किसी भी धधे को 'कुहेरा' के समान नि सार मानते थे। इस कारण काव्य-कौशल मे प्रवृत्त होना भी उनके लिए वैसा ही व्यर्थ काम है, जैसा हिन्दुओं का मूर्तिपूजा मे लीन रहना, मुसलमानो का 'हज' की यात्रा किया करना, योगियो का जटा बाँधे फिरा करना तथा कापड़ियो का जल लाने के लिए केदारनाथ तक पर्वत की चढाई करना आदि कहे जा सकते हैं। वे कहते हैं—

"राम बिना संसार धंध कुहेरा,
सिरि प्रगट्या जम का पेरा।।टेक।।
देव पूजि पूजि हिंदू मूये, तुरक मूये हज जाई।
जटा बाँधि बाँधि योगी मूये, इनमें किनहूँ न पाई।।
कवि कबीनें कविता मूये, कापडी केदारौं जाई।" आदि।[2]

इसी प्रकार सत सुन्दरदास ने भी जो स्वय पडित और काव्यनिपुण व्यक्ति थे, विद्यापति की शृ गारमयी 'पदावली' जैसी रचनाओ को उन्होने विषतुल्य ठहराया था। 'रसिकप्रिया', 'रसमजरी' एव 'सुन्दर शृगार' की नि दा करते हुए वे कहते हैं—

"रसिक प्रिया रस मजरी और सिगारहि जानि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आँनि।।
विषै बनाई आनि लगत विषयिन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड सराहै नखशिख नारी।।
ज्यो रोगी मिष्ठान षाई रोगहिं विस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जुतौ रसिक प्रिया धारै।।५।।
रसिक प्रिया कै सुनत ही उपजै बहुत विकार।
जो या माहीं चित्त दे वहै होत नर ष्वार।।
वहै होत नर ष्वार तौ कछुव न लागै।।
सुनत विषय की बात लहरि विषही की जागै।।
ज्यौं कोइ ऊंघै हुतौ लही पुनि सेज बिछाई।
सुन्दर ऐसी जांनि सुनत रसिक प्रिया भाई।।"६।।[3]

१ 'कीर्तिलता' (काशी नागरी प्रचारिणी सभा सस्करण), पृ० ४।

२ 'कबीर ग्रथावली' (काशी नागरी प्रचारिणी सभा), पद ३१७, पृ० १६५।

३ 'सुन्दर ग्रन्थावली' (द्वितीय खण्ड), पृ० ४३६-४०।

अर्थात् 'रसिकप्रियादि' काव्य-रचनाओं को कवियो ने वडी निपुणता के साथ विप-रूप में प्रस्तुत किया है और वे विपयी जीवो को प्यारी लगती हैं। उन्हे सुनते वा पढते ही वे नारियो के नख-शिख की प्रगसा करने लगते हैं और उनमे कामोद्दीपन उसी प्रकार हो जाता है जिस प्रकार मिप्ठान्न खाने पर रोगियो के रोग मे वृद्धि हो जाती है। इसके सिवाय 'रसिकप्रियादि' का श्रवण करने मात्र से मनोविकार उत्पन्न होते है और जो कोई उधर आकृष्ट होता है, वही चौपट हो जाता है। विपय की वातो को सुनते ही भीतर विप की लहरें उठने लगती हैं ओर उसे वैसा ही जान पडता है जैसा ऊँघने वाले को सोने के लिए कोई विछी-विछाई सेज मिल गई हो।

अतएव, सतो के अनुसार आदर्श काव्य वही हो सकता है जिसमे कविता निरुद्देश्य की गई न हो। उसका विपय 'राम' से रहित न होना चाहिए और उसमे शृंगारादि विपयो की मनोविकारवर्द्धक एव विपभरी वातो का समावेश भी न होना चाहिए। सत कवि इस वात मे दूसरो से सहमत नही जान पडते कि काव्य की रचना यदि उपयुक्त शब्द-दोप-रहित छद और प्रभावपूर्ण शैली मे हो तो वह अधिक अच्छी लगेगी। उनका आग्रह केवल इसी वात के लिए है कि उसका विपय भी अवश्य सुन्दर होना चाहिए। 'हरियश' ही सत सुन्दरदास के अनुसार, काव्य का प्राण है। उसके विना वह, अन्य वातो से युक्त होता हुआ भी निर्जीव-सा है। इस सम्वन्ध मे उनका कहना है—

"नख-शिख शुद्ध कवित्त पढ़त अति नीकौ लग्गै।
अगहीन जो पढ़ै सुनत कविजन उठि भग्गै॥
अक्षर घटि बढि होइ षुडावत नर ज्यौं चल्लै।
मात घटै वढ़ि कोई मनो मतवारौ हल्लै॥
औढेर कॉण से तुक अमिल, अर्थहीन अंधो यथा।
कहि सुन्दर हरिजस जीव हैं, हरिजस बिन मृत कहि तथा॥"[1]

अर्थात् सर्वाङ्ग-शुद्ध होने पर ही कोई कविता अच्छी लगा करती है। अगहीन होने पर उसे मुनते ही कविजन भाग चलते हैं। यदि किसी कविता मे मात्राओं की न्यूनाधिकता होती है तो वह लुढकने हुए मनुष्य की भाँति चलती है और यदि उसमे मात्रा की घटी-वढी होती है तो वह मतवाले की भाँति हिलती-डुलती रहा करती है। वेमेल तुको वाली कविता ऐचो-कानो की भाँति हुआ करती है और अर्थहीन काव्य अधो से कम नही गिना जाता। फिर भी, उसका प्राण हरियश ही कहा जायगा। उसके विना कविता शवतुल्य है।

इस सम्वन्ध मे एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि सतो की रचनाओं का प्रमुख उद्देश्य उनकी स्वानुभूति की अभिव्यक्ति रही है। इसमे पूर्णरूप से सफल हो जाना, यदि असम्भव नही तो, अत्यन्त कठिन अवश्य कहा जा सकता है। अपने जीवन के एक साधारण से भी सुखमय अनुभव मे हम देखते है कि जिस समय हमारे ऊपर उसके प्रभाव की मात्रा अधिक हो जाती है और अनुभूत वस्तु मे तन्मयता का भाव ग्रहणकर जव हम आनदित हो उठते है तो उसे उपयुक्त शब्दो मे प्रकट करते समय हमे वडी कठिनाई का सामना करना पडता है। हम उसे स्पष्ट करने का प्रयत्न वार-वार करने लगते हैं। एक

---

१ 'सुन्दर ग्रन्थावली' (द्वितीय खण्ड), पृ० ६७२।

ही बात को कई ढग से कहने लग जाते हैं और बीच-बीच मे कुछ-न-कुछ सकेत भी करते जाते है, किन्तु फिर भी इसमे हमे सतोष नही हो पाता। अपनी भाषा हमे उस समय पूरी सहायता करती हुई प्रतीत नही होती और कई बार वह अस्पष्ट एव विकृत तक बनकर रह जाती है। उक्त वस्तु जब इद्रियगम्य रहा करती है तब तो हमे भाषा की सहायता कुछ-न-कुछ मिल जाती है। किन्तु जब हम किसी भावना के अनुभव की बातें करने लगते है तो हमे उस साधन का भी पूरा सहारा उपलब्ध नही होता। राम, साहिब, सत्य वा परमतत्त्व जिसका आत्म-स्वरूप मे अनुभव करने की बातें बहुधा सतो की रचनाओ मे आया करता है। उनके अनुसार, जो इद्रियातीत वस्तु है जिसकी केवल भावना का ही अनुभव किया जा सकता है, उसका वर्णन भी केवल प्रतीको के आधार पर ही हो सकता है। इन प्रतीको का आधार मूलत. इद्रियगम्य वस्तुएँ ही बना करती है। ऐसी दशा मे उन दोनो मे पूर्ण सामजस्य की भी एक समस्या अलग खडी हो जाती है। सतो ने ऐसे प्रतीको के प्रयोग बार-बार किये है और इस प्रकार हमारे लिए कुछ ऐसे चित्रो का निर्माण करते आए है जो उनकी उक्त भावना का न्यूनाधिक अनुकरण कर सके। भाषा उन्हे इस कार्य मे पूरी सहायता स्वभावत नही कर पायी है। इसके लिए उनके जितने ऐसे प्रयोग हुए है, वे अधिकतर दोषपूर्ण हो गए है। सतो ने जहाँ-जहाँ स्वानुभूति से भिन्न-भिन्न विषयों के वर्णन किये है, वहाँ-वहाँ उनकी प्रतिभा तथा अभ्यास के अनुसार भाषा, छद एव शैली मे भी उन्हे बराबर सफलता मिलती गई है। वहाँ पर उनकी योग्यता स्पष्ट ही दीखती है।

## रहस्यवाद

स्वानुभूति की अभिव्यक्ति में उक्त प्रकार की अस्पष्टता आ जाने के कारण कवि की रचना बहुधा रहस्यमयी बन जाती है। उसके श्रोता वा पाठक के लिए अपने पूर्व परिचित प्रतीको के भी प्रयोग एक अपूर्व अनुभव के विधायक बन जाते है। 'स्वानुभूति' की दशा इस प्रकार की स्थिति है जिसमे हम अपने आपको पाकर भी वस्तुत सर्वथा भूल से जाते है। उस समय किसी दूसरे को उसके साथ परिचित करने की हममे कोई शक्ति नही रह जाती। 'बृहदारण्यक उपनिषद्' मे इस विचित्र दशा का वर्णन किसी प्रिया एव प्रियतम के गाढालिंगन के प्रतीक द्वारा किया गया है और इसे सभी अन्य अनुभवो को दबा देने वाला भी बतलाया गया है। वहाँ कहा गया है—

"तद् यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्य किञ्चन वेद नान्तरमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेदनान्तरं तद् वा अस्यैतदाप्तकाममात्मकाममकामरूपम् शोकान्तरम् ॥"[1]

अर्थात् व्यवहार मे जिस प्रकार अपनी प्रिया भार्या को आलिंगन करने वाले पुरुष को न कुछ बाहर का ज्ञान रहता है और न भीतर का, इसी प्रकार यह पुरुष प्रियतमा से आलिंगित होने पर न कुछ बाहर का विषय जानता है और भीतर का। यह उसका आप्तकाम, आत्मकाम, अकाम, शोकशून्य रूप है। अनुभव का अर्थ प्रत्यक्ष ज्ञान है और 'स्वानुभूति' की स्थिति मे अपनेपन वा आत्मा मे अनुभव का होना उस वस्तु की अनुभूति का अर्थनिहित है, जो परमतत्त्व है। दोनो की अनुभूति एकसाथ और सम्मिलित रूप मे होती है। इस अभिन्नता के कारण हमे इनमे से किसी एक की इयत्ता प्रतीत नही होती।

---

1 अध्याय ४, ब्राह्मण ३ (२१)।

फलतः अनुभविता एवं अनुभूत की एकता हमें अपनी स्पष्ट अभिव्यक्ति में और भी अक्षम कर देती है और हम एक प्रकार से मूकवत् बन जाते हैं। हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान उस समय साधारण अनुभव से बढ़कर उस कोटि विशेष की अनुभूति में भी परिणत हो गया रहता है जिसे 'स्वाद' या 'मजा' कहा जाता है और जिसे साहित्यिक शब्दावली के अनुसार हम 'रस' की संज्ञा देते हैं। इसमें अनुभविता और अनुभूत वस्तु के साथ-साथ स्वयं उस अनुभव की भी एकता हो जाती है जिसे अद्वैतवाद की भाषा में ज्ञाता, ज्ञेय एवं ज्ञान की 'त्रिपुटी' कहा जाता है। किसी ने कहीं कहा भी है—

> "ज्ञाता ज्ञेय अरु ज्ञान जो, ध्याता, ध्येय अरु ध्यान।
> द्रष्टा, दृश्य अरु दरश जो, त्रिपुटी शब्दाभान।"

संतों की रचनाओं के सम्बन्ध में जिस 'रहस्यवाद' की चर्चा की जाती है, वह स्वानुभूति की उपर्युक्त, अस्फुट अभिव्यक्ति के ही कारण, अस्तित्व में आता है। परमतत्त्व की प्रत्यक्ष अनुभूति हो जाने पर भी, उसके स्वानुभूतिपरक होने के कारण, तद्विषयक अभिव्यक्ति का अस्पष्ट एवं अधूरे रूप में ही होना संभव है। संत लोग उसे प्रकट करने के प्रयत्न बार-बार किया करते हैं। एक ही बात की पुनरुक्तियाँ तक कर देते हैं, किन्तु उनकी भाषा उनका पूरा साथ नहीं दे पाती। उनके वर्णन, इसी कारण, बहुधा गूढ़ से गूढ़तर बनते जाते हैं और श्रोता वा पाठक उनसे केवल चकित होकर रह जाता है। संतों में से अधिकांश को न तो शुद्ध काव्य रचने की शक्ति थी, न उनका अपनी भाषा पर ही पूरा अधिकार था। उधर ब्रह्मात्मक स्वानुभूति का आनंदातिरेक उन्हें विह्वल एवं विभोर कर देता था और वैसी अपूर्व स्थिति में वे उस इंद्रियातीत के विषय में कुछ कह नहीं पाते थे। संत कबीर साहब ने उस दशा का वर्णन इस प्रकार किया है—

> "अविगत अकल अनूपम देख्या, कहता कह्या न जाई।
> सैन करै मन ही मन रहसै, गूँगै जानि मिठाई॥
> × × ×
> आपै मैं तब आपा निरष्या, अपन पैं आपा सूझ्या।
> आपै कहत सुनत पुनि अपना, अपन पैं आपा बूझ्या।"[1]

अर्थात् उस अव्यक्त, अखंड तथा अद्वितीय वस्तु का जो अनुभव हुआ, वह शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। इसके लिए कोई प्रयत्न करना वैसा ही है जैसा किसी गूँगे व्यक्ति का मीठेपन के अपने स्वाद को संकेतों द्वारा बतलाना और मन-ही-मन आनंदित भी होते जाना। उस दशा में मैंने अपने को देख लिया और मुझे आपा अपने आप सूझ गया। अपने आपका ज्ञान मुझे स्वयं कहते-सुनते ही उपलब्ध हो गया। संत रविदास के अनुसार इस दशा में पूर्ण शांतिमय संतोष की भी स्थिति आ जाती है और तब उस परमतत्त्व-विषयक भजनादि तक की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। उनका कहना है—

> "गाइ गाइ अबका कहि गाऊँ, गावनहार को निकट बताऊँ॥ टेक॥
> जब लग है या तन की आसा, तब लग करै पुकारा।
> जब मन मिल्यौ आस नहिं तन की, तब को गावनहारा॥१॥

---

१ 'कबीर ग्रन्थावली' (का० ना० प्र० सभा), पद ६, पृ० ६०।

जब लग नदी न समुद समावै, तब लग बढ़ै हँकारा ।
जब मन मिल्यौ राम सागर महँ, तब यह मिटी पुकारा ।।२।।
जब लग भगति मुकति की आसा, परम तत्व मुनि गावै ।।"[1] आदि ।

अर्थात् मै बार-बार अब गाता क्या रहूँ और किसका नाम लेकर गाया करूँ। अब तो मैंने गेय वस्तु का प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया। जब तक इस शरीर की आशा बनी रही तब तक पुकार भी चलती रही। जब मन मग्न हो गया तो अब गाने वाला कौन रह जाता है। नदी जब तक समुद्र मे नही पहुँचती तब तक वह कलकल करती व्यग्र हो बढती जाती है, किन्तु जब यह मनरूपी नदी रामरूपी सागर मे लीन हो गई तो इसकी पुकार भी बद हो गई। इसलिए परमतत्त्व का श्रवण एव ज्ञान तभी तक होता है जब तक भक्ति एव मुक्ति की आशा बनी रहती है। सतो का रहस्यवाद प्रधानतः उनकी उपर्युक्त वर्णनशैली की ओर ही संकेत करता है और उसकी विशेषता उनके साधारण प्रतीको के प्रयोगो मे लक्षित होती है जो उनकी रचनाओ मे प्राय सर्वत्र मिला करते है।

## दाम्पत्य-भाव

संतो का सबसे प्रिय प्रतीक दाम्पत्य-भाव या पति-पत्नी का प्रेम जान पडता है। इसका प्रयोग हमारे यहाँ बहुत पहले से ही होता चला आया है। उपनिषदो तक मे इसके दृष्टात को महत्त्व दिया गया है, जैसा 'बृहदारण्यक उपनिषद' के उल्लिखित अवतरण से भी पता चलेगा। दक्षिण भारत की प्रसिद्ध भक्त कवयित्री गोदा की रचनाओ द्वारा प्रकट होता है कि उन्होने अपने इष्टदेव को जैसे वरण-सा कर लिया था। उसे वे सदा पतिवत् मानकर ही उसकी प्रेमोपासना करती रही। राजस्थान की प्रसिद्ध भक्त कवयित्री मीरा-बाई की भक्ति भी उसी कोटि की थी। सत-परपरा की बावरी साहिबा की साधना भी उसी ओर लक्ष्य करती है। इन स्त्रियो तथा पुरुष सत-कवियो मे से कई एक ने उक्त प्राचीन कोरे अनुभूतिपरक प्रतीक को पति-पत्नी के स्पष्ट सम्बन्ध के रूप मे भी परिणत कर लिया। उसका प्रयोग करते समय उसे मनोवेगो का रग चढाकर सजीव रूप दे दिया। फिर भी निर्गुणोपासको एव सगुणोपासको मे कुछ अतर अवश्य रह गया। पहले वर्ग के साधको की निराकारपरक भावना ने उन्हे बाह्य प्रदर्शनो के उस विस्तार से बचा लिया जिसमे पडकर दूसरे वर्ग वाले अपने-अपने मूल उद्देश्य से बहुधा दूर हो जाया करते हैं। पहले वर्ग वालो ने जहाँ अपने प्रियतम को सर्वव्यापी मानते हुए, उसे अभेदभाव के साथ अपने भीतर अपना लेना चाहा, वहाँ दूसरे वर्गवाले उसे सब कुछ समझते हुए भी उसका अलौकिक सान्निध्य, सदा भेदभाव के साथ प्राप्त करने की अभिलाषा मे मग्न रहे। अतएव, उक्त प्रतीको की उपयोगिता जहाँ एक की रचनाओ मे लगभग पूर्ववत् ही बनी रही, वहाँ दूसरे की रचनाएँ उसके सम्बधपरक भावो से ही भर गईं और मौलिक उद्देश्य उनमे बहुत कम दीख पडा।

दाम्पत्य-भाव के प्रति प्रदर्शित सतो का उपर्युक्त दृष्टिकोण बहुत कुछ सूफियो के समान था। सूफी भी अपने को निर्गुणोपासको मे ही गिना करते थे और अपने प्रेम को 'इश्क-हकीकी' अर्थात् ईश्वरीय प्रेम की सज्ञा देते थे। अपने उद्गारो के आश्रयार्थ अपने प्रेमपात्र को किसी प्रकार का व्यक्तित्व प्रदान करना, वे भी सतों की ही भाँति आवश्यक समझते थे। किन्तु इस प्रतीक की भावना का स्वरूप उनके लिए सतों से कुछ भिन्न प्रकार का था। सतो ने अपने प्रियतम की भावना पुरुष के रूप मे की थी। वे अपने

१ रैदास जी की बानी (बे० प्रे० प्रयाग), पद ३, पृ० ३।

को उसकी प.नी के रूप मे मानकर उससे हिलमिल जाना चाहते थे। किंतु सूफियो ने इसके विपरीत उसे अपनी प्रियतमा बना दिया और उसकी उपलब्धि के प्रयत्न मे निरत रहना अपना परम कर्त्तव्य समझा। इसके सिवाय, सतो ने जहाँ उस प्रतीक के प्रयोग केवल व्यक्तिगत रूप मे अथवा उसे साधारण परिस्थितियो के ही बीच लाकर किये, वहाँ सूफियो ने उसके लिए प्रेमगाथाओ की सृष्टि की और उसके द्वारा प्रेम एव विरह के विविध रूपों के प्रदर्शन के लिए एक विस्तृत क्षेत्र भी तैयार कर लिया। इस प्रकार सतो के इस प्रेम मे जहाँ, पातिव्रत की भावना बनी रहती थी और उनकी अनुभूति की तीव्रता को तीव्रतर करने मे एकातनिष्ठा की सहायता मिलती थी, वहाँ सूफियो के पुरुप-प्रेमी के लिए केवल अपनी इच्छाशक्ति की दृढता ही सहायक होती थी और पथ-प्रदर्शन के संकेत भी उसे परिचित एव प्रोत्साहित मात्र ही कर पाते थे। उक्त दोनो बातो मे सत लोग भारतीय परम्परा का अनुसरण करते थे, जब कि सूफियो ने ईरान की धारणाओ को अपना आदर्श बनाया था। उन्ही से प्रेरित होकर उन्होने अपनी प्रतीक-सम्बन्धी भावना को स्वरूप भी दिया था।

संतो की दृष्टि मे स्वभावत एक मात्र पुरुप परमात्मा ही है और अन्य सभी उसकी पत्नियो के रूप मे है। दादूदयाल ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है—

"पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग।
जे जे जैसी ताहिसो, खेले तिसही रंग ॥५७॥[1]

अर्थात् हम सभी का पुरुप एक मात्र वही है और हम लोग उसकी भिन्न-भिन्न लक्षणो वाली पत्नियाँ है। हम लोगो मे से जो जिस प्रकार की हैं, वह उसी प्रकार उसके साथ खेल खेला करता है। सत कबीर साहब उसी एक अविनाशी को वरण करने को चर्चा करते है जब वे कहते है—

दुलहिनी गावहु मगलचार।
हम घरि आये हो राजाराम भरतार ॥टेक॥
तन रत करि मै मन रत करिहूं पंच तत्त बराती।
रामदेव मोरै पाहुनै आये, मै जोबन मदमाती॥
सरीर सरोवर बेदी करिहूं, ब्रह्म वेद उचार।
रामदेव संगि भांवरि लैहूं, धनि-धनि भाग हमार॥
सुर तेंतीसू कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी।
कहै कबीर हम ब्याहि चले है, पुरिख एक अविनासी ॥१॥[2]

अर्थात् आत्मा को अब मगलाचार गाने मे प्रवृत्त हो जाना चाहिए, क्योकि मेरे घट के भीतर अब स्वय स्वामी राजाराम ही प्रकट हो गए। अब मैं अपना तन-मन अर्थात् सभी कुछ उनके प्रति अर्पित कर दूंगा और पचतत्त्व उस दशा मे मेरे लिए बराती-स्वरूप बन जायेगे। मै अपने पाहुने राम को अपने घट मे पाकर फूला न समाऊँगा और उन्मत्त-सा हो जाऊँगा। स्वामी राम के साथ प्रणय-सूत्र मे बँधते समय मेरे शरीर का नाभिकमल वेदी का काम करेगा और ब्रह्मज्ञान की जागृति स्वय वेदोच्चार का रूप

---

१ 'दादूदयाल की वाणी' (अगवधू), पृ० ३४।

२ 'कबीर ग्रथावली' (का० ना० प्र० स० सस्करण), पृ० ८७।

ग्रहण कर लेगी। मै अपने पतिदेव के साथ भाँवरे देने मे व्यस्त रहूँगा और मेरे भाग्य की सराहना होने लगेगी। उस दशा मे सारे तँतीस करोड देवता एव अठासी सहस्र मुनिजन मेरे इस सम्बन्ध के सम्पन्न होने मे सहयोग प्रदान करेगे और मैं एक मात्र अविनाशी पति को वरण कर लूँगा।

इसी प्रकार गुरु नानक देव भी लगभग उसी बात को नीचे दी हुई पक्तियो द्वारा प्रकट करते है। वे कहते है—

"गावहु गावहु कामणी विबेक बीचारु।
हमारे घरि आइआ जगजीवनु भतारु।। रहाउ।।७।।
गुरु दुआरैं हमरा बीआहु जिहोआ जासहुँ मिलिआ ता जानिआ।।
तिहुँ लोका महि सबदु रमिआहै आपु गइआ मनु मानिआ।।

× × × ×

भनति नानकु सभना का पिवु एको सोई।
जिसनो नदरि करे सा सोहागणि होई।।१०।।"[१]

अर्थात्, हे कामिनियो! तुम सभी लोग अब पूर्ण विवेक एव विचारपूर्वक गान करो। मेरे घट मे मेरे भर्त्ता स्वय परमात्मा का आविर्भाव हो गया। सदगुरु के द्वार पर मेरी विवाह-विधि पूरी हुई जिसे वही जान सकता है जो कभी उसका अनुभव कर चुका है। शब्द तो तीनो लोको मे व्याप्त है, किन्तु उसमे मन तभी लीन होता है, जब कोई उस तक पहुँच भी पाता हो। नानक का कहना है कि वही एक मात्र पुरुप हम सभी लोगो का प्रियतम है और वह जिस पर अपनी कृपादृष्टि डालता है, वही उसकी सोहागिन कहला सकता है।

सतो के उक्त मिलन-वर्णनो मे जीवात्मा एव परमात्मा के क्रमश पत्नी एव पति के सम्बन्ध का उल्लेख पाकर यह समझ लिया जाता है कि वे इसे किसी शारीरिक या भौतिक रूप मे भी स्वीकार कर रहे है। इस प्रकार इसमे कोई वैसी विशेपता नही है। परन्तु सतो की ऐसी पक्तियो पर ध्यानपूर्वक कुछ विचार कर लेने के अनतर यह भ्रम दूर हो जाता है और इस प्रकार के प्रतीको का वास्तविक आशय भी प्रकट हो जाता है। उदाहरण के लिए, सत कबीर साहब के उपर्युक्त अवतरण मे उनके तथा उस 'एक अविनाशी' के विवाह-सम्बन्ध का विवरण दिया गया है, उसमे बराती लोगो की चर्चा है, भॉवरे लेने का उल्लेख है। कौतुकियो का प्रसग आया है। वेदोच्चार के रूप मे कदाचित् मत्रोच्चार एव शाखोच्चार तक आ जाता है, किन्तु ये सभी बाते उस घटरूपी घर के भीतर ही सम्पन्न होती है जिसका नाभिकमल उसके लिए प्रधान वेदी का काम देता है। गुरु नानक देव का उक्त वर्णन तो इससे भी अधिक स्पप्ट जान पडता है। यहाँ पर भी 'घटि' का अर्थ अपने शरीर मे है, 'गुरु दुआरैं' का 'सदगुरु' के द्वारा होगा और 'तिहुँलोक महि सबदु रमिआ' का अभिप्राय 'सब कही बाजे-गाजे की धूम सी मच गई' न मान कर 'आपु गइआ मनु मानिआ' के सहारे 'स्वानुभूति' के अवसर पर विश्वव्यापी अनाहत नाद

१ 'आदिग्रन्थ' ('गुरु ग्रन्थ साहिब जी', खालसा प्रेस अमृतसर), पृ० ३५५।

के अपने घट मे श्रवण[1] करने का ही समझा जाना चाहिए। सतो ने पति-पत्नी भाव को इस प्रकार, शुद्ध प्रतीक के रूप मे ही अपनाया है। सम्भवत उसी बात को कुछ अधिक गभीर एव रहस्यमय बना दिया है जो उपनिषदो मे कभी, केवल एक दृष्टात के रूप मे, ब्रह्मानुभूति की तीव्रता स्पष्ट करने के लिए ही प्रयुक्त हुई थी।

इसके सिवाय, सतो की निर्गुणोपासना सदा प्रेमाभक्ति के साथ चला करती है जिसमे माधुर्य भाव को प्रधानता दी जाती है। पति-पत्नी का भाव वास्तव मे, प्रेम की पराकाष्ठा का सूचक है। यही वह दशा है जिसमे उसके विशुद्ध, नि'सीम एव निरुपाधि रूप की उपलब्धि होती है जिसका अतिम परिणाम स्वात्मार्पण द्वारा अभेद भाव की अनुभूति है। प्रेम तथा मोक्ष का स्वाभाविक सम्बन्ध है, क्योकि दृढानुराग के बिना भक्ति सम्भव नही, भक्ति का अत आत्मार्पण मे हो जाया करता है। आत्मनिवेदन ही क्रमश उस अभेदभाव मे भी परिणत होता है जिसकी अनुभूति को सतो ने जीवन्मुक्त की दशा माना है। वैष्णव भक्तो ने प्रेमाभक्ति के लिए पति-पत्नी भाव को स्वकीया से कही अधिक परकीया प्रेम के रूप मे अपनाने की चेष्टा की है। इसी कारण श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी से कही अधिक उनकी प्रेमिका राधा को महत्व प्राप्त है तथा 'गोपीभाव' को उनके यहाँ सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करने की भी परपरा है। परन्तु सतो के यहाँ परकीया भाव को अपनाना उतना आवश्यक नही समझा गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि परकीया नायिका अपने प्रियतम की ओर आकृष्ट होकर उसके प्रति आत्मीयता का भाव स्थापित करना तथा उसका सान्निध्य प्राप्त करना चाहती है। वहाँ ये बाते जीवात्मा एव परमात्मा की मौलिक अभिन्नता के कारण सन्तो के लिए स्वयसिद्ध सत्य के रूप मे पहले से ही स्वीकृत रहा करती है। ऐसी दशा मे, वैसे किसी सम्बन्ध की स्थापना की आवश्यकता ही नही रहा करती। पति-पत्नी भाव का उपयोग वे इसी कारण, स्वानुभूति की तीव्रता के लिए ही किया करते है जो उनके मतव्यानुसार किसी सती-साध्वी स्त्री को अपने पति के प्रति प्रदर्शित की गई एकातनिष्ठा एव आत्म-त्याग के द्वारा स्वकीया रूप मे भी समुचित प्रकार से सिद्ध हो पाता है।

उपर्युक्त दाम्पत्य-भाव अथवा गोपीभाव को बहुधा 'मधुररस' की सज्ञा दी जाती है। उसका निष्पन्न होना शृगाररस के विभाव, अनुभावादि के ही समकक्ष अगो पर निर्भर समझ लिया जाता है। परन्तु इन दोनो मे स्वभावत महान अतर भी लक्षित होता है। शृगार रस की अनुभूति किसी लौकिक वा सासारिक वातावरण मे की जाती है, जहाँ मधुररस का सम्बन्ध किसी अलौकिक वा इन्द्रियातीत जगत् के साथ रहता है। मधुररस मे, इसी कारण, कामवासना का होना सम्भव नही समझा जाता, जहाँ शृंगार-रस की भावना तक उसमे ओतप्रोत रहा करती है। शृगाररस द्वारा व्यक्त किये गए प्रेम मे आतुरता हो सकती है और वह विवशता की परिस्थितियो मे कातरता से आर्द्र भी बन जा सकती है, किन्तु मधुररस मे जिस 'आर्ति' वा गूढ प्रेम का स्फुरण होता है, वह उससे कही भिन्न स्तर की अनुभूति है। वैष्णव भक्तो ने दाम्पत्य-भाव को राधा अथवा गोपियो के सम्बन्ध मे उदाहृत कर उसे व्यावहारिक जगत् के बहुत निकट ला दिया है जिस कारण हमे उसके वास्तविक शुद्ध रूप का बहुधा परिचय नही मिल पाता। श्रीकृष्ण का अनुपम सौंदर्य, उनकी प्रेमिकाओ का परकीयापन, उनके आमोद-प्रमोद एव हास-विलास की विविध चेष्टाये तथा उनके विरहजन्य विलापादि जैसी बाते उक्त भाव पर एक रंगीन आवरण-सा डाल देती है जो उसके मौलिक तथ्य को ढँक लेता है। फलत गूढ माधुर्य की

---

१ श्रवन बिना धुनि सुनय, नैन बिन रूप निहारय।

अनुभूति के बदले हमे अधिकतर बाह्य 'शृगार' का परिचय मिलने लगता है और सर्वसाधारण के विषयासक्त मन का उधर लुभा कर बहक जाना स्वाभाविक-सा हो जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे भक्ति-काल के अनतर शृगाररस-प्रधान रीतिकाल का आना भी मुख्यत इसी कारण सभव हुआ था।

साहित्यशास्त्र के अनुसार केवल नव ही रस माने जाते है जिनमे मधुररस नाम का कोई भी नही है। इस रस की चर्चा बहुधा भक्ति-काव्य के मर्मज्ञ लोग करते है। वे ही इसे बहुत बडा महत्व भी दिया करते है। उन्होने 'भक्तिरस' नाम का भी एक पृथक् रस माना है जिसमे किसी 'देव' विषयक रति को उसका स्थायीभाव स्वीकार किया गया है। इस प्रकार मधुररस मे वह वस्तुत भिन्न नही समझा जा सकता। फिर भी 'भक्ति' शब्द के अर्थ मे, अपने से बडे के प्रति प्रदर्शित एक प्रकार की श्रद्धा का भाव भी मिला रहता है जो मधुररस के लिए उतना आवश्यक नही है। मधुररस को शुद्ध शातरस के रूप मे स्वीकार करना भी उचित नही जान पडता, क्योकि शातरस का स्थायीभाव 'निर्वेद' समझा जाता है जो कोरे वैराग्य तथा उदासीनता का द्योतक होने के कारण उसके लिए वैसा उपयुक्त नही कहा जा सकता। हाँ, शातरस के स्थायीभाव के लिए यदि 'शम' या 'शाति' शब्द का प्रयोग किया जा सके तो हम उसे मधुररस के प्रतिकूल नही ठहरा सकेंगे। मधुररस के अतर्गत रतिभाव के सुख और आह्लाद की मात्रा आनन्द के स्तर तक पहुँच जाती है जो आत्मतृप्ति-जनित सन्तोष एवं पूर्ण शाति की दशा मे ही सभव है। 'रस' को हमारे वैदिक साहित्य मे 'रसो वै स' तथा 'रस ह्येवाय लब्ध्वा आनन्दी भवति' कहकर पूरा महत्व दिया गया था और ब्रह्मानन्द अथवा आत्मानन्द को सर्वोत्कृष्ट भाव ठहराया गया था। किन्तु प्राचीन साहित्यज्ञो ने अपने यहाँ उसे कोई स्थान देना उचित नही समझा। उन्होने केवल आठ रसो की ही कल्पना की और शातरस नाम का नवाँ रस अपने निर्वेद स्थायीभाव के साथ कहो पीछे चलकर ही अपनाया गया।

रस

'सतकाव्य' के अन्तर्गत प्रबधमयी रचनाओ की कमी है जिस कारण उसमे किसी रस की पूर्ण निष्पत्ति के उदाहरणो का अधिक सख्या मे पाया जाना सभव नही है। किन्तु सतो की फुटकर बानियो मे भी हमे ऐसे अनेक स्थल मिलेंगे जिनमे किसी-न-किसी रस की अभिव्यक्ति का पता लगाया जा सकता है। सतकाव्य स्वभावत शातरस-प्रधान है। उसके अनतर शृगाररस का नाम आता है जो अधिकतर मधुररस के रूप मे ही दीख पडता है। अन्य रसो मे से वीर, वीभत्स एव अद्भुत के भी उदाहरण अच्छी सख्या मे मिलते है। करुण, हास्य तथा रौद्र और भयानक का प्राय अभाव-सा है। रसो के लिए उदाहरण इस प्रकार दिये जा सकते है—

शातरस

(१) रे यामै क्या मेरा क्या तेरा,
लाजन मरहि कहत घर मेरा ॥टेक॥
चारि पहर निसि भोरा, जैसे तरवर पखि बसेरा।
जैसे बनियें हाट पसारा, सब जग सो सिरजनहारा॥

ये ले जारे वे ले गाड़े, इनि दुखिइनि दोऊ घर छाड़े ।।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह विनसि रहैगा सोई ।। १०३ ।।[1]

(२) कहा करौं कैसे तिरौं, भौजल अति भारी ।
तुम्ह सरणागति केसवा, राखि राखि मुरारी ।। टेक ।।
घर तजि बनखंडि जाइये, खनि खइये कंदा ।
विषै विकार न छूटई, ऐसा मन गंदा ।।
विष विषिया की वासना, तजौ तजी न जाई ।
अनेक जतन करि सुरझिहौं, फुनि-फुनि उरझाई ।।
जीव अछित जोवन गया, कछू कीया न नीका ।
यहु हीरा निरमोलि का, कौडी पर बीका ।
कहैं कबीर सुनि केसवा, तू सकल वियापी ।
तुम्ह समानि दाता नहीं, हमसे नांहि पापी ।। १७८ ।।[2]

(३) मेरी देह मेरौ गेह मेरौ परिवार सब,
मेरौ धन माल मै तौ बहुविधि भारौ हौं ।
मेरौ सब सेवक हुकम कोउ मेटै नांहि,
मेरी जुवती कौ मै तो अधिक पियारौ हौं ।।
मेरौ वंश ऊंचौ मेरे बाप दादा ऐसे भये,
करत बडाई मै तो जगत उज्यारौ हौं ।।
सुन्दर कहत मेरौ मेरौ करि जानै सठ,
ऐसो नहि जानै मै तौ काल ही कौ चारौ हौं ।। १५ ।।[3]

(४) तू ठगिकै धन और कौ ल्यावत, तेरेउ तौ घर औरइ फोरै ।
आगि लगै सब ही जरि जाइ सु, तूं दमरी दमरी करि जोरै ।।
हाकिम कौ डर नाहिंन सूझत, सुन्दर एकहि बार निचोरै ।
तू षरचै नांहि आपुन षाइ सु तेरी हि चातुरि तोहि लै बोरै ।। २५ ।।[4]

(५) कै यह देह धरौ वन पर्वत, कै यह देह नदी मै बहौ जू ।
कै यह देह धरौ धरती मांहि, कै यह देह कृशान दहौ जू ।।
कै यह देह निरादर निंदहु, कै यह देह सराहि कहौ जू ।
सुन्दर संशय दूरि भयौ सब, कै यह देह चलौ कि रहौ जू ।। ३ ।।[5]

(६) ज्ञान को बान लगो धरती, जन सोवत चौंकि अचानक जागे ।
छूटि गयो विषया विष बंधन, पूरन प्रेम सुधारस पागे ।

---

१ 'कबीर ग्रंथावली' (का० ना० प्र० सभा), पृ० १२१ ।

२ वही, १४८ ।

३ सुन्दर ग्रंथावली, पृ० ४१३ ।

४ सुन्दर ग्रंथावली, पृ० ४०३ ।

५ 'सुन्दर ग्रंथावली' पृ० ६४३ ।

भावत वाद विवाद निखाद न, स्वाद जहां लगि सो सब त्यागे।
मूंदि गईं अखियां तवतें, जबतें हिय मे कछु हेरन लागे ॥ ९ ॥[1]

(७) अजब तमासा देखा तेरा। ताते उदास भया मन मेरा ॥ १ ॥
उतपति परलय नित उठ होइ। जग में अमर न देखा कोई ॥ २ ॥
माटी के पुतरे माया लाई। कोई कहे बहिन कोई कहै भाई ॥ ३ ॥
झूठा नाता लोग लगावैं। मन मेरे परतीत न आवै ॥ ४ ॥
जबही भेजे तबहि बुलावैं। हुकुम भया कोई रहन न पावै ॥ ५ ॥
उलटत पलटत जग की अंचली। जैसे फेरे पान तमोली ॥ ६ ॥
कहत मलूक रह्यो मोहि घेरे। अब माया के जाउं न नेरे ॥ ७ ॥[2]

(८) बनिया समुझ के लाद लदनियाँ ॥ टेक ॥
यह सब मीत काम न आवै, सग न जाइ परधनिया ॥ १ ॥
पांच मने की पूंजी राखत, होइगे गर्व गुमनियाँ ॥ २ ॥
करिले भजन साध की सेवा, नामे से लाव लगनियां ॥ ३ ॥
सौदा चाहै तो याही करिले, आगे न हाट दुकनिया ॥ ४ ॥
पलटुदास गोहराय कहत है, आगे देस निरपनियाँ ॥ ५ ॥ ६९ ॥[3]

(९) टोप टोप रस आनि मक्खी मधु लाइया।
इक लै गया निकारि सबै दुख पाइया ॥
मोको भा वैराग्य ओहिको निरखि कै।
अरे हाँ, पलटू माया बुरी बलाय तजा मै परखि कै ॥ ४८ ॥[4]

इन अवतरणो मे से १, ३ एव ७ मे प्रदर्शित सासारिक सम्बन्ध की अनस्थिरता एव नश्वरता द्वारा निर्वेद का, ४, ५ एव ९ के अपरिग्रह एव अनासक्ति द्वारा वैराग्य का, ६ तथा ८ के ज्ञानोदय एव चेतावनी द्वारा आत्मज्ञान का तथा २ के आत्मनिवेदन द्वारा जो शम का भाव व्यक्त किया गया दीख पडता है, उसके कारण इनमे शातरस की अनुभूति अच्छी मात्रा मे मिल जाती है।

## शृगार (मधुर) रस

### संयोग

(१) अब तोहि जान न दैहू राम पियारे,
ज्यूं भावै त्यूं होइ हमारे ॥ टेक ॥
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये ॥
चरननि लागि करौं बरियाई, प्रेम प्रीति राखौ उरझाई ॥
इत मनमंदिर रहो नित चौषै, कहै कबीर परहु मति धोषै ॥ ३ ॥[5]

---

१ 'धरनीदास की वानी', पृ० ३३।
२ 'मलूकदास की वानी', पृ० १२-१३।
३ 'पलटू साहिव की वानी', भाग ३, पृ० ३८।
४ 'पलटू साहिव की वानी', भाग २, पृ० ८५।
५ 'कबीर ग्रथावली', पृ० ८७।

(२) राम रंगीलै कै रंगराती ।
परमपुरुष संग प्राण हमारौ, मगन गलित मद माती ।। टेक ।।
लाग्यो नेह नाम निर्मल सो, गिनत न सीली ताती ।
डगमग नहीं अडिग उर बैठी, फिर धरि करवत काती ।।
सब विधि सुखी राम ज्यूं राखै यहु रस रीति सुहाती ।
जन रज्जब धन ध्यान तुम्हारो, बेर-बेर बलि जाती ।। २ ।।[१]

(३) बहुत दिनन पिय बसल बिदेसा ।
आजु सुनल निज अवन संदेसा ।। १ ।।
चित चितसरिया मैं लिहलो लिखाई ।
हृदय कमल धइलो दियना लेसाई ।। २ ।।
प्रेम पलंग तह धइलो बिछाई ।
नख सिख सहज सिंगार बनाई ।। ३ ।।
मन हित अगुमन दिहल चलाई ।
नयन ध इल दोउ दुअरा बैसाई ।। ४ ।।
धरनी धनि पल पल अकुलाई ।
बिनु पिया जिवन अकारथ जाई ।। ५ ।।[२]

## वियोग

(१) कब देखूं मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही ।।टेक।।
हूं तेरा पंथ निहारूं स्वामी, कबर मिलहुगे अंतरजामी ।
जैसे जल बिन मीन तलपै, ऐसैं हरि बिन मेरा जियरा कलपै ।
निस दिन हरि बिन नींद न आवै, दरस पियासी क्यू सचुपावै ।
कहै कबीर अब बिलंब न कीजै, अपनौ जानि मोहिं दरसन
दीजै ।। २२४ ।।[३]

(२) अजहू न निकसै प्राण कठोर ।
दर्सन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर ।। टेक ।।
चारि पहर चारयौ जुग बीते, रैंनि गवाई भोर ।
अवधि गई अजहू नहिं आये, कतहू रहे चितचोर ।। १ ।।
कबहू नैन निरषि नहिं देषे, मारग चितवत तोर ।
दादू अैसैं आतुर विरहिणि, जैसैं चंद चकोर ।। २ ।।[४]

(३) आव हमारे आंगणे, गृह त्रिभुवन राई ।
तुम बिन मैं बिलखी फिरू, अब रह्यौ न जाई ।। टेक ।।
कुल करणी सगली तजी, हरि आनन्द माही ।
तन तजबे की बेर है, मिलिये क्यू नाही ।। १ ।।

---

१ 'रज्जबजी की बानी', पद १४, पृ० ४२५ ।
२ 'धरनीदासजी की बानी', पद २, पृ० १ ।
३ 'कबीर ग्रंथावली', पृ० १६४ ।
४ 'दादूदयाल की बानी', पद ६, पृ० ३५६ ।

आरति ऊणा रति घणी, मेरा मन माही।
दरस परस की बेर है पति छाडौ नाही ॥ २ ॥
सति पिछाणे साचकू, मना न आने हीन।
मन आत्मा एकै मतै, तुम सू ल्यौलीन ॥ ३ ॥
जन हरिदास हरिसू कहै, तुम विन तन छीजं।
प्रेम पियाला प्याय के, अपणा करि लीजं ॥ ४ ॥[१]

(४) प्रेम वान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर ॥ टेक ॥
जोगिया कै लालि लालि अखिया हो, जस कवल के फूल।
हमरी सुरुख चुनरिया हो दूनो भये तूल ॥ १ ॥
जोगिया कै लेउ मिर्गछलवा हो, आपन पट चीर।
दूनौं कै सियब गुदरिया हो, होइ जाव फकीर ॥ २ ॥
गगना मे सिगिया वजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरि ओर।
चितवन मे मन हरि लियो हो, जोगिया बड चोर ॥ ३ ॥
गग जमुन के विचवा हो, बहै झिरहिर नीर।
तेहि ठैया जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर ॥ ४ ॥
जोगिया अमर मरै नहि हो, पुजवल मोरी आस।
करम लिखा वर पावल हो, गा ैं पलटूदास ॥ ५ ॥[२]

इन अवतरणो मे मे सभोग वा सयोग शृ गारसूचक जो पद है, उनमे नायिका के मिलनजनित सतोष एव उल्लास के भाव भरे है। उनमे से तीसरे मे किसी आगमिष्यत्पतिका वासकसज्जा का भी उदाहरण दीख पडता है। इसी प्रकार विप्रलभ वा वियोगसूचक शेष चारो पदो मे से जहाँ-जहाँ दूसरे मे विरह-व्यथा का वर्णन है, वहाँ १ तथा ३ मे उसी के सम्बन्ध मे आत्म-निवेदन है। उनमे से चौथे, अर्थात् अंतिम पद के रचयिता ने विरहिणी की मधुर स्मृतियो का वर्णन देकर अत मे अपने मिलन की भी सूचना दे दी है।

सतो की रचनाओं म जहाँ वीररस का भाव दीख पडता है, वहाँ उनकी विशेषता के अनुसार युद्ध का रूपक या तो अपने मन एव इद्रियो के दमनार्थ उनके विरुद्ध सग्राम छेडने के सम्बन्ध मे लक्षित होता है अथवा भीतरी योग-साधना-विषयक प्रयासो के प्रसग मे। कबीर साहब ने अनेक स्थानो पर जो 'करि इद्रयासू झूझ', 'काम क्रोधसू झूझणा' एव 'सुमिरण सेलसबाहि' आदि सकेतो के प्रयोग किये है, वे इसी कारण आध्यात्मिक जीवन के उद्वेग से किये गए विविध प्रयत्नो को ही सूचित करते है। जैसे—

वीररस

(१) गगन दमामा वाजिया पडचा निसानै घाव।
खेत बुहारचा सूरिवै, मुझ मरणे का चाव ॥ ६ ॥[३]

---

१ हरिपुरुष जी की वानी, पद १, पृ० २०४।
२ 'पलटू साहिव की वानी', भाग ३, पद ४२ पृ० २२-२३।
३ 'कबीर ग्रथावली', सा० ६, पृ० ६८।

उचित रूप में स्फुरित हुआ करती है), पुत्र का जन्म हो चुकने पर माता का आविर्भाव हुआ (अर्थात् जीव का शुद्ध रूप माया द्वारा परिच्छन्न होने के पूर्व विद्यमान था), चेला के पैरों पर गुरु माथा टेक रहा है (अर्थात् निर्मल हो गए हुए चित्त के प्रति शब्द स्वय आकृष्ट हो जाता है अथवा मन स्वय वशीभूत हो जाता है), जल मे रहने वाली मछली ने वृक्ष पर जाकर अडे दिये (अर्थात् मूलाधार के निकट वर्तमान कुडलिनी मेरुदड के ऊपर जाकर फलप्रद सिद्ध हुई), बिल्ली को पकडकर मुर्गे ने खा लिया (अर्थात् ज्ञानोपलब्धि के हो जाने पर मन दुर्नीति को नष्ट कर देता है या सर्वथा त्याग देता है), बैल को बाहर छोडकर गून स्वयं घर पर लौटा आई (अर्थात् स्वरूप की सिद्धि हो जाने के पहले से ही शरीर के प्रति उपेक्षा का भाव आ गया), कुत्ते को बिल्ली ले भागी (अर्थात् अज्ञानी पुरुष को माया ने बहका लिया), शाखा नीचे की ओर हो गई और जड ऊपर चली गई (अर्थात् प्राणो के ऊपर की ओर चढाये जाते ही इन्द्रियाँ वश मे आ गई अथवा सृष्टि का मूल ऊपर की ओर है और उसका विस्तार नीचे की ओर है) तथा उनमे अनेक प्रकार के फल-फूल भी लग गए (अर्थात् सुषुम्ना के अन्तर्गत पट्चक्रो का अस्तित्व है)। कबीर का कहना है कि जो कोई इस पद के रहस्य को जान लेता है, उसे त्रिभुवन की सारी बातें स्पष्ट हो जाती है।

## अलकार

सतो की रचनाओ मे जिस प्रकार विभिन्न साहित्यिक रसो का स्वाद मिल जाता है, उसी प्रकार उनमें अनेक अलकारो की भी छटा दीख पडती है। सतो को अपने गूढ विषयों का परिचय देते समय प्रतीको का सहारा लेना आवश्यक था। उन्हे इस बात की भी आवश्यकता थी कि जिन व्यक्तियो को समझने के लिए वे अपने पद्य लिखा या कहा करते थे, वे उनके भावो को भलीभाँति हृदयगम कर सके। इस कारण वे अपने उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त करते थे जिसमे स्पष्टीकरण के साथ-साथ रोचकता का भी समावेश हो जाया करता था। तदनुसार अलकारो के प्रयोग उनके पद्यो मे बहुधा आपसे आप हो जाया करते थे। फिर कुछ सतो की रचनाओ मे ऐसी शैली का व्यवहार जानबूझ कर किया गया भी दीख पडता है और कही-कही वह बनावटी तक-सा हो गया। ऊँची कोटि के सतो मे उपर्युक्त प्रवृत्ति का पाया जाना स्वाभाविक हो सकता है और भलीभाँति पढे-लिखे सतो ने ऐसे प्रयोग समझ-बूझ कर भी किये होगे। किन्तु साधारण कोटि के व्यक्तियों ने जहाँ आदर्श सतो का अनुकरण इन बातो मे भी करना चाहा है, वहाँ वे लोग उतने सफल नही हो सके है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे जिसे रीतिकाल (स० १७००-१६००) कहते है, उस समय पद्यो की रचना-शैली अधिक अलकृत हो चली थी। उस युग मे भक्ति एव वीरता जैसे विषयो पर लिखी जाने वाली कविताओ में भी अलकारो के प्रयोग प्राय अनिवार्य हो गए थे। अतएव उस काल के सतो ने वैसी रचना-शैली का व्यवहार उस प्रचलन के अनुसार भी किया। उनमे से जो पडित एवं साहित्य-मर्मज्ञ थे, उन्होने काव्यकला प्रदर्शित करने के उद्देश्य से चित्रकाव्यो तक की रचनाएँ कर डाली।

फिर भी सत-काव्य के अन्तर्गत अधिकतर केवल उन्ही अलकारो के प्रयोग दीख पड़ते है जो अर्थालकारो मे गिने जाते है। वे सतो की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति मे स्वभावत सहायक होने के योग्य है। संतो का प्रमुख वर्ण्य-विषय 'सत्' नाम की वह वस्तु है जो 'इन्द्रियगम्य' न होने के कारण सर्वथा अनिर्वचनीय-सी कही जा सकती है। उस वस्तु की वे प्रत्यक्ष अनुभूति कर चुकने का दावा करते है। वे यहाँ तक कह डालते है कि

जो कोई भी चाहे वह स्वय अपने प्रयत्नों द्वारा उस दशा तक पहुँच सकता है। इस कारण अपने अत्यत गूढ विषय का परिचय वे अधिक-से-अधिक सरलता के साथ देने के प्रयत्न करते है और अपनी साधनाओ एव अनुभूतियो के स्पष्ट-से-स्पष्ट विवरण प्रस्तुत कर दूसरो से भी उनसे लाभ उठाने का अनुरोध करते है। इसके लिए वे एक अमूर्त वस्तु को भी स्वभावत मूर्त रूप प्रदान कर देते है, अन्तर्निहित साधनाओं को प्रत्यक्ष बना देने के लिए प्रतीको के प्रयोग करते है और अपनी निजी अनुभूति की अस्फुट अभिव्यक्ति को बोधगम्य कराने की चेष्टा मे दृष्टातो का सहारा लेने लगते हैं। उन्होंने रूपको के प्रयोग कदाचित् सबसे अधिक किये है और जहाँ उन्हे भी असमर्थ पाया है, वहाँ विभावना से काम लिया है। उदाहरणो के प्रयोग उन्होने भलीभाँति समझाने के लिए किये है। 'यमक' एव 'अनुप्रास' को अपने आनन्दातिरेक मे आकर स्थान दे दिया है। फिर भी सतो की रचनाओ मे अन्य कई अलकारो का भी समावेश हो गया है, जैसा कि नीचे के कुछ अवतरणो द्वारा विदित हो जायगा।

## (क) अर्थालंकार

रूपक

(१) सतौ भाई आई ग्यांन की आधी।
 भ्रम की टाटी सबै उडाणी, माया रहै न बाधी॥ टेक॥
 हित चित की द्वै थूनी गिरानी, मोह वलींडा टूटा।
 त्रिस्ना छानि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भाडा फूटा॥
 जोग जुगति करि सतौ बाधी, निरचू चुवै न पाणी।
 कूड कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाणी॥
 आँधी पीछै जो जल बूठा, प्रेम हरी जन भीना।
 कहै कबीर भान के प्रगटै, उदित भया तम पीना॥ १६॥[1]

(२) अबकी लगी खेप हमारी।
 लेखा दिया साह अपने को, सहजै चीठी फारी॥ १॥
 सौदा करत बहुत जुग बीते, दिन दिन टूटी आई।
 अबकी बार बेबाक भये हम, जम की तलब छोडाई॥ २॥
 चार पदारथ नफा भया मोहि, बनिजै कबहुँ न जइहौं।
 अब डहकाय बलाय हमारी, घरही बैठे खइहौं॥ ३॥
 वस्तु अमोलक गुप्तै पाई, ताती वायु न लाओ।
 हरि हीरा मेरा ज्ञान जौहरी, ताही सो परखाओ॥ ४॥
 देव पितर औ राजा रानी, काहू से दीन न भाखौं।
 कह मलूक मेरे रामै पूजी, जीव बराबर राखौं॥ ५॥[2]

(३) घटा गुरू आसोज की, स्वाति बूद सत बैन।
 सीप सुरति सरधा सहित, तहँ मुक्ता मन ऐन॥ १३५॥[3]

---

१ 'कबीर ग्रथावली', पद १६, पृ० ९३।
२ 'मलूकदास की बानी', पद ५, पृ० ८।
३ 'रज्जबजी की बानी', सा० १३५, पृ० ११।

(४) विरह केतकी पैठि करि, मन मधुकर ह्वै नाश ।
रज्जब भुगतै कुसुम वहु, मरै न तिनकी बास ।। ४३ ।।[१]

(५) घट दीपक बाती पवन, ज्ञान जोति सु उजास ।
रज्जब सीचै तेल लै, प्रभुता पुष्टि प्रकाश ।। ७६ ।।[२]

(६) मन हस्ती मैला भया, आप वाहि सिर धूरि ।
रज्जब रज क्यूं ऊतरे, हरिसागर जल दूरि ।। १ ।।[३]

(७) तूमा तन मन रूप है, चेतनि आव भराय ।
पीवत कोई सत जन, अमृत आपु छिपाय ।। ७ ।।[४]

(८) बखतर पहिरे प्रेम का, घोडा है गुरु ज्ञान ।
पलटू सुरति कमान लै, जीति चले मैदान ।। ४० ।।[५]

(९) झूठे सुखकौ सुख कहै, मानत है मन मोद ।
खलक चवीणा काल का, कुछ मुख मे कुछ गोद ।। १ ।।[६]

(१०) माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पडंत ।
कहै कबीर गुरु ग्यान थे, एक आध उबरत ।। २० ।।[७]

इन उद्धरणो मे से प्रथम ८ मे सागरूपक तथा शेप २ मे अभेदरूपक के उदाहरण स्पष्ट है। कुछ सतो ने कभी-कभी किसी कथा या घटना का सहारा लेकर भी रूपक के प्रयोग किये है, जैसे सत हरिदास निरजनी ने अपनी 'व्याहलो' नाम की रचना मे कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के परिणीत किये जाने की कथा को साधक के 'रामराई' द्वारा अपना लिये जाने की घटना मे घटाया है।

## विभावना

(१) जाइ पूछौ गोविंद पढिया पडिता, तेरा कौन गुरू कौन चेला ।
अपणे रूपकौं आपहि जाणै, आपै रहै अकेला ।। टेक ।।
बांझ का पूत बाप बिन जाया, बिन पांऊ तरवर चढिया ।
अस बिन पाषर गज बिन गुडिया बिन षडै सग्राम जुडिया ।
बीज बिन अकूर पेड़ बिन तरवर, बिन साषा तरवर फलिया ।
रूप बिन नारी पहुप बिन परमल, बिन नीरै सरवर भरिया ।
देव बिन देहुरा पत्र बिन पूजा, बिन पाँषा भवर बिलबिया ।
सूरा होइ परम पद पावै, कीट पतग होइ सब जरिया ।।
दीपक बिन जोति जोति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद वागा ।
चेतना होइ सो चेति लीज्यौ, कबीर हरि के अगि लागा ।। १५८ ।।[८]

---

१-३ 'रज्जवजी की वानी', सा० ४३, पृ० ३३, सा० ७६, पृ० ४८ और सा० १, पृ० ३२७ ।
४ 'भीखा साहव की वानी', सा० ७, पृ० ६६ ।
५ 'पलटू साहव की वानी', सा० ४०, पृ० १०४ ।
६-७ 'कवीर ग्र थावली', सा० १, पृ० ७१ और सा० २०, पृ० ३ ।
८. 'कबीर ग्रन्थावली', पद १५८, पृ० १४० ।

(२) श्रवन बिना धुनि सुनय, नैन बिन रूप निहारय ।
रसना बिन उच्चरय, प्रशसा बहु विस्तारय ॥
नृत्य चरन बिनु करय, हस्त बिनु ताल बजावै ।
अग बिना मिलि सग, बहुत आनन्द बढावै ॥
बिन सीस नवै तहँ सेव्य कौ, सेवक नाव लिये रहै ।
मिलि परमातमसो आत्मा, पराभक्ति सुन्दर कहै ॥ ५० ॥[1]

(३) बिना नीर बिनु मालिही, बिनु सींचे रँग होय ।
बिनु नैनन तहँ दरसनो, अस अचरज इक सोय ॥ १ ॥[2]

(४) बिना सीस कर चाकरी, बिन खाडै सग्राम ।
बिन नैनन देखत रहै, निसु दिन आठो जाम ॥ ७ ॥[3]

(५) बिन जल कंवला बिगसेऊ, बिना भँवर गुजार ।
नाभि कँवल जोति बरै, तिरवेनी उँजियार ॥ ४ ॥[4]

इन अवतरणो मे प्राय सर्वत्र उपयुक्त कारणो के अभाव मे भी कार्यों के घटित होने की कल्पना की गई है जिस कारण विभावना है ।

अन्योक्ति

(१) काहेरी नलिनी तू कुमिलानी ।
तेरे ही नाल सरोवर पानी ॥ टेक ॥
जलमै उतपति जलमै बास, जलमै नलिनी तोर निवास ॥
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि ।
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हमारे जान ॥ १४ ॥[5]

(२) कबीर हरिणी दूबली इस हरियालै तालि ।
लक्ख अहेडी एक जिव, कित एक टालौ भालि ॥ ३८ ॥[6]

(३) मालन आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकार ।
फूले फूले चुणि लिए, काल्हि हमारी बार ॥ ११ ॥[7]

(४) दौंकी दाधी लाकडी, ठाढी करै पुकार ।
मति बसि परौ लुहार कै, जालै दूजी बार ॥ १० ॥[8]

(५) बाढी आवत देखि करि, तरवर डोलन लाग ।
हमैं कटै की कुछ नहीं पखेरू घर भाग ॥ १२ ॥[9]

(६) अहेड़ी दौं लाइया, मिरग पुकारै रोइ ।
जा बन में क्षीला, दाझत है बन सोइ ॥ ८ ॥[10]

---

१ 'सुन्दर ग्रन्थावली', छ० ५०, पृ० २८ ।
२ 'बुल्ला साहेब का शब्दसागर, सा० १, पृ० ३५ ।
३ 'केसोदास की 'अमीघूंट', सा० ७, पृ० २ ।
४ 'गुलाल साहब की बानी', सा० ४, पृ० १४१ ।
५ 'कबीर ग्रन्थावली', पद १४, पृ० १०८ ।
६-१० 'कबीर ग्रन्थावली', सा० ३८, पृ० ७५, सा० ११, पृ० ७२, सा० १०, पृ० ७३, सा० १२, पृ० १२, सा० ८, पृ० १२ ।

(७) बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ्या कलंक।
और पखेरू पी गए हंस न बोवैं चंच ॥ ३० ॥[१]

(८) नीर पिलावत क्या फिरै, सायर घर घर बारि।
जो त्रिषावत होइगा, सो पीवेगा झख मारि ॥ ७ ॥[२]

इन अवतरणो मे कबीर साहब ने बडे मार्मिक शब्दो के प्रयोग द्वारा मानव-जीवन की कई बातो को दूसरो के ऊपर ढालकर बतलाया है। कबीर साहब अन्योक्तियो के प्रयोग मे हिन्दी के श्रेष्ठ कवियो मे गिने जाते है।

उदाहरण

(१) ज्यो धोबी की धमस सहि, ऊजल होय सुचीर।
त्यों शिष तालिब निर्मले, मार सहे गुर पीर ॥ ९ ॥[३]

(२) दरपन में सब देखिए, गहिबे कू कछु नांहि।
त्यू रज्जब साधू जुदे, माया काया मांहि ॥ ४ ॥[४]

(३) रज्जब बूंद समद की, कित सरकै कह जाय।
साझा सकल समद सो, त्यू आतम राम समाय ॥ २६ ॥[५]

(४) जलचर जाणैं जलचरा, शशि देख्या जल मांहि।
तैसे रज्जब साधु गति, मूरख समुझै नांहि ॥ १९ ॥[६]

(५) जैसे छाया कूप की, फिरि घिरि निकसै नांहि।
जन रज्जब यू राखिये, मन मनसा हरि मांहि ॥ ९७ ॥[७]

(६) श्वान सबद सुणि श्वान का, बिन देखैं भुसि देय।
त्यूं रज्जब साखी सबद, वे देखि निरखि नांहि लेय ॥ ७६ ॥[८]

(७) ज्यूं सुन्दरि सर न्हावतां, अभरण धरै उतारि।
त्यूं रज्जब रमि राम जल, स्वांग सरीरहि डालि ॥ ३० ॥[९]

(८) अलल बसै आकास मे, नीचो सुरत निवास।
ऐसे साधू जगत मे, सुरत सिखर पिउ पास ॥ ३५ ॥[१०]

(९) सूरा सन्मुख समर मे, घायल होत निसक।
यो साधू ससार मे, जग के सहैं कलक ॥ ७ ॥[११]

---

१-२ 'कबीर ग्रन्थावली', सा० ३०, पृ० ३५, सा० ७, पृ० ३१।
३ 'रज्जबजी की बानी', सा० ९, पृ० २०।
४-९ 'रज्जबजी की बानी', सा० ४, पृ० ८१, सा० २६, पृ० १३८, सा० १९, पृ० १६८, सा० ९७, पृ० १८१, सा० ७६, पृ० २६६ और सा० ३०, पृ० २९४।
१० 'दरिया साहब (मारवाड) की बानी', सा० ३५, पृ० ४।
११ 'दयाबाई की बानी', सा० ७, पृ० ५।

संत रज्जबजी दृष्टातों एव उदाहरणो के प्रयोग मे बडे ही कुशल थे और कहा गया है कि उनके सामने ये सदा मानो हाथ जोडे खडे रहते थे।

अर्थान्तरन्यास

(१) नानक पारखे आप कउ, ता पारखु जाणु।
रोगु दारू दोवें बुझें; ता वैदु सुजाणु ॥[1]

(२) रंग होय तौ पीव कौ, आन पुरुष विष रूप।
छाह बुरी पर घरन की, अपनी भली जु धूप ॥ ४ ॥[2]

(३) साहब कूं तो भय घना, सहजो निर्भर रक।
कुंजर के पग बेडियाँ, चीटी फिरै निसक ॥ १३ ॥[3]

दृष्टात

(१) सत न छाडै सतई, जे कोटिक मिलै असत।
चंदन भुवगा बैठिया, सीतलता न तजत ॥ २ ॥[4]

(२) रज्जव जग जलता मिलै, साधु सीतल अग।
चदन विष व्यापै नही, जो कोटिक भिदै भुवग ॥ १२ ॥[5]

(३) पसरच्यू पग-पग मारहै, सिमटच्यू सों नहि होय।
जन रज्जब दृष्टात कू, मन कच्छप दिसि जोय ॥ १५ ॥[6]

(४) कुभे बधा जलु रहै, जल बिनु कुभ न होइ।
गिआन का बधा मनु रहै, गुर बिन गिआन न होइ ॥[7]

तुल्ययोगिता

(१) मनका सूतकु लोभु है, जिह्वा सूतकु कूड।
अखी सूतकु देखणा, परत्रिय परधन रूपु ॥[8]

(२) साधू सीप सरोज गति, सकति सलिल मे बास।
प्यड पुष्ट ह्वै और दिसि, प्राण और दिसि आस ॥ १५ ॥[9]

(३) थकित होत पाका सुमन, ज्यू कण हांडी माहि।
कॉचा कूदै ऊछलै, निहचल बैठे नाहि ॥ ६३ ॥[10]

---

१ 'आदिग्रन्थ', महला २ (गुरु अगद, सलोक)।
२ 'चरणदास की बानी', सा० ४, पृ० ४७।
३ 'सहजप्रकाश', सा० १३, पृ० ३७।
४ 'क० ग्र०, सा० २, पृ० ५१।
५ 'रज्जबजी की बानी', सा० १२, पृ० ७६।
६ 'रज्जबजी की बानी', सा० १५, पृ० २५१।
७-८ 'आदिग्रन्थ', महला १ (गुरु नानक सा०)।
९-१० 'रज्जबजी की बानी', सा० १५, पृ० ३१४ एवं सा० ६६, पृ० ३३१

एकावली

भूमि परै अप अपहू कै परै पावक है,
पावक कै परै पुनि वायुहू बहत है।
वायु परै व्योम व्योमहू कै परै इन्द्री दश,
इन्द्रिन कै परं अन्तःकरण रहतु है।
अन्तःकरण परै तीनों गुन अहंकार,
अहकार परै यह तत्व कौ कहतु है।
महत्व परैं मूल माया माया परै ब्रह्म,
ताहितें परात पर सुन्दर कहतु है ॥ ५६ ॥[1]

इस अवतरण मे यदि क्रमोत्कर्ष का भाव भी व्यजित समझा जाय जाय तो यह 'सार' अलंकार का उदाहरण कहा जा सकता है।

काव्यलिग

गोविन्द के किये जीव जात है रसातल कौ,
गुरु उपदेसे सुतौ छूटै जम फद तें।
गोविन्द के किये जीव बस परें कर्मनि कैं,
गुरु के निवाजे सो फिरत है स्वच्छन्द तें।
गोविन्द के किये जीव बूडत भौसागर में,
सुन्दर कहत गुरु काढ़े दुख द्वंद तें।
और ऊ कहाँ लौ कछू मुखतें कहौ बनाइ,
गुरु की महिमा अधिक है गोविन्द तें ॥ २२ ॥[2]

उपमा

(१) यहु ऐसा ससार है जैसा सैवल फूल।
दिन दस के व्यौहार कौं, झूठै रंगि न भूल ॥ १३ ॥[3]

(२) हाड़ जलै ज्यू लाकड़ी, केस जलै ज्यूं घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास ॥ १६ ॥[4]

(३) जिहि जेवड़ी जग बंधिया, तू जिनि बधै कबीर।
ह्वैसी आटा लूण ज्यू, सोना सवाँ सरीर ॥ ४८ ॥[5]

(४) इंद्रिन के सुख मानत है शठ, याहित तें बहुते दुख पावै।
ज्यौ जलमै झष मासहि लीलत, स्वाद बध्यो जल बाहरि आवै ॥

---

१ 'सुन्दर ग्रन्थावली', १६, पृ० ५६४।
२ 'सुन्दर ग्रथावली', २२, पृ० ३६२।
३-५ 'कबीर ग्रथावली', सा० १३, पृ० २१, सा० १६, पृ० २५ एव सा० ४८, पृ० २५।

ज्यौं कपि मूठिन छाड़त है, रसना बसि बंदि परयौ बिललावै।
सुन्दर क्यों पहिले न सभारत, जौ गुर षाइसु कांन बिंधावै ॥ १८ ॥[1]

(५) सत गुरु शब्दी लागिया, नावक का सा तीर।
कसकत है निकसत नही, होत प्रेम की पीर ॥ २० ॥[2]

अनन्योपमा

(१) एक कहूं तौ अनेक सौ दीसत,
एक अनेक नही कछु ऐसो।
आदि कहू तिहि अतहू आवत,
आदि न अत न मध्य सु कैसो ॥
गोपि कहू तौ अगोपि कहा यह,
गोपि अगोपि न ऊभौ न वैसौ।
जोइ कहूं सोइ है नहिं सुन्दर,
है तौ सही पर जैसो को तैसो ॥ ६ ॥[3]

(२) जस कथिये तस होत नहि, जस है तैसा सोइ।
कहत सुनत सुख ऊपजै, अरु परमारथ होइ ॥[4]

उत्प्रेक्षा

कामिनी कौ देह मानौ कहिबे सघन वन,
जहाँ कोऊ जाइ सुतौ भूलि कै परतु है।
कुंजर है गति कटि केहरि को भय जामैं,
बेनी कालो नागिनीऊ फनकौं धरतु है ॥
कुच है पहार जहाँ काम चोर रहै तहाँ,
साधिकै कटाक्ष बान प्रान कौ हरतु है।
सुन्दर कहत एक और डर अति तामै,
राक्षस बदन षाऊँ षाऊँ ही करतु है ॥ १ ॥[5]

यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा के ढग का है और वन की प्राय सारी बातो के आ जाने से साग भी कहा जा सकता है।

विरोधाभास

(१) आगं आगे दौं जलै पीछै हरिया होइ।
बलिहारी ता बिरष की, जड काटचा फल होइ ॥ २ ॥[6]

---

१ 'सुन्दर ग्र थावली', १८, पृ० ४०२।
२ 'चरणदास की बानी', सा० २०, पृ० ३।
३ 'सुन्दर ग्रन्थावली', ६, पृ० ६१७।
४ 'कबीर ग्रन्थावली', पृ० २३०।
५ 'सुन्दर ग्रन्थावली', १, पृ० ४३७।
६ 'कबीर ग्रन्थावली', सा० २, पृ० ८६।

(२) जे काटौं तौ डहडही, सींचौं तौ कुमिलाइ।
इस गुणवंती बेलि का, कुछ गुण कह्या न जाइ ॥ ३ ॥[1]

(३) त्रिष्णां सीची ना बुझै, दिन दिन बधती जाइ।
जवासा के रूष ज्यूं, छण मेहां कुमिलाइ ॥ १५ ॥[2]

(४) कुल खोयां कुल ऊबरै, कुल राख्यां कुल जाइ।
राम निकुल कुल भेटिलै, सब कुल रह्या समाइ ॥४५॥[3]

विचित्र

निद्रा महि सूतौ है जौलौ। जन्म मरण कौ अन्त न तौलौं।
जागि परें तें स्वप्न समाना। तब मिटि जाइ सकल अज्ञाना ॥ ३५ ॥[4]

विषम

(१) हंस श्वेत बक श्वेत देषिये समान दोऊ,
हंस मोती चुगैं बक मकरी कौं षात है।
पिक अरु काक दोऊ कैसे करि जाने जांहि,
पिक अब डार काक कंटक हि जात है ॥
सिंधौ अरु फटिक पषान सम देषियत,
वह तौ कठोर वह जल मैं समान है।
सुंदर कहत ज्ञानी बाहर भीतर शुद्ध,
ताकी पटतर और वातन की बात है ॥ ६ ॥[5]

(२) अमिल मिल्या सब ठौर है, अकल सकल सब मांहि।
रज्जब अज्जब अगहगति, काहू न्यारा नांहि ॥ ४ ॥[6]

व्यतिरेक

पलटू तीरथ को चला, बीचे मिलिगे संत।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गइ मुक्ति अनंत ॥ ६४ ॥[7]

कारणमाला

पहिले गुड सक्कर हुआ, चीनी मिसरी कीन्हि।
मिसरी से कन्दा भया, यही सोहागिनि चीन्हि ॥ १३ ॥[8]

क्रम

नदी वृच्छ अरु साध जन, तीनो एक सुभाव।
जल न्हावे फल वृक्ष दे, साध रखावैं नाव ॥ ७ ॥[9]

---

१-३ 'कबीर ग्रन्थावली', सा० ३, पृ० ८६, सा० १५, पृ० ३३, सा० ४५, पृ० २५।
४-५ 'सुन्दर ग्रन्थावली', ३५, पृ० १४, ६, पृ० ४६५-६।
६ 'रज्जबजी की बानी', ४, पृ० १२२।
७ 'पलटू साहब की बानी', ६४, पृ० १०६।
८ 'दरिया साहेब (बिहार) के पद एवं साखी', १३, पृ० ५२।
९. 'गरीबदासजी की बानी', ७, पृ० ७०।

परिणाम

परख बिना प्राणी दुखी, ज्यूं अंधा बिन नैन।
रज्जब धक्कै दसौं दिसि, पगि पगि नाहीं चैन ॥ ११ ॥[1]

भेदकातिशयोक्ति

(१) चंद चकोरहिं प्रीति है, देखै सब संसार।
वह सौदा औरै कछू, जहिं बलि गिलै अंगार ॥ ४३ ॥[2]

(२) नाडी चक्र न सास मन, ब्रह्मांड पिंड नहिं ठौर।
जन रज्जब जुगि जुगि रहैं, सो ठाहर कोइ और ॥ ४७ ॥[3]

लोकोक्ति

(१) कौन कुबुद्धि भई घट अंतर, तू अपनौ प्रभु सौं मन चोरै।
भूलि गयौ विषया सुख मै सठ, लालच लागि रह्यौ अति थोरै।
ज्यो कोउ कंचन छार मिलावत. लैकरि पाथर सौं नग फोरै।
सुन्दर या नरदेह अमोलिक, "तीर लगी नवका कत बोरै" ॥ १९ ॥[4]

(२) प्रीति की रीति नहीं कछु राषत, जाति न पाति नहीं कुल गारौ।
प्रेमकै नेम कहू नहिं दीसत, लाज न कानि लग्यौ सब षारौ ॥
लीन भयौ हरि सौ अभिअंतर, आठहूं जाम रहै मतवारौ।
सुंदर कोउ न जानि सकै यह, "गोकुल गाँव को पैंडोहि न्यारौ" ॥ १ ॥[5]

ऊपर के उपमा वाले उदाहरण (स० २) मे भी "जो गुर षाइसु कान बिंधावै" की लोकोक्ति दीख पडती है।

## (ख) शब्दालंकार

छेकानुप्रास

(१) अंतरगति अंनि अंनि वाणी।
गगन गुपत मधुकर मधु पीवत, सुगति सेस सिव जाणी ॥ टेक ॥
त्रिगुण त्रिविध तलपत तिमरातन, तंती तंत मिलानी।
भागे भरम भोइन भये भारी, विधि विरंच सुषि जाणी।
वरन पवन अवरन विधि पावक, अनल अमर मरै प्राणी।
रवि ससि सुभग रहै भरि सब घटि, सबद सुनिथिति मांही।
सकट सकति सकल सुख खोये, उदधि मथित सब हारे।
कहै कबीर अगम पुर पटण, प्रगटि पुरातन जारे ॥ १६४ ॥[6]

---

१-३ 'रज्जबजी की बानी', सा० ११, पृ० १६७, सा० ४३, पृ० १७ एव सा० ४७, पृ० १७३।

४-५ 'सुन्दर ग्रन्थावली', १९, पृ० ४०२ एव १, पृ० ६४३।

६. 'कबीर ग्रन्थावली', १६४, पृ० १४४।

(२) रज्जब लौ में लोभ है, लीन हुवा रहु मांहि ।
लौ में लत लागै नही, और खता मिटि जांहि ॥ ४ ॥[१]

(३) अडग सुरति आठौ पहर, अस्थिर संगि अडोल ।
सो रज्जब रहसी सदा, साखी साधू बोल ॥ ८ ॥[२]

(४) शून्य सजीवनि, उरि अमर, रसना रहते मांहि ।
जन रज्जब आँखूं अखिल, प्राणी मरैं सुनाहि ॥ ८ ॥[३]

(५) धरनी धरकत है हिया, करकत आहि करेज ।
ढरकत लोचन भरि भरी, पीव नाहिन सेज ॥ १२ ॥[४]

वृत्यनुप्रास

घींच तुचा कटि है लटकी, कचऊ पलटे अजहूं रत वांमी ।
दंत भया मुष के उषरे, नषरे न गये सुषरौं षर कामी ॥
कंपति देह सनेह सु दंपति, संपति जपति है निस जामी ॥
सुन्दर अंतहु भौन तज्यौ न भज्यौं भगवंत सुलौन हरामी ॥ १५ ॥[५]

अनुप्रास के उक्त उदाहरणो मे से छेकानुप्रास वालो मे अधिकतर एक वा अनेक वर्गों की आवृत्ति एक से अधिक वार हुई है। वहाँ वृत्यनुप्रास वाले उदाहरण मे 'पर', 'अपति' एव 'अज्यौ' की आवृत्ति, वृत्ति के अनुकूल होकर उसी प्रकार हुई है। इन आवृत्तियो मे माधुर्य गुणसूचक तथा छोटे-छोटे शब्दों को ही दुहराया गया है जिस कारण इनमे उपनागरिका एव कोमल वृत्तियाँ हो जाती हैं। .

यमक

(१) धार बह्यौ षग धार ह्यौ, जलधार सह्यौ गिरिधार गिरयौ है ।
भार संच्यौ धन भारथ हू करि, भाल रगौ सिर भार परयौ है ।
मार तप्यौ वहि मार गयौ जम मार दई मन तौन मरयौ है ।
सार तज्यौ षुट सार पढयौ, कहि सुन्दर कारिज कौन सरयौ है ॥ १२ ॥[६]

(२) बाहरि कहिये कौन सो, माहे मुशकिल काम ।
अतरि अंतर मेटिये, अंतरजामी राम ॥ ११ ॥[७]

इन अवतरणो मे से प्रथम के 'धार', 'भार', 'मार' एव 'सार' शब्दो तथा दूसरे के 'अतर' शब्द के अर्थ दुहराये जाने पर भिन्न-भिन्न हो गए है।

---

१-२ 'रज्जवजी की बानी', ४, पृ० ४३ एव सा० ८, पृ० ४३ ।
३ 'रज्जवजी की बानी', सा० ८, पृ० १६३ ।
४ 'धरनीदास की बानी', सा० १२, पृ० ५४ ।
५-६ 'सुन्दर ग्रन्थावली', १५, पृ० ४०० एव १२ पृ० ४६० ।
७ 'रज्जवजी की बानी', ११ पृ० ।

विप्सा

झिलमिल झिलमिल बरखै नूरा,
नूर जहूर सदा भरपूरा ॥ १ ॥
रुनझुन रुनझुन अनहद बाजै ।
भवन गुँजार गगन चढ़ि गाजै ॥ २ ॥
रिमझिम रिमझिम बरखै मोती;
भयो प्रकाश निरतर जोती ॥ ३ ॥
निरमल निरमल निरमल नामा,
कह यारी तहँ लियो बिस्रामा ॥ ४ ॥[1]

यहाँ पर सत यारी साहब ने 'झिलझिल', 'रुनझुन', 'रिमझिम' एव 'निरमल' शब्दो को स्वानुभूति के उल्लास मे एक से अधिक बार कहकर अपनी आन्दमयी दशा को व्यक्त किया है जिस कारण इसमे विप्सा अलकार का प्रयोग हो गया है।

सतो की रचनाओ मे अर्थालकारो एव शब्दालकारो के उदाहरण अच्छी सख्या मे मिलते हैं। वे प्राय सब कही उपयुक्त भी ठहरते हैं। उपर्युक्त अवतरण अधिकतर यो ही चुन लिये गए है। वे केवल बानगी के रूप मे है। अन्य उदाहरण तथा अन्य अलकार भी पाये जा सकते है। रीतिकाल के प्रभाव मे आकर कुछ संतो ने अपना काव्य-कौशल भी दिखलाना आरभ कर दिया था जिस कारण संत-काव्य के अतर्गत चित्रकाव्यो तक का समावेश हो गया। स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने अपनी सपादित 'सुन्दर ग्रन्थावली की भूमिका' मे सत सुन्दरदास द्वारा प्रयुक्त नागबध, ककणबध, हारबध, वृक्षबध, छत्रबध, चौकीबध, चौपडबध एव कमलबध के सचित्र उदाहरण दिये हैं और इनके लिए उनकी प्रशसा की है। सत सुन्दरदास की रचनाओ मे एकाध ऐसे पद्य भी मिलते है जिन्हे उनमे प्रयुक्त शब्दो के निर्मात्रिक वा मात्राहीन होने के कारण, बहुधा निर्मात्र अथवा 'अमात्र' की सज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार, कुछ वे पद्य भी पाये जाते हैं जिन्हे उनमे प्रयुक्त शब्दो के केवल दीर्घमात्रिक होने के कारण 'सर्वगुरु' कहा जाता है। इनमे से दोनो के उदाहरण इस प्रकार है—

निर्मात्रिक

जप तप करत धरत व्रत जत सत,
मन वच क्रम भ्रम कपट सहत तन।
बलकल बसन असन फल पत्र जल,
कसत रसन रस तजत बसत बन ॥
जरत मरत नर गरत परत सर,
कहत लहत हय गय दल बल धन।
पचत पचत भव भय न टरत सठ,
घट घट प्रगट रहत न लषत जन ॥ २ ॥[2]

---

१ यारी साहब की 'रत्नावली', ४, पृ० ३।
२ 'सुन्दर ग्रन्थावली', २, पृ० ४५५।

दीर्घमात्रिक

झूठे हाथी झूठे घोरा झूठे आगे झूठा दौरा,
झूठा बंध्या झूठा छोरा झूठा राजा रानी है।
झूठी काया झूठी माया झूठा झूठै धंधा लाया।
झूठा मूवा झूठा जाया झूठा याकी बानी है।
झूठा सोवै झूठा जागै झूठा झूझै झूठा भाजै,
झूठा पीछै झूठा लागै झूठै झूठी मानी है।
झूठा लीया झूठा दीया झूठा षाया झूठा पीया,
झूठा सौदा झूठै कीया ऐसा झूठा प्रानी है ॥ २५ ॥[1]

इनके अतिरिक्त संत सुन्दरदास ने कुछ ऐसे पद्यो की भी रचना की है जो अंतर्लापिका (अर्थात् जिनमे प्रश्न एवं उत्तर दोनो का एक ही मे समावेश हो), वहिर्लापिका (अर्थात् जिनमे प्रश्नो के उत्तर वाहर से लिये जाते हैं), लोमविलोम (अर्थात् जिनमे सीधे-सादे पढने से एक अर्थ और उलटे पढने से भिन्न अर्थ लक्षित होना है) और भाषासमक (अर्थात् जिनमे विविध प्रकार की भाषाओं का प्रयोग रहा करता है) की श्रेणी मे गिने जा सकते हैं। वे उक्त 'ग्रन्थावली' के क्रमश पृष्ठ ९९२-३, पृष्ठ ९९४, पृष्ठ ९९९ एव पृष्ठ १००४ पर दिये गए है। संत सुन्दरदास की कविताओं मे 'आद्यक्षरी' 'आदि-अंत अक्षरी' एवं 'मध्याक्षरी' के भी उदाहरण मिलते हैं। इनमे क्रमशः उनके चरणो के आद्यक्षरो, आदि एव अंत के अक्षरो तथा मध्य के अक्षरो के आधार पर कोई भिन्न पद्य वा वाक्य बड़ी सरलता के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। इनके उदाहरण ग्रथावली के पृष्ठ ९५३-६२ मे है।

उलटवांसी

सत-काव्य की एक विशेषता उसमे पायी जाने वाली विविध उलटवासियो की अधिकता मे दीख पड़ती है। ये उलटवासियाँ उन रचनाओं मे मिलती हैं जिनमे किसी बात को, प्रत्यक्ष रूप मे, विपरीत वा ऊटपटांग ढग से कहा गया रहता है, किन्तु यदि उनमें प्रयुक्त शब्दो के गूढ अर्थ भी समझ लिये जाये तो सारा रहस्य खुल जाता है और कवि का भाव पूर्णत स्पष्ट हो जाता है। ऐसी कथन-शैली मे बहुधा किसी अलकार का विधान नही ढूँढा जाता और बहुत-से साहित्य-मर्मज्ञ ऐसी रचनाओ को 'अधम काव्य' भी कह डालते है। वह इनके प्रसाद-गुणहीन होने के कारण वस्तुत यथार्थ भी माना जा सकता है। अलकारो के अतर्गत 'विभावना', 'विरोधाभास' और 'असंभव' इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इनमे क्रमश या तो कार्य-कारण के सबंध मे कोई न-कोई विलक्षण कल्पना दीख पड़ती है अथवा जाति, गुण, द्रव्य वा क्रिया मे कुछ-न-कुछ विरोधाभास मिलता है या किसी-न-किसी अनहोनी बात की चर्चा की गई रहती है जिनके कारण श्रोता वा पाठक के हृदय मे केवल विस्मय और कौतूहल उत्पन्न होकर ही रह जाता है। परन्तु उलटवाँसियो के शब्दो मे स्वभाव-विरुद्ध और प्राकृतिक नियमो के प्रतिकूल घटने वाली बातो के ऐसे विपरीत उल्लेख पाये जाते हैं जिनसे उत्पन्न

---

१. 'सुन्दर ग्रन्थावली', २५, पृ० ४१७।

आश्चर्य की मात्रा अपनी अतिम सीमा तक पहुँच जाती है और सारी रचना अर्थहीन-सी लगने लगती है। शब्दालकारो मे बहुधा गिने जाने वाले 'दृष्टि-कूट' वा 'द्रष्टकूट' मे कुछ इस प्रकार की बाते अवश्य दीख पडती है। किन्तु उसमे किये गए शब्दो के प्रयोग अधिकतर पाठको या श्रोताओ के विस्तृत ज्ञान वा जानकारी को लक्ष करते है, जहाँ उलटवाँसियो मे से इस प्रकार की परीक्षा के लेने का अवसर प्रस्तुत किया गया नही जान पडता। ये रचनाएँ पाठक अथवा श्रोताओ के उस विशेष वा पारिभाषिक ज्ञान की ही ओर सकेत करती है जिसका होना इन्हे समझ पाने वाले के लिए नितात आवश्यक रहा करता है। सतो ने इनका प्रयोग, इसी कारण, विशेषत उन बातो के वर्णनो मे ही किया है जो किसी साधना वा अनुभूति से सबद्ध है।

उलटवाँसियो की चर्चा करते समय कुछ लोग उन्हे 'सध्याभापा' अथवा 'सधा-भापा' नाम से भी सूचित करते है। 'सध्याभापा' का अभिप्राय उस अस्पष्ट भापा से है जो गोधूलि बेला की भाँति कुछ प्रकाश एव कुछ अधकार से मिश्रित रहा करती है। इसकी बातो को प्रत्यक्षत कुछ-न कुछ समझ लेने पर भी उसमे निहित रहस्य प्राय अज्ञात ही रहा करता है। 'सधाभापा' शब्द उस प्रकार की भापा की ओर सकेत करता है जो शब्दो के अनुसार किसी प्रत्यक्ष भाव को व्यक्त करती है, किन्तु जिसके प्रयोक्ता का वास्तविक उद्देश्य किसी अन्य गूढ भाव को सूचित करता है। पहले के अनुसार जहाँ इस प्रकार की शैली की विशेपता उसकी अस्फुटता मे दीख पड़ती है, वहाँ दूसरे के अनुसार वह उसके प्रयोक्ता द्वारा किसी महत्वपूर्ण बात को गोपनीय रखने की चेष्टा मे पायी जाती है। इस कारण, पहले की दृष्टि से वह सत्काव्य मे सहायता भी दे सकती है, किन्तु दूसरे प्रकार से वह बाधक है। संध्याभापा का प्रयोग हमे प्राचीन ग्रथ ऋग्वेद की उस ऋचा मे भी मिलता है, जहाँ पर (१ १६४–७)[1] सूर्य का अपने पैरो (किरणो) द्वारा पृथ्वी के जल का पान करना तथा अपने सिर (आकाश) द्वारा उसे मेघो के रूप मे बरसाना कहा गया है। इसका वास्तविक अभिप्राय आत्मा का बाह्येद्रियो द्वारा विपयो का रस लेना तथा उनके सिरोभागरूप अत करण द्वारा ज्ञानरस के आनद का लेना समझा जाता है। यह मत्र अत्यत महत्वपूर्ण माना जाता है और इसका सग्रह अथर्ववेद (६ ६. ५) मे भी किया गया है। ब्राह्मण ग्रंथो मे उक्त सध्याभापा का प्रयोग ऐसे प्रसगो मे किया गया प्रतीत होता है जहाँ पर अनेक बाते निरर्थक जान पडती है। किन्तु उनके पीछे गुप्त रूप से विद्यमान रहने वाले रहस्य का उद्घाटन पूर्वमीमासक लोग विविध रूपको का सहारा लेकर किया करते है।

संधाभापा वाले उपर्युक्त उद्देश्य को लेकर व्यवहृत की जाने वाली शैली सर्वप्रथम, कदाचित् तत्रयुग मे दीख पडी। तत्रो के साधक अपनी साधनाओं को बहुधा गुप्त रखना चाहते थे। इसी कारण, उन्हे उनका वर्णन ऐसी रहस्यमयी भापा मे करना पडता था जिसमे प्रयुक्त होने वाले पारिभापिक शब्द रूपको पर आश्रित होने के कारण गूढ से गूढतर हो जाया करते थे। गौतम बुद्ध के पालि भापा मे उपलब्ध विचारो का जब वास्तविक मर्म समझने की परिपाटी चल निकली तो इस प्रकार की शैली मे और भी दुरूहता आ गई। तत्र-साहित्य मे प्रयुक्त रूपको का अभिप्राय समझना

---

१ "इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य यामस्य निहित पद वे ।
शीर्ष्ण क्षीर दुहते गावो अस्य वव्रि वसाना उदक पदापु ॥ ७ ॥"

अत्यत कठिन हो गया। पिछले तत्रो की सधाभाषा के अनुसार न केवल पारिभाषिक शब्दो की ही खोज की जाने लगी, अपितु कुछ ऐसे सकेतो का रहस्य जानने की भी आवश्यकता पडी जिनका प्रयोग उन्हे जान-बूझकर अज्ञेय बनाने की चेष्टा मे किया जाता था। इस ढग के प्रयोगो के कतिपय उदाहरण हमे सिद्धो के चर्यापदो मे भी मिलते है। इन सिद्धो और पीछे के सत कवियो मे कई बातो की समानता है जिनमे वर्णन-शैली का सादृश्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह सादृश्य भी, अन्य अनेक बातों की भाँति, नाथ-पथियो के माध्यम द्वारा सतो तक पहुँचा हुआ जान पडता है। 'गोरखवानी' मे सगृहीत गुरु गोरखनाथ के पदो मे से लगभग आधे दर्जन[1] ऐसे है जिनमे, सध्याभाषा शैली के अनुसार निर्मित उलटवाँसियाँ स्पष्ट रूप मे दीख पडती है। 'कबीर ग्र थावली' मे सगृहीत कबीर साहब के पदो मे से कम-से-कम डेढ दर्जन[2] मे इनके उदाहरण पाये जाते है। गुरु गोरखनाथ ने उलटवाँसी के लिए 'उलटी चरचा'[3] शब्द का प्रयोग किया है, जहाँ कबीर साहब ने उसे एक प्रकार से 'उलटा वेद' ही कह डाला है।[4] सत सुन्दर-दास ने भी इसी प्रकार उसे 'उलटी' नाम दिया है और उसे कही-कही 'विपर्जय' या 'विपर्जय शब्द' का शीर्षक देकर अपनी रचनाएँ सगृहीत की है।[5] इन सतो के सिवाय दादूजी, रज्जबजी, शिवनारायण, तुलसी साहव, पलटू साहब, शिवदयाल अदि सतो ने भी उलटवाँसियाँ लिखी है।

सतो के लिए उलटवाँसियो का प्रयोग करना स्वाभाविक-सा हो गया था। क्योकि एक तो वे अत्यत गूढ तत्व और उसकी रहस्यमयी अनुभूति की चर्चा अस्फुट एव रहस्यपूर्ण भाषा द्वारा किया करते थे, जिस कारण सभी कुछ रहस्यवादोचित हो जाता था। दूसरे, उन्हे अपनी बाते अधिकतर ऐसे सर्वसाधारण के बीच प्रकट करनी पडती थी जो उनके अनुसार, सहज एव सीधे मार्ग का त्याग कर हास्यास्पद विडवनाओ के फेर मे पडे रहा करते थे और जिन्हे कुछ गहराई तक सोचने का अभ्यास डालना आवश्यक हो हो गया था। सत लोग उनका ध्यान अपनी उलटवाँसियो द्वारा आकृष्ट कर उन्हे पहले आश्चर्य मे डाल देते थे और तब उन्हे समझाकर सचेत करते थे। उनकी उलटवाँसियो मे इसीलिये हमे ऐसी बाते भी मिला करती है जो जनसाधारण वा पडितो तक के आचरणो से सबध रखती है। सतो की उलटवाँसियो मे ऐसे प्रतीको का प्रयोग अथवा रूपको का व्यवहार बहुत अधिक मिलता है जिनमे प्रतिदिन के जीवन मे दीख पड़ने वाली बातो का उलट-फेर दिखलाया गया रहता है। वे इसी कारण, श्रोताओ और पाठको को एक बार स्तब्ध-सा कर देता है। फिर भी उनका उलटवाँसीपन उनके शब्दो के वाच्यार्थ तक ही सीमित रहा करता है। सतो के कथन का मार्मिक भाव जान लेने पर जब हम वास्तविकता से परिचित हो जाते है तो वैसे रूपको तथा प्रतीको का औचित्य भलीभाँति समझ मे आ जाता है। उपयुक्त प्रतीको के चुनाव मे सभी सत सफल नही कहे जा सकते। इनके प्रयोगो के बहुधा फेरफार कर देने से वे कठिनाई भी उपस्थित कर

---

१ गोरखबानी (हिं० सा० स०), पद २०, ३४, ४७, ५१, ५६ आदि।
२ 'कबीर ग्रन्थावली', (ना० प्र० स०), पद ६, ११, १२, १३, ८०, १४५, १६०-२, १७६-७, २१२, २२६, २८०, ३४६ आदि साखियाँ भी है।
३ 'उलटी चरचा गोरप गावै' (गो० बा०, पृ० १४२)।
४. है कोई जगत गुर ग्याँनी, उलटि वेद बूझै' (कि० ग्र था०, पृ० १४१)।
५. 'सुन्दर सब उलटी कहै समुझै मत सुजान', (सु० ग्रं०, पृ० ७६१)।

देते है। एक ही आत्मा के लिए कही हस, कही राजा, कही सुन्दरी, कही पारधी, कही खग और कही बेली जैसे शब्दो के प्रयोग किये गए है। एक ही इच्छा के लिए कही सुरही, कही माखी, कही डीवी, कही चील, कही गौरी और कही मालिन जैसे शब्द व्यवहृत हुए है। ऐसे प्रयोग सतो के साधारण रूपको और अन्योक्तियो मे भी मिला करते है, किन्तु वहाँ कठिनाई उतनी गभीर नही हो पाती। इन उलटवाँसियो के कारण कभी-कभी सतोके मुख्य अभिप्राय दबे-से भी रह जाते है और लोग उनके शब्दो के आधार पर कुछ-का-कुछ मान लेते है।

कबीर साहब की उलटवाँसियो मे से एक, अद्भुतरस के उदाहरणो मे, इसके पहले ही दी जा चुकी है और उनका अभिप्राय भी बतलाया गया है। उनकी अन्य तथा दूसरे सतो की उलटवाँसियो मे से कुछ के अवतरण इस प्रकार है—

(१) जीवत जिनि मारै मूवा मति ल्यावै,
मास विहूणां घरि मत आवै हो कता ॥ टेक ॥
उर बिन षुर बिन चच बिन, बपु विहूना सोई।
सो स्यावज जिनि मारै कता, जाकै रगत मास न होई।
पैली पारके पारधी, ताकी धुनही पिनच नहीं रे।
ता बेली कौ ढूंक्यौ मृगलौ, ता मृग कै सीस नही रे।
कहै कबीर स्वामी तुम्हारे मिलन कौ, बेली है पर पात नहीं रे ॥२१२॥[1]

अर्थात् हे कत (जीव)! यदि मृग (मन, ज्ञानसपन्न होने के कारण) जीविता-वस्था मे हो तो उसे मत मारो (बाधित करो) और यदि वह (माया से प्रभावित होने के कारण) मृतकावस्था मे हो तो उसे मत लाओ (लाभ उठाने की आशा रखो)। किन्तु फिर भी तुम बिना मास (बुद्धिजन्य दृढभाव) लिये घर वापस भी न आओ। उस मृग (मन) का न तो छाती है, न पैर है और न मुख ही है (वह शून्य रूप होने के कारण) बिना शरीर का है। उस सावक को मारकर ही क्या होगा जिसमे रक्त और मास का अभाव हो! उस मृग (मन) को मारने वाले पारधी या शिकारी (प्राण-शक्ति) के पास किसी धनुष या प्रत्यचा के रखने की आवश्यकता नही पडती। वह परली कोटि की निपुणता वाला हुआ करता है। उसके द्वारा मारा गया मृग (मन) लताओ मे प्रवेश कर जाता है। सुविस्तृत आत्मवेलि की ओर अतर्मुख हो जाता है। उसे किसी प्रकार का शीश (आकार) नही रहता और वह मारे जाने पर भी सुरक्षित रहा करता है। यह गुरुप्रदेश द्वारा उपलब्ध ज्ञान के क्षेत्र का विषय है। कबीर का कहना है कि परमात्मन् जिस तुम्हारी वेलि (आत्मबेलि) के भीतर उस मृगरूपी मन को प्रविष्ट होना है, उसमे (प्रकृति के) पत्ते नही है।

यहाँ पर यह बात भी उल्लेखनीय है कि इस उलटवाँसी वाले ही मृग, पारधी जैसे कुछ प्रतीको के प्रयोग गुरु गोरखनाथ ने भी अपने एक पद मे किये है जो कई दृष्टियो से इसका आधार-सा प्रतीत होता है। उसकी कुछ पक्तियाँ इस प्रकार है—

"आई सौ भील पारधी हाथ नही, पाई प्यगुलो मुष दॉत न काही।
हयो हयो मृघलौ धुणहीन नही, घण्टा सुरतिहाँ नाद नाही ॥ २ ॥

---

१ 'कबीर ग्रथावली', पद २१२, पृ० १६०।

भीलड़ै तिहाँ ताणियौ वाण, मनही मृगलौ बेधियौ प्रमाण।
हयौ हयौ मृगलौ बेधियौ बांण, धुणही बांण न थी सरताण ।। ३ ।।
भीलडी मातमी रांणी, मृघलौ आंणी ठांणी।
चरण बिहूणौ मृघलौ आण्यौ सीस सींग मुष जाहुन जाण्यौ ।। ४ ।।[१]

सिद्धाचार्य भुसुकुपा ने भी अपने एक चर्यापद मे मन को 'हरिण' कहा है और 'तरसन्ते हरिणार खुर व दीसई' बतलाया है।[२]

(२) समन्दर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई ।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई ।।[३]

अर्थात् समुद्र मे आग लग गई (शरीर के भीतर ज्ञान-विरह की आग प्रज्ज्वलित हो उठी) और नदियाँ जलकर भस्म हो गई (सभी सासारिक सम्बन्ध नष्ट हो गए)। अरे कबीर, अब जागृत होकर देख ले, मछली वृक्ष पर चढ गई है (मन अब ऊँची दशा को प्राप्त कर चुका है)। गुरु गोरखनाथ के एक पद की भी दो पक्तियाँ कबीर साहब की इस साखी से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। जैसे—

"डूंगरि मंछा जलि सुसा पाणी मै दौ लागा।
अरहट वहै तृसालवाँ, सूलै काँटा भागा ।। ३ ।।'[४]

(३) कुंजर कौ कीरी गिलि बैठी, सिघहि षाइ अघानौ स्याल।
मछरी अग्नि माहि सुख पायौ जलमैं हुती बहुत बेहाल ।।

पंगु चढ्यौ पर्वत कै ऊपर, मृतकहि देषि डरानौ काल।
जाकौ अनुभव होई सुजानं, सुन्दर ऐसा उलटा ख्याल ।। ३ ।।[५]

अर्थात्, मस्त हाथी को एक कीडी ने निगल लिया (काम को बुद्धि ने जीत लिया), सिह को खाकर शृगाल पुष्ट हो गया (जीव ने सशय पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली), मछली को आग मे ही सुख मिलने लगा (मनसा ब्रह्माग्नि मे आनन्दमग्न हो गई), वह जल मे दुखी रहती थी (काया मे उसे सदा बेचैनी रहा करती थी), पगु पुरुष पर्वत पर चढ गया (शात मन चिदाकाश मे पहुँच निश्चल हो गया) और मृतक को देखकर काल भयभीत हो गया (जीवन्मुक्त के समक्ष काल का प्रभाव जाता रहा), इन बातो को वही जानता हैं जिसे स्वानुभूति मिल चुकी है। दूसरो के लिए तो यह उलटा विचार ही कहा जायगा।

(४) कमल माँहि पाणी भयौ, पाणी मांहे भान।
भान माँहि ससि मिलि गयौ, सुन्दर उलटौ ज्ञान ।। ६ ।।[६]

---

१ 'गोरखवानी', पद २६, पृ० ११६।
२ 'चर्या', पद ६ और पद स० २३ भी।
३. 'कबीर ग्रंथावली', सा० १०, पृ० १२।
४ 'गोरखबानी', पद २०, पृ० ११२।
५ 'सुन्दर ग्रन्थावली', सा० ३, पृ० ५१०।
६ 'सुन्दर ग्रंथावली', सा० ६, पृ० ७४६।

अर्थात्, कमलरूपी हृदय मे पानीरूपी प्रेम का आविर्भाव हुआ और वह सूर्य-रूपी आत्मज्ञान का आधार वन गया। फिर उसी [सूर्य-रूपी ज्ञान मे चद्र-रूपी ब्रह्मानद की भी शीतलता मिल गई जिस कारण अक्षय सुख मिलने लगा और यह उलटा ज्ञान कहलाया।

उलटवाँसियो के ये अवतरण अधिकतर साधना एव अनुभूति की चर्चा से सम्बद्ध हैं। सतो ने, इसके सिवाय, कुछ उलटवाँसियाँ अपनी भीतरी कठिनाइयो के वर्णन तथा सासारिक मनुष्यो की मायाजनित दुरावस्था के परिचय मे भी लिखी है। इन रचनाओ मे उन्होने 'कोई विरला बूझै', 'जो बूझै सो गुरू हमारा', 'जो यहि पद का अर्थ लगावै ज्ञानी' जैसे वाक्यो के प्रयोग किये हैं। इनसे प्रकट होता है कि वे इन्हे जान-बूझ कर समस्यामूलक रूप दे रहे है। इसके लिए उन्हे कुछ गर्व का अनुभव भी होता है। परन्तु इस प्रकार की उक्तियो के प्रयोग, वस्तुत, सिद्धो के युग से ही होते चले आ रहे है और ये एक प्रकार से, इस शैली के अगरूप से हो गए है। सिद्ध ढेढणपा के एक चर्यापद (स० ३३) मे आए हुए वाक्य "ढेढण पाएर गीत विरले बूझअ" से तो यह ज्ञान पड़ता है कि उन्होने अत्यन्त गूढ वना दिया है। इसी प्रकार गुरु गोरखनाथ भी एक स्थल पर कहते है कि 'वूझौ पडित ब्रह्म गिआन, गोरष वोलै जाण सुजान।'[१] इससे प्रकट होता है कि वे न केवल अपने कथन को ब्रह्मज्ञान कहते हैं, अपितु स्वय अपने को भी सुजान एव ज्ञानवान् वतलाते है। इसलिए सतो को इस वात के लिए सहसा घमडी अथवा रहस्यगोप्ता कह देना उचित नही प्रतीत होता। जान पड़ता है कि अपने भावो को व्यक्त करते समय उन्होने अन्य अनेक शैलियो के अतिरिक्त उलटवाँसियो को भी प्रचलित समझ कर अपना लिया था। इनके कारण न तो उनमे कोई मौलिकता आ जाती है, न वे किसी प्रकार की निंदा के ही पात्र समझे जा सकते है।

## प्रकृति-चित्रण

सतो की साधना अतर्मुखी वृत्ति के आधार पर चलती थी और वे अधिकतर अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति मे ही लगे रहते थे। वाह्य जगत् की चर्चा छेडते समय भी वे वहुधा अहमन्य व्यक्तियो या पाखडियो आदि के विविध आचरणो के उल्लेख कर दिया करते थे। धार्मिक एव सामाजिक भेदभावो के वाहुल्य पर वे अपनी टीका-टिप्पणी कर उनसे वचने का उपदेश देते रहते थे। प्राकृतिक दृश्यो के प्रसग वे केवल ऐसे अवसरो पर ही लाते थे जहाँ उन्हे सर्वव्यापी परमात्मा के अस्तित्व एवं प्रभाव की ओर सकेत करना रहता था, अथवा अपनी विरह-दशा के वर्णन या अन्योक्तियो की रचना करते समय उनका ध्यान इधर चला जाता था। इसलिए प्राकृतिक वस्तुओ के स्वरूपादि के वर्णन-सम्वन्धी उल्लेख उनकी रचनाओ मे वहुत कम देखने को मिलते है। उनके साग-रूपको मे हमे इस प्रकार के उदाहरण कभी-कभी अवश्य मिल जाते है जिनमे उनके एकाग्र निरीक्षण की शक्ति दीख पडती है। परन्तु इस प्रकार की रचनाएँ भी सदा प्राकृतिक वस्तुओ से ही सम्बद्ध नही। ऐसी रचनाओ मे भी परपरा का ही पालन अधिक रहा करता है। सतो ने जहाँ सावन, वसत आदि शीर्षक देकर कविता की है अथवा जहाँ वारहमासे आदि लिखे हैं वहाँ भी कुछ ऐसी प्रवृत्ति दीख पडती है। वहुत-से रीति-कालीन अथवा इधर के सतो ने तो ऐसी प्रचलित शैली का निरा अनुकरण करने मे ही इसकी इतिश्री मान ली है।

---

१ 'गोरखवानी', पद १८, पृ० १०८।

फिर भी कुछ प्रतिभाशाली संतों की रचनाओं में हमें प्रकृति-चित्रण के बड़े सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं। ये विशेषकर उन अवसरों से सम्बद्ध हैं जिनके रचयिताओं की अनुभूति कुछ तीव्र रही होगी। उनके भीतर उल्लास की मात्रा अधिक हो जाने के कारण, भावावेश की दशा आ पहुँची होगी और वे बाह्य जगत् के साथ तल्लीनता स्वभावतः स्थापित करने लगे होंगे। ऐसी दशा में रूपकों का विधान आप-से-आप होने लगता है और जो-जो काल्पनिक चित्र कवि के मानस-पटल पर चित्रित हुए रहते हैं, वे ठीक-ठीक अपने मूल रंग एवं रेखा में ही पाठक या श्रोता के भी आगे प्रत्यक्ष हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, गुरु नानकदेव ने अपने एक पद के द्वारा परमात्मा के प्रति 'आरती' प्रस्तुत करने की आवश्यकता दिखलायी है। उसका कारण बतलाते समय उन्होंने स्पष्ट एवं सजीव चित्र अंकित कर दिया है। इसमें उनके निजी अनुभव की भी झलक मिल जाती है और वह दूसरे को भी उसी प्रकार प्रभावित किये बिना नहीं रह पाती। जैसे—

(१)　गगन मै थालु रविचन्दु दीपक बने,
　　तारिका मण्डल जनक मोती।
धूपु मल आनलो पवण चँवरो करे,
　　सकल बनराइ फूलंत जोती॥ १॥
कैसी आरती होइ भवखण्डना तेरी आरती।
　　अनहता सबद वाजंत भेरी॥ रहाउ॥[१]

इस पद्यांश में, आकाशमयी थाली में सूर्य एवं चन्द्रमा के दो दीपकों की कल्पना करते हुए अगणित तारिकाओं के समूह को उस पर जड़े हुए मोतियों का प्रतीक ठहराया गया है। सुगन्धि के लिए मलयपवन तथा चँवर के लिए वायु के साधन प्रदर्शित करते हुए, कहा गया है कि वनों के अन्तर्गत जितने भी वृक्ष पुष्पित हैं, वे सभी हमारे इष्टदेव परमात्मा के ही उपचार में मग्न हैं। अनाहत शब्द सदा भेरी का काम करता है और इस प्रकार उसके लिए अन्य किसी ढंग की आरती की आवश्यकता कभी हो ही क्या सकती है? यहाँ पर कवि की कल्पना के अनुसार नभमंडल पर दृष्टिपात करते ही उसके भावगांभीर्य की भी कुछ-न-कुछ अनुभूति होने लगती है। इसके साथ ही प्रकृति का एक भव्य एवं मनोरम रूप भी हमारे सामने आ उपस्थित होता है।

कबीर साहब ने भी इसी प्रकार, आत्मविस्मृति के कारण इतस्ततः भटकने वाले जीव के मोहांधकार में पड़ कर भयभीत होने की अनुभूति की तीव्रता का वर्णन करते समय, भादों मास की भयावनी रात का एक चित्र अंकित किया है जो इस प्रकार है—

(२)　गहन ब्यंद कछू नहीं सूझै, आपन गोप भयौ आगम बूझै।
　　भूलि परयौ जीव अधिक डराई, रजनी अंधकूप ह्वै जाई॥
　　माया मोह उनवै भरपूरी, दादुर दामिनि पवनां पूरी।
　　तरियै बरियै अखण्ड धारा, रैनि भामनीं भया अंधियारा॥[२]

---

१ 'आदि ग्रंथ' (गुरु खालसा प्रेस, अमृतसर), पृ० ६६२, (पद ६)।
२. 'कबीर ग्रन्थावली', पृ० २२९।

अर्थात्, घनी बूँदो के कारण कही पर कुछ सूझ नही पडता। अपने आप भूला हुआ मनुष्य ढूँढने के लिए भटकता फिर रहा है और अत्यन्त भयभीत है। रात बहुत अँधेरी हो गई है, मेघ बरसने के लिए ऊपर से झुक आये है, मेढक बोल रहे है, बिजली कौंध रही है और हवा वेग से बह रही है। बादलो की तडप के साथ-साथ अनवरत वृष्टि भी होती जा रही है और अँधेरी रात भयावनी बन गई है।

सत सुन्दरदास ने इसके विपरीत सुहावने प्रात काल का वर्णन इस प्रकार किया है जो 'पूरबी भाषा बरवै' के अन्तर्गत आता है—

(३) अधकार मिटि गइले ऊगल भान,
हंस चुगै मुक्ताफल सरवर मान।
सहज फूल फर लागत बारह मास,
भँवर करत गुजारनि विविध विलास।
अंब डला पर बैसल कोकिल कीर,
मधुर मधुर धुनि बोलइ सुखकर सीर।
सबकेहु मन भावत सरस बसंत,
करत सदा कौतूहल कामिनि कन्त।[१]

सत दरियादास (बिहार वाले) ने भी वसत का वर्णन करते समय कुछ इसी ढग का चित्र खीचा है। जैसे—

(४) सोइ बसत खेलहि हसराज, जहाँ नभ कौतुक सुर समाज।
अछै बिरछ तहाँ द्रुम पात, साखा सघन लपटि जात ॥
बेलि चमेली विविध फूल, सोधा अग्र गुलाब मूल।
भवर कंवल में भाव भोग, इत्यादि।[२]

अर्थात्, उस वसत-काल मे हसराज क्रीडा कर रहा है और आकाश मे देवता लोग चकित हो रहे है। वहाँ पर पत्तो एव टहनियो से सुसज्जित सुन्दर वृक्षो की घनी शाखाएँ एक-दूसरे के साथ आलिगन कर रही है। बेला, चमेली जैसे अनेक प्रकार के फूल, फूल रहे है और श्रेष्ठ गुलाबो की जडें तक सुगन्धित हो उठी है। भँवरा कमल से लगा हुआ उसका उपभोग कर रहा है।

सत गुलाल साहब ने अपने पति के साथ सावन की रात मे क्रीडा करने वाली नायिका के रूपक द्वारा, स्वानुभूति का चित्र यो खीचा है—

(५) हरि सग लागत बूंद सोहावन ॥ टेक ॥
चहुँ दिसि तें घन घेरि घटा आई, सुन्न भवन डरपावन।
बोलत मोर सिखर के ऊपर, नाना भांति सुहावन ॥ २ ॥
आनन्द घट चहुँ ओर दीप बरै, मानिक जोति जगावन।
रीझ पिया के रंगराते, पलकन्ह चवर डोलावन ॥ ३ ॥[३]

---

१ 'सुन्दर ग्रन्थावली', बरवै, ७, ६, १० एव १२, पृ० ३७८।
२ 'दरिया साहब' (बिहार वाले) के चुने हुए शब्द पृ० २४-२५।
३ 'गुलाल साहब की बानी', सबद ६, पृ० १३२।

यहाँ पर सावन की कष्टदायक बूंदे भी मुहावनी लगती है, चारो ओर से घिर कर आयी हुई, शून्य भवन को डरपाने वाली घटाओ का कुछ भी प्रभाव नही और शिखर के ऊपर से बोलने वाले मोरो की पुकारे भी भली जान पड रही है। जब मिलन के समय चारो ओर घर के भीतर मणियो के दीपक जगमगा रहे है और प्रियतम के सयोग मे आह्लादित वने रहने के कारण, अपनी पलके तक उसकी सेवा मे लगी हुई है, तव सावन की भयावनी रात का भी सुहावनी वन जाना कोई आश्चर्य की वात नही।

इस प्रकार सतो की रचनाओ मे जो कुछ प्रकृति-चित्रण की झलक मिलती है, वह अधिकतर प्रतीको के आलवन पर ही प्रस्तुत की गई है। नग्न एव निरावृत प्राकृतिक दृश्यो के सौन्दर्य का प्रभाव उन पर पूर्ण रूप से पडा हुआ नही जान पडता। वे अपने सर्वात्मवाद की दृष्टि से सव कुछ को एकमात्र परमात्मतत्व से ओतप्रोत माना करते है और उससे भिन्न कोई वस्तु वस्तुत उन्हे दीख नही पडती। उनके अनुसार तो यह सारा दृश्य समूह केवल माया का पसारा है और हमारे भ्रात मन की निरी काल्पनिक सर्जना के अतिरिक्त और कुछ भी नही। अतएव, जब मुन्दरदास के शब्दो मे उन्हे—

मनही के भ्रम तें जगत सब देषियत,
मनही कौ भ्रम गये जगत विलात है।[१]

के सिद्धान्त मे विश्वास करना है तो फिर उनके लिए प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुभूति का महत्व प्राय कुछ भी नही रह जाता। वे जव कभी उस पर दृष्टिपात करते है तो उसे अपने रग मे रँगी हुई ही पाया करते है।

## संगीत-प्रेम

सतो ने जो कुछ अनुभव किया, उसमे उन्होने अपने आपको घुला-मिला-सा दिया और उसमे वे सदा तल्लीन वने रहे। उनकी अनुभूति की अभिव्यक्ति इसी कारण, उनके अतस्तल से हुआ करती थी। उसमे भावगाभीर्य के साथ-साथ एक प्रकार की स्वच्छदता और मस्ती भी वनी रहती थी जो किसी जन्मजात गायक मे पायी जाती है। सत लोगो का किसी-न-किसी रूप मे गायक या भजनीक होना जनश्रुतियो और उल्लेखो द्वारा भी सिद्ध है। सत नामदेव के लिए कहा जाता है कि वे पढरपुर मे तथा अपनी यात्राओ मे भी सदा भजन गाते रहा करते थे। गुरु नानकदेव का भी अपने साथी मर्दाना के साथ किसी वाद्ययत्र के सहारे अनेक स्थलो मे गाते फिरना उनकी जीवनियो मे लिखा पाया जाना है। दादू पथ के गरीवदास एव वपनाजी की गणना अच्छे सगीतज्ञो मे की जाती है और वावरी पथ के प्राय सभी प्रमुख संतो के चित्र गायको के ही रूप मे अकित किये गए दीख पडते है। इसके सिवाय सत जयदेव एव नामदेव से लेकर इधर के संतो तक के पदो के सग्रह सदा विविध रागो मे विभक्त होकर ही प्रकाशित होते आए है। इसकी परंपरा सिद्ध-युग से ही चली आ रही है। सिद्धो के पदो को चर्यागीति कहा जाना और उनका कभी-कभी उनमे 'गाइउ' जैसे शब्दो का प्रयोग का होना भी यही सूचित करता है कि उस प्रकार की रचनाएँ वहुधा गायी जाया करती थी। इस कारण, उनके सग्रह भी रागो के अनुसार ही किये जाते थे।

---

१ 'सुन्दर ग्रन्थावली', स० २५, पृ० ४५३।

परन्तु केवल इतने से ही सतो की सभी रचनाओ का सगीतशास्त्रानुसार निर्मित होना भी प्रमाणित नही हो जाता। उनके पदो की रचना का आदर्श मूलत चाहे जो भी रहा हो, इन सभी को स्वर, लय, ताल आदि के अनुसार सिद्ध नही किया जा सकता। सगीतशास्त्र के नियमानुसार जो गीत निर्मित होते है, उनके रूप कतिपय बाह्य बधनो द्वारा जकडे हुए से जान पडते है। उनमे भावो की अपेक्षा उनके गेयत्व की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया प्रतीत होता है, किन्तु संतों के पदो के सम्बन्ध मे यह भी बात नही है। सतो ने जितना प्रयास अपने भावो की अभिव्यक्ति के लिए किया है, उतनी दूर तक वे उसकी भाषा या गेयत्व के लिये नही गये है। अतएव सतो के पदो का गेय गीतो की अपेक्षा गीत काव्यो की श्रेणी मे गिना जाना कदाचित् अधिक उचित होगा। सत लोग अधिकतर अशिक्षित रहे और शास्त्रीय बधनो की उन्होने सभी प्रकार से उपेक्षा भी की थी। पदो की रचना उन्होने इसी कारण, किन्ही पिंगलशास्त्र वा सगीतशास्त्र के नियमो का ठीक-ठीक अनुसरण कर के नही की। उनके लिए तो सब कही प्रचलित उन्मुक्त लोक-गीतो का ही सकेत पर्याप्त था। सिद्धो एव नाथो की पद-रचना के आदर्श मे उन्हे एक स्थूल आधार भी मिल गया। तदनुसार सत कबीर से लेकर बहुत पीछे तक के सतो ने अपनी रचनाएँ अधिकतर स्वच्छद रूप से ही की और काव्य एव सगीत के कठोर नियमो के पालन की ओर उनका ध्यान बहुत कुछ रीतिकाल के समय से आकृष्ट होने लगा।

सतो की रचनाएँ लगभग सभी प्रसिद्ध रागो के अतर्गत सगृहीत पायी जाती है। फिर भी उनकी अधिकाश रचनाएँ राग गौडी, राग विलावल, राग सोरठ, राग बसत, राग सारग तथा राग धनाश्री के अतर्गत दीख पडती है। इनके अनन्तर राग मारू, राग भैरव, राग टोडी, राग असावरी, राग रामकली तथा राग मलार के नाम आते है। अन्य प्रमुख रागो मे राग कल्याण, राग कान्हडा, राग केदार तथा राग नट वा नटनारायण के भी नाम लिये जा सकते है। सग्रहो मे राग सावन, राग होली, राग हिडोला, राग रेखता जैसे कुछ नाम भी आते है जो कदाचित् उक्त ढर्रे के अनुसार ही आ गए है। कुछ संतो ने ऐराकी और बैत जैसे एकाध नामो के भी प्रयोग किए है जो विदेशी जान पडते है और तुलसी साहब की रचनाओ के अतर्गत ख्याल, तिल्लाना, ध्रुपद, टप्पा, ठुमरी, लावनी आदि के भी उदाहरण सगृहीत किये गए है। इस प्रकार के गीतो एव गजलो तक की रचना आधुनिक सतो ने आरभ की और गभीर पदो की रचना का महत्व उस समय से क्रमश घटता चला गया। रागो के शीर्षको मे किया गया पदो का सग्रह सत्त-नामियो तथा सत्सगियो की पुस्तको मे नही दीख पडता। वे, तथा अन्य अनेक सत भी पदो को 'शब्द' कह कर ही पुकारना, कदाचित् अधिक अच्छा समझते है। फिर भी वे शब्द भजन के रूप मे बराबर गाये जाते है। साधुओ के सम्बन्ध मे कहा जाता है, "साँझ को राग सकारे गावै। सो साधु मोरे मन भावै" अर्थात् साधुओ-सतो का अपने पदो वा भजनो का अनियमित रूप से गान करना उनकी एक विशेषता ही समझी जाती है। गाये जाने वाले पद या भजन अपने रचयिताओ की अनुभूतियो अथवा उपदेशो के भाव व्यक्त करते है। उन्हे गाने वाले उनमे तल्लीन होने की अपनी मस्ती प्रकट करते हुए जान पडते है। पदो के शुद्ध रूप, उनको गाते समय महत्वपूर्ण समझे जाने वाले सांगीतिक नियमो का यथावत् पालन अथवा अन्य ऐसी बातो की ओर ध्यान देना वे बहुत आवश्यक नही समझते। सतो के ऐसे अनेक पदो की रचना के समय भी किसी प्रकार के बधनो का विचार करने की परपरा कभी नही रही है। गेय पदो के बहुधा पाँच अग माने

जाते है जो क्रमश उद्‌गह, मेलापक, ध्रुव, अतरा और आभोग के नाम से प्रसिद्ध है।[1] इन्हे कभी-कभी केवल स्थायी, अतरा, सचारी और आभोग नाम के चार अवयवो द्वारा भी प्रकट किया जाता है तथा जो किसी-किसी गाने मे (जैसे प्राय ख्याल और टप्पे मे) केवल प्रथम दो तक ही दीख पडते है। किन्तु सतो की पद-रचना के लिए कोई इस प्रकार का नियम लागू नही। उनके कोई-कोई पद एक से अधिक पृष्ठो तक मे छपे हुए पाये जाते है। उनमे किसी एक ही भाव-विशेष की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की जगह साधनाओ के विवरण, रूपको के विस्तार तथा आदर्शो के दृष्टात इतनी प्रचुर मात्रा मे आ जाते है कि उनका रूप दोहे, चौपाइयो वाले साधारण वर्णनो से भिन्न नही जान पडता।

सतो की रचनाओ मे पाये जाने वाले उक्त प्रकार के दोष उनके रूप एव शैली से कही अधिक उनके विषय पर ही ध्यान देने के कारण आ गए है। इनमे कई सतो के बहुधा अशिक्षित रहने के कारण कुछ और भी सहायता मिल गई है। शिक्षित एव अभ्यस्त सतो ने जब कभी इस ओर ध्यान दिया है, तब उनके पद अथवा अन्य रचनाएँ भी बहुत शुद्ध एवं सुघरी दशा मे बन पडी है। सतो की रचनाओ के सभी प्रामाणिक सस्करण भी बहुत नही मिलते और इसके कारण हमारे सामने उन्हे परखते समय दोहरी कठिनाई भी आ जाती है। सिद्धहस्त एव प्रतिभाशाली सतो की जो कुछ शुद्ध रचनाएँ प्रकाश मे आ चुकी है, उनमे उनके सगीत-ज्ञान का भी अच्छा परिचय मिलता है। केवल पदो अथवा अन्य ऐसे गानो मे ही नही, अपितु उनके सवैयो, अष्टको, रेखतो आदि तक मे भी एक ऐसा प्रवाह एव माधुर्य दीख पडता है जो सुनिर्मित और सुव्यवस्थित पदो मे ही सभव है। इसके कारण, ऐसी रचनाएँ गायी भी जा सकती है। सतों के लिए सगीत वस्तुत प्रारम्भिक काल से ही अपना आवश्यक एव प्रिय साधन रहता आया है। उसके महत्त्व को वे सदा पहचानते भी रहे है। उसे किसी शास्त्रीय ढग से अपना न सकने पर भी उसका प्रयोग वे स्वच्छन्द रूप से करते आए है और इसमे वे सफल भी कहे जा सकते है। इसके सिवाय उनकी अनेक रचनाएँ गीत-काव्य की कोटि मे भी आती हैं ओर इस दृष्टि से भी उनकी सगीतप्रियता पर विचार किया जा सकता है।

## छद-प्रयोग

सतो की रचनाएँ पहले पद्यात्मक रूप मे ही होती रही। उनके साधारण-से-साधारण उपदेश, और कदाचित् उनके पत्र-व्यवहार तक, सदा उसी प्रकार चलते रहे। गद्य-लेखन की प्रथा का अनुसरण उन्होने बहुत पीछे आकर किया जब हिन्दी मे गद्यमयी टीकाएँ लिखी जाने लगी और वार्ताओ जैसी विवरणात्मक रचनाओ का भी आरभ हो गया। अब तक उपलब्ध सत-साहित्य के आधार पर केवल इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि यह समय विक्रम की १८वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध या उत्तरार्द्ध रहा होगा। जो हो, पहले के सतो के समक्ष अपनी रचना करते समय पद्य के प्रचलित आदर्श ही रहा करते थे। वे छद आदि की सूक्ष्म बातो पर विचार किये विना भी अपना काम चला लेते थे। उनके पदो की रचना कभी-कभी एक से अधिक छदो के सम्मिश्रण से हो जाया करती थी और उनकी साखियो मे भी दोहो के अतिरिक्त अन्य छद प्रयुक्त होते थे।[1] परन्तु इन बातो की न तो वे छानबीन करना आवश्यक मानते थे, न पिगल के ज्ञान को वे यथेष्ट महत्व देते थे। परतु कवि केशवदास (स० १६१२-१६७४) जैसे

---

१. दे० पृ० ३४-३५ भी।

हिन्दी कवियो ने इस ओर ध्यान देना आरभ किया और विविध छदो के प्रयोग की पद्धति चल निकली। 'रामचन्द्रिका' जैसी एकाध पुस्तके केवल पिंगल-ज्ञान के प्रदर्शनार्थ ही लिखी जाने लगी तो इसका प्रभाव उन पर भी पडे बिना नही रह सका। रीतिकालीन सतो ने इस ओर प्रवृत्त होना अपना कर्त्तव्य-सा मान लिया। तदनुसार गुरु अर्जुनदेव (स० १६२०-१६६३) एव मलूकदास (स० १६३१-१७३६) के समय के लगभग पदो, साखियो एव रमैनियो के अतिरिक्त अन्य प्रयोग भी चल पडे।

यह समय मुगल सम्राट् अकबर के शासनकाल का था, जबकि देश मे शाति एव समृद्धि थी और महाराजो एव नवाबो के यहाँ भी दरबारा की व्यवस्था चल रही थी जिनमे कवियो और गुणियो का आदर-सम्मान होता था। अतएव मनोरजन तथा कला-प्रदर्शन के लिए काव्य-रचना मे प्रवृत्त होना, साधारणत शिक्षित लोगो के लिए भी स्वाभाविक-सा हो गया था। फलत काव्य-कला मे योग्यता प्राप्त करने के लिए पुराने सस्कृत काव्यशास्त्रो का अध्ययन भी होने लगा। इस प्रकार हिन्दी मे भी साहित्य-शास्त्र को उन्नत एव समृद्ध करने की ओर बहुत-से पडित कवियो का ध्यान आकृष्ट हुआ। रस, अलकार, छद जैसे साहित्य-शास्त्र के अगो का जैसे-जैसे अनुशीलन एव विवेचन होता गया, वैसे-वैसे उनके उचित प्रयोगो मे भी वे लोग दत्तचित्त होते गए। इस प्रकार के प्रयोग कभी-कभी इस उद्देश्य से भी किये जाने लगे कि उक्त अगो के साधारण-से-साधारण रूपो के भी विवरण सबके सामने उपस्थित कर दिये जाये। रस-सबधी भाव-विभावादि एव नायक-नायिका भेद, अलकार-सम्बधी नामो का विस्तार तथा भेद-प्रभेद और छद-सबधी गुण, मात्रा एव यति को प्रदर्शित करने के लिए उनके उदाहरणो की सख्या मे अधिकाधिक वृद्धि की जाने लगी। इस प्रकार हिन्दी के साहित्यशास्त्र की समृद्धि के साथ-साथ उसकी कलात्मक रचनाओ का भी निर्माण एव प्रचार बडे वेग के साथ आरभ हो गया।

सत कवि सुदरदास, रज्जबजी जैसे पडित एव निपुण कलाकारो का आविर्भाव उपर्युक्त वातावरण के ही प्रभाव मे हुआ था। वे अपने गुरु अथवा गुरु-भाइयो के सपर्क मे रहा करते थे और उनके साथ साधना एव सत्सग मे निरत रहते थे, परन्तु अन्य सभी सतो की भाँति पद्य-रचना मे प्रवृत्त होते समय वे अपने समय की नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियो से अपने को बचा नही पाते थे। सत सुन्दरदास ने दर्शन और साहित्य का विशेष अध्ययन काशीपुरी मे जाकर किया था और काव्य-कला मे भी भली-भाँति निपुण हो गए थे। इस कारण उनकी पद्य-रचना का आदर्श न केवल अपने भावो की स्पष्ट अभि-व्यक्ति तक ही सीमित रहा, अपितु वे अपने कथन को सभी प्रकार से आकर्षक, चमत्कार-पूर्ण एव शुद्ध तथा शास्त्रीय ढग से प्रकट किया हुआ भी सिद्ध करना चाहते थे। उन्होने काव्य का प्राण 'हरिजस' को अवश्य बतलाया था, किन्तु इसके साथ ही उसका 'नख-शिख शुद्ध' होना भी वे बहुत आवश्यक समझते थे। अक्षर, मात्रा अथवा दोषपूर्ण अर्थ वाली कविता, उनके अनुसार, कभी अच्छी नही लगा करती। उसे सुनते ही काव्य-रसिक लोग उठकर चल देते हैं।[१] अतएव काव्य को सर्वप्रिय बनाने के लिए उसे सर्वांगत शुद्ध, तथा दोपरहित रूप देना भी अनिवार्य है। सत सुन्दरदास ने इसीलिए गणागण विचार

---

१. दे० 'नखशिख शुद्ध कवित्त' आदि जो इसके पूर्व पृ० ५१ पर उद्धृत किया जा चुका है।

दग्धाक्षर विचार, काव्य-दोप, सख्यावाची शब्दादि के विषय मे भी अपने सिद्धान्त प्रकट किये है और अपनी रचनाओ के अतर्गत लगभग पचास-साठ प्रकार के छोटे-वडे छदो का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है।

इसमे सदेह नही कि सत सुन्दरदास सतो मे सबसे अधिक निपुण एव काव्य-कला-मर्मज्ञ थे। उनके छदो मे त्रुटियो का प्राय अभाव दीख पडता है और उनकी भापा भी व्याकरण के अनुसार शुद्ध और सुधरी हुई पायी जाती है। उन्होने रस एव अलकार के प्रयोगो मे भी निपुणता दिखलायी है, जैसा कि इसके पहले उद्धृत किये गए उनके अनेक उदाहरणों द्वारा प्रमाणित होता है। रज्जबजी सत सुन्दरदास के ही गुरु-भाई थे और इनसे वय मे वडे भी थे। रीतिकालीन परपरा का प्रभाव इनकी रचनाओ पर भी पाया जाता है और सासारिक नीति-रीति के सम्वन्ध मे ये सुन्दरदास से भी अधिक सफल जान पडते है। परन्तु रज्जवजी की रचनाओ मे अभी प्राचीन परम्परा के प्रति मोह की मात्रा कुछ अधिक दीख पडती है। उन्होने साखियाँ बहुत वडी सख्या मे लिखी है। इस विषय मे वे सिवाय कवीर साहव के अन्य सभी सतो से वढ-चढकर है। सुन्दरदास के सवैये और कवित्त उसी प्रकार बहुत अच्छे उतरे है और इनकी रचना मे कदाचित् वे भी बेजोड कहे जा सकते है। इन छदो के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे है जिनमे भिन्न-भिन्न सतो ने अपनी विशेप योग्यता प्रदर्शित की है। उदाहरण के लिए, कुडलियाँ मे पलटू साहब और दीनदरवेश, झूलना मे यारी, छप्पय मे भीपजन, अरिल्ल मे वाजिद तथा रेखते मे गरीबदास अधिक सफल जान पडते है। यो तो अरिल्ल, झूलने एवं रेखते मे हम पलटू साहब को भी किसी से कम योग्य कहना उचित नही समझते। इसके सिवाय कवित्त एव सवैये का सफल प्रयोग करने वाले सतो मे सत रज्जवजी तथा गुरु गोविन्दसिह के नाम भी वडे सम्मान के साथ लिये जा सकते है।

पदो, साखियो एव रमैनियो के पीछे जिन छदो का अधिकतर प्रचार सत-काव्य मे पहले-पहल आरभ हुआ, वे सवैया, कवित, छप्पय, अरिल्ल, कुडलियाँ और त्रिभगी थे। इनके अतिरिक्त वरवै जैसे एकाध छदो के भी प्रयोग सत सुन्दरदास जैसे कवि करने लगे। सुन्दरदास ने सवैया छद के किरीट, वीर, केतकी आदि कई रूपो के प्रयोग किये है जिनमे एक प्रकार से इन्दव एव हंसाल की भी गणना की जा सकती है। इनके 'सवैया' अथवा 'सुन्दरविलास' नामक ग्रन्थ के अतर्गत मनहर (कवित्त) और कुडलियाँ छदो के भी अनेक प्रयोग मिलते है और उनकी सख्या कम नही कही जा सकती। किंतु सवैयो का महत्व अधिक होने के कारण रचना का नाम उन्ही के अनुसार दिया गया जान पडता है। त्रिभगी छद के प्रयोग रज्जबजी एव सुन्दरदास ने सफलतापूर्वक किये है। सुन्दरदास ने वरवै छद को पूरवी भापा मे लिखने की चेष्टा की है और उसमे शृगार रस के भाव भी भरे है। किंतु उसमे तुलसीदास या रहीम की सरसता नही ला सके है। सत भीपजन ने छप्पय छद मे अपनी पूरी 'बावनी' की रचना कर डाली है। इसी प्रकार वाजिद एव पलटू साहब ने भी अपने अरिल्ल एवं कुडलियाँ लिखी है। इन सभी ने अपनी इन रचनाओ मे इतनी सुन्दर सूक्तियाँ कही है कि वे लोकप्रिय हो गई है। गुरु रामदास एव गुरु अर्जुनदेव ने रीतिकाल के प्रारभिक दिनो मे एक प्रकार के 'छत' नामक छद के प्रयोग किये थे, किन्तु उसके विपय मे पूरा परिचय नही मिल सका है।

विक्रम की १८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे किसी समय से रेखता नामक छद

का प्रयोग सत-काव्य मे होने लगा। 'रेखता' शब्द फारसी भाषा का है और इसका अर्थ कदाचित् एक प्रकार के गाने से सम्बद्ध है। यह नाम पीछे इतना लोकप्रिय हो गया कि इसे कई उर्दू कवियो ने उर्दू भाषा अथवा उर्दू काव्य का पर्याय-सा मान लिया जैसा कि,

"रेखती के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब,
कहते है अपने जमाने मे कोई और भी था ॥"[१]

जैसी पक्तियो से प्रकट होता है। इस नाम का एक उर्दू छद भी प्रचलित हो गया जिसे दूसरे शब्दो मे कभी-कभी गजल भी कह दिया जाता है। परन्तु उर्दू का उक्त रेखता छद, बाहर के अनुसार, 'मफलऊ फायलातुन मकयूल फायलातुन' के आधार पर चौबीस मात्राओ का होता था। वह हिन्दी के 'दिग्पाल' नामक छद का ही एक अन्य रूप था, जहाँ सतो वाले उस रेखता छद मे ३७ मात्राएँ हुआ करती थी। यह रेखता छद हिन्दी के छदो मे से 'हसाल' के साथ बहुत मिलता-जुलता है। यह एक प्रकार से उसका ही उर्दू रूप भी कहा जा सकता है। इस छद मे २० एव १७ मात्राओ पर विराम हुआ करता है। इसे सवैया छद का ही एक भेद कभी-कभी मान लिया जाता है जो उचित नही जान पडता। रेखता को सत-काव्य के अतर्गत कहीं-कही 'रेखता राग' के नाम से भी अभिहित किया गया है जो उपर्युक्त 'गाने' का ही बोधक प्रतीत होता है।

इधर के अधिक प्रयुक्त होने वाले अन्य छदो मे झूलना का भी नाम लिया जा सकता है जिसके उदाहरण सत सुन्दरदास के समय से ही मिलते आ रहे है। इस छद मे भी ३७ मात्राएँ होती है जिस कारण इसकी भी गणना मात्रिक दडको मे की जाती है। परन्तु इस छद के शुद्ध प्रयोग सतो की कविताओ मे बहुत कम देखने को मिलते है। पलटू साहब एव तुलसी साहब को छोडकर अन्य लोगो ने इसकी अधिक रचना भी नही की है। कुछ इस छद को भी सवैये का ही एक भेद मानते है, किन्तु इस बात को और बहुत से साहित्यज्ञ स्वीकार नही करते। यह छद उपदेश तथा चेतावनी के लिए बहुत उपयुक्त होता है, जहाँ रेखते का उपयोग अधिकतर उद्बोधन के लिए किया जाता है। अरिल्ल छद का नाम तुलसी साहब के रचना-सग्रहो मे 'अरियल' दिया गया है। यह छद भी सतो मे बहुत लोकप्रिय रहता आया है। इसका विशेष उपयोग उन्होने वस्तुस्थिति के दर्शनो मे समझा है। सतो की साखियो मे अनेक छोटे-छोटे छदो का प्रयोग बहुत पहले से ही होता आ रहा था। ध्यानपूर्वक देखने पर कबीर साहब तक की साखियो मे दोहो और सोरठो के अतिरिक्त, हरिपद, श्याम, उल्लास, दोही, छप्पय चौपाई जैसे अन्य छदो के प्रयोग मिल जाते है। परन्तु इसमे सदेह नही कि उन्होने न तो इन्हे जान-बूझ कर छदो की विविधता दिखलाने के लिए प्रयुक्त किया था, न वे इनके भेदो-उपभेदो से भलीभाँति परिचित ही थे।

## भाषा

सतो की भाषा के विषय मे चर्चा करते समय अनेक बातो पर विचार करने की आवश्यकता पड जाती है। एक तो वे सुदूर एव विभिन्न क्षेत्रो के निवासी थे जहाँ पर

---

१ 'दीवाने गालिब' (रामनारायण लाल, प्रयाग), पृ० १७।

विविध बोलियो के कारण उनकी भाषा के स्वरूप मे अतर का पड जाना स्वाभाविक था। दूसरे, उनके अधिकतर अशिक्षित अथवा अर्द्ध शिक्षित रहने के कारण उनकी भाषा का सुव्यवस्थित रूप मे प्रयुक्त होना भी सभव न था। इसके सिवाय सत लोग अपनी भाषा से अधिक उसमे व्यक्त किये जाने वाले भाव को ही महत्त्व दिया करते थे। इस कारण, उनके विभिन्न प्रयोगो मे असावधानतावश कई प्रकार की त्रुटियाँ भी आ जाया करती थी। फिर, सत लोग भ्रमणशील होने के कारण जहाँ कही भी जाते थे, वहाँ की जनता के प्रति कुछ उपदेश देते समय अथवा कम-से-कम वहाँ के अन्य सतो के साथ सत्सग करने के अवसरो पर उन्हे स्थानीय भाषा का भी कुछ-न-कुछ व्यवहार करना पड जाता था। कई सतो की भापा मे विविधता के आ जाने का एक यह भी कारण जान पडता है कि उन्होने कभी-कभी जान-बूझ कर ऐसा किया है। उदाहरण के लिए सत सुन्दरदास ने अपनी रचनाओ को कभी-कभी पजाबी, गुजराती अथवा पूरबी भाषाओ मे भी लिखने की चेष्टा की है। इन सतो की भाषा के शुद्ध रूप ठहराने मे भी एक कठिनाई इस कारण पड जाती है कि इनमे जितने लोग बहुत प्रसिद्ध हो गए है, उनके भिन्न भाषा-भाषी अनुयायियो ने उनकी रचनाओ के स्वरूप को मनमाने ढग से बदल भी दिया है। इससे उनकी प्रामाणिकता मे कभी-कभी पूरा सदेह तक होने लगता है तथा उनके मौलिक रूप का निश्चय करना नितात कठिन प्रतीत होने लगता है। यह कठिनाई उन सत कवियो की रचनाओ के विषय मे और भी अधिक बढ जाती है जिनका सम्बन्ध केवल मौखिक परपरा से रहा है।

सतो की रचनाओ मे प्रयुक्त भाषा को, इसी कारण, बहुत-से लोग एक प्रकार की खिचडी या सधुक्कडी भाषा का नाम दे दिया करते है। उनके व्याकरण, पिंगल वा परपरा के बन्धनो से प्राय मुक्त रहने के कारण, उन्हे उचित महत्त्व देते नही जान पडते। परन्तु सतो की भापा पर गभीरतापूर्वक मनन करने के विचार का केवल इसी-लिए परित्याग कर देना कि उसमे बहुत कुछ समिश्रण हो गया है और वह किन्ही निश्चित और प्रचलित नियमो का अनुसरण नही करती, किसी उर्वर क्षेत्र के लाभो से वचित रह जाने के समान है। भाषाविज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान के अन्वेषको के लिए तो यह विपय मनोरजक होने के साथ ही महत्त्वपूर्ण भी हो सकता है। सतो का जीवन सदा निष्कपट तथा छलहीन रहा और उनकी विचारधारा का मूल स्रोत उनकी गहरी स्वानुभूति से संलग्न था। अतएव जो कुछ भी भाव उन्होने व्यक्त किये, वे प्राकृतिक निर्झर-धारा की भाँति फूटकर स्वाभाविक साधनो द्वारा ही प्रकट होते दीख पडे। सतो ने सर्वप्रथम स्वभावत उसी माध्यम को स्वीकार किया जिसमे वे बचपन से अभ्यस्त थे अथवा जिससे उनके अनुयायी पूर्णत परिचित जान पडे। उसका भी प्रयोग उन्होने भरसक किसी अकृत्रिम एव उपयुक्त रूप मे ही करने की चेष्टा की। उन्होने साधारण-से-साधारण कोटि के प्रतीको के प्रयोग किये, अति प्रचलित मुहावरो और लोकोक्तियो से काम लिया। अपने अत्यन्त गम्भीर नियम का प्रतिपादन करते समय भी अपनी उसी भाषा का व्यवहार किया जिस पर उनका कुछ अधिकार रहा। आवश्यकता के अनुसार उनके कथनो मे अपरिचित शब्दो के भी प्रयोग हो जाते थे जिन्हे वे अपने रग मे रँग लेते थे। गम्भीर भावो की अभिव्यक्ति बहुधा अपूर्ण वाक्यो वा वाक्याशो मे ही हो जाया करती थी जिन्हे वे पर्याप्त समझते थे। फिर भी उन्होने उन्हे जान-बूझ कर न तो विकृत या अगहीन बनाया, न किसी तुक या यति की मर्यादा-रक्षा के फेर मे पडकर, अथवा किसी शब्द के अर्थ मे दुरूहता लाने के लिए उसे गढ-छोल कर उन्होने कोई अपूर्व रूप ही

प्रदान किया। सतो की अभिव्यक्तियो के पीछे जैसे आनन्द का कोई उत्स काम करता हुआ प्रतीत होता है। इस कारण उनके अल्हड प्रयत्न भी कुछ अनोखे परिणाम प्रकट करते दीख पडते है। इस प्रकार उनके टूटे-फूटे शब्दो तथा अटपटी बानियो मे भी हमे स्वाभाविकता की शक्ति और अकृत्रिमता के सौन्दर्य का आभास होने लगता है जिनका अन्यत्र सुलभ होना किसी सयोग की ही बात हो सकती है।

सत-काव्य के रचयिताओ की भाषा पर विचार करना हमे पहले कतिपय भाषा-क्षेत्रो के ही आधार पर अधिक युक्ति-सगत प्रतीत होता है। ऐसी प्रवृत्ति होती है कि कबीर साहब, रैदास, बुल्ला, गुलाल, भीखा, धरनी, शिवनारायण, कमाल, दरिया, किनाराम आदि को भोजपुरी क्षेत्र मे रख कर मलूकदास, जगजीवन, दूलन, भीपन, पलटू आदि को अवधी क्षेत्र का मान कर, गुरु नानक, गुरु अगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन, गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्द, बुल्लेशाह, फरीद, बाबालाल, गरीबदास आदि को पजाबी क्षेत्र का निवासी समझकर, दादू, रज्जब, सुन्दर-दास, रामचरण, पीपा, आनन्दघन, भीपजन, वाजिद, धन्ना, बषना, दीनदरवेश आदि को राजस्थानी क्षेत्र मे उत्पन्न जानकर तथा इसी प्रकार तुलसी साहब, शिवदयाल, साल-ग्राम, यारी, बावरी आदि को ब्रजभाषा और खडीबोली के क्षेत्र से सम्बद्ध मानकर चले और शेप मे से भी चरणदास और उनकी शिष्याओ को मेवाती क्षेत्र तथा सिगाजी को नीमाडी क्षेत्र का समझ कर उसकी भाषाओ मे अन्तर ढूँढ निकाले। परन्तु यह कार्य उतना सरल नही है जितना ऊपर से दीख पडता है। जितनी ही दूर हम इस गहन वन मे प्रवेश करते जाते है, उतनी ही अधिक कठिनाइयाँ हमारे सामने आती जाती है। अन्त मे हमे जान पडता है कि सतो की भाषा कम-से-कम शब्द-भडार एव वर्णन-शैली के अनुसार मूलत एक है। क्रियापद, सयोजक वा कारक-चिह्न सबधी जो कुछ अन्तर दीख पडते है, वे वस्तुत उतने स्पष्ट एव निश्चित नही है जिनके आधार पर हम उसे भिन्न-भिन्न वर्गो मे विभाजित कर सके। इसके सिवाय एक ही कबीर साहब की रच-नाओ को कभी हम 'आदिग्रन्थ' के पजाबी रूप मे पाते है तो 'कबीर ग्र थावली' के अन्त-र्गत राजस्थानी वेशभूपा मे देखते है। एक तीसरे सग्रह मे वे ही रचनाएँ अवधी अथवा भोजपुरी तक के क्रियापदो से सयुक्त होकर सामने आती है। इसी प्रकार एक ओर जहाँ अवधी क्षेत्र के पलटू साहब तथा बघेली क्षेत्र के धर्मदास की कुछ रचनाओ को हम भोज-पुरी मे पाते है, वहाँ भोजपुरी क्षेत्र के कमाल के कुछ पदो को खडीबोली तथा दूसरो को मराठी से प्रभावित राजस्थानी मे देखते है।

एक बात जो कई प्रसिद्ध सतो की रचनाओ मे विशेष रूप से लक्षित होती है, वह फ़ारसी भाषा के शब्दो एव क्रियापदो तक के प्रयोग है जो कभी-कभी स्वतन्त्र रूप से, किन्तु अधिकतर उर्दू भापा के साथ मिश्रित रूप से मिलते है। कबीरदास की रचनाओ के सग्रह-ग्रथ 'कवीर ग्र थावली' का २५७वाँ पद तथा उसी का २५८वाँ पद भी जो 'आदिग्र थ' मे भी रागुतिलग के शीर्पक से उनका प्रथम पद होकर आया है, फारसी भापा मे रचित ऐसे पदो के उदाहरण मे दिये जा सकते है। इसी प्रकार दादूदयाल के पदो के सग्रह मे से उसका ६१वाँ पद तथा उसमे सगृहीत कम-से-कम १६ साखियाँ, 'मलूकदास की वानी' का २१वाँ सवद, धरनीदास का 'अलिफनामा', पलटू साहव की कुडलियाँ (सं० २१५ और २५८) तथा 'रैदास जी की वानी' का ६०वाँ पद भी ऐसे ही उदाहरणो मे दिये जा सकते है। पता नही ये सभी सत फारसी भाषा से अभिज्ञ भी

थे या नही और यदि उससे उन्हे कुछ परिचय भी था तो क्या वे पद्य-रचना भी कर सकते थे ? उर्दू भापा के क्रियापदो के साथ-साथ फ़ारसी, अरबी एव तुर्की भाषा के शब्दो के प्रयोग कर ले जाना और बात है, पर फारसी भाषा के क्रियापदो के भी शुद्ध प्रयोग जहाँ-जहाँ पर उक्त उदाहरणो मे मिलते है, वहाँ इस विपय का प्रश्न एक समस्या का रूप ग्रहण कर लेता है। सतो मे बहुत कम ऐसे थे जो फारसी भाषा का पूर्ण ज्ञान रखते थे और जो इसके माध्यम से कविता करने मे भी सिद्धहस्त थे।

सतो की बहुत-सी रचनाएँ फारसी के अतिरिक्त गुजरानी, मराठी, सिंधी, सस्कृत आदि मे भी लिखी गई पायी जाती हैं। ऐसे सतो मे दादूदयाल का नाम विशेप रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होने इस प्रकार की पूरी-पूरी रचना को ही कभी-कभी वैसा रूप दे दिया है। उनकी कुछ गुजराती, पजाबी एव मिधी भापा की रचनाएँ सुन्दर हुई है, किन्तु उनकी सस्कृत रचनाओ मे कोरी सधुक्कडी सस्कृत ही दीखती है। सस्कृत रचनाएँ केवल सुन्दरदास की ही शुद्ध कही जा सकती है, किन्तु वे सख्या मे आधे दर्जन से भी अधिक न होगी। सस्कृत मे लिखने का अभ्यास कुछ अन्य सतो ने भी थोडा-बहुत किया, किन्तु उनके समान कोई भी सफल नही हुआ है। पंजाबी भापा वाले क्षेत्र के सत कवियो ने जो रचनाएँ की है, उन पर अरबी, फारसी, तुर्की, लहँदा एव पश्तो तक का प्रभाव प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। उसी प्रकार ब्रजभाषा एव भोजपुरी क्षेत्र के सतो की रचनाओं मे सस्कृत के तत्सम एव तद्भव शब्दो की भरमार है। सत नामदेव एव त्रिलोचन की रचनाओ पर मराठी की छाप उतनी अधिक नही है जितनी सिंगाजी की नीमाड़ी रचनाओ पर लक्षित होनी है। इसका कारण कदाचित् यही हो सकता है कि पहली रचनाओ का प्रचार उत्तरी भारत की ओर अधिक रहता आया हैं। सत जयदेव के एक उपलब्ध पद मे जो सस्कृत-प्रभावित शैली दीख पडती है, वह उनके कवि जयदेव होने का भी समर्थन करती है।

सतो मे से लगभग ८० प्रतिशत की भापा व्याकरण के नियमानुसार अशुद्ध ठहरती है। जिन लगभग २० प्रतिशत वालो की भापा अधिक शुद्ध एव सुधरी पायी जाती है, उनकी रचनाओ के भी पाठभेद मे बहुधा शका उत्पन्न हो जाती है। वास्तव मे एकाध को छोडकर किसी भी सत की पूरी-पूरी रचनाओ का प्रामाणिक सस्करण अभी तक नही निकला है। प्रकाशित सस्करणो के सम्पादको ने अब तक न तो अधिक हस्त-लिखित प्रतियो के विषय मे पूरी खोज की है, न ऐसी प्रतियो की परस्पर तुलना कर उसके आधार पर उचित निर्णय तक पहुँचने का कष्ट ही उठाया है। हस्तलिखित प्रतियाँ भी बहुधा ऐसे व्यक्तियो द्वारा लिखी पायी गई है जिन्हे या तो आवश्यक ज्ञान न था अथवा जिन्होने मूल रचयिता के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने अथवा पाडित्य-प्रदर्शन करने के लिए ही पाठो मे मनमाने परिवर्तन तक कर दिये है। किसी सत की रचना के मूल एव प्रामाणिक पाठ का निर्णय तभी सम्भव है जब कि इसके लिए प्रयास करने वाले व्यक्तियो को भापा-विषयक ज्ञान के अतिरिक्त उसके वास्तविक मत एव विचारधारा का भी पूरा परिचय मिल चुका हो। उसमे सहृदयता हो तथा जिसकी कल्पना वा अनुमान करने की शक्ति उसकी कुशाग्र बुद्धि के कारण कही उससे औचित्य का उल्लघन न करा दे। सत लोग रूढ सस्कारमुक्त स्वतन्त्र विचारो के पोषक और निर्भीक अवश्य थे, किन्तु वस्तुस्थिति से वे कभी दूर भी नही जाना चाहते थे। उन्होने अपने भावो को यथावत् और उपयुक्त शब्दो मे व्यक्त करते रहने की निरन्तर चेप्टा की है। यदि वे कही-कही इसमें असफल जान पड़ते है और उनकी भाषा एव शैली कहीं-

कही सदोप दीख पडती हैं तो इसका कारण सम्भवत यही हो सकता है कि वे कभी-कभी भावावेश मे रहा करते थे और अपनी भापा से कही अधिक अपने भावो पर ही ध्यान केन्द्रित रखते थे। उनमे अधिक सख्या ऐसे लोगो की ही थी जो प्राय अशिक्षित या अर्द्ध शिक्षित कहलाते है और जो इसी कारण, साहित्यशास्त्रीय काव्य-रचना-पद्धति मे कभी दक्ष या कुशल कहलाने योग्य नही होते।

## उपसहार

सतो ने कवि-कर्म को कभी अधिक महत्त्व नही दिया। पद्य-रचना को उन्होने अपनी भावाभिव्यक्ति अथवा अपने मतप्रचार के लिए उपयोगी माध्यम के रूप मे अपनाया था। अत साधन से अधिक उसके साध्य की ओर ध्यान देना उनके लिए स्वाभाविक भी रहा। उनमे जो लोग निसर्गत प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, उन्होने बिना काव्य-कौशल मे निपुण हुए भी अच्छी कविताओ की रचना कर डाली। जो लोग उस कला मे सिद्धहस्त थे, उन्होने वैसी योग्यता के आधार पर अपने चमत्कार भी दिखलाये। परन्तु सतो मे बहुत बडी सख्या ऐसे लोगो की ही थी जिनमे उक्त दोनो मे से कोई भी विशेपता नही थी। उनकी पद्य-रचना मे इसी कारण, टकसाली काव्य-सौदर्य अथवा भापा की सरसता का पता लगाना उचित नही कहा जा सकता। सतो मे से कबीर साहब को हिन्दी के प्रतिभाशाली कवियो मे स्थान दिया जाता है। सुन्दरदास की गणना काव्य-कला के मर्मज्ञ कवियो मे की जाती है। इनमे से भी, प्रथम की योग्यता पर विचार करते समय अधिकतर उनकी रचनाओ की लोकप्रियता पर ही विशेप ध्यान दिया जाता है। दूसरे की प्रशसा उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा की शुद्धता एव छन्दो की नियमानुकूलता पर ही निर्भर समझी जाती है। सन्तो मे ये दोनो एक प्रकार से अपवाद-स्वरूप माने जाते है। इन्हे छोड शेप की इस विपय मे बहुत कम चर्चा की जाती है।

ऐसे निर्णय का एक प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि काव्य के बहु-स्वीकृत लक्षणो मे जो बाते विशेष रूप से आवश्यक समझी जाती है, वे उसकी रचनाओ मे बहुत कम देखने को मिलती है। काव्य-सौदर्य बहुधा उसकी भापा की सजावट और वणन-शैली के आकर्पण मे ही ढूँढा जाता है। जिस रस की अभिव्यक्ति को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है, वह शृगाररस है और जिसे 'रसराज' तक की उपाधि दे दी जाती हैं। इस रस का महत्त्व हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है। उसके 'वीरगाथाकाल' मे जिस समय वीररस की कविताओ की रचना हो रही थी, इस रस को उसकी वरावरी का स्थान मिल जाया करता था। भक्तिकालीन सगुणोपासक या मधुरोपासक कवियो के आने पर भी उनके इष्टदेव राधा-कृष्ण एव सीता-राम के प्रेम-भाव को इतनी प्रधानता मिली कि इसका महत्त्व एक बार और भी बढ गया तथा शातरस उसके सामने बहुत कुछ फीका-सा पड गया। फलत रीतिकाल तक आते-आते प्राय शृगार-ही-शृगार दीख पडने लगा और वही सच्चे काव्य का निर्णायक अग-सा बन बैठा। इसी प्रकार हमारे साहित्य-मर्मज्ञो की मनोवृत्ति को शृगारिक रूप देने मे मध्य-कालीन सस्कृत-काव्य का भी हाथ समझा जा सकता है। हमारे साहित्यिक बहुत अशो तक उन तत्कालीन सस्कृत ग्रन्थो के भी ऋणी कहला सकते है जो साहित्यशास्त्र के नाम द्वारा अभिहित किये जाते है। शातरस का समुचित आस्वादन आध्यात्मिक मनोवृत्ति वाले ही सहृदय व्यक्ति कर सकते है जो उन साहित्यिको मे बहुत कम पाये जाते है। ऐसे

लोगो की दृष्टि मे कुछ अन्य सत भी कवि कहलाने योग्य है। कबीर साहब की भाँति प्रतिभाशाली अथवा सुन्दरदास के समान कलाकार न समझे जाने पर भी नामदेव, रैदास, नानक, दादू, रामदास, हरिदास, जगजीवन, रज्जब, धर्मदास, धरनी, मलूक, अर्जुन, गुलाल और पलटू जैसे एक दर्जन से अधिक सत इस प्रकार के मिलेगे जिनके हृदयो की कोमलता, भावो की गम्भीरता एव भाषा की सरसता उपेक्षणीय नही कही जा सकती। किन्तु जिनकी न्यूनाधिक चर्चा कदाचित् उनके परम्परागत मानदण्ड के अनुसार योग्य न पाये जाने के ही कारण नही की जाती। उनकी भली लगने वाली पक्तियो को बहुधा हृदयोद्गार अथवा सूक्ति कहकर ही टाल दिया जाता है जिसे उपर्युक्त दूसरी मनोवृत्ति वाले उतना न्यायसगत नही समझते।

परन्तु आधुनिक युग मे परम्परागत रीतिकालीन कविता के प्रति इधर कुछ उदासीनता भी प्रकट की जाने लगी है। भापा की कोरी सजावट एव छन्दोनियम के परिपालन को विशेष महत्त्व देने की परिपाटी प्राय लुप्त-सी होती जा रही है। गत कई वर्पो के छायावादी वातावरण मे निजी आन्तरिक भावो की अभिव्यक्ति को पूरा प्रश्रय मिला था। अब उसकी प्रतिक्रिया मे उठने वाली प्रगतिवादी लहर ने काव्य-कला का वास्तविक उद्देश्य जनकल्याण को ठहराकर शृगारिकता को एक प्रकार से उपेक्षित बना डाला है। प्रगतिवादी कवि यथार्थवाद, साम्यवाद तथा उपयोगितावाद का पोपक है। वह रूढिवादिता का विरोधी एव विचार-स्वातत्र्य का प्रबल समर्थक भी है। जनता मे वह आत्म-विश्वास एव आशावादिता का भाव भरना चाहता है। उसे अपनी वर्तमान दशा को पूर्ण रूप से परिवर्तित कर सच्चा मानव बन जाने के लिए आमन्त्रित भी करता है। सत लोग इन बातो मे उससे कुछ भी कम नही रहे है और जो कुछ भी अन्तर समक्ष पडता है, वह केवल दोनो के दृष्टि-भेद का परिणाम है। प्रगतिवादी कवि जहाँ उक्त सभी बातो पर आर्थिक एव राजनीतिक दृष्टियो से विचार करता है, वहाँ सन्त कवि उन्हे किसी आध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा आत्मनिरीक्षण से ही देखते आये है। आजकल के कवि जहाँ वर्ग-सघर्ष के उपयुक्त भावो को प्रदर्शित करना चाहते है, वहाँ वे लोग सदा अभिन्नतामूलक निर्वैर भाव को हो प्रश्रय देते आये है। प्रतिकूल परिस्थिति मे जहाँ प्रगतिवादी कवि समाज-विश्लेषण का सहारा लेता है, वहाँ सन्त कवि आत्म-निरीक्षण का आश्रय लेता है। वास्तव मे प्रगतिवादी कवि सामाजिक क्रान्ति मे विश्वास करता है और वह राजनीतिक उथल-पुथल के आधार पर ही व्यक्ति को भी अपने विकास का अवसर देना चाहता है। परन्तु सत कवि इसके विपरीत केवल व्यक्तिगत कायापलट मे आस्थावान है। उसी के आधार पर महामानव की प्रतिष्ठा कर कल्याणकारी उच्च सामाजिक स्तर के निर्माण द्वारा भूतल पर स्वर्ग ला देने का स्वप्न देखता है।

प्रगतिवादी कवि अपने जिस उद्देश्य की पूर्ति सामाजिक प्रभुत्व के बल पर करना चाहता है, उसी की सिद्धि सन्त कवि व्यक्तित्व के पूर्ण विकास द्वारा देखना चाहता है। इसीलिए वह अपने ढग का उपदेश भी दिया करता है। उदाहरण के लिए कबीर साहब का कहना है, "मैने विवेक अर्थात् किसी बात के भले या बुरेपन अथवा सत् या असत् का स्वय निर्णय कर लेने की शक्ति को अपना गुरु बनाया है।"[1] वे इसी कारण उपदेश भी देते है, "परमात्मा के नियमो का अन्तिम ज्ञान हो जाना सम्भव नही,

---

१ 'कहु कबीर मै सो गुरु पाया जाका नाउ विवेको (आदिग्रथ, सूही ५)।

अतएव तुम अपने अनुमान के ही बल पर अपने जीवन का कार्यक्रम निर्धारित करो।"[1] मत दूलनदास ने भी इसी प्रकार अपने निजी मन की शक्ति पर ही निर्भर रहने का उपदेश दिया है और कहा है, "सत्य के विषय मे वेदो एव पुराणो ने क्या कहा है, कुरान की किताब मे क्या लिखा है अथवा पडित और काजी क्या कहते है, इनका कुछ भी महत्त्व नही है, यह बात निजी अनुभूति द्वारा प्रतीति बँधा देने की है।"[2] अपने जीवन-सिद्धान्त को अपने आप स्थिर करने तथा उसकी अनुभूति के बल पर सदा दृढ रहने वाले चरित्रवान व्यक्ति को मलूकदास ने सर्वश्रेष्ठ ठहराया है और कहा है, "हिंदू और मुसलमान सभी परमेश्वर की वदना किया करते है, किन्तु परमेश्वर स्वय उस महापुरुष की वदना करता है जिसका ईमान दुरुस्त है, अर्थात् जिसके चित्त की सद्वृत्ति मे किसी प्रकार का विकार नही आ पाता।"[3]

आत्म-निर्भरता एव चरित्रवत्ता की महत्ता की ही भाँति सतो ने समानता के भाव का भी वर्णन उसी प्रकार के दृष्टिकोण से किया है। कबीर साहब का कहना है, "जिस समय मैने अपने और पराये सभी को एकसमान जान लिया तभी मुझे निर्वाण की प्राप्ति हुई।"[4] वे इसी कारण वेदो और कुरानादि किताबो, दीन (धर्म) तथा दुनिया (सासारिकता) एव पुरुप-स्त्री के बीच दीख पडने वाले अतर को एक बहुत बडी अडचन उपस्थित कर देने वाले भेदभाव का कारण बतलाते है। वे कहते है, "जब एक ही बूँद, एक ही मलमूत्र और एक ही चाम तथा गूदे (अथवा यो कहिए कि जब) एक ही ज्योति से सभी कोई उत्पन्न हुए है तो ब्राह्मण एव शूद्र का यह विचित्र भेद कहाँ से आ जाता है?"[5] दादूदयाल ने इस प्रकार के भेदभाव की दार्शनिक व्याख्या करते हुए बतलाया है, "जब पूर्ण ब्रह्म की दृष्टि से विचार किया जाता है तो सर्वात्म-भाव की सिद्धि होती है, किन्तु जब काया अर्थात् प्रत्येक इकाई के विचार से देखते है, उसी वस्तु

---

१. 'करता की गति अगम है तू चलि अपणै उनमान' (क० ग्रं०, सा० ४, पृ० १८)।

२ 'वेद पुरान कहा कहेउ, कहा किताव कुरान।
पडित काजी सत कहु, दूलन मन परबान।' दूलनदास की बानी, सा० १३, पृ० ३६।

३ 'सब कोउ साहब बन्दते, हिन्दू मूसलमान।
'साहेब तिनको बन्दता, जाका ठौर इमान।' मलूकदास की बानी, सा० ५६, पृ० ३७।

४ 'आया पर सब एक समान, तब हम पाया पद निरवान', क० ग्रं०, पद, १६७, पृ० १४४।

५ 'ऐसा भेद विगूचन भारी।
वेद कतेव दीन अरु दुनिया, कौन पुरिष कौन नारी॥ टेक॥
एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोति थे सब उतपना, कौन बम्हन कौन सूदा।' क० ग्रं०, पद ५७, पृ० १०६।

मे अनेकता का भी भान होने लगता है।" रज्जबजी ने इसीलिए "समता-ज्ञान के विचार से सभी कुछ को पाँचो तत्त्वों का विस्तार मात्र ही"[२] मान लिया है। वे सबको एक भाव मे ही देखना चाहते हैं और उनका कहना है कि इसी कारण, हमें चाहिए, "सभी प्राणियों की सेवा हम ठीक उसी निष्काम भाव के साथ किया करें जिस प्रकार धरती, आकाश, सूर्य, चंद्र और वायु किया करते हैं।"[३]

जो हो, ये संत कवि कम-से-कम गत पाँच सौ वर्षों से भी अधिक समय से एक विशिष्ट विचारधारा एवं निश्चित कार्यक्रम के पोषक और समर्थक बने रहते आये हैं। अपने जीवन में उनका प्रतिनिधित्व करने की भी इन्होंने चेष्टा की है। इनकी बातें नितान्त नवीन नही हैं और इनका अन्य व्यक्तियों द्वारा पथप्रदर्शन किया जाना भी सिद्ध हो सकता है। फिर भी इनकी कुछ अपनी भी महत्त्वपूर्ण देन है जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। इनकी एक अपनी संत-परंपरा है जो आज तक किसी-न-किसी रूप से वर्तमान है और जिसमे गिने जाने वाले योग्य संतो की बानियाँ सर्वथा संग्रहणीय हैं। इस परंपरा के सुदीर्घ काल को यदि हम चाहे तो कतिपय विशेषताओं के अनुसार निम्नलिखित चार युगो में विभाजित कर सकते हैं। उसी के अनुसार उनकी रचनाओं का समुचित मूल्यांकन भी कर सकते हैं। ऐसी दशा में प्रत्येक संत अपने मौलिक सिद्धांतो का प्रतिनिधित्व करता हुआ अपने-अपने समय की विशेषताओं का भी परिचायक जान पड़ेगा और 'प्रकृति एवं परिस्थिति' के तुलनात्मक अध्ययन का वह इस प्रकार, एक अवसर भी उपस्थित कर सकेगा।

(१) प्रारम्भिक युग (सं० १२००-१५५०) जिसके जयदेव से लेकर धन्ना भगत तक के संतो ने अपने उपदेशो का प्रचार स्वतन्त्र एवं व्यक्तिगत रूप मे ही किया और जिनकी रचनाएँ एक विशेष ढग की ही होती रही।

(२) मध्ययुग (पूर्वार्द्ध सं० १५५०-१७००) जिसके जगन्नाथ से लेकर मलूक-दास तक के संतों ने संतमत का प्रचार अधिकतर पंथो के संगठन द्वारा किया और जिनकी रचना-शैली पर क्रमशः बाहरी प्रभाव भी पड़ने लगे।

(३) मध्ययुग (उत्तरार्द्ध सं० १७००-१८५०) जिसके बाबा लाल से लेकर रामचरन तक के संतों में साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति अधिक उग्र हो गई थी तथा जिनकी रचनाएँ रीतिकालीन शैलियो द्वारा भी प्रभावित हुई थी।

(४) आधुनिक युग (सं० १८५० से आगे) जिसके रामरहसदास से लेकर स्वामी रामतीर्थ तक के संतो में संतमत के पुनरुद्धार की प्रवृत्ति जगी और जिन्होंने विश्व-कल्याण के उद्देश्य से भी अपने विचार प्रकट किये।

---

१. 'जब पूरण ब्रह्म विचारिये, तब सकल आतमा एक।
काया के गुण देखिये, तो नाना वरण अनेक ॥' दादूदयाल की बानी सा० १३०, पृ० २०२-३।

२. 'रज्जब समता ज्ञान विचारा। पंचतत्त्व का सकल पसारा। रज्जबजी की बानी, सा० ७१, पृ० २०१।

३. 'निहकामी सेवा करै, ज्यू धरती आकास ॥
चंद सूर पाणी पवन, ज्यूं रज्जब निजदास ॥' वही, सा० २२. पृ० ३५३।

# १. प्रारम्भिक युग

## (स० १२००—स० १५५०)

### सामान्य परिचय

सत-परम्परा का प्रथम युग, वस्तुत , सत जयदेव से आरम्भ होता है और उनके पीछे दो सौ वर्षों तक के सत अधिकतर पथ-प्रदर्शको के ही रूप मे आते हुए दीख पडते है। विक्रम की पद्रहवी शताब्दी मे कबीर साहब का आविर्भाव हुआ जिन्होने सर्वप्रथम सतमत के निश्चित सिद्धान्तो का प्रचार विस्तार के साथ एव स्पष्ट शब्दो मे आरम्भ किया। उनके समसामयिक सतो द्वारा उनके उक्त कार्य मे प्रोत्साहन भी मिलने लगा, किन्तु उनके कार्यक्रम मे कोई व्यवस्था नही थी। सतमत का सगठित एव सुव्यवस्थित प्रचार उस समय से आरम्भ हुआ जब गुरु नानकदेव (स० १५२६-१५९६) जैसे कुछ सतो ने इसके लिये आगे चलकर पृथक् वर्गो का निर्माण भी आरम्भ कर दिया। इस प्रकार यह युग स० १५५० के लगभग समाप्त हो गया और आगे का समय मध्ययुग के रूप मे दीख पडने लगा।

प्रारम्भिक युग के प्रथम दो सौ वर्षो के अन्तर्गत केवल थोडे से ही सत हुए। सत जयदेव के समय तक महायानी बौद्ध धर्म के वज्रयान, कालचक्रयान एव सहजयान जैसे सम्प्रदायो का आरम्भ हो चुका था और कम-से-कम पूर्वी भारत मे उनकी अनेक विशिष्ट बातो का समावेश क्रमश स्थानीय वैष्णव धर्म मे होता जा रहा था। भारत के पश्चिमी एव दक्षिणी भागो मे भी उनका स्थान तब तक नाथ सम्प्रदाय ने ले लिया था और उधर के अन्य सम्प्रदायो को भी वह धीरे-धीरे प्रभावित करता जा रहा था। सत जयदेव वैष्णव धर्म के अनुयायी थे और उनका सम्बन्ध विशेषत. उडीसा एव बगाल प्रान्तो से ही था। फिर भी जनश्रुति के अनुसार उन्होने ब्रजमण्डल से लेकर जयपुर की ओर तक पर्यटन भी किया था जहाँ से लौटते समय मार्ग मे उन्हे डाकुओ ने लूटा था। इस प्रकार, हो सकता है कि ब्रजमण्डल के तत्कालीन निम्बार्क सम्प्रदायी वातावरण का भी उन पर कुछ-न-कुछ प्रभाव पडा हो तथा उक्त सहजयान के प्रमुख केन्द्र उत्कल क्षेत्र से सम्बद्ध रहने के कारण, उनकी वैष्णवी भक्ति ने बौद्धमत-गर्भित रूप भी धारण कर लिया हो। पश्चिमी प्रान्तो के निवासी सत बेनी का तथा दक्षिणी भारत के सत नामदेव का भी, इसी प्रकार, नाथ-सम्प्रदाय की कई बातो द्वारा प्रभावित हो जाना कोई असभव बात नही थी। गोरखनाथ के साथ वारकरी सम्प्रदाय के सतो का सम्बन्ध तो उसके प्रमुख अनुयायियो द्वारा भी स्वीकृत किया जा चुका है।

जान पडता है कि वारकरी सम्प्रदाय का प्रचार अधिक बढ जाने के साथ-साथ उसका प्रधान केन्द्र पढरपुर का भी महत्त्व बढता गया। जिस प्रकार उडीसा की पुरुषोत्तमपुरी तथा उत्तर प्रदेश के ब्रजमण्डल की ओर भगवद्भक्तो की तीर्थयात्रा होती आ रही थी, उसी प्रकार उनका एक लक्ष्य उस काल से पढरपुर भी हो गया। अतएव, किनकेड एवं पारसनिस जैसे इतिहासज्ञो का अनुमान है, "मुस्लिम सत कबीर साहब भी पढरपुर की ख्याति के कारण उसकी ओर आकृष्ट हुए थे।" हो सकता है कि उन्होने

उसकी तीर्थयात्रा की थी। जो हो, संतमत को कबीर साहब द्वारा सबसे अधिक जीवन-शक्ति मिली और उनके हाथो ही सर्वाधिक बल ग्रहण करने के कारण वह भविष्य मे भी प्रचलित हो सका। कबीर साहब एव उनके समसामयिको की उपलब्ध रचनाओ के अन्तर्गत हम प्राय उन सभी बातो का समावेश पाते है जो संतमत का आधार-स्वरूप समझी जाती है। इनको उनके पीछे आने वाले सतो ने अधिकतर पुष्पित एवं पल्लवित भर किया है। इसी कारण कबीर साहब के प्रति उनके परवर्ती लगभग सभी सतो ने अपनी आस्था एवं श्रद्धा प्रकट की है और उन्हे आज तक 'आदि संत' कहने तक की परिपाटी चली आती है। उनके पूर्ववर्ती संतो की गणना भी, इसी आधार पर, केवल पथ-प्रदर्शको के रूप मे ही की जाती है और उन्हे उतना महत्त्व नही दिया जाता।

प्रारम्भिक युग के उपर्युक्त प्रथम दो सौ वर्षो वाले सतो की उपलब्ध रचनाओ मे जहाँ सगुणोपासना की प्रेरणा, बौद्ध एवं नाथ-पथीय साधनाओ का प्रभाव अथवा सत-मत की मूल बातो का केवल प्रसगवत् उल्लेख-सा ही दीख पडता है, वहाँ उसके पिछल डेढ सौ वर्षो वाले संतो की कृतियो मे सगुण एव निर्गुण से परे समझे जाने वाले परम-तत्त्व की मान्यता है। मानसिक साधना की ओर विशेष झुकाव है तथा कोरी भक्ति के साथ-साथ सदाचरण एवं लोक-व्यवहार के प्रति ध्यान देने की प्रवृत्ति भी विशेष रूप से लक्षित होती है। इसके सिवाय, उक्त प्रथम काल के सत जहाँ अधिकतर छिटपुट रूप मे ही दीख पडते है वहाँ पिछले काल के स्वामी रामानन्द आदि सतो का, काशी जैसे केन्द्र मे एक पृथक् वर्ग-सा भी बना दृष्टि-पथ मे आने लगता है। उसके भीतर अपने मत के प्रचार की अभिलाषा भी प्रतीत होने लगती है। इस दूसरे काल की रचनाएँ पूर्वकालीन सतो की उपलब्ध पंक्तियो से कही अधिक स्पष्ट, सरस, सुव्यवस्थित एव प्रभावपूर्ण है। प्रथम काल मे प्रचुर सुन्दर पदो के रचयिता जहाँ केवल सत नामदेव ही दीख पडते है, वहाँ दूसरे के मध्य मे ही, कबीर साहब एव रैदासजी जैसे कम-से-कम दो सत आ जाते है जिनकी कृतियाँ उच्चकोटि की कही जा सकती है। इनमे से प्रथम अर्थात् कबीर साहब की गणना हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कवियो तक मे की जाती है।

## संत जयदेव

सत जयदेव को प्रायः सभी लोग प्रसिद्ध काव्य 'गीतगोविन्द' का रचयिता कवि जयदेव मानते आए है जो सम्भवत 'पीयूष लहरी' नामक एकाकी नाटक के भी प्रणेता थे। इन्हे सेन-वंशी राजा लक्ष्मणसेन (स० १२३६-१२६२) का दरबारी कवि मानने की भी परम्परा चली आती है। इस मत वाले विद्वानो मे उनकी जन्मभूमि को वीर-भूम जिले (बगाल प्रान्त) का केंदुली गाँव माना है जो गंगा नदी से २८ कोस की दूरी पर बसा हुआ है। किन्तु कुछ अन्य लेखको के अनुसार यह स्थान वास्तव मे 'केंदुली सासन' गाँव है जो उडीसा प्रान्त मे पुरी के निकट किसी 'प्राची' नदी पर अवस्थित है। उनके उडिया होने का प्रमाण इस बात मे भी दिखलाया जाता है कि वहाँ के लोग इस कवि से बहुत अधिक परिचित जान पडते है। इस मत के अनुसार कवि जयदेव राजा कार्माणव (सं० ११९९-१२१३) तथा राजा पुरुषोत्तम देव (स० १२२७-१२३७) के समकालीन थे। इस प्रकार इन दोनो ही मतो के आधार पर हम इस कवि का जीवन-काल विक्रम की १३वी शताब्दी मे ठहरा सकते है। जयदेव के वशज अपने पूर्वजो को पजाब से सम्बद्ध बतलाते है। उनके अनुसार ये पजाब से ही उडीसा और बगाल मे आये थे। उडीसा का प्रान्त वैष्णव सम्प्रदाय की ही भाँति बौद्धो के वज्रयान एव सहजयान

सम्प्रदाय का भी एक प्रसिद्ध केन्द्र रह चुका है। जयदेव को सहजयान द्वारा प्रभावित भी कहते है। अतएव सम्भव है कि जयदेव उडीसा प्रान्त के ही मूल निवासी हो, किन्तु पीछे उनका कोई-न-कोई सम्बन्ध बगाल प्रान्त के साथ भी हो गया हो।

फिर भी शृगाररस-प्रधान 'गीतगोविन्द' काव्य तथा उसमे किये गए कला-प्रदर्शन के कारण कवि जयदेव एव सत जयदेव के एक ही व्यक्ति होने मे सदेह भी किया जा सकता है जब तक इसके लिए कोई स्पष्ट प्रमाण न उपलब्ध हो जाय। कुछ टीका-कारो ने उक्त काव्य मे आध्यात्मिक रहस्य खोज निकालने के यत्न अवश्य किये है, किन्तु उस भक्ति का उद्रेक जिसे संत कबीर साहब ने अपनी कुछ पक्तियो द्वारा सत जयदेव की विशेषता बतलायी है, 'गीतगोविन्द' का प्रधान विषय सिद्ध नही होता। कवि जयदेव तथा सत जयदेव दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति प्रतीत होने लगते है जिस कारण दोनो का दो भिन्न-भिन्न स्थानो तथा भिन्न-भिन्न कालो मे रहना भी सम्भव है।

सिखो के 'आदिग्रथ' मे सत जयदेव के दो पद सगृहीत है जिनमे से एक मे पडिताऊ भापा द्वारा भक्ति की प्रशसा की गई है और दूसरे का विषय कतिपय योग-सम्बन्धी बाते है जो नाथपथियो अथवा अन्य सतो की भाषा मे लिखी गई है। विषय की दृष्टि से दोनो ही पद सतमतानुकूल कहे जा सकते है और वर्णन-शैली के अनुसार पहला पद कवि जयदेव की भी कृतियो से मेल खाता है। पदो के पाठ, उक्त ग्रथ के अत-र्गत, पूर्णत शुद्ध नही जान पडते और उनके कई शब्द बहुत कुछ विकृत एव अस्पष्ट हो गए है।

## पद

### परमात्म भक्ति का उपदेश (१)

परमादि पुरुप मनोपिम, सत्ति आदि भावरत।
परमदभुत परिक्रिति पर, जदिचिति सरबगत ॥१॥
केवल रामनाम मनोरम, बदि अम्रित तत मइअ।
न दनोति जसमरणेन, जनम जराधि मरण भइअ ॥ रहाउ ॥
इछसि जमादि पराभय, जसु स्वसति सुक्रित क्रित।
भवभूतभाव समब्यिअ, परम प्रसनमिद ॥ २ ॥
लोभादि द्रिसटि परग्रिहु, जदि विधि आचरण।
तजि सकल दुहक्रित दुरमती, भजु चक्रधर सरण ॥ ३ ॥
हरिभगत निज निहकेवला, रिद करमणा बचसा।
जोगेन किं जगेन किं, दानेन किं, तपसा ॥ ४ ॥
गोविद गोविंदेति जपि नर, सकल सिधिपद।
जैदेव आइउ तमसफुट, भवभूत सरबगत ॥ ५ ॥

मनोपिम=अनुपम, अद्वितीय। सति रत=सत्यादिभावो से युक्त है। परक्रिति पर=प्रकृति वा मायादि से सर्वथा भिन्न है। जदि. सरवगत=जो अचित्य है और सबमे व्याप्त भी है। वदि मइअ=अमृत तत्त्वमय (जो रामनाम है उसे) स्मरण करो। न दनोति जसमरणेन=जिसके स्मरण से जन्म, जरा, कष्ट तथा मरण के भय नही सता पाते। इछमि . क्रित=यदि यमादि के ऊपर विजय की इच्छा रखते हो और यदि यश, कुशल (स्वसति=स्वस्ति) एव सत्कर्म भी तुम्हारा अभीष्ट है। भव मिद=यदि भूत,

भविष्य एव वर्तमान अर्थात् सर्वकाल मे समान रूप से रहने वाले (समव्यिअ=समाव्यय) अविनाशी परम प्रसन्न उस (परमात्मा) का पा लेना तुम्हारा ध्येय है। लोभादि दुरमती हे दुर्मति, जो लोभादि की दृष्टि है, जो परिग्रह (धन-सचय) का स्वभाव है और जो (जदि विधि=जो अविहित) आचरण है तथा जो दुष्कर्म है, उन सबका त्याग कर दो। हरिभगत वचसा=मन, वचन एव कर्म द्वारा हरि की निष्केवला अर्थात् अनन्य भक्ति को अपनाओ। जोगेन तपसा=योग, यज्ञ, दान अथवा तपश्चर्या सभी व्यर्थ है। सिधिपद=सभी सिद्धियो का अंतिम आधार (अथवा यदि 'पद=प्रद' हो तो 'देने वाला')। आइउ=कथन किया है। तम=उसको। सफुट=स्पष्ट शब्दो मे। अथवा (यदि आइउ+आया है हो तो)। तस+उसकी शरण मे। सफुट—पूर्ण रूप या प्रत्यक्ष रूप मे। भव गत=जो वर्तमान एव भूत मे सर्वत्र व्याप्त है।

## भीतरी साधना

चदसत भेदिआ, नादसत पूरिआ, सूरसत पोडसादतु कीआ।
अवलबलु तोडिआ, अचल चलु थपिआ,
अघडु घडिआ तहा अपिउ पीआ ॥१॥
मन आदि गुण आदि वषाणिआ।
तेरी दुविधा द्रिसटि समानिआ ॥रहाउ॥
अरधिकउ अरधिआ, सरधिकउ सरधिआ,
सललिकउ सललि समानि आइआ ॥
वदति जैदेउ जैदेवकउ रमिआ,
ब्रह्म निरवाणु लिवलीण पाइया ॥२॥

चदसत भेदिया=चद्र अथवा इडा नाडी अर्थात् बायी नाक द्वारा प्राणायाम करके कुभक की क्रिया की। नादसत पूरिया=नाद से, अर्थात् सभवत कुभक से भीतर लाये गाये श्वास द्वारा पूरक प्राणायाम की क्रिया की। सूर सतपोडसादतु कीआ=सूर्य अथवा पिंगला नाडी अर्थात् दाहिनी नाक द्वारा प्राणायाम करके रेचक की क्रिया की। (यहाँ पर 'पोडसा'=छोडिया और 'दतु'= दीक्षित अभ्यास के अर्थ मे प्रयुक्त समझे जा सकते है)। अवल तोडिया=इद्रियादि का बल तोडकर मै उनकी दृष्टि से निर्बल हो गया। अचल थापिआ=चचल चित्त को अचल एव स्थिर कर दिया। अघडु घडिआ= शरीरादि को अभूतपूर्व रूप मे परिवर्तित कर कायापलट कर दिया। अपिउ पीआ=जो कभी पिया न जा सका था, उस (अमृत) का पान किया। मन· वषाणिआ=मन आदि के व्यापारो एव गुण अर्थात् प्राकृतिक स्वभावादि के रहस्य का परिचय पाकर उनके कथन मे प्रवृत्त हुआ। तेरी समानिया=इस प्रकार तुम्हारी दुविधा वा भेदभाव भरी दृष्टि को एकत्व के भाव मे लीन करने के प्रयत्न किये। अरधिकउ अरधिआ=मैने आराध्य अर्थात् वस्तुत आराधना-योग्य परमात्मा की आराधना की। सरधिकउ सरधिया=मैने श्रद्धेय अर्थात् वस्तुत श्रद्धा के अधिकारी परमात्मा के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की। सललिकउ आइआ=जल का प्रवेश जल मे करा दिया अर्थात् मेरा जीवात्मा परमात्मा मे लीन हो गया। (दे० 'ज्यू जल मै जल पैसि न निकसै यू दुरि मिल्या जुलाहा'—कबीर)। जैदेवकउ पाइआ=जैदेव अर्थात् परमात्मा मे प्रवेश कर ब्रह्म पर्यन्त निर्वाण के भीतर विलीन हो गया।

## संत सधना

मत सधना, सभवत विक्रम की चौदहवी शताब्दी मे, किसी पश्चिमी प्रदेश मे उत्पन्न हुए थे और ये नामदेव के समकालीन थे। इनकी जाति कसाई की बतलायी जाती है और यह भी प्रसिद्ध है कि ये स्वय मारे हुए जीवो का मास नही बेचते थे। इन्हे जीवहिसा से घृणा थी, किंतु अपने पैतृक व्यवसाय का इन्होने त्याग भी नही किया था। इन्हे शालग्राम की मूर्त्ति का पूजने वाला तथा साधु-सेवक भी कहा जाता है। यह भी प्रसिद्ध है कि जगन्नाथपुरी की यात्रा इन्होने अनेक कष्टो को झेलते हुए की थी। इनका केवल एक पद 'आदिग्रथ' मे मिलता है जो इनके सरल हृदय का परिचायक है तथा केवल इसी के आधार पर इन्हे उच्चकोटि के सतो मे गिनने की परपरा बहुत दिनो से चली आती है। कुछ लोग इन्हे सेहवान (सिंध) का निवासी भी बतलाते है, परन्तु इसके लिए कोई पुष्ट प्रमाण देते नही जान पडते।

### पद

विनय

त्रिपकनिआ कै कारनै, इकु भइआ भेपधारी।<br>
कामारथी सुआरथी बाकी पैज सँवारी ॥१॥<br>
तव गुन कहा जगत गुरा, जउ करमु न नासै।<br>
सिंघ सरन कत जाईअै, जउ जंबुक ग्रासै ॥रहाउ॥<br>
एक बूंदु जल कारनै, चात्रिक दुखु पावै।<br>
प्रान गए सागरु मिलै, फुनि कामि न आवै ॥२॥<br>
प्रान जु थाके थिरु नही, कैसे बिरमावउ।<br>
बूडि मूए नउका मिलै, कहु काहि चढावउ ॥३॥<br>
मै नाही कछु हउ नाही, किछु आहि न मोरा।<br>
अउसर लज्जा राखि लेहु, सधना जनु तोरा ॥४॥

त्रिपकनिआ सवारी=राजकुमारी के साथ विवाह करने की इच्छा से जिस युवक बढई ने उसके अभीष्ट वर विष्णु भगवान् की भाँति चतुर्भुजी रूप धारण कर लिया था और शत्रु द्वारा भयभीत हो जाने पर फिर उन्हो भगवान् की शरण भी ली थी तथा उसे उन्होंने (भगवान् ने) पूरी सहायता प्रदान की थी। तव नासै=वैसे तुम्हारे शरणागत वत्सल के गुण अब क्या हो गए? प्रान.. बिरमावउ=अपने हार मानकर थके हुए प्राणो को किस प्रकार रोक रखूं। मैं मोरा=न तो मै ही, तुमसे पृथक् कुछ हूँ, न मेरे पास ही कुछ है और न जो कुछ मेरा कहा जा सकता है, वही वस्तुत मेरा है। अउसर लेहु=ऐसे विपम अवसर पर मै अपनी लाज बचाने के लिए तुम्हारी ही प्रार्थना करता हूँ।

## संत वेणी

सत वेणी के समय अथवा जीवन-घटनाओ का प्राय कुछ भी पता नही चलता। सिखो के पाँचवे गुरु अर्जुनदेव ने अपने एक पद मे इनका नाम लिया है जिस कारण ये उनके पीछे अर्थात् स० १६२०-१६६३ के इधर के नही कहे जा सकते। उक्त गुरु ने सत वेणी के तीन पदो को भी 'आदिग्रथ' मे सगृहीत किया था जिनकी भाषा वा विचारधारा के अनुसार ये पुराने ही ठहरते है। ये सभवत किसी पश्चिमी प्रात के ही

निवासी थे और नाथ-सम्प्रदाय के सिद्धातो या कम-से-कम उसकी शब्दावली से भली-भाँति परिचित थे। इनके विषय मे उपलब्ध सामग्री के आधार पर इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि ये विक्रम की चौदहवी शताब्दी मे वर्तमान थे और नाथ-मत द्वारा अधिक प्रभावित थे।

## पद

साधना-स्वरूप (१)

इडा पिंगुला अउर सुषुमना, वर्सहि इक ठाई।
वेणी सगमु तह पिरागु, मनु मजनु करे तिथाई ॥१॥

संतहु तहाँ निरजनु रामु है, गुरगमि चीन्है विरला कोइ।
तहा निरंजनु रमईआ होइ ॥रहाउ॥
देवसथानै किआ नीसाणी, तहँ वाजे सवद अनाहद वाणी।
तहँ चदु न सूरज पउण न पाणी, साषी जागी गुरमुषि जाणी ॥२॥

उपजै गिआनु दुरमति छीजै, अम्रित रस गगनतरि भीजै।
एसु कला जो जाणै भेउ, भेटै तासु परम गुरदेउ ॥३॥

दसम दुआरा अगम अपारा, परम पुरष की घाटी।
ऊपरि हाटु हाट परि आला, आले भीतरि थाती ॥४॥

जागतु रहै सु कवहु न सोवै, तीन तिलोक समाधि पलोवै।
वीज मंत्र लै हिरदै रहै, मनूआ उलटि सुन महि गहै ॥५॥

जागतु रहै न अलीआ भाषै, पाँचउ इद्री वसि करि राषै।
गुरकी साषी राषै चीति, मनु तनु अरपे क्रिसन परीति ॥६॥

कर पलव साषा वीचारे, अपना जनमु न जूऐ हारे।
असुर नदी का वधै मूलु, पछिम फेरि चडावै सूरु।
अजरु जरे सु निझरु झरै, जगनाथ सिउ गोसटि करै ॥७॥

चउ मुष दीवा जोति दुआर, पलू अनत मूलु विचकार।
सरव कला ले आपे रहै, मनु माणकु रतना महि गुहै ॥८॥

मसतकि पदमु दुआलै मणी, माहि निरंजनु त्रिभवण धणी।
पच सवद निरमाइल वाजे, ढुलके चवर संष घन गाजे।
दलि मलि दैतहु गुरमुषि गिआनु, वेणी जाचै तेरा नामु ॥९॥

पिरागु=प्रयाग तीर्थ। तिथाई=वही। साषी जागी=परिचय प्राप्त किया। एसु भेउ=इस युक्ति का जो रहस्य जान लेता है। घाटी=प्रदेश। हाट=वाजार, विशिष्ट स्थान। आला=ताखा। थाती=वास्तविक पूँजी। पलोवै=पिरो देवे। मनूआ गहै=मन को उलट कर शून्य मे स्थिर कर देवे। अलीआ=असत्य। क्रिसन परीति=ईश्वर प्रीत्यर्थ। ढुलके=ढुरता रहे।

विडबना (३)

तनि चदनु मसतकि पातो, रिद अतरि करतल काती।
ठग दिसटि बगा लिव लागा, देषि बैसिनो प्रान मुष भागा ॥१॥
कलि भगवत वन्द चिराम, क्रूर दिसटि रता निसि बाद ॥रहाउ॥
नित प्रति इसनानु सरीर, दुइ धोती करम मुपि षीर।
रिदै छुरी सधिआनी, पर दरबु हिरन की बानी ॥२॥
सिल पूजसि चक्र गणेस, निसि जागसि भगति प्रवेस।
पग नाचसि चितु अकरम, ए लपट नाच अधरमं ॥३॥
म्रिग आसण तुलसी माला, कर ऊजल तिलकु कपाला।
रिदे कूडु कठि रुद्राष, रे लंपट क्रिसनु अभाषं ॥४॥
जिनि आतम ततु न चीन्हिआ, सभ फोकट धरम अबीनिया।
कहु बेणी गुरमुषि धिआवै, विनु सतिगुर बाट व पावै ॥५॥

करतल=हथेली वा हाथ मे। हिरन=हिरण। बानी=स्वभाव।

## संत त्रिलोचन

संत त्रिलोचन का जन्म सं० १३२४ मे हुआ था और वे वैश्य कुल के थे। वे साधुओ के बडे भक्त थे और उनकी पत्नी का भी वही स्वभाव था। कहा जाता है कि उनके यहाँ स्वय भगवान् ने ही 'अंतर्यामी' के नाम से कुछ दिनो तक नौकरी की थी। त्रिलोचन जी एव संत नामदेव की परस्पर मैत्री का भी उल्लेख मिलता है। यह भी प्रसिद्ध है कि 'त्रिलोचन' नाम उनके भूत, भविष्य एव वर्तमान के साथ जानकार होने के कारण पडा था। त्रिलोचन तथा नामदेव के संवाद से सम्बद्ध कुछ दोहे उपलब्ध है। उनकी अपनी केवल चार रचनाएँ 'आदिग्रथ' मे संग्रहीत पायी जाती है और चारो ही पदो की भाषा पर मराठी का प्रभाव लक्षित होता है। त्रिलोचन मूलत कदाचित् उत्तर प्रदेश के निवासी थे, किन्तु दक्षिण के महाराष्ट्र मे बहुत काल तक रहे थे। उनके मरण-काल का पता नही चलता।

### पद

भेषनिंदा (१)

अतरु मलि निरमलु नही कीना, बाहरि भेष उदासी।
हिरदै कमलु घटि ब्रह्म न चीन्हा, काहे भइआ संनिआसी ॥१॥
भरमे भूली रे जैचदा। नही नही चीन्हिआ परमानंदा ॥रहाउ॥
घरि घरि खाइया पिंडु बधाइया, खिथा मुदा माइया।
भूमि मसाण की भसम लगाई, गुर विनु ततु न पाइया ॥२॥
काइ जपहु रे काइ तपहु रे, काइ बिलोवहु पाणी।
लष चउरासीह जिनि उपाई, सो सिमरहु निरबाणी ॥३॥
काइ कमंडलु कापडी आरे, अठसठ काइ फिराही।
बदति त्रिलोचनु सुनु रे प्राणी, कण विनु गाहु कि पाही ॥४॥

जैचंदा=सम्भवत किसी इस नाम के व्यक्ति को सम्बोधित कर के कहते है। पिंडु बधाइआ=अपना शरीर पुष्ट किया। अठसठ फिराही=तीर्थाटन क्यो करते फिरते हो। कण पाही=विना अन्न का डठल झाडते रहने से क्या लाभ।

अंतिम मनोवृत्ति (२)

अति कालि जो लछमी सिमरै, अैसी चिंता महि जे मरै।
मरप जोनि वलि वलि अउतरै ॥१॥
अरी बाई गोबिंद नामु मति बीसरै ॥रहाउ॥
अंति कालि जो इसत्री सिमरै, अैसी चिंता महि जे मरै।
वेसवा जोनि वलि वलि अउतरै ॥२॥
अति कालि जो लडिके सिमरै, अैसी चिंता महि जे मरै।
सूकर जोनि वलि वलि अउतरै ॥३॥
अति कालि जो मदर सिमरै, अैसी चिंता महि जे मरै।
प्रेत जोनि वलि वलि अउतरै ॥४॥
अति कालि नाराइण सिमरै, अैसी चिंता महि जे मरै।
वदसि त्रिलोचनु ते नर मुकता, पीतंवरु वाके रिदै वसै ॥५॥

वलि वलि = बारबार। पीतांबरु =पीतांबरधारी नारायण।

## संत नामदेव

सन्त नामदेव जाति के छीपी थे और उनका जन्म कार्तिक सुदी ११, सं० १३२६ को सतारा जिले के नरसी वमनी (वह्मनी) गाँव मे हुआ था। अपने पैतृक व्यवसाय की ओर कदाचित् कभी भी आकृष्ट नही हुए और वचपन से ही साधुसेवा एव सत्सग मे ही अपना समय विताते रहे। सत विसोवा खेचर को उन्होने अपना गुरु स्वीकार किया था और प्रसिद्ध सत ज्ञानेश्वर के प्रति भी वे गहरी निष्ठा रखते थे। ज्ञानेश्वर के साथ उन्होंने देश-भ्रमण किया था और कई अन्य सन्तो से परिचय प्राप्त किया था। कहा जाता है कि ज्ञानेश्वर के मरणोपरात वे उत्तरी भारत के पजाव प्रात मे रहने लगे थे और वही पर उन्होने अपने मत का प्रचार-केन्द्र बना लिया था। इनके अनेक चमत्कारो की कथाएँ प्रसिद्ध है और कुछ की चर्चा इनकी रचनाओ मे भी की गई मिलती है। इनकी मृत्यु का समय स० १४०७ कहा गया है।

सत नामदेव सरल हृदय के व्यक्ति थे। उनकी भावुकता का परिचय उनकी पक्तियो मे भी सर्वत्र मिलता है। परमात्मा ही एकमात्र सव कुछ है, वही सबके वाहर तथा भीतर सव कही व्याप्त है। उसी के प्रति एकातनिष्ठ होकर रहना चाहिए, इसी व्यवस्था को ये अपना परम धर्म मानते हैं। इसी प्रकार के भावो से इनका हृदय सदा भरा रहा है। इसी कारण सारे जगत् को एक उदार-चेता प्रेमी की दृष्टि से देखा करते है। सत नामदेव अपनी विचारधारा के अनुसार वस्तुत निर्गुणोपासक थे, किन्तु सगुणोपासना को भी उन्होने अपना रखा था। वे पढरपुर के विट्ठल भगवान को ही अपना इष्टदेव घोषित करते थे और कीर्तन करते समय भी अधिकतर उन्ही का नाम लिया करते थे। उनके लिए जगत् के सभी प्राणी अथवा पदार्थ भगवत्स्वरूप थे। विट्ठलनाथ को उन्होने केवल परंपरा-पालन के लिए स्वीकार किया था।

सन्त नामदेव को कवीर साहव ने आदर्श भक्त के रूप मे माना है और उनकी कई बार प्रशंसा की है। उनके महत्व और प्रसिद्धि के ही कारण उनके अनेक नामधारी अन्य नामदेवो से उन्हे पृथक् कर लेना कभी-कभी कठिन हो जाता है। उसकी बहुत-सी रचनाएँ भी कदाचित् अन्य ऐसे व्यक्तियों की रचनाओ मे मिल गई है। उनके-सम्वन्ध

मे ये भिन्न-भिन्न प्रकार के भ्रम उत्पन्न करती है। उनकी अधिकाश कृतियाँ मराठी भाषा मे उनके अभगो के रूप मे पायी जाती है और उनकी शेप रचनाएँ हिन्दी भापा मे उपलब्ध है। 'आदिग्रथ' के अन्तर्गत उनके ६० से भी अधिक पद सग्रहीत है जिनकी भाषा हिन्दी है और जो भिन्न-भिन्न रागो के अतर्गत प्रकाशित किये गये है। इनकी भाषा पर पजाबीपन का भी कुछ प्रभाव आ गया है, किन्तु इनसे अधिक शुद्ध एव प्रामाणिक पाठो का सस्करण अभी तक उपलब्ध नही है। सन्त नामदेव की कथन-शैली की विशेषता उनके छलहीन हृदय, निर्द्वन्द्व जीवन एव आध्यात्मिक उल्लास द्वारा अनुप्राणित है और वह विना सुझाये ही उजागर हो जाती है।

## पद

### सर्वव्यापी गोविद (१)

एक अनेक बिआपक पूरक, जत देपउ तत सोई।
माइआ चित्र बिचित्र बिमोहित, बिरला बूझै कोई ॥१॥
सभु गोविदु है सभु गोविदु है, गोविदु बिनु नहि कोई।
सूतु एकु मणि सत सहस जैसे, ओति पोति प्रभु सोई ॥रहाउ॥
जल तरग अरु फेन बुदबुदा, जलते भिन न होई।
इहु परपचु पारब्रह्म की लीला, बिचरत आन न होई ॥२॥
मिथिआ भरमु अरु सुपन मनोरथ, सति पदारथु जानिआ।
सुक्रित मनसा गुर उपदेसी, जागत ही मनु मानिआ ॥३॥
कहत नामदेउ हरि की रचना, देपहु रिदै बीचारी।
घट घट अतरि सरब निरन्तरि, केवल एक मुरारी ॥४॥

ओति पोति = ओतप्रोत (दे० 'मयि सर्वमिद प्रोत सूत्र मणि-गणा इव' ॥ गीता, ७, ७)। बिचरत होई = विचार कर लेने पर भिन्न नही सिद्ध होता।

### वही एक है (२)

आनीले कुभ भराईले ऊदक, ठाकुर कउ इसनान करउ।
बइआलीस लप जी जल महि होते, बीठलु भैला काइ करउ ॥१॥
जत जाउ नत बीठलु भैला। महा अनन्द करे सदकेला ॥रहाउ॥
आनीले फूल परोईले माला, ठाकुरकी हउ पूज करउ।
पहिले बासु लई है भवरह, बीठलु भैला काइ करउ ॥२॥
आनीले दूधु रीधाईले पीर, ठाकुर कउ नैवेद करउ।
पहिले दूधु बिटारिउ बछरै, बीठलु भैला काइ करउ ॥३॥
ईभै बीठलु ऊभै बीठलु, बीठल बिनु ससार नही।
थान थनतरि नामा प्रणवै, पूरि रहिउ तू सरब मही ॥४॥

बीठलु करउ = जब सर्वत्र विट्ठल ही विट्ठल है तो फिर क्या किया जाय। महा सदकेला = वह सत्स्वरूप परमात्मा सर्वत्र अपनी लीला मे निरत है। परोईले = गूँथता हूँ। रीधाईले = राँधता हूँ। बिटारिउ = अपवित्र कर दिया। (दे० 'बुगुली नीर बिटालिया'—कबीर)। ईभै ऊभै = इधर भी उधर भी, सर्वत्र ही। थान नंतरि = सब कही।

मब में वही (३)

मभै घट रामु बोलै रामा बोलै, राम बिना को बोलै रे ।।रहाउ।।
एकल माटी कुंजर चीटी, भाजन हैं बहु नान्हा रे।
असथावर जंगम कीट पतंगम, घटि घटि रामु समाना रे ।।१।।
एकल चिंता राखु अनंता, अउर तजहु सभ आसा रे।
प्रणवै नामा भए निहकामा, को ठाकुर को दासा रे ।।२।।

एकल=एक ही। भाजन=वस्तु। भए निहकामा= निष्काम की अथवा अनासक्त की दशा उपलब्ध कर लेने पर साम्य-भाव आ जाता है।

अंतर्यामी (४)

मनकी बिरथा मनुही जानै, कै बूझल आगै कहीऐ।
अंतरजामी रामु रवाई, मै डरु कैसो चहीऐ ।।१।।
वेधी अले गोपाल गोसाई। मेरा प्रभु रविया सरबे ठाई ।।रहाउ।।
मानै हाटु मानै पाटु, मानै है पसारी।
मानै बासै नाना भेदी, भरमतु है संसारी ।।२।।
गुरकै सबदि एहु मनु राता, दुबिधा सहजि समाणी।
सभो हुकमु हुकमु है आपे निरभउ समतु बीचारी ।।३।।
जो जन जानि भजहि पुरखोतमु, ताची अबिगत बाणी।
नामा कहै जगजीवनु पाइआ, हिरदै अलख बिणाणी ।।४।।

मन की कहीऐ=मनोव्यथा का वास्तविक जानकार या तो मन ही होता है अथवा वह जो कभी का भुक्तभोगी हो और उससे कहा जाय। अन्तरजामी चहीऐ —सर्वव्यापक अन्तरयामी के सामने संकोच कैसा। मानै=मन द्वारा कल्पित कर लेने पर ही। पाटु=राज्यासन। हुकमु=ईश्वरीय नियम। ताची=उसकी। बिणाणी= ज्ञानस्वरूप। बासै नानाभेदी-विभिन्न वेषों मे। बिणाणी=विचित्र।

मन का कपट (५)

सापु कुंच छोडै बिखु नही छाडै। उदक माहि जैसे बगु धिआनु माडै ।।१।।
काहे कउ कीजै धिआनु जपना। जबते सुधु नाही मनु अपना ।।रहाउ।।
सिंघच भोजनु जो नर जानै। ऐसे ही ठग देउ बखानै ।।२।।
नामे के सुआमी लाहिले झगरा। राम रसाइन पीउ रे दगरा ।।३।।

कुंच=केचुल। लाहिले=मिटा देता है। दगरा=दगादार, छली। सिंघच भोजनु...बखानै=सिंहादि हिंस्र पशुओं का-सा भोजन करने वाला भगवान की बातें बकता है।

अज्ञेय तत्व (६)

कोई बोलै निरवा कोई बोलै दूरि। जल की माछुली चरै खजूरि ।।१।।
काइरे बकबादु लाइउ। जिनि हरि पाइउ तिनहि छपाइउ ।।रहाउ।।
पंडित होइकै बेदु बखानै। मूरखु नामदेउ रामहि जानै ।।२।।

निरवा=निकट। जल की . खजूरि=अज्ञेय के जानने की असंभव बात करते हैं।

### मेरे प्रियतम राम (७)

मारवाडी जैसे नीरु बालहा, बेलि बालहा करहला।
जिउ कुरक निसि नादु बालहा, तिउ मेरै मनि रामईआ ।।१।।
तेरा नामु रूडो रूपु रूडो अति रग रूडो मेरो रामईआ ।। रहाउ ।।
जिउ धरणी कउ इद्र बालहा, कुसुम बासु जैसे भवरला।
जिउ कोकिल कउ अबु बालहा, तिउ मेरै मनि रामईआ ।।२।।
चकवी कउ जैसे सूरु बालहा, मानसरोवर हसुला।
जिउ तरुणी कउ कतु बालहा, तिउ मेरै मनि रामईआ ।।३।।
बारिक कउ जैसे पीरु बालहा, चात्रिक मुख जैसे जलधारा।
मछली कउ जैसे नीरु बालहा, तिउ मेरै मनि रामईआ ।।४।।
साधिक सिध सगल मुनि चाहहि, बिरले काहू डीठुला।
सगल भवन तेरो नामु बालहा, तिउ नामे मनि बीठुला ।।५।।

बालहा=प्रिय। करहला=ऊँट। कुरक=मृग। रूडो=सुन्दर। अबु=आम। बारिक=बालक। इन्द्र=इन्द्र की वृष्टि। सूरु=सूर्य।

### एकात निष्ठा (८)

नाद भ्रमे जैसे मिरगाए प्रान तजे वाको धिआनु न जाए ।।१।।
ऐसे रामा ऐसे हेरउ। राम छोडि चितु अनत न फेरउ ।। रहाउ ।।
जिउ मीना हेरै पसूआरा। सोना गढते हिरै सुनारा ।।२।।
जिउ बिपई हेरै पर नारी। कउडा डारत हिरै जुआरी ।।३।।
जह जह देखउ तह तह रामा। हरि के चरन नित धिआवै नामा ।।४।।

हेरउ=देखो। कउडा=पासा।

### मनोवृति का केंद्र (९)

आनीले कागदु काटीले गुडी, आकास मधे भरमीअले।
पच जनासिउ बात बतऊआ, चीतु सु डोरी रापीअले ।।१।।
मनु राम नामा बेधीअले, जैसे कनिक कला चितु माडीअलै ।। रहाउ ।।
आनीलो कुभु भराइले उदक, राज कुआरि पुरदरीए।
हसत बिनोद बीचार करती है, चीतु सुगागरि रापीअले ।।२।।
मदरु एकु दुआर दस जाके, गऊ चरावन छाडीअले।
पाँच कोस पर गऊ चरावत, चीतु सु बछरा रापीअले ।।३।।
कहत नामदेउ सुनहु तिलोचन, बालकु पालन पउढीअले।
अतरि बाहरि काज बिरुधी, चीतु सु बारिक रापीअले ।।४।।

भरमीअले=उडाता है। पुरदरीए=दासियों द्वारा।

### मेरा भगवत्प्रेम (१०)

जैसी भूखे प्रीति अनाज, त्रिखावन्त जलसेती काज।
जैसी मूढ़ कुटंब पराइण; ऐसी नामे प्रीति नराइण ।।१।।

नामे प्रीति नराइण लागी, सहज सुभाइ भइउ बैरागी ।। रहाउ ।।
जैसी पर पुरषारत नारी, लोभी नरु धन का हितकारी ।
कामी पुरुष कामनी पिआरी, अैसी प्रीति मुरारी ।।२।।
साई प्रीति जिआपे लाए, गुर परसादी दुविधा जाए ।
कबहु न तूटसि रहिआ समाइ, नामे चितु लाइआ सचिनाइ ।।३।।
जैसी प्रीति वारिक अरु माता, ऐसा हरि सेती मनुराता ।
प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति, गोविंद बमै हमारे चीति ।।४।।

सचिनाइ=सच्चे भाव के साथ ।

## मेरा वही एक (११)

मैं बउरी मेरा राम भतारु । रचि रचि ताकउ करउ सिंगारु ।।१।।
भले निंदउ, भले निंदउ, भले निंदउ लोगू ।
तनु मनु राम पिआरे जोगु ।। रहाउ ।।
वादु विवादु काहू सिउ न कीजै । रसना राम रसाइतु पीजै ।।२।।
अब जीअ जानि अैसी बनि आई । मिलउ गुपाल नीसानु बजाई ।।३।।
असतुति निंदा करै नरु कोई । नामे स्रीरगु भेटल सोई ।।४।।

नीसानु बजाई=डके की चोट के साथ (दे० 'तिरौ कतले तूर बजाई'—कबीर । )

## एकमात्र स्वामी (१२)

बदहु किन होड माधउ मोसिउ ।
ठाकुर ते जनु जनते ठाकुरु, षेलु परिउ है तोसिउ ।। रहाउ ।।
आपन देउ देहुरा आपन, आप लगावै पूजा ।
जलते तरग तरगते है जलु, कहन सुनन कउ दूजा ।।१।।
आपहि गावै आपही नाचै, आप बजावै तूरा ।
कहत नामदेउ तू मेरो ठाकुरु, जनु ऊरा तू पूरा ।।२।।

षेलु=बाजी लगी है । तूरा= नगाडा वा तुरही बाजा । ऊरा= अधूरा; कम ।

## उसका अंतर्यामित्व (१३)

ऐसो रामराइ अतरजामी । जैसे दरपन माहि बदन परवानी ।। रहाउ ।।
बसै घटाघट लीपन छीपै । बधान मुकता जात न दीसै ।।१।।
पानी माहि देषु मुषु जैसा । नामे को सुआमी बीठलु ऐसा ।।२।।

परवानी=प्रमाणित होती है । बदन=मुखाकृति । वसै . छीपै=प्रत्येक घट मे वर्तमान है, किन्तु प्रत्यक्ष होता नही जान पडता ।

## प्रार्थना (१४)

लोभ लहरि अति नीझर बाजै, काइआ डूबै केसवा ।।१।।
ससारु समुदे तारि गोविदे । तारिलै बाप बीठला ।। रहाउ ।।

अनिल बेडा हउ पेवि न साकउ। तेरा पारु न पाइआ बीठुला ॥२॥
होहु दइआलु सति गुरु मेलि तू। मोकउ पारि उतारे केसवा ॥३॥
नामा कहे हउ तरिभी न जानउ। मोकउ बाह देहि बाह देहि बीठुला ॥४॥

बाजै वहती है। अनिल साकउ - तूफान मे बेडे का खेले जाना सभव नही। तीर तैरना। बाह देहि --सहायता दो।

कृतज्ञता (१५)

मोकउ तू न विसारि तू न विसारि। तू न विसारे रामईआ ॥ रहाउ ॥
आलावती इहु भ्रमु जोहै, मुझ ऊपरि सभु कोपिला।
सूदु सूदु करि मारि उठाइउ, कहा करउ बाप बीठुला ॥१॥
मूए हूए जउ मुकति देहुगे, मुकति न जानै कोइला।
एपडीआ मोकउ ढेढ कहत, तेरी पैज पिछउडी होइला ॥२॥
तूजु दइआलु क्रिपालु कहीअउ हैं, अतिभुज भइउ अपावला।
फेरि दीआ देहुरा नामेकउ, पडीअन कउ पिछवारला ॥३॥

आलावती स्थान विशेष जहाँ के मदिर के सामने कीर्तन करते समय निकाल दिये जाने पर शूद्र नामदेव को उसके पिछवाडे चला जाना पडा और उनकी भक्ति के कारण मदिर का द्वार भी घूम गया। ए होइला - पडितो द्वारा मुझे अछूत ढेढ कहे जाते ही तुम्हारी प्रतिज्ञा वा मर्यादा को चोट लग गई। अतिभुज ..अपावला = अत्याचार तुम्हारी दृष्टि मे अपनी सीमा तक पहुँच गया। पिछवारला =पीछे की ओर डाल दिया।

वही घटना (१६)

हसत पेलत तेरे देहुरे आइया। भगति करत नामा पकरि उठाइआ ॥१॥
हीनडी जात मेरी जादम राइआ। छीपे के जनमि काहेकउ आइआ ॥ रहाउ ॥
लै कमली चलिउ पलटाइ। देहुरे पाछै बैठा जाइ ॥२॥
जिउ जिउ नामा हरिगुण उचरै। भगत जनाकउ देहुरा फिरै ॥३॥

जादम राइआ --यदुनाथ, भगवान्। जनमि —योनि मे। पलटाइ= लौट कर।

ज्ञानोदय ( १७ )

अणमडिआ मदलु वाजै, विनु सावण घनहरु गाजै।
बादल विनु वरखा होई, जउ ततु विचारै कोई ॥१॥
मोकउ मिलाओ रामु सनेही। जिह मिलिअै देह सुदेही ॥ रहाउ ॥
मिलि पारस कचनु होइआ, मुप मनपा रतनु परोइआ।
निज भाउ भइया भ्रमु भागा, गुर पूछे मनु पतिआगा ॥२॥
जल भीतरि कुभ समानिआ, सम रामु एकु करि जानिआ।
गुरु चेले है मनु मानिआ, जन नामै ततु पछानिआ ॥३॥

अणमडिआ =अकृत्रिम। मदलु -- वाद्य विशेप, ढोल। निज भइआ --आप अपने को जान लिया।

## भ्रम का परिणाम ( १८ )

काएं रे मन विषिआ वन जाइ। भूलै रे ठगमूरी पाइ ।।रहाउ।।
जैसे मीनु पानी महि रहै, काल जाल की सुधि नही लहै।
जिहवा सुआदी लीलत लोह, अैसे कनिक कामनी बाँधिउ मोह ।।१।।
जिउ मधु मापी सचै अपार, मधु लीनो मुपि दीनी छारु।
गऊ बाछकउ सचै पीरु, गला बाँधि दुहि लेइ अहीरु ।।२।।
माइआ कारन स्रमु अति करै, सो माइया लै गाडै धरै।
अति सचै समझै नही मूड, धनु धरती तनु होइ गइउ धूडि ।।३।।
काम क्रोध त्रिसना अति जरै, साध संगति कबहूँ नहि करै।
कहत नामदेउ ताची आणि, निरभै होइ भजीअै भगवान ।।४।।

काए=क्यो। ठगमूरी पाइ=ठगौरी लगकर, चकित हो कर। लोह=चारे से युक्त वशी का काँटा। बाछकउ=बछडे के लिए। ताची आणि=उसकी वास्तविक स्थिति को समझ-बूझ कर।

## दयालु गुरु ( १९ )

सफल जनमु मोकउ गुर कीना। दुप बिसारि सुप अतरि लीना ।।१।।
गिआन अजनु मोकउ गुरि दीना। राम नाम बिनु जीवनु मनहीना ।।रहाउ।।
नामदेउ सिमरनु करि जानाँ। जगजीवन सिउ जीउ समाना ।।२।।

सिमरनु करि=नाम स्मरण की साधना।

## विरह की बेचैनी ( २० )

मोहि लागती तालावेली। बछरे बिनु गाइ अकेली ।।१।।
पानीआ बिनु मीनु तलफै। अैसे राम नामा बिन बापुरो नामा ।।रहाउ।।
जैसे गाइ का बाछा छूटला। थन चोपता मापनु घूटला ।।२।।
नामदेउ नाराइनु पाइआ। गुरु भेटत अलप लपाइआ ।।३।।
जैसे विपै हेत परनारी। अैसे नामे प्रीति मुरारी ।।४।।
जैसे तापते निरमल घामा। तैसे रामनाम बिनु बापुरो नामा ।।५।।

तालावेली=विरहजनित उद्वेग। घूटला=पी गया।

## सर्वप्रधान वस्तु ( २१ )

परधन परदारा परहरी। ताकै निकटि बसै नरहरी ।।१।।
जो न भजते नाराइणा तिनका। मैं न करउ दरसना ।।रहाउ।।
जिनकै भीतरि है अतरा। जैसे पसु तैसे उइ नरा ।।२।।
*प्रणवति नामदेउ नाकहि बिना। नासो है बत्तीस लपना ।।३।।*

परहरी=परित्याग कर दिया है। अतरा=भेदभाव। नाकहि' लपना=बिना नाक वाला व्यक्ति जैसे सभी शृगारो से युक्त रहने पर भी नही शोभता।

## स्वामी रामानंद

स्वामी रामानद के जन्म का स० १३५६ मे होना और उनका स० १४६७ मे मर जाना प्राय. सभी विद्वानो ने स्वीकार कर लिया है। उनका जन्म-स्थान प्रयाग था और वे ब्राह्मणो के कान्यकुब्ज कुल मे उत्पन्न हुए थे। वे पढने के लिए काशी गये थे, जहाँ पर शकराद्वैत मत के प्रभाव मे शिक्षा प्राप्त कर अन्त मे प्रसिद्ध विशिष्टाद्वैती स्वामी राघवानद के शिष्य हो गए। परन्तु कही से तीर्थयात्रा करके लौटने पर आचार-सम्बन्धी कुछ मतभेदो के उत्पन्न हो जाने के कारण उन्होने अपने गुरु से अलग होकर एक नवीन मत का प्रतिपादन किया जो 'रामावत् सप्रदाय' का निर्देशक सिद्धात बन गया। स्वामी रामानन्द स्वाधीनचेता महापुरुष थे। इनके चरित्र-बल एव असाधारण व्यक्तित्व के कारण एक नवीन जागृति दीख पडने लगी। प्रसिद्ध है कि उनके शिष्यो मे विशुद्ध रामावती, अनतानद, सुखानद के अतिरिक्त कबीर, पीपा तथा रैदास जैसे व्यक्ति भी सम्मिलित हो गए। उन्होने उनके अनतर, उनके मत के प्रचार मे पूरा यत्न कर उनके महत्त्व को और भी बढा दिया। स्वामी रामानद का स्थान उत्तरी भारत की सत-परपरा के इतिहास मे बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन्होने प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से प्राय सभी तत्कालीन भक्तो तथा सतो को प्रभावित किया है।

उनकी रचनाओ मे कुछ सस्कृत की भी बतलायी जातो है। केवल दो का अभी तक हिन्दी पदो के रूप मे होना स्वीकार किया जाता है। इनमे से सिखो के 'आदिग्रथ' मे केवल एक ही सग्रहीत है जिसकी प्रामाणिकता मे कोई सन्देह नही किया जाता। यह दूसरा पद वास्तव मे एक सुन्दर रचना है और इसमे उनके विचार-स्वातत्र्य एव हृदय की सचाई के भाव बडे अच्छे ढग से व्यक्त किये गए है। इधर कई अन्य रचनाएँ भी मिली है।

### पद

सच्ची उपासना

> कत जाइअै रे घर लागो रगु। मेरा चितु न चलै मनु भइउ पगु ॥रहाउ॥
> एक दिवस मन भई उमग, घसि चोआ चदन बहु सुगध।
> पूजन चाली ब्रह्म ठाइ, सो ब्रह्म बताइउ गुर मन ही माहिं ॥१॥
> जहाँ जाईअै तह जल पषान, तू पूरि रहिउ है सभ समान।
> बेद पुरान सभ देखे जोइ, ऊहाँ तउ जाईअै जउ ईहा न होई ॥२॥
> सति गुर मैं बलिहारी तोर, जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर।
> रामानद सुआमी रमत ब्रह्म, गुर का सबदु काटै कोटि करम ॥३॥

रगु=वास्तविक स्थिति का आनद। लागो=प्रभावित कर दिया, प्राप्त हो गया। घर=बिना कही गये ही। ब्रह्म ठाइ=ब्रह्म या परमात्मा के किसी बाहरी निवास-स्थान पर। जोइ=विचारपूर्वक देखकर। बिकल=अनैसर्गिक अथवा बेचैन कर देने वाला। गुरका सबदु करम=सतगुरु के उपदेश द्वारा सारे कर्मो का नष्ट हो जाना सभव है।

## संत सेन नाई

सेन नाई के सम्बन्ध मे दो भिन्न-भिन्न मत प्रचलित है। इनमे से एक के अनुसार, वे बीदर के राजा के यहाँ नियुक्त थे तथा प्रसिद्ध सत ज्ञानेश्वर की शिष्य-मडली के थे। दूसरे के अनुसार, वे बाधवगढ के राजा के सेवक थे और स्वामी रामानद के शिष्यो मे से एक थे। उनकी प्राप्त मराठी रचनाओ द्वारा पहली बात पुष्ट होती जान पडती है, किंतु उनके हिंदी मे रचे गये पदो से उसमे कुछ सदेह भी होने लगता है। प्रो० रानडे ने उनका समय स० १५०५ के आसपास माना है जिससे उनका ज्ञानेश्वर का समसामयिक होना सिद्ध नही होता। इधर 'आदिग्रथ' मे सग्रहीत उनके एक हिन्दी पद से जान पडता है कि वे स्वामी रामानद के समकालीन कहे जा सकते है। अतएव सभव है कि उनका सम्बन्ध पहले दक्षिण के वारकरी सम्प्रदाय के साथ ज्ञानेश्वर के अनतर हुआ हो। वे अन्त मे, सत नामदेव की भाँति उत्तर की ओर आकर कुछ दिनो तक स्वामी रामानन्द के सम्पर्क मे भी आ गये हो। उनकी बानियो मे उनके किसी का शिष्य होने की बात नही मिलती। राजाओ के सम्बन्ध की बात भी बहुत कुछ चमत्कारपूर्ण होने के कारण केवल एक काल्पनिक घटना ही हो सकती है जो सदिग्ध है। उनका समय विक्रम की चौदहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं पद्रहवी के पूर्वार्द्ध मे समझा जा सकता है, किन्तु जन्मभूमि का निर्णय करना फिर भी कठिन है।

सेन नाई की फुटकर बानियाँ कई मराठी तथा हिन्दी-सग्रहो मे पायी जाती है, किन्तु उनकी सख्या अधिक नही है। 'आदिग्रथ' मे केवल एक पद आया है जिसे सेन की 'आरती' कह सकते है और जिसमे उन्होने गोविद से अपने मुक्त होने के लिये प्रार्थना की है। छद मराठी अभगो का अनुसरण करता है।

### पद

**आरती**

धूप दीप घ्रित साजि आरती। वारने जाउं कमलापती ॥१॥
मगला हरि मगला। नित मगलु राजाराम राइ को ॥रहाउ॥
ऊतम दीअरा निरमल बाती। तूही निरजनु कमलापाती ॥२॥
रामा भगति रामानदु जानै। पूरन परमानदु बपानै ॥३॥
मदन मूरति भैतारि गोबिंदे। सैण भणै भजु परमानदे ॥४॥

घ्रित=घृत, घी। वारने जाउं=बलि, बलि जाता हूँ, न्योछावर होता हूँ। तूही कमलापति=हे कमलापति, तूही निरजन भी है। पूरन बपानै =वे रामानद उस भक्ति की व्याख्या पूरे आनद के साथ किया करते है। भैतारि=भवसागर के पार कर दो। (हि० 'पूरन परमानदु' से अभिप्राय पूर्ण परमानदमय परमात्मा भी हो सकता है।)

## संत कबीर साहब

कबीर साहब के सर्वप्रसिद्ध सत होते हुये भी उनके जीवन-काल, जन्म-मरण-स्थान एव जीवन की प्रमुख घटनाओ के सम्बन्ध मे अभी तक विद्वानो मे बहुत कुछ मत-भेद दीख पड़ता है। यही बात कुछ अंशो तक उनके मत के विषय मे भी कही जा सकती

है। उन्होने स्वय अपना ऐतिहासिक आत्मचरित प्राय कुछ भी नही दिया है। उनके समसामयिक भी उनकी ओर केवल सकेत करके ही रह गये है। उनके पीछे आने वाले लेखको अथवा आधुनिक विद्वानो के कथन अधिकतर अनुमानो पर ही आश्रित है जिन पर अन्तिम निर्णय देना कठिन है। फिर भी सारी उपलब्ध सामग्रियो की छानबीन करने पर जो निष्कर्ष निकलता है, उसके अनुसार उनका सक्षिप्त परिचय दिया जा सकता है।

इसके अनुसार कबीर साहब की मृत्यु सभवत विक्रम सवत् की सोलहवी शताब्दी के प्रथम चरण मे किसी समय हुई होगी। ऐसा मान लेने पर उनकी जन्म-तिथि को हम परपरागत स० १४५५ से कुछ-न-कुछ पहले अर्थात् पद्रहवी के द्वितीय वा प्रथम चरण तक भी ले जाना होगा। इसी प्रकार कबीर साहब की जाति, सभी बातो पर विचार कर लेने पर, जुलाहे की ठहरती है। उनका निवास-स्थान का भी काशी होना विवादग्रस्त समझ पडता है। कबीर साहब के दीक्षागुरु स्वामी रामानद समझे जाते है और उनके गुरुभाई सेन, पीपा, रैदास और धन्ना सत माने जाते हैं, किन्तु इस बात के लिए प्रत्यक्ष प्रमाणो का अभाव दीखता है। स्वामी रामानन्द तथा सेन कबीर साहब के बडे समकालीन, पीपा तथा रैदास छोटे समकालीन तथा धन्ना कुछ पीछे के जान पडते हैं और प्राय सभी समान मत के है। इन सतो का स्वामी रामानद द्वारा किसी-न-किसी रूप मे प्रभावित होना असभव नही। शेख तकी वा पीताम्बर का उनका पीर होना बहुत कुछ काल्पनिक ही है। कबीर साहब का सत्य की खोज या सत्सग के योजना-क्रम मे दूर-दूर तक पर्यटन करना और कही-कही कुछ समय तक ठहर जाना भी सिद्ध होता है।

कबीर साहब का पारिवारिक जीवन साधारण गृहस्थ के परिवार का जीवन था। वह इसी कारण सीधा-सादा तथा आडबरहीन था। उनका प्रधान उद्देश्य अपने शरीर को स्वस्थ रखते हुए आध्यात्मिक जीवन का आनद उठाना था। वे इसी के उपदेश भी देते रहे। उनके तथा उनके परिवार का भरण-पोषण अधिकतर उनकी पैतृक जीविका, अर्थात् कपडे बुनने से ही चलता रहा। अत मे, उन्होने कदाचित् इसे भी छोड दिया था। उनके परिवार मे उनकी स्त्री एवं पुत्र का होना प्राय सभी मानते है और उनके साथ उनके माता-पिता का भी कुछ दिनो तक रहना स्वीकार करते है। फिर भी इनमे से किसी का भी न तो पूरा विवरण मिलता है, न उनके परस्पर सम्बन्ध पर ही वैसा स्पष्ट प्रकाश पडता है। कबीर साहब की बाहरी लोगो और विशेषकर साप्रदायिक प्रवृत्ति वाले हिन्दुओ तथा मुसलमानो से कभी नही पटी। अन्त मे उन्हे अपना स्थान छोडना पडा। प्रसिद्ध है कि अन्त मे वे काशी छोड कर मगहर चले गए थे, जहाँ उनकी मृत्यु हो गई। वहाँ पर उनकी समाधि आज तक वर्तमान है। उपलब्ध चित्रो तथा कतिपय पदो के आधार पर उनकी अन्तिम अवस्था का अनुमान लगभग सौ वर्षो का किया जाता है जो असभव नही है।

कबीर साहब के शिक्षित होने मे सन्देह किया जाता है और समझा जाता है कि अधिक-से-अधिक उन्हे केवल अक्षर-ज्ञान तक रहा होगा। परन्तु इस बात को स्वीकार करने मे कभी किसी को भी आपत्ति नही होती कि सत्सग एव आत्म-चिंतन के द्वारा उन्होंने बहुत-कुछ जान लिया था। फलत अपने अनुभवो के आधार पर वे अपने विचार कभी-कभी पद्य-रचना द्वारा भी व्यक्त किया करते थे और लोगो को उपदेश देते थे। उनकी ये रचनाएँ इस समय विविध सग्रहो मे पायी जाती है और इनकी सख्या कम नही

जान पडती। फिर भी इस प्रकार के सग्रहो के सम्बन्ध मे बहुधा मतभेद प्रकट किया जाता है और उनमे आये हुए पद्यो के पाठभेद भी अभी तक प्रचलित है।

कबीर-पथ के अनुयायियो ने 'बीजक' नामक सग्रह को सबसे अधिक महत्व दिया है। उनका कहना है कि कबीर-शिष्य धर्मदास ने इसे स० १५२१ मे पूरा कर कबीर-वचनो को सुरक्षित किया था। परन्तु 'बीजक' की अभी तक न तो कोई प्राचीन प्रमाणिक हस्तलिखित प्रति मिली है, न धर्मदास का ही जीवन-काल निश्चित रूप से आज तक जाना जा सका है। इसके सिवाय, इसमे सग्रहीत कई पद्यो के भाव एव भाषा पर ध्यानपूर्वक विचार करने से भी प्रतीत होने लगता है कि यह पूर्णत प्रामाणिक नही हो सकता। इसमे सग्रहीत कुछ रचनाओ पर परवर्ती कवियो की कृति होने का भी सदेह किया जा सकता है। इसके अनेक पद्यो मे लक्षित होने वाली भाषा की कृत्रिमता एव भावो की दुरूहता तथा साप्रदायिक आग्रह की प्रवृत्ति भी इसके कबीर-रचित होने मे बाधा पहुँचाती है। फिर भी इसकी रचनाओ के अन्तर्गत कबीर-बानियो का एक बहुत बडा अश किसी-न-किसी रूप मे पाया जा सकना है। कबीर साहब की प्रामाणिक रचनाओ का सग्रह न कहे जा सकने पर भी कबीर-पथ का यह सबसे प्रामाणिक ग्रथ है और उसके अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

सिखो के 'आदिग्रथ' मे भी कबीर साहब के लगभग सवा दो सौ पद एव ढाई सो साखियाँ सग्रहीत है जिनका पाठ प्राचीन है। उनमे दीख पडने वाली भाषा की प्राचीनता तथा भावो की सादगी एव स्वाभाविकता उनके कबीर-कृत कहे जाने मे सहायता पहुँचाती है। परन्तु इस सग्रह मे आये हुए सभी पद्यो की प्रामाणिकता मे भी हमे तब सदेह होने लगता है जब हम देखते है कि उनमे से कुछ अवश्य दूसरो की रचनाएँ होगी, जिन्हे सग्रह-कर्त्ताओ ने भ्रमवश कबीर-कृत मानकर इसमे स्थान दे दिया होगा। ऐसे पद्यो की सख्या अधिक नही है और यदि ये सावधानतापूर्वक निकाले जा सके तो शेष रचनाओ की प्रामाणिकता असदिग्ध हो सकती है।

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'कबीर-ग्रथावली' एक तीसरा ऐसा सग्रह है जो पुराने हस्तलेखो के आधार पर तैयार किया हुआ बतलाया जाता है और जिसकी लगभग ५० साखियाँ एव १५ पद 'आदिग्रन्थ' की वैसी ही रचनाओ के समान है। शेष मे से भी कई ऐसी है जिनकी असमानता का आधार केवल पाठभेद ही कहा जा सकता है। इस सग्रह का पाठ दो पुरानी हस्तलिखित प्रतियो पर आश्रित कहा जाता है जिनमे से एक स० १८८१ और दूसरी स० १५६१ की है, किन्तु दूसरी के अन्त मे 'सं० १५६१' आदि कुछ बाते अन्य लेखनी से लिखी जान पडती हैं, जिस कारण उसकी प्रामाणिकता मे सन्देह किया जा सकता है। फिर भी उसमे सग्रहीत पद्यो की प्राचीनता तथा उनकी भाषा उनके अपरिमार्जित रूपो की सहायता द्वारा सिद्ध की जा सकती है। उक्त सभा को एक अन्य सग्रह भी मिला है जिसका लिपिकाल स० १८५५ जान पडता है। इसमे सग्रहीत कबीर साहब की रचनाओं की उक्त ग्रन्थावली मे आये हुए पद्यो से समानता है तथा इसमे कुछ टिप्पणियाँ भी दी हुई है। इस सग्रह मे कबीर-कृत पद्यो की सख्या अधिक नही है, किन्तु इसके दो-तीन पद ऐसे भी है जो उक्त ग्रन्थावली मे नही दीख पडते। कबीर साहब की रचनाओ के ऐसे सग्रह दादू-पंथ द्वारा सुरक्षित कुछ प्राचीन हस्तलिखित गुटको मे भी पाये जाते है और उनकी प्रामाणिकता मे बहुत कम सन्देह किया जाता है। फिर भी इस प्रकार के सभी सग्रहो को एकत्र कर

न तो उनका तुलनात्मक अध्ययन अभी तक किया जा सका है, न इसी कारण कबीर साहब की सभी उपलब्ध रचनाओं का कोई ऐसा शुद्ध संस्करण ही निकाला जा सका है जो पूर्णत प्रामाणिक माना जाय। प्राचीनता का विचार छोड कर किये गए ऐसे रचना-संग्रहों में 'वेलवेडियर प्रेस' प्रयाग की पुस्तके सबसे अधिक प्रसिद्ध हुई है। किन्तु इन संग्रहों में अन्य सन्तो वा कवियो की भी अनेक रचनाएँ भूल के कारण भर दी गई है जिनका पृथक् किया जाना आवश्यक है। पाठशोध की दृष्टि से इधर 'कबीर ग्रन्थावली' के डॉ० माताप्रसाद गुप्त और डॉ० पारसनाथ तिवारी के भी दो उल्लेखनीय संस्करण आये हैं।

कबीर साहब की उक्त प्रकार से संग्रहीत रचनाओं मे प्रधानता पदो तथा साखियो की है। पदों को शब्द, वानी, वचन वा उपदेश भी कहा गया है और इसी प्रकार साखियों को 'आदिग्रन्थ' में सलोक नाम दिया गया है। पदो का रूप, वास्तव मे, गेय रचनाओं का है और वे अधिकतर भिन्न-भिन्न रागो के अन्तर्गत संग्रहीत भी पाये जाते है, किन्तु साखियो मे दोहे, सोरठे अथवा छप्पय जैसे पद्य भी आ गए है। पदो मे कबीर साहब के सिद्धान्त, उनके हृदयोद्‌गार तथा साधना-सम्बन्धी कतिपय संकेतो की प्रचुरता है। इसी प्रकार उनकी साखियो मे अधिकतर ऐसी बाते पायी जाती है जो उनके आध्यात्मिक अनुभव तथा सामाजिक जीवन की प्रमुख बातो को साराशत प्रकट करती है। कबीर साहब की अन्य प्रामाणिक रचनाओं मे 'बावनअखरी' तथा 'रमैनियो' की चर्चा की गई है जिनके विषय भी प्राय: वे ही है जो उपर्युक्त पद्यो मे पाये जाते है, किन्तु जिनकी रचना चौपाई जैसे साधारण छन्दो के प्रयोग द्वारा की गई है।

कबीर साहब विचार-स्वातन्त्र्य तथा सात्विक जीवन के प्रबल समर्थक थे और उनकी साधना स्वानुभूति, सद्विचार तथा सदाचरण से सम्बद्ध थी। उनके मत मे, इसी कारण, न तो किसी धर्म-ग्रन्थ का महत्व था, न किसी विधि-निषेध अथवा बाह्य पूजन की ही प्रधानता थी। वे वस्तुत केवल शुद्ध सत्य के पुजारी थे और उसी की अनुभूति एव अभिव्यक्ति उनके आध्यात्मिक जीवन का सर्वप्रथम उद्देश्य था। उनकी कथन-शैली मे कतिपय प्रचलित शब्दों के प्रयोग का विशेष रूप से होता रहना न तो उनका किसी मत-विशेष का अनुयायी होना सिद्ध करता है, न केवल इसी एक बात के आधार पर हम उन्हे किसी प्रचलित धर्म वा सम्प्रदाय की सीमा के अन्तर्गत आबद्ध कर सकते है। उन्हे किसी भी मत के मौलिक सिद्धान्तों से कोई विरोध नही और वे उनके अनुयायियों को केवल उन्ही बातों की ओर उन्मुख होने का परामर्श भी देते हैं। सत्य एक, नित्य तथा सर्वव्यापी है। उसकी अनुभूति के लिए शुद्ध हृदय एव सदाचरण की आवश्यकता है। उसकी ओर सदा उन्मुख रहने पर हमे शान्ति, एकता एव आनन्द का अनुभव होता है और तभी हम स्वार्थ एव परमार्थ के सामजस्य द्वारा विश्व-कल्याण कर सकते है। इन बातो को उन्होंने स्पष्ट शब्दो मे और निर्भीकता के साथ कहा है और उनके अनुसार न चलने वालों को उन्होने खरी-खोटी भी सुनायी है।

कबीर साहब की रचनाओ मे कई भिन्न-भिन्न भाषाओ के शब्द आते है और उनकी पंक्तियों मे प्राय व्याकरण तथा पिंगल की अशुद्धियाँ भी मिलती है। उनके अनेक पदों मे एक से अधिक भाव बिना किसी क्रम के रखे गए दीख पडते है जिनके कारण कभी अस्पष्टता का दोष भी आ जाता है, परन्तु सब कुछ के होते हुए भी उसके अधिकाश पद तथा साखियाँ अपने भाव-गाभीर्य, ऊँची उडान, स्पष्ट चित्रण तथा

चुटीलेपन मे अद्वितीय दीखती हैं। उनके रूपक, उनकी अन्योक्तियाँ, उनके दृष्टात, उनकी अतिशयोक्ति एवं विभावना द्वारा निर्दिष्ट अनोखी सूझे और साधारण क्षेत्र के आधार पर भी कल्पित की गई विविध उल्टवासियाँ उनकी अपनी विशेषताएँ है। कवीर साहव की रचनाओ मे काव्य-कला का प्रदर्शन कही नही मिलता। उनमे एक अपना निराला सौन्दर्य है जो उनकी प्रतिभा के कारण विना किसी प्रयास के भी आपसे-आप फूट पडा है।

## पद

### अनस्थिर ससार (१)

का मागूँ कुछ थिर न रहाई, देखत नैन चल्या जग जाई ॥टेक॥
इक लष पूत सवालप नाती, ता रावन घरि दीवा न वाती ॥१॥
लका मा कोट समद मी खाई ता रावन की खवरि न पाई ॥२॥
आवत सग न जात सगाती, कहा भयो दरि वाँधै हाथी ॥३॥
कहै कवीर अत की वारी, हाथ झाडि जैसे चले जुवारी ॥४॥

देखत नैन=आँखो के सामने। (दे० गुरु नानक देव—"मै किआ मागउ किछु थिरु न रहाई, हरि दीजै नाम पिआरी जीउ," 'आदिग्रन्थ', सोरठि ८ तथा "अँजी किआ मागउ किछु रहै न दीसै, इसु जगमहि आइआ जाई", 'आदिग्रन्थ', गूजरी ३।) सगाती=साथी। हाथ जुवारी=हारे जुआरी की भाँति नगे हाथ चला जाना है। (दे० जायसी—"हाथ झारि जस चलै जुवारी। तजा राज, होइ चला भिखारी", 'जायसी ग्रन्थावली', पृ० ३२६।)

### मायिक वंधन (२)

माया तजू तजी नही जाइ, फिर फिर माया मोहि लपटाइ ॥टेक॥
माया आदर माया मान, माया नही तहाँ ब्रह्म गियान ॥१॥
माया रस माया कर जाँन, माया कारनि तजै पराँन ॥२॥
माया जप तप माया जोग, माया वाँधे सवही लोग ॥३॥
माया जल-थलि माया आकासि, माया व्यापित रही चहूँ पासि ॥४॥
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता ॥५॥
माया मारि करै व्यौहार, कहै कवीर मेरे राम अधार ॥६॥

अस्तरी=स्त्री।

### मन का दोष (३)

मन थिर रहै न घर ह्वै मेरा, इन मन घर जारे वहुतेरा ॥टेक॥
घर तजि वन वाहरि कियो वास, घर वन देखौ दोऊ निरास ॥१॥
जहाँ जाऊँ तहाँ सोग सताप, जरा मरण कौ अधिक वियाप ॥२॥
कहै कवीर चरन तोहि वदा, घर मैं घर दे परमानदा ॥३॥

मन मेरा=मेरा मन मेरे लिए शाति का आश्रय-स्थान वन कर नही रहता, व्यग्र तथा चचल हो उठता है। (दे० काण्हपा—"कान्हु कहिगइ करिव निवास। जो मन गोअर सो उआस", चर्यापद ७।)

भक्ति का भ्रम (४)

भूली मालनी है, गोव्यद जागतो जगदेव, तू करै किसकी सेव ।।टेक।।
भूली मालनि पाती तोडै, पाती पाती जीव ।
जा मूरतिकौ पाती तोडै, सो पाती नरजीव ।।१।।
टाचणहारै टाचिया, दे छाती ऊपर पाव ।
जे तू मूरति सकल है, तौ घडणहारे कौ खाव ।।२।।
लाडू लावण लापसी, पूजा चढै अपार ।
पूजि पुजारी ले गया, दे मूरति के मुँह छार ।।३।।
पाती ब्रह्मा पुहपे विष्ण, फूल फल महादेव ।
तीनि देवौ एक मूरति, करै किसकी सेव ।।४।।
एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब ससारा ।
एक न भूला दास कबीरा, जाकै राम अधारा ।।५।।

भूली ..है=अरी मालिन, तू भ्रम मे पडी है। नरजीव=निर्जीव। टाँचण-हारा=मूर्ति गढने वाले ने। टाचिया=उसे गढा। सकल=शक्ल, वास्तविक आकृति की। लावण=नमकीन पदार्थ। लापसी=लपसी नामक मीठा गीला पदार्थ। छार=धूल, राख। (दे० "मूल ब्रह्मा त्वचा विष्णु शाखा शकर एव च" आदि।)

भ्रात जन (५)

हरि बिन भरमि विगूचे[1] अधा[2] ।
जापै जाँउँ आपु[3] छुटकावनि, ते बाँधे[4] बहु फधा ।।टेक।।
जोगी कहै जोग सिधि नीकी, और न दूजी भाई ।
चुडित[5] मुडित मौनि जटाधर, ऐजु कहैं सिधि पाई ।।१।।
जहाँ का उपज्या वहाँ बिलाँनाँ, हरिपद बिसर्‍या जबही ।
पडित गुनी सूर कवि दाता, ऐजु कहै बड हमही ।।२।।
वार पार की खबरि न जानी, फिर्‍यौ सकल बन ऐसै ।
यहु मन बोहिथ के कउआज्यू, रह्यौ ठग्यौ सौ वैसै ।।३।।
तजि बाँवै दाहिणै बिकारा, हरिपद दिढ करि रहिये ।
कहै कबीर गूगै गुड खाया, बूझै तौ का कहिये ।।४।।

बिगूचे - विकुचित वा दबोचे हुए है। चुडित=शिखाधारी। यहू. ज्यौ=यह मन, समुद्र पर चलते हुए जहाज के काग पक्षी की भाँति सब कही से चल कर फिर वहीं आकृष्ट होकर बैठ गया है। तजि विकारा इधर-उधर की बातो मे न पडकर। (दे० मरहपा—"उड्डी वोहिअ काउ जिम पलुहिअ तहेंवि पडेड"—'दोहाकोश' ७०।) बूझै कहिये=पूछने पर क्या कहेगा।

पाठभेद—१ विगुरवै (बीजक), भुलाने (आदिग्रथ), २ गदा (बीजक तथा क० ग्रथ), ३ आपनपौ खोयौ (बीजक) आपन पौ छुडावण (क० ग्र०), ४ फदे (बीजक) बीधे (क० ग्र०), ५. रु डित (आ० ग्र०) लुचित (क० ग्र०)।

समस्या (६)

संतौ धागा टूटा गगन विनसि गया, सबद[1] जु कहाँ समाई ।।
ए ससा मोहिं निसदिन ब्यापै, कोइ न कहै समझाई ।।टेक।।
नही ब्रह्मांड प्यंड पुनि नाही, पंच तत भी नाही ।
इला प्यंगुला सुषमन नाही, ए अवगन[2] कत जाही ।।१।।
नही ग्रिह द्वार कछू नही तहियाँ, रचनहार पुनि नाही ।
जो उनहार अतीत सदा संगि, इह कहीए किसु[3] माही ।।२।।
तूटै वधै वधै पुनि तूटै, जब लग[4] होइ बिनासी ।
काको[5] ठाकुरु काको सेवकु, को काहूकै जासी ।।३।।
कहै कबीर यहु गगन न बिनसै, जौ धागा उनमाना ।
सीखे सुने पढे का होई, जौ नही पदहिं समाना ।।४।।

धागा.. समाई =जब श्वास बन्द होकर आकाश मे लीन हो जाता है तो ये शब्द कहाँ रहते है। ससा=संशय । अवगन=आवागमन के समय। रचनहार= सृष्टिकर्त्ता, ब्रह्मा। काको . जासी=फिर कौन किसका स्वामी है और कौन किसका सेवक है तथा कौन किसके निकट जाया करता है। गगन=घट। उन्माना =उन्मन अथवा परमात्मा की ओर उन्मुख रहता है।

पाठभेद—१ बोलतु (आ० ग्र०), २ ए गुण (क० ग्र०), ३ ये गुण तहाँ समाही (क० ग्र०), ४ तब (क० ग्र०); ५ तब को ठाकुर अब को सेवग को काकै विसवासा (क० ग्र० ।)

गगन रहस्य (७)

कहौ भईया अंबर कासूं लागा, कोई जाणैगा[1] जाननहार सभागा ।।टेक।।
अंबरि दीसै केता तारा, कौन चतुर ऐसा चितरनहारा ।।१।।
जे तुम देखौ सो यहु नाही, यहु पद[2] अगम अगोचर माही ।।२।।
तीन हाथ एक अरधाई, ऐसा अंबर चीन्हो रे भाई ।।३।।
कहै कबीर जे अंबर जानै, ताही सूं मेरा मन मानै ।।४।।

अंबर=आकाश। कोई . सुभागा =कोई भाग्यशाली समझदार व्यक्ति ही इसका रहस्य जानता है। तीनि . अरधाई=साढे तीन हाथ का शरीर। अंबर=घट।

पाठभेद—१ चेतनहारे चेतु सुभागा (बीजक), बूझै बूझण हारु सभाग (आ० ग्र०), २ सो तो आहि अमरपद माही (बीजक)।

चेतने का अवसर (८)

वाती सूकी तेलु निखूटा, मंदलु न वाजै नटु पै सूता ।।टेक।।
बूझि गई अगनि न निकसिउ धूआ। रवि रहिआ एकु अवरु नही दूजा ।।१।।
तूटी ततु न बजै रबाबु। भूलि विगारिआ अपना काजु ।।२।।
कथनी बदनी कहनु कहावनु। समझि परी तउ विसरिओ गावनु ।।३।।
कहत कबीर पंच जो चूरे। तिन्ह ते नाहिं परमपद दूरे ।।४।।

बाती=जीवन की वत्ती। सूकी=सूख गई। निखूटा=समाप्त हो गया। मंदलु=श्वास-प्रश्वास का बाजा, ढोल। नट=जीवात्मा। रमि रहिया=रम गया। तंतु=तार। भूलि=परमात्मा को भुलाकर। समझि परी=मिथ्यापन जान पड़ा। गावनु=गुणगान करना। पच जो चूरे=जो अपनी इद्रियो पर अधिकार कर लेते है।

उपालंभ (९)

गोव्यदे तुम्हथै डरपौ भारी।
सरणाई आयौ क्यू गहिये, यहु कौन बात तुम्हारी ॥टेक॥
धूप-दाझतै छाह तकाई, मति तरवर सच पाऊं।
तरवर माहै ज्वाला निकसै, तौ क्या लेइ बुझाऊं ॥१॥
जे बन जले त जलकू धावै, मति जल सीतल होई।
जलही माहि अगनिजे निकसै, और न दूजा कोई ॥२॥
तारण-तिरण तिरण तू तारण, और न दूजा जानौ।
कहै कवीर सरनाई आयौ, आन देव नहि मानौ ॥३॥

सरणाई गहिये=मुझ शरणागत को किस प्रकार अपनाओगे। यहु तुम्हारी=वह कौन सी बात है जिस पर भरोसा किया जाय। धूप......सचपाऊं=यदि धूप के ताप से बचने के लिए, छाया की खोज मे, इस उद्देश्य से वृक्ष के निकट जाये कि वहाँ पर सुख की प्राप्ति होगी। तरवर...बुझाउं=किन्तु उस वृक्ष से भी ज्वाला ही फूट निकले तो मै फिर उसे कैसे शात कर सकता हूँ। (साराश यह कि यदि ८४ योनि के चक्कर से बचने के लिए तुम्हारी शर्ण मे जाऊं, किंतु तुम्हारे यहाँ भी मुझे विविध विडबनाओ के ही जाल मे फँस जाना पड़े और अपना छुटकारा सभव न दीख पड़े तो मै अब कौन-सा अन्य उपाय ग्रहण करूं। तारण-तिरण=तारने वाला अथवा तरने वाला।

आत्म-समर्पण (१०)

मै गुलाम मोहि वेचि गुसाई। तन मन धन मेरा रामजी कै ताई ॥टेक॥
आनि कवीरा हाट उतारा। सोई गाहक सोइ बेचन हारा ॥१॥
वेचै राम तौ राखै कौन। राखै राम तो बेचै कौन ॥२॥
कहै कवीर मैं तन मन जार्‌या। साहिब अपना छिन न बिसार्‌या ॥३॥

ताई=लिए।

अपनी दशा (११)

माधव जल की पियास न जाइ। जल महि अगनि उठी अधिकाइ ॥टेक॥
तू जलनिधि हउ जल का मीनु। जलमहि रहउ जलहि बिनु खीनु ॥१॥
तू पिंजरु हउ सूअटा तोर। जमु मंजारु कहा करै मोर ॥२॥
तू तरवरु हउ पखी आहि। मदभागी तेरो दरसनु नाहि ॥३॥
तू सतिगुर हउ नउतनु चेला। कहि कवीर मिलु अंतकी वेला ॥४॥

नउतनु=नूतन, नौसिखिया।

विनय (१२)

राखि लेहु हमते बिगरी।
सीलु धरमु जपु भगति न कीनी, हउ अभिमान टेढ पगरी ॥टेक॥
अमर जानि सची इह काइआ, इह मिथिआ काची गगरी ॥
जिनहिं निवाजि साजि हम कीए, तिनहिं बिसारि अबर लगरी ॥१॥
साधिक ओहि साध नही कहीअहु, सरनि परे तुमरी पगरी।
कहि कबीर इह बिनती सुनीअहु, मत घालहु जमकी खबरी ॥२॥

बिगरी = भूल हो गई, अपराध हो गया। हउ पगरी = अभिमान के कारण मैं टेढी पाग बाँधने लगा हूँ अथवा अपने को असाधारण समझने लगा हूँ। इह गहरी = यह अंत में कच्चे घडे की भाँति विनश्वर जान पडा। जिनहिं लगरी = जिन पुत्र-कलत्रादि को मैंने अनुग्रहपूर्वक सँभाला, वे ही अब मुझे भुलाकर अन्य मार्ग पकड रहे है। सधिक पगरी = सधिक वा सन्निपात के प्रभाव मे पड कर बकने वाले के समान मेरे कहने पर ही मुझे साधु न मान लो, मैं अब तुम्हारे चरणो की शरण मे आ पडा हूँ। खबरी = सदेशवाहक, अर्थात् दूत यहाँ पर यमदूतो के हाथो मे। घालहु = डालो।

आत्मनिवेदन (१३)

मेरौ हार हिरानौ मैं लजाऊ, सास दुरासनि पीव डराऊ ॥टेक॥
हार गुह्यौ मेरौ राम ताग, बिचि बिचि मान्यक एक लाग।
रतन प्रवालै परम जोति, ता अतंरि अतंरि लागे मोति ॥१॥
पंच सखी मिलि है सुजान, चलहु त जईये त्रिवेणी न्हान।
न्हाइ धोइ कै तिलक दीन्ह, ना जानूं हार किनहू लीन्ह ॥२॥
हार हिरानौ जन विमल कीन्ह, मेरौ आहि परोसनि हार लीन्ह।
तीनि लोक की जानै पीर, सब देव सिरोमनि कहै कबीर ॥३॥

हार = काया। हिरानौ = मेरी भूल से दूसरो के हाथ पड गई। लजाऊ = विवश हो लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ। सास दुरासनि = अपने खोटे श्वास-प्रश्वास पर मैं निर्भर नही रह सकता अथवा मेरी सास कठोर शासन चलाने वाली है। पीव डराऊँ = उधर परमात्मा का भय लगता है। पंच न्हान = चतुर पचेन्द्रियो ने त्रिगुणात्मिक बुद्धि के भ्रमात्मक प्रवाह मे डाल दिया। न्हाइ लीन्ह = उसका प्रभाव दूर होने के समय तक जान पडा कि अब काया ही मेरे वश में नही। परोसनि = कुबुद्धि ने उस पर अधिकार जमा लिया है।

प्रार्थना (१४)

बीनती एक राम सुनि थोरी, अब न नचाइ राखि पति मोरी ॥टेक॥
जैसे मदला तुमहिं बजावा, तैसै नाचत मैं दुख पावा ॥१॥
जे मसि लागी सबै छुडावौ, अब मोहिं जिनि बहु रूपक छावौ ॥२॥
कहै कबीर मेरी नाच उठावौ, तुम्हारे चरन कवल दिखलावौ ॥३॥

थोरी = छोटी-सी। मदला = शरीर के वाद्य-यत्न, ढोल। मसि = पाप, कलक। अब छावौ = अब मुझसे अधिक अभिनय न कराओ। नाच = आवागमन का चक्कर। तुम्हारे = अपने।

### अपनी कठिनाई (१५)

राम राइ सो गति भई हमारी, मोपै छूटत नही ससारी ।।टेक।।
ज्यू पखी उडि जाइ अकासा, आस रही मन माही।
छूटी न आस टूट्यौ नही फधा, उड़िबौ लागैं काही ।।१।।
जो सुख करत होत दुख तेई; कहत न कछू बनि आवैं।
कुजर ज्यू कस्तूरी का मृग, आपैं आप बधावैं ।।२।।
कहै कबीर नही बस मेरा, सुनिये देव मुरारी।
इत भैंभीत डरौ जमदूतनि, आये सरनि तुम्हारी ।।३।।

सो = ऐसी। उडिबो काही = तो उडना किस काम का। इत .. दूतनि = इधर से भयभीत होकर यमदूतो के डर से भी डरने लगा हूँ, इस कारण।

### विरह-निवेदन (१६)

तुम्ह बिन राम कवन सौ कहिये। लागी चोट बहुत दुख सहिये ।।टेक।।
बेध्यौ जीव बिरह के भालैं, राति दिवस मेरे उर सालैं ।।१।।
को जानैं मेरे तनकी पीरा, सतगुर सबद बहि गयो सरीरा ।।२।।
तुम्हसे बैंद न हमसे रोगी, उपजी बिथा कैसैं जीवैं वियोगी ।।३।।
निसु बासर मोहिं चितवत जाई, अजहूँ न आइ मिले राम राई ।।४।।
कहत कबीर हमको दुख भारी, बिन दरसन क्यू जीवहिं मुरारी ।।५।।

जीव = मेरे प्राण। बहि गयौ = पार कर गया है।

### मन की साधना (१७)

नरदेही बहुरि न पाईये, तातैं हरषि हरिष गुण गाईये ।।टेक।।
जे मन नही तजै विकारा, तौ क्या तिरियै भौ पारा।
जब मन नही छाडै कुटिलाई, तब आइ मिलै राम राई ।।१।।
ज्यू जाँमण त्यू मरणा, पछितावा कछू न करणा।
जाणि मरै जे कोई, तो बहुरि न मरणा होई ।।२।।
गुर बचना मझि समावै, तब राम नाम ल्यौ लावै।
जब राम नाम ल्यौ लागा, तब भ्रम गया भौ भागा ।।३।।
ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा।
जब अनहद बाजा बाजैं, तब साईं सगि बिराजैं ।।४।।
होहु सत जनन के सगी, मन राचि रह्यो हरि रगी।
धरौ चरन कमल बिसवासा, ज्यू होइ निरभै पद बासा ।।५।।
यहु काचा खेल न होई, जन षरतर खेलै कोई।
जब षरतर खेल मचावा, तब गगन मडल मठ छावा ।।६।।
चित चचल निहचल कीजै, तब राम रसाइन पीजै।
जब राम रसाइन पीया, तब काल मिटया जन जीया ।।७।।
यू दास कबीरा गावे, तातै मन कौ मन समझावैं।
मनही मन समझाया, तब सतगुर मिलि सचुपाया ।।८।।

ज्यूं ...मरणा = जन्म एवं मरण में वस्तुतः कोई भी अन्तर नही। जीणि...कोई = जो जीते जी मुक्त होने के लिए मरता है। गुर...समावै = गुरु के संकेतों को भली-भाँति समझकर। भौ = सांसारिक आवागमन। ससिहर बजावा = चन्द्र (इडा नाडी) तथा सूर्य (पिंगला नाड़ी) को सुषुम्ना नाड़ी मे मिला कर अनाहत नाद की अभिव्यक्ति की जाती है और ऐसा होने पर परमात्मा की उपलब्धि हो जाती है। होह = हो जाओ। काचा खेल = साधारण प्रकार की क्रिया नही है। जन कोई = इसका अभ्यास कोई असाधारण शक्ति का पुरुष ही कर सकता है। गगन. छावा = इस कडे अभ्यास को सम्पन्न कर लेने पर साधक की गति सहस्रार के निकट हो जाती है। चित कीजै = मन की चंचलता को उसके निःस्वभावीकरण द्वारा दूर कर देना आवश्यक है। राम पीया = तभी परमात्मा की अनुभूति का आनन्द मिल पाता है। मनको समझावै = मन इस रहस्य को हृदयंगम करता है।

## स्वागत (१८)

अब तोहि जान न दैहू रांमी पियारे। ज्यूं भावै त्यूं होहु हमारे ।।टेक।।  
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बडे घरि बैठे आये ।।१।।  
चरननि लागि करौ बरियाई, प्रेम प्रीति राखौ उरझाई ।।२।।  
इत मन मंदिर रहौ नित चोषै, कहै कबीर परहु मति धोषै ।।३।।

भावै = भला जान पड़े। चोषै = उत्तम ढंग के साथ। परहु धोषे = मुझे पुनः त्याग देने के धोखे में न आ जाना।

## अभीष्ट सिद्धि (१९)

अब हरि हूँ अपनौ करि लीनौ। प्रेम भगति मेरौ मन भीनौं ।।टेक।।  
जरै सरीर अंग नहीं मोरौ, प्रान जाइ तौ नेह न तोरौ ।।१।।  
च्यंतामणि क्यूं पाइये ठोली, मनदे राम लियौ निरमोली ।।२।।  
ब्रह्मा खोजत जनम गँवायो, सोई राम घट भीतर पायौ ।।३।।  
कहै कबीर छूटी सब आसा, मिल्यौ राम उपज्यौ बिसवासा ।।४।।

ठोली = बिना मूल्य। निरमोली = अनमोल।

## प्रेम रहस्य (२०)

अकथ कहांणी प्रेम की, कछू कही न जाई।  
गूं गे केरी सरकरा, बैठे मुसकाई ।।टेक।।  
भौमि बिना अरु बीज बिन, तरवर एक भाई।  
अनन्त फल प्रकासिया, गुर दीया बताई ।।१।।  
मन थिर बैसि बिचारिया, रामहि ल्यौ लाई।  
झूठी अनभै बिस्तरी, सब थोथी बाई ।।२।।  
कहै कबीर सकति कछु नाहीं, गुर भया सहाई।  
आवण जांणी मिटि गई, मन मनहिं समाई ।।३।।

गूं गे ...मुसकाई = शर्करा खाकर मन ही मन स्वाद लेने वाले तथा ऊपर से केवल मुसका भर देने वाले गूंगे की दशा के तुल्य है। भौमि...बताई = गुरु ने एक ऐसी युक्ति

बतला दी जिसके द्वारा बिना किसी क्षेत्र के आधार पर (बिना काया की सहायता लिये ही) और बिना बीज के (बिना किसी वासना के) उगे हुए वृक्ष (प्राणो) में अनन्त फल (परमात्मा) प्रकट हो गया। मन .बाई=राम मे लीन होकर स्थिर मन से जब विचार किया तो समझ पडा कि इसके पहले केवल मिथ्यानुभूति का प्रसार था और सब कुछ विडवना मात्र था।

आत्म विचार (२१)

जब थै आतम तत बिचारी।
तब निरबैर भया सबहिन मैं, काम क्रोध गहि डारा ।।टेक।।
व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पडित को जोगी।
राणा राव कवन सू कहिये, कवन वैद को रोगी ।।१।।
इनमै आप आप सबहिन मैं, आप आपहसूं खेलै।
नाना भांति घडे सब भाडे, रूप धरे धरि मेलै ।।२।।
सोचि विचारि सबै जग देख्या, निरगुण कोइ न बतावै।
कहै कबीर गुणी अरु पडित, मिलि लीला जस गावै ।।३।।

इनमै .मैं=इनमे तो आत्मा अनुस्यूत ही वह सभी कुछ मे उसी प्रकार वर्तमान है। रूप . मेलै=कभी रूप धारण करता और कभी तिरोहित हो जाया करता है। निरगुण बतावै=निर्गुण का भेद कोई भी प्रकट नही कर पाता। मिलि गावै=उसके केवल गुणो तथा व्यापारो का वर्णन करना ही सबको आता है।

स्थिर मन (२२)

रे मन जाहि जहा तोहि भावै। अब न कोई तेरै अकुस लावै ।।टेक।।
जहा जहा जाइ तहा तहा रामा। हरि पद चीन्हि कियौ विश्रामा ।।१।।
तन रजित तव देखियत दोई। प्रगट्यौ ग्यान जहा जहा सोई ।।२।।
लीन निरतर बपु बिसराया। कहै कबीर सुख सागर पाया ।।३।।

रंजित=गुणों द्वारा प्रभावित। बपु बिसरायो=शरीर का भान जाता रहा।

उन्माद की दशा (२३)

सब [1]दुनी सयानी मैं बौरा। हम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ।।टेक।।
मैं[2] नहि बौरा राम कियौ बौरा, सत गुर जारि गयौ भ्रम मोरा ।।१।।
विद्या न पढूं वाद नही जानूं, हरिगुन कथत सुनत बौरानूं ।।२।।
[3]काम क्रोध दोऊ भये विकारा, आपहि आप जरै ससारा ।।३।।
मीठो कहा जाहि जो भावै, दास कबीर राम गुन गावै ।।४।।

हम विगरे .औरा=मैं तो बिगड ही चुका हूं, मेरे बिगडने के कारण दूसरे न विगडे। वाद नही जानू=वाद-विवाद करना वा शास्त्रों का रहस्य नही जानता हूँ। मीठी भावै=जो बात जिसे पसन्द है वह उसी को भला कहता हैं।

पाठभेद—१ खलक (आ० ग्र०); २ आपिन (आ० ग्र०), ३ अंत की इन दो पक्तियों के स्थान पर 'आदिग्रथ' मे तीन अन्य पक्तियाँ आती हैं।

## ज्ञान की आंधी (२४)

सन्तौ भाई आई ग्यान की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडाणी, माया[१] रहै न बाधी ।।टेक।।
दुचिते[२] की द्वै थूनी गिरानी, मोह बलीडा टूटा।
त्रिसना छानि परी घर ऊपरि, कुबधि[३] का भाडा फूटा ।।१।।
[४]जोग जुगति करि सन्तौ बाधी, निरचू चुवै न पांणी।
कूड कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाणी ।।२।।
आंधी पीछै जो जल वूठा[५], प्रेम[६] हरी जन भीना।
कहै कबीर भान[७] के प्रगटे, उदित भया तम पीना ।।३।।

माया बांधी=अब माया से बँधी नही रह सकती। दुचिते=दुविधा। थूनी =छोटे-छोटे खभे। बलीडा=म्याल वा बँडेरी। घर ऊपरि=धरती पर। निरचू=न चूने वाली। कूड=निकृष्ट। भांन के प्रगटे=ज्ञानोदय के होते ही। उदित भया=मन प्रकाशित हो गया।

पाठभेद--१. 'रहै न माया बाँधी' (आ० ग्रं०), २ हिति चत (क० ग्रं०); ३. दुरमति; ४. ये दो पक्तियाँ 'आदिग्रन्थ' मे नही आती। ५. बरखै (आ० ग्रं०); ६ तिहि तेरा जन भीना। ७ मनि भइया प्रगासा उदै भानु जब चीना (आ० ग्रं०)।

## काया-शुद्धि (२५)

अब घटि प्रगट भये राम राई। सोधि सरीर कनक की नाईं ।।टेक।।
कनक कसौटी जैसे कसि लेइ सुनारा। सोधि सरीर भयो तन सारा ।।१।।
उपजत उपजत बहुत उपाई। मन थिर भयो तबै थिति पाई ।।२।।
बाहरि षोजत जनम गंवाया। उनमनी ध्यान घट भीतरि पाया ।।३।।
बिन परचै तन काच कथीरा। परचै कंचन भयो कबीरा ।।४।।

सोधि विशुद्ध कर के। सारा=विशुद्ध, निखालिस, उत्तम। उपजत उपाई =अनेक उपायो के प्रयोग करते-करते। उनमनी ध्यान=मन को परमात्मा की ओर उन्मुख करने के अभ्यास द्वारा। कथीरा=राँगा के समान था।

## काया-पलट (२६)

अब हम सकल कुसल करि मानां।
स्वांति भई तब गोब्यंद जानां ।।टेक।।
तन मैं होती कोटि उपाधि। उलटि भई सुख सहज समाधि ।।१।।
जमतैं उलटि भया है राम। दुख बिसर्या सुख कीया विश्राम ।।२।।
वैरी उलटि भया है मीता। साषत उलटि सजन भये चीता ।।३।।
आपा जांनि उलटि ले आप। तौ नही ब्यापै तीन्यू ताप ।।४।।
अब मन उलटि सनातन हूवा। तब हम जाना जीवन मूवा ।।५।।
कहै कबीर सुख सहज समाऊँ। आप न डरौ न और डराऊँ ।।६।।

अब माना=अब मुझे सभी ने हितकारक मान लिया अथवा सब कुछ सिद्ध होता जान पड़ा। स्वांति=शांति अथवा अपनी अहंता का अंत। चीता=हितचिंतक।

आपा आप=अपने आपको जान लेने पर आत्मा का परिवर्तन परमात्मा मे हो जाता है। सनातन=नित्य शाश्वत परमात्मा। तब मूवा=मुझे जीवन्मुक्ति का अनुभव हुआ।

### बैकुंठ-रहस्य (२७)

चलन चलन सब को कहत है, ना जानौ बैकुठ कहा है ॥टेक॥
जोजन[1] परमिति, परमनु जानै। बातनि ही बैकुठ बषानै ॥१॥
जब लग है बैकुठ की आसा। तब लग नही हरि चरन निवासा ॥२॥
कहे सुने कैसे पतिअइये। जब लग तहाँ आप नही जइये ॥३॥
कहै कबीर यहु कहिये काहि। साध सगति बैकुठहि आहि ॥४॥

जो बषानै=जो व्यक्ति परमात्मा की इयत्ता और उसके परिणाम की भावना रखता है वह बातो मे ही बैकुठ का वर्णन कर देना चाहता है।

पाठभेद—१ एक प्रमिति नही (क० ग्रं०)।

### मुक्ति-रहस्य (२८)

राम मोहि तारि कहाँ लै जैहो।
सो बैकुठ कहौ धूं कैसा, करि पसावै मोहि दैहो ॥टेक॥
जो मेरे जीव दोइ जानत हौ, तो मोहि मुकति बताओ।
एकमेक रमि रह्या सबनिमैं, तौ काहे भरमाओ ॥१॥
तारण तिरण जबै लग कहिये, तब लग तत न जाना।
एक राम देख्या सबहिन मैं, कहै कबीर मनमाना ॥२॥

पसाव=अनुग्रह। जै हौ=यदि जीवात्मा को अपने से भिन्न मानते हो।

### अनुभूति का महत्व (२९)

पडित वाद बदते झूठा।
रांम कह्या दुनिया गति पावै, षाड कह्या मुख मीठा ॥टेक॥
पावक कह्या पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कह्या भूष जे भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई ॥१॥
नर कै साथि सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै।
जो कबहूँ उडि जाय जगल मै, बहुरि न सुरतै आनै ॥२॥
साची प्रीति विषै माया सू, हरि भगतनि सू हासी।
कहै कबीर प्रेम नही उपज्यौ, बाध्यौ जमपुरि जासी ॥३॥

वाद बदते=व्यर्थ की कथनी मे लगे रहते है। राम मीठा=राम कहने मात्र से उसी प्रकार मुक्ति होती है जिस प्रकार खाड कहने मात्र से मुँह मीठा हो जाता है। सुरतै आनै=स्मरण कर पाता है।

### मरण मे अमरत्व (३०)

हम न मरैं मरिहै ससारा। हमकू मिल्या जियावन हारा ॥टेक॥
अब न मरौं मरनै मन माना। तेई मुए जिनि राम न जाना ॥१॥

साकत मरै संत जन जीवैं। भरि भरि राम रसांइन पीवैं ।।२।।
हरि मरिहैं तौं हमहूँ मरिहै। हरि न मरै हम काहे कूं मरिहैं ।।३।।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा। अमर भये सुखसागर पावा ।।४।।

हम ससारा=जीवन-मुक्ति की स्थिति में हम अमर होकर रहेंगे और ससार के प्राणी अपने आवागमन मे लगे रहेगे। अब मांना=अब मेरे जरा-मरण का धंधा बद हो गया और उससे मुझे पूरा सतोष भी हो चुका। भरि पीवैं=परमात्मा की उपलब्धि का भरपूर आनद लिया करते हैं। हरि है=हरि के साथ तदाकारता वा तद्रूपता ग्रहण कर मैं उन्ही की भाँति नित्य शाश्वत बन गया

पक्षाग्रह (३१)

पषा पषी कै पेषणै सब जगत भुलाना।
निरपष होइ हरि भजै, सों साधु सयाना ।।टेक।।
ज्यूं षर सूं षर बंधिया, यूं बधै सब लोई।
जाकै आतम द्रिष्टि है, साचा जन सोई ।।१।।
एक एक जिनि जाणिया, तिनही सच पाया।
प्रेम प्रीति ल्यौ लीन मन, ते बहुरि न आया ।।२।।
पूरे की पूरी दृष्टि, पूरा करि देखै।
कहै कबीर कछू समझि न परई, या कछू बात अलेखै ।।३।।

पषा पेषणै=अधूरी सांप्रदायिक दृष्टि से देखने के ही कारण। षर=गधा जो अधिकतर दूसरों के ही सकेतो चला करता है। एक सच पाया=उस एकमात्र परमात्म तत्व की अद्वैतता का जिसे पूरा अनुभव हो गया, उसे ही सत्य की उपलब्धि हुई। पूरे देखै=उस पूर्ण तत्व को, उसकी पूर्णता के भाव के साथ पूर्ण रूप से देखना ही सच्चा देखना है। या अलेखै=यह बात अपनी अनुभूति पर निर्भर है, कुछ लेखबद्ध सकेतो का इसमे काम नही।

अपनी साधना (३२)

उलटि जाति कुल दोउ बिसारी। सुंन्न सहज महि बुनत हमारी ।।टेक।।
हमरा झगरा रहा न कोऊ। पंडित मुल्ला छाड़ै दोऊ ।।१।।
बुनि बुनि आप आपु पहिरावौ, जहँ नही आप तहाँ ह्वै गावौ ।।२।।
पण्डित मुल्ला जो लिखि दीया। छाड़ि चले हम कछू न लीया ।।३।।
रिदै षलासु निरषि ले मीरा। आपु षोजि षोजि मिले कबीरा ।।४।।

उलटि... हमारी=सहज शून्य की साधना मे निरत हो मैने अपनी जाति तथा कुल को नष्ट कर दिया और दोनो धर्मो को भी भुला डाला। बुनि... गावौं=मैं स्वय अपने को वस्त्रवत् बुना करता हूँ और फिर उसे स्वय धारण कर लेता हूँ अर्थात् मै सदा आत्मचिंतन मे निरत रहता हूँ और उसके परिणाम का आत्मज्ञान भी करता चलता हूँ। फिर भी अहंभाव से परे होकर ही गाया करता हूँ। रिदै मीरा=परमात्मा को वास्तविक प्रेम के साथ हृदय मे देखो। आपु=निज रूप मे।

भाव-भगति : (३३)

कथणी बदणी सब जंजाल। भाव भगति अरु राम निराल ॥टेक॥
कथै बदै सुणै सब कोई। कथे न होई कीये होई ॥१॥
कूडी करणी राम न पावै। साच टिकै निज रूप दिखावै ॥२॥
घट मे अग्नि घर जल अवास। चेति बुझाइ कबीरादास ॥३॥

निराल=अनुपम; अद्वितीय। साच टिकै=सत्य पर आश्रित रहने पर ही। घट...कबीरदास=कबीर साहब का कहना है कि काया के भीतर जो पिपासाग्नि प्रज्वलित हो रही है, उसे शात करने के लिए परमात्मा-रूपी जल भी वही वर्तमान है, इसे समझ कर उसे बुझा लो।

सृष्टि-लीला (३४)

दुइ दुइ लोचन पेखा। हौ हरि बिन और न देखा ॥
नैन रहे रग लाई। अब बेगल कहन न जाई।
हमरा भरमु गया भय भागा। जब रामनाम चित लागा ॥१॥
बाजीगर डंक बजाई। सभ खलक तमासे आई।
बाजीगर स्वाग सकेला। अपने रग रवै अकेला ॥२॥
कथनी कहि भरमु न जाई। सभ कथि कथि रहि लुकाई ॥
जाकौ गुर मुखि आपि बुझाई। तानै हिरदै रह्या समाई ॥३॥
गुर किंचत किरपा कीनी। सभु तन मन देह हरि लीनी।
कहि कबीर रगि राता। मिलिओ जगजीवन दाता ॥४॥

हौ=मैंने। नैन...लाई=मेरे नेत्र उसी के अनुराग मे रजित हो रहे है। बेगल=उसके विना दूसरा कुछ भी। बाजीगर=उस लीलामय ब्रह्म ने। खलक=ससार। स्वाग=दिखावा, तमाशा। सकेला=बटोर लिया, बंद कर दिया। रग=स्वभाव मे। सब...लुकाई=सभी उपदेश दे-देकर अपना मुँह छिपा लेते है।

उस कोरी का अनुसरण (३५)

कोरी को काहू भरम न जाना। सभ जग आनि तनायो ताना ॥
जब तुम सुनिले वेद पुराना। तब हम इतनकु पसरियो ताना ॥
धरनि अकास की करगह बनाई। चंद सूरज दुइ साथ चलाई ॥
पाई जोरि बात इक कीनी। तह ताती मनमाना।
जोलाहे घर अपना चीन्हा, घटही राम पछाना ॥
कहत कबीर करगह तोरी, सूतै सूत मिलाये कोरी।

कोरी=सृष्टिकर्ता जुलाहे का। तब ताना=तब तक मैंने अपने कुछ ताना फैलाया। चंद चलाई=चन्द्र और सूर्य को ढरकी बना उन्हे साथ-साथ चला दिया। पाई . कीनी=टिकठियो को जोडकर, उस पर ताने गए सूत को कूँची से माँजकर बरा-

वर किया। तह...मनमाना=तब जुलाहे को सतोष हुआ। (कबीर के पक्ष मे 'धरनि अकास की करगह' घट अर्थात् काया है, चन्द्र, सूर्य ईडा, पिंगला नाडियाँ है और 'पाई' आदि की क्रिया शरीर के ढाँचे के भीतर योग वा आध्यात्मिक ऐक्य का स्थापित करना है। जोलाहे=-कबीर जोलाहे ने। तुलना के लिये दे० 'बीजक' रमैनी २८)।

## वह सब से परे (३६)

संतौ धोखा कासू कहिये।
गुणमैं निरगुण निरगुण मै गुणहै, बाट छाड़ि क्यू बहिये ।।टेक।।
अजरा अमर कथै सब कोई, अलख न कथणा जाई।
ना तिस रूप वरण नही जाकै, घटि घटि रह्यौ समाई ।।१।।
प्यड ब्रह्म ड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अत न होई।
प्यड ब्रह्मंड छाड़ि जे कथिये, कहै कबीर हरि सोई ।।२।।

गुण मे...बहिये=सगुण मे निर्गुणत्व का आरोप एव निर्गुण के लिए सगुणत्व की भावना स्वाभाविक है। इसे त्याग दोनो मे से किसी भी एक ओर बहना ठीक नही। अजरा ..जाई=उस अलक्ष्य के लिए अजर अमर, आदि कहना भी उपयुक्त नही। प्यड. सोई=उसे पिंड वा ब्रह्मांड की सीमा से परे कहना सगत हो सकता है।

## सर्वत्र वही (३७)

हम तौ एक एक करि जाना।
दोइ कहै तिनही कौ [१] दोजग, [२] जिन नाहिन पहिचाना ।।टेक।।
एकै पवन एकही पानी, एक जोति ससारा।
एकही खाक घडे सब भाड़े, एकही सिरजनहारा ।।१।।
जैसे बाढ़ी काष्टही काटै, अगिनि न काटै कोई।
सब घटि अतरि तूंही व्यापक, धरै सरूपै सोई ।।२।।
माया [३] मोहे अर्थ देखि करि, काहेकू गरवाना।
नरभै भया कछू नही व्यापै, कहै कबीर दीवाना ।।३।।

हम जाना=मै तो उस एक को केवल (एक) मात्र ही जानता हूँ। दोजग=नरक। जैसे=कोई=जिस प्रकार किसी काष्ठ को काटते समय बढई उसके भीतर की आग नही काटता।

**पाठभेद**—१. तिनको द्वविधा है, २. जिन सतनाम न जाना; ३. माया देखि के जगत भुलानो ('कबीर शब्दावली' भा० २, सबद २७, पृ० ७४)।

## नाम-रहस्य (३८)

है कोई राम नाम बतावै, वस्तु अगोचर मोहि लखावै ।।टेक।।
राम नाम सब कोई बखानै। राम नाम का मरम न जानै ।।१।।
ऊपर की मोहि बात न भावै। देखै गावै तौ सुख पावै ।।२।।
कहै कबीर कछू कहत न आवै। परचै विना मरम को पावै ।।३।।

राम नाम=नाम का वास्तविक रहस्य। ऊपर भावै=ऊपर की कही-सुनी बातो मे प्रतीति नही होती। देखै गावै=स्वानुभूतिपूर्वक वर्णन करे तो।

राम-रंग (३९)

राम नाम रग लागौ कुरंग न होई। हरि रग सौ रग और न कोई ॥टेक॥
और सबै रग इहि रग थै छूटै, हरि रग लागा कदे न खूटै ॥१॥
कहै कबीर मेरे रंग रामराई, और पतग रग उडि जाई ॥२॥

कुरग=बुरा रग। और छूटै=इस रग के चढ जाने पर फिर और कोई भी रंग नही ठहर पाता। और जाई=अन्य सभी रग कच्चे एव उड जाने वाले होते है।

मुक्ति-महत्त्व (४०)

सरवर तट हसणी तिसाई। जुगति बिना हरिजल पिया न आई ॥टेक॥
पीया चाहै तौलै खग सारी, उडि न सकै दोऊ पर भारी ॥१॥
कुभ लीयै ठाढी पनिहारी, गुन बिन नीर भरै कैसे नारी ॥२॥
कहै कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज सुभाइ मिले रामराई ॥३॥

सरवर तिसाई=आत्मा की हसिनी हृदय सरोवर के रहते हुए भी तृषित, अर्थात् अतृप्त बनी है। जुगति=सतगुरु की बतलायी युक्ति। पीया सारी=हरिरस पीने की इच्छा से वह उड़ान भरने का प्रयत्न करती है, अर्थात् प्राणो को उधर उन्मुख किया जाता है। कुभ नारी=आत्मा की पनिहारिन काया का कुभ लिए नाम रस भरना चाहती है, किन्तु सुरति की डोरी के बिना वह कुछ कर नही पाती। बुधि=युक्ति।

अज्ञान का प्रभाव (४१)

काहे री नलनी तू कुमिलानी। तेरे ही नालि सरोवर पानी ॥टेक॥
जलमैं उतपति जलमैं बास, जलमैं नलनी तोर निवास ॥१॥
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि ॥२॥
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नही मूए हमारे जान ॥३॥

काहे री पानी=अरी आत्मा की कमलिनी तू क्यो सूखती जा रही है। सरोवर का जल तो तेरे पास ही विद्यमान है। तलि=नीचे। तपति=गर्मी वा ज्वाला। तोर लागि=तेरा किसी के साथ प्रेम-सम्बन्ध तो नही हो गया है ? उदिक समान= जिन्होने 'राम उदक' मे प्रवेश पा लिया। (दे० 'राम उदकि मेरी तिखा बुझागी', आदिग्रंथ, राग गउडी, १)।

गर्वजनित भ्रम (४२)

रजसि मीन देखि वहु पानी। काल जाल की खवर न जानी ॥टेक॥
गारै गरव्यौ औघट घाट। सो जल छाडि विकानी हाट ॥१॥
वध्यौ न जानै जल उदमादि। कहै कवीर सव मोहै स्वादि ॥२॥

रजसि=प्रसन्न हो रही है। गारै घाट=कम नीची जमीन के भी पानी मे औघट घाट के कारण उसे गर्व हो गया। सो हाट=उस जल से पृथक् करके वह वाजार मे वेंच दी गई। वध्यौ उदमादि=जल मे रहने के कारण उसे घमड था और

वह अपने को बंधन मे पड़ी हुई नही मानती थी। सब मोहै स्वादि=सभी स्वाद वा वासना के कारण भ्रम मे पड़ जाते है वा पड़े हुए है।

एकांत निष्ठा (४३)

डगमग छाडि दे मन बौरा।
अब तौ जरे-बरे बनि आवै, लीन्हो हाथ सिंधौरा ।।टेक।।
होइ[१] निसक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाड़ौ।
सूरौ कहा मरन थै डरपै, सती न सचै भांडौ ।।१।।
लोक बेद कुलकी मरजादा, इहै गलै मैं पासी।
आधा चलि करि पोछा फिरिहै, ह्वै है जगमै हासी ।।२।।
यहु ससार सकल है मैला, राम कहै ते सूचा।
कहै कबीर नाव[२] नही छाड़ौ, गिरत परत चढि ऊँचा ।।३।।

डगमग=अनिश्चितता वा चंचलता, संशय की वृत्ति। अब ... सिंधौरा=जब तूने आत्मोपलब्धि का व्रत अंगीकार कर लिया तो तुझे अब अपने को जला कर समाप्त कर देने मे ही अपना कुशल है। सती ... भाड़ौ=सती स्त्री कभी सपत्ति का संचय नही करती।

पाठभेद—१. 'मन रे छाडहु भरमु प्रगटु होइ नाचहु या माया के डाड़े'। २. 'राजा राम न छोडउ सगल ऊच ते ऊचा'। (आदिग्रथ। 'आदिग्रंथ' मे ५वी-छठी पंक्तियाँ नही हैं

सच्ची आरती (४४)

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै। तेजपुंज तहां प्रान उतारै ।।टेक।।
पाती पंच पहुप करि पूजा, देव निरंजन और न दूजा।
तन मन सीस समरपन कीन्हा, प्रगट जोति तहा आतम लीना ।।१।।
दीपग ग्यान सबद धुनि घटा, परम पुरिख तहां देव अनंता।
परम प्रकास सकल उजियारा, कहै कबीर मैं दास तुम्हारा ।।२।।

तेज ... उतारै=अपने प्राणों को आत्मज्योति के सपर्क मे ला देवे। पाती ... पूजा=पूजा की विधि मे पंचेन्द्रियो को पत्तो तथा पुष्पो की जगह अर्पित कर देवे। दीपग ... घंटा=ज्ञान के दीप और अनाहत नाद की ध्वनि को इस आरती के समय प्रयोग में लावे।

दैनिक आवश्यकता (४५)

भूखे भगति न कीजै, यह माला अपनी लीजै ।।
हौ मागो सतन रेना। मैं नाही किसी का देना ।।१।।
माधो कैसी बनै तुम सगे। आपन देहु त लेवउ मगे ।।टेक।।
दुइ सेर मांगउ चूना। पाउ घीउ सगि लूना।
अध सेर मांगउ दाले, मोको दोनउ वखत जिवाले ।।२।।
खाट मांगउ चउपाई। सिरहाना अवर तुलाई।
ऊपर कउ मांगउ खीधा। तेरी भगति करै जनु थीधा ।।३।।
मै नाही कीता लबो। इकु नाउ तेरा मैं फबो।
कहि कबीर मनु मान्या। मनु मान्या तौ हरि जान्या ।।४।।

न कीजै=नही की जा सकती। संतन रेंना=संतो के चरणो की धूल चाहता हूँ। माधो ..मगे=माधव, तुम्हारे साथ मेरी इस प्रकार नही निभेगी, स्वयं न दोगे तो माँग कर ही लूँगा। चूना=आटा। लूना=नमक। अध.. दाले=आधा सेर दाल माँगता हूँ। मोको...जिंवाले=इससे मुझे दोनो जून भोजन करा दो। खाट. तुलाई=चार पैर की खाट, तकिया तथा रूई भरी दुलाई माँगता हूँ। बिछाने के लिए खिथा, अर्थात् सिली सुजनी माँगता हूँ। वीधा=लीन होकर। मैं...फबो=मैने कुछ भी किसी से नही लिया है, केवल तेरे नाम से ही शोभित होना है।

## रमैणी

भया दयाल बिषहर जरि जागा। गहगहान प्रेम बहु लागा।।
भया अनद जीव भये उल्हासा। मिले राम मनि पूजी आसा।।
मास अषाढ रबि धरनि जरावै। जरत जरत जल आइ बुझावै।।
रुति सुभाइ जिमी सब जागी। अमृत धार होइ झर लागी।।
जिमी माहि उठी हरियाई। बिरहनि पीव मिले जन जाई।।
मनिका मनिकै भये उछाहा। कारनि कौन बिसारी नाहा।।
खेल तुम्हारा मरन भया मोरा। चौरासी लख कीन्हा फेरा।।
सेवग सुत जे होइ अनिआई। गुन औगुन सब तुम्हि समाई।।
अपने औगुन कहु न पारा। इहै अभाग जे तुम्ह न सभारा।।
दरबो नही काइ तुम्ह नाहा। तुम्ह बिछुरै मैं बहु दुख चाहा।।
मेघ न बरिखै जाहि उदासा। तऊ न सारग सागर आसा।।
जलहर भर्‌यौ ताहि नही भावै। कै मरि जाइ कै उहै पियावै।।
मै निरासी जब निध्य पाई। राम नाम जीव जाग्या जाई।।
नलनी कै ज्यू नीर अधारा। खिन बिछुर्‌या थै रबि प्रजारा।।
राम बिना जीव बहुत दुख पावै। मन पतग जगि अधिक जरावै।।
माघ मास रुति कवलि तुसारा। भयौ बसत तब बाग सभारा।।
अपनै रगि सबै कोइ राता। मधुकर बास लेहि मैंमता।।
वन कोकिला नाद गहगहाना। रुति बसत सबकै मनि माना।।
विरहन्य रजनी जुग प्रति भइया। बिन पीव मिले कलप टलि गइया।।
आतमा चेति समझि जीव जाई। बाजी झूठ राम निधि पाई।।
भया दयाल निति बाजहि बाजा। सहजै राम नाम मन राजा।।

जरत जरत जल पाइया, सुख सागर का मूल।
गुरु प्रसादि कबीर कहि, भागी ससै सूल।।

भया . जागा=परमात्मा की दया हुई है और मैं विरहाग्नि से जल चुकने पर विष (त्रिताप) नाशक (रामनाम) मत्र से प्रभावित हो जग उठा। गहगहान ..लागा=मैं प्रेम से प्रफुल्लित हो उठा। जीव .उल्हासा=मेरे मन में उल्लास भर गया। पूजी=पूरी हुई। जल=जल द्वारा। रुति सुभाइ=ऋतु प्रभाव से। झरलागी=वृष्टि होने लगी। मनिका मनिकै=प्रत्येक मन मे। सेवग अनिआई=सेवक वा पुत्र से अपराध हो जाय तो। अपने ..पारा=मेरे अवगुणो का कही अत नही। दरबो...नाहा=हे स्वामिन्, तुम क्यो नही पसीजते। चाहा=देखा, पाया। मेघ ..पासा=मेघ के न बरसने पर पपीहा

उदास होकर रह जाता है, किंतु समुद्र के निकट नहीं जाता। उहै=स्वाती का मेघ ही। मैं...पाई=मुझ निराश को जब निधि मिल गई। पतंग=शलभ। कवलि तुसारा=कमल पर तुषारपात हो जाता है। बास मैमता=मत्त होकर गंध ग्रहण करता फिरता है। विरहन्य भइया=विरहिणी के लिए प्रत्येक रात एक युग के समान लम्बी जान पड़ी। आतमा जाई=आत्मा का परिचय पा लेने पर जीव रहस्य को समझ गया। बाजी झूठ=भ्रमात्मक बातों का परित्याग कर दिया। राजा=सुशोभित हो गया।

## साखी

सतगुर सवा न को सगा, सोधी सई न दाति।
हरिजी सवा न को हितू, हरिजन सई न दाति ॥१॥
सतगुर की महिमा अनत, अनत किया उपगार।
लोचन अनत उघाड़िया, अनत दिखावणहार ॥२॥

पीछे लागा जाइ था, लोक बेद के साथि।
आगै थै सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि ॥३॥
पासा पकड्या प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुर दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥४॥

भगति भजन हरिनाव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा क्रमना, कबीर सुमिरण सार ॥५॥
मेरा मन सुमिरै रामकूं, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहि ह्वै रह्या, सीस नवावौ काहि ॥६॥

तू तू करता तूं भया, मुझमैं रही न हूं।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तू ॥७॥
बासुरि सुख ना रैंणि सुख, ना सुख सुपिनैं माहिं।
कबीर बिछुट्या रामसू, ना सुख धूप न छांह ॥ ८ ॥

बिरह भुवंगम तन बसै, मन्त्र न लागै कोइ।
राम वियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ॥९॥
सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै साईं कै चित्त ॥१०॥

इस तनका दीवा करौ, बाती मेल्यूं जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देखौ पीव ॥११॥
सोई आंसू सजणां, सोई लोक बिडाहिं।
जे लोइण लोही चुवै, जाणौ हेत हियांहिं ॥१२॥

१. सवा, सइं=समान। सोधी=चित्त शुद्धि। (दे० "सतगुर थै सोधी भई, तब पाया हरिका षोज" (क० ग्रं०, पृ० ३, टि०)। दाति=दीक्षा, उपदेश, देन। ३. दीपक=प्रातिभ ज्ञान। ४ पासा=पल्ला। सारी=चौसर की गोट। ५. क्रमना=कर्मों द्वारा। ६ (दे० 'मणु मिलियउ परमेसर हो, परमेसरु जिमणस्स। विण्णिवि समरसि हुइ रहिय पुज्ज चडावउ कस्स'—मुनि रामसिंह, पा० दो० ४९)। ७. वारी फेरी=निछावर कर दिया। बलि गई=बलिहारी गई। ८ वासुरि=दिन में।

१० रग=शरीर की नसे। तत=तात। रबाब=एक प्रकार का बाजा। (दे० जायसी, "हाड भए सब किंगरी नसैं भई सब ताति") (जा० ग्र०, पृ० १७४)। ११. बाती. जीव=प्राणो की बत्ती डाल कूँ। लोही=लोहू, रक्त। तेल ज्यू=तेल की भाँति। १२. सजणा=अपने लोगो वा स्वजनो का। लोक बिडाहि=पराये लोगो का। जे . हियाहि=यदि आँखो से लहू टपकने लगे तो समझो कि हृदय मे प्रेम है।

बिरहु जलाई मै जलो, जलती जलहरि जाऊ।
मो देख्या जलहरि जलै, सतौ कहा बुझाऊ॥१३॥

हिरदा भीतरि दौ बलै, धूवा न प्रगट होइ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ॥१४॥

कबीर तेज अनत का, मानौ ऊगी सूरज सेणि।
पति सग जागी सुदरी, कौतिग दीठा तेणि॥१५॥

अतरि कवल प्रकासिया, ब्रह्मवास तहा होइ।
मन भवरा तहा लुबधिया, जाणैगा जन कोई॥१६॥

मन लागा उनमन सौ, उनमन मनहि विलग।
लूंण विलगा पाणिया, पाणी लूण विलग॥१७॥

पाणी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया विलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ॥१८॥

जब मैं था तब हरि नही, अब हरि है मैं नाहि।
सब अधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माहि॥१९॥

सवै रसाइण मै किया, हरिसा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होइ॥२०॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूंद समानी समद मैं, सो कत हेरी जाइ॥२१॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समद समाना बूंद मैं, सो कत हेर्‌या जाइ॥२२॥

नैना अतरि आव तू, ज्यू हौ नैन झपेउ।
ना हौ देखौ और कूं, ना तुझ देखन देउ॥२३॥

मेरा मुझमे कुछ नही, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझकौं सौपता, क्या लागै मेरा॥२४॥

कबीर सीप समद की, रटै पियास पियास।
समंदहि तिणका बरि गिणै, स्वाति बूंद की आस॥२५॥

१३ जलहरि=जलाशय तक। १४ दौ=अग्नि, ज्ञान विरह। १५. सेणि=श्रेणी। तेणि=उसने। १७ उनमन=मनका अभीष्ट परमतत्त्व। विलग=मिल गया। (दे० "कंठ विलग्गी मारवी, करि कचूवा दूर" ५५१ तथा "निसि भरि सूती सुदरी, वालम कंठ विलग्गि" अथवा "खरी विलग्गी खति—'ढोला मारूरा दूहा') और दे० "लवणो जिम पाणिहि विलिज्जइ"—सरह (दो० को० २३८)। २०. रसाइण=काया-कल्प की क्रिया। २१. हेरत-हेरत=ढूंढता-ढूंढता। हिराइ=खो गया। (दे० "बु दहि

समंद समाते" इत्यादि जायसी (अखरावट) । २३. ज्यूं . झंपेउ=ताकि मैं अपनी आँखें बन्द कर दूं । २५ समदहि गिणैं=समुद्र को भी तृणवत् तुच्छ मानता है ।

कबीर हरि सबकूं भजै, हरिकूं भजै न कोइ ।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होइ ॥२६॥

मालन आवत देखि करि, कलिया करी पुकार ।
फूले फूले चुणि लिए, कालिह हमारी बार ॥२७॥

बाढी आवत देखि करि, तरवर डोलन लाग ।
हम कटे की कुछ नही, पखेरू घर भाग ॥२८॥

फागुण आवत देखि करि, बन रूना मन माहिं ।
ऊँची डाली पातहै, दिन दिन पीलें थाहि ॥२९॥

जो ऊग्या सो आथवै, फूल्या सो कुमिलाइ ।
जो चिणिया सो ढहि पडै, जो आया सो जाइ ॥३०॥

कबीर हरि सूं हेत करि, कूडै चित्त न लावै ।
बाध्या वार षटीक कै, ता पसु किती एक आव ॥३१॥

काची काया मन अथिर, थिर थिर काम करत ।
ज्यू ज्यू नर निधडक फिरै, त्यू त्यू काल हसंत ॥३२॥

जिनि हमं जाए तें मुए, हम भी चालण हार ।
जे हमको आगै मिले, तिन भी बध्या भार ॥३३॥

यहु मन पटकि पछाडि लै, सब आपा मिटि जाइ ।
पगुल ह्वै पिव पिव करै, पीछै काल न खाइ ॥३४॥

कबीर सुपिनै हरि मिल्या, सूता लिया जगाइ ।
आँखि न मीचौ डरपता, मति सुपिना ह्वै जाइ ॥३५॥

कबीर केसौ की दया, ससा घाल्या खोइ ।
जे दिन गये भगति बिन, ते दिन सालै मोहि ॥३६॥

कस्तूरी कुडलि बसै, मृग ढूंढै बन माहि ।
ऐसै घटि घटि राम है, दुनिया देखै नाहि ॥३७॥

निंदक नेडा राखिये, आगणि कुटी बधाइ ।
बिन साबण पाणी बिना, निरमल करै सुभाइ ॥३८॥

२६. भजै=स्मरण रखते हैं । भजै=स्मरण करना । २७ बार=बारी, अवसर । २८. बाढी=बढई । डोलन लाग=काँपने लगा । पंखेरू.. भाग=पक्षी तू अपने घर भाग जा । २९. ऊँची...थाहि=जो ऊँची डाली की पत्तियाँ अभी तक हरी है, वे भी पीली पड़ जायेंगी । ३०. आथवै=अस्त हो जाता है । चिणिया=चुन कर उठाया गया रहता है । ३१. वार षटीक कै=बधिक के द्वार पर । आव=आयु । ३३. हमं जाए=हमें उत्पन्न किया । बध्या भार=गट्ठर बाँध कर चलने को तैयार है । ३४ पगुल=अशक्त । ३५. सूता=अज्ञानावस्था मे ही, अचानक । मति=कही न । ३७ कुंडलि=नाभि मे । ३८. आगणि.. बधाइ=अपने यहाँ आदर के साथ । बिन..बिना=बिना किसी बाह्य साधन के ही । सुभाइ=स्वभाव ।

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठग्या सुख ऊपजे, और ठग्या दुख होइ ॥३९॥
ज्यू मन मेरा तुझसौं, यो जे तेरा होइ।
ताता लोहा यौ मिलै, सधि न लखई कोइ ॥४०॥

कबीर गरबु न कीजियै, रकु न हसियै कोइ।
अजहू सु नाउ समद महि, क्या जानै क्या होइ ॥४१॥
चरन कमल की मौज को, कहि कैसे उनमान।
कहिबे की सोभा नही, देखा ही परवान ॥४२॥

चुगै चितारै भी चुगै, चुगि चुगि चितारै।
जैसे बिचरहि कुज मन, माया ममतारे ॥४३॥
कबीर जाको खोजते, पायो सोई ठौर।
सोई फिरि कै तू भया, जाकौ कहता और ॥४४॥

मुहि मरने का चाउ है, मरौं तौ हरिके द्वार।
मत हरि पूछै कौन है, परा हमारै बार ॥४५॥
हरि है खाडु रेतु महि बिखरी, हाथी चुनी न जाइ।
कहि कबीर गुरु भली बुझाई, कीटी होइके खाइ ॥४६॥

४० ताता=गर्म किया हुआ। सधि=जोड़ का स्थान। ४१ रकु कोइ=किसी गरीब पर मत हँसो। अजहूं होइ=अभी तो तुम्हारा जीवन ससार मे व्यतीत ही हो रहा है, अभी क्या पता है कि इसका अत कैसा होगा। ४२ चरन उनमान=परम पद मे लीन हुए व्यक्ति को जिस उल्लास का अनुभव होता है, उसका अनुमान ठीक-ठीक नही किया जा सकता। परवान = प्रमाण, यथार्थ। ४३ चुगै रे=जिस प्रकार कुंज पक्षी दाने चुगता है और बच्चो की चिन्ता भी करता रहता है, उसी प्रकार मन विषयो मे लगा हुआ भी कभी-कभी चिंतन कर लेता है। (दे० "चुगइ चितारइ भी चुगइ, चुगि चुगि चित्तारेह। कुरझी बच्चा मेल्हिकइ, दूरि थकां पालेह"—ढोला०, २०२)। चितार=स्मरण करता है। भी=फिर। बिचरहि=विचरण करता है। ४४. और=भिन्न। ४५. मुहि=मुझे। चाउ=अभिलाषा। मत=यह समझ कर कि कभी तो ऐसा होगा कि। पूछै=पूछ लेगा। बार=द्वार पर। ४६ खाडु=चीनी। रेतु=बालू, माया। हाथी=मतवाले मन से। कीटी खाइ=युक्तिपूर्वक चीटी के समान छोटा होकर उन्हे प्राप्त करो।

मारे बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और।
लागी चोट मरम्म की, रह्यो कबीरा ठौर ॥४७॥
मूरो कौ का रोइये, जो अपणे घर जाइ।
रोइए बदीवान को, जो हाटै हाट बिकाइ ॥४८॥

४७ मारे=मार पड़ने पर। बहुत=बहुत लोग। पीर=दर्द के कारण। और=अन्य लोग। मरम्म की=मर्म की गठरी। ठौर=जहाँ का तहाँ। ४८ मूरो=जीवन्मृतको वा मुक्तो। बदीवान को=ससार मे बद्ध पुरुष को।

## संत पीपाजी

पीपाजी भी सेन नाई की भाँति स्वामी रामानन्द के शिष्यो मे समझे जाते हैं। प्रसिद्ध है कि ये उनके साथ कई तीर्थो मे भी गये थे। परन्तु इस बात का न तो कोई ऐतिहासिक विवरण अभी तक उपलब्ध है, न पीपाजी ने ही इसे कही पर स्वीकार किया है। डॉ० फर्कुहर ने इनके जन्म का स० १४८२ दिया है, किन्तु कनिंघम ने गागरौन राज की वशावली के आधार पर इनका समय सं० १४१७-१४४२ ठहराया है। पीपाजी की अपनी उपलब्ध रचनाओ द्वारा अनुमान होता है कि ये कबीर साहब के बड़े प्रशसक सम-सामयिक व्यक्ति थे। मेवाड के इतिहास द्वारा यही जान पड़ता है कि ये राणा कुंभा स० १४७५-१५२५) के समकालीन रहे होगे। इस प्रकार भी ये कबीर साहब से छोटे होते हैं। पीपाजी गागरौनगढ के राजवश के थे और ऐश्वर्य-सम्पन्न थे, किन्तु इन्हे साधु-सेवा की भी लगन थी। ये पहले भवानी के उपासक थे और कुछ वैष्णवो के सम्पर्क मे आकर स्वामी रामानन्द के सिद्धांतो से भी प्रभावित हो गए थे। इनकी स्त्री का भी इनके साथ तीर्थयात्रा मे द्वारका तक जाना और वहाँ पर दोनो का समुद्र मे प्रवेश करना तथा वहाँ से लौटकर किसी मन्दिर मे आमरण निवास करना प्रसिद्ध है।

इनकी रचनाओ के एकाध सग्रह 'पीपाजी की बानी' नाम से सुने जाते है, किन्तु वे प्रकाशित रूप मे उपलब्ध नही है। इनका एक पद 'आदिग्रथ' के अतर्गत धनासरी राग के पदो मे दिया गया है जिसमे 'जो पिंड मे है वह ब्रह्माड मे' का विषय आया है। काया के महत्त्व का वर्णन इस पद मे बडे स्पष्ट शब्दो मे किया गया है। इसमे साथ ही परमतत्व की अनुभूति के लिए सद्‌गुरु की सहायता का भी उल्लेख है। इनकी विचार-धारा का पूरा परिचय अधिक रचनाओ के प्राप्त होने पर मिल सकता है।

### पद

पिंड-महत्व

कायउ देवा काइअउ देवल, काइअउ जगम जाती।
काइअउ धूप दीप नइवेदा, काइअउ पूजउ पाती ॥१॥
काइआ बहु षड षोजते, नवनिधि पाई।
ना कुछ आइबो न कुछ जाइबो, रामकी दुहाई ॥रहाउ॥
जो ब्रह्म डे सोई पिंडे, जो षोजै सो पावै।
पीपा प्रणवै परम तत्तु है, सतगुरु होइ लषावे ॥२॥

जगम जाती=चर कोटि के प्राणी। बहु षड षोजते=अनेक भागो के भीतर पर्यवेक्षण करने पर। जो ब्रह्म डे सोई पिंडे=पिंड एव शरीर वस्तुत पूरे ब्रह्माड का ही लघु रूप है। पीपा ...=परमतत्व ही वास्तविक पदार्थ है जिसके समक्ष पीपा नतमस्तक हो रहा है। सतगुरु लषावै=उसकी अनुभूति केवल सतगुरु की सहायता द्वारा ही सभव है।

## संत रैदासजी

सत रविदास वा रैदासजी के जीवन-काल की तिथियाँ अभी तक निश्चित रूप से ज्ञात नही हैं। परन्तु इतनी बात उनकी रचनाओ से भी स्पष्ट है कि वे जाति के

चमार थे तथा उनके परिवार के लोग काशी के आसपास 'ढोरो के ढोने' का व्यवसाय किया करते थे। उनका कबीर साहब का समकालीन होना तथा उन्ही की भाँति स्वामी रामानन्द का शिष्य भी होना अनुश्रुति के आधार पर माना जाता है। इन्होने कबीर साहब का नाम सेन नाई, नामदेव एव सधना के साथ-साथ प्रसिद्ध होकर तर जाने वालो मे लिया है जिसके आधार पर इन्हे हम उनके पीछे तक जीवित रहने का अनुमान कर सकते हैं। इस प्रकार इनका जीवन-काल विक्रम की १५वी से १६वी शताब्दी तक पहुँचता है। रैदासजी काशी मे रहकर अपना पैतृक व्यवसाय करते थे और एक निस्पृह, उदार एव सतोषी व्यक्ति थे। इनका भगवदानुराग इनके बचपन से ही सत्सगादि द्वारा प्रकट होता आया था। आगे चलकर ये एक बहुत बडे महात्मा के रूप मे प्रसिद्ध हो गए। कहा जाता है कि मेवाड की 'झाली-रानी' ने इनसे प्रभावित होकर इनकी शिष्यता स्वीकार कर ली थी। मीरांबाई ने भी इन्हे अपने गुरु के रूप मे स्वीकार किया है, किन्तु उनका इनके समय मे होना प्रमाणित नही होता। इसी कारण, अनुमान किया जाता है कि उन्होने इनका नाम अपनी रचनाओ मे किसी अन्य रैदासी सत के लिए लिया होगा।

रैदासजी की रचनाएँ केवल फुटकर रूप मे ही मिलती है और इनका कोई पूरा प्रामाणिक सग्रह अभी तक उपलब्ध नही है। 'आदिग्रथ' मे आये हुए उनके पदो की सख्या लगभग ४० है और 'वेलवेडियर' प्रेस के सग्रह मे कुछ नये पद भी मिलते है। इन दो सग्रहो के पदो मे पाठ-भेद बहुत अधिक दीख पडता है और इसका अतिम निर्णय प्रामाणिक हस्तलेखो पर ही निर्भर है। इधर उनके छोटे-मोटे कई सग्रह प्रकाशित हुए हैं। रैदासजी की रचनाओ की विशेषता उनमे लक्षित होने वाली सरल हृदयता एव दैन्य तथा गहरे भगवत्प्रेम मे पायी जाती है। उनका आत्मनिवेदन बहुत ही सुन्दर, स्पष्ट तथा हृदयग्राही है और उनकी भक्ति का रूप प्रेम के रग मे सराबोर दिखलायी देता है। उनकी उपलब्ध रचनाओ के अतर्गत हमे अन्य सतो की 'जोग जुगति' का प्राय: अभाव-सा ही दीखता है। एकात निष्ठा, सात्विक जीवन, विश्वप्रेम, दृढ विश्वास और आत्म समर्पण के भाव ही उनमे अधिक पाये जाते है। रैदासजी की कथन-शैली के सर्व-श्रेष्ठ उदाहरण उनकी उन आग्रहपूर्ण प्रार्थनाओ मे मिलते हैं जो आत्मसवेदन के साथ की गई है। उनकी भाषा पर कही कही फारसी का भी प्रभाव लक्षित होता है।

## पद

स्वानुभूति महत्व ( १ )

विनु देषे उपजै नही आसा, जो दीसै सो होइ विनासा।
वरन सहित जो जापै नामु, सो जोगी केवल निहकामु ॥१॥
परचै रामु रवै जउ कोई, पारसु परसै दुबिधा न होई ॥रहाउ॥
सो मुनि मनकी दुबिधा पाइ, विनु दुआरे त्रैलोक समाइ।
मनका सुभाउ सभु कोइ करै, करता होइ सु अनभै रहै ॥२॥
फल कारन फूली वनराइ, फल लागा तव फूलु विल्हाइ।
गिआनै कारन करम अभिआस, गिआनु भइआ तव करमह नासु ॥३॥
घ्रित कारन दधि मथै सइआन, जीवत मुकत सदा निरवान।
कहि रविदास परम वैराग, रिदै रामु कीन जपिसि अभाग ॥४॥

परचै=स्वानुभूतिपूर्वक, जान तथा समझ कर। दुबिधा पाइ=सशयरहित

होता जाता है। बिनु दुआरे =सहज की। करता...रहै =स्वानुभूति वाला ही वास्तविक करने वाला है। बनराइ=वृक्षों का समूह। बिल्हाइ=लुप्त हो जाता है। सइआन= चतुर लोग। कीन =क्यो नही।

**पाठभेद**—'जे दीसे ते सकल बिनास, अनदीठे नाहो बिसवास, बरन कहंत कहै जे राम, सो भगता केवल नि:काम', 'या रस', 'सो मन कौन जो मन को खाइ, बिन छोरै तिरलोक समाइ', 'मन की महिमा सब कोई कहै, पडित सो जो अनते रहै।'

भ्रांति तथा परमतत्व (२)

माधो भरम कैसेहु न बिलाइ, ताते द्वैत दरसै आई ॥ टेक ॥
कनक कुडल सूत पट जुदा, रजु भुअग भ्रम जैसा।
जल तरग पाहन प्रतिमा ज्यो, ब्रह्म जीव द्वुति ऐसा ॥१॥
बिमल एकरस उपजै न बिनसै, उदय अस्त दोउ नाही।
बिगता बिगत घटै नहिं कबहूँ, बसत बसै सब माही ॥२॥
निश्चल निराकार अज अनुपम, निरभय गति गोविंदा।
अगम अगोचर अच्छर अतरक, निरगुन अत अनदा ॥३॥
सदा अतीत ज्ञानघन बर्जित, निरबिकार अविनासी।
कह रैदास सहज सुन्न सत, जिवन मुकत निधि कासी ॥४॥

पट=वस्त्र। रजु=रस्सी। प्रतिमा=देवमूर्ति। दुति=द्वैतभाव। बसत= वस्तु। अच्छर=अविनाशी। अतरक=अतर्क्य, जो तर्क-वितर्क द्वारा समझ मे न आ सके। ज्ञानघन बर्जित =अज्ञेय, न जाना जाने वाला। जिवन मुकत कासी =जीवन्मुक्त महापुरुषो के लिए काशी सदृश आधारस्थल।

भेद ज्ञान (३)

ऐसे कछु अनुभौ कहत न आवै, साहिब मिलै तो को बिलगावै ॥टेक॥
सबमैं हरि है हरि मे सबहै, हरि अपनो जिन जाना।
साखी नही और कोइ दूसर, जाननहार सयाना ॥१॥
बाजीगर सो राचि रहा, बाजी का भरम न जाना।
बाजी झूठ साच बाजीगर, जाना मन पतियाना ॥२॥
मन थिर होइ त कोइ न सूझै, जानै जाननहारा।
कह रैदास बिमल विवेक सुख, सहज सरूप सभारा ॥३॥

बिलगावै=पृथक् होना चाहेगा।

आर्त्तगति (४)

ज्यो तुम कारन केसवे, अतर लव लागी।
एक अनूपम अनुभवी, किमि होइ बिरागी ॥टेक॥
एक अभिमानी चातृगा, बिचरत जगमाही।
यद्यपि जल पूरन मही, कहूँ वा रुचि नाही ॥१॥
जैसे कामी देखि कामनी, हृदय सूल उपजाई।
कोटि वेदविधि ऊचरै, बाकी बिथा न जाई ॥२॥
जो तेहि चाहै सो मिलै, आरतगति होई।
कह रैदास यह गोप नहिं, जानै सब क ।ई ॥३॥

लव=ध्यान, अनुरक्ति। बिथा - काम-व्यथा या काम की पीड़ा। आरत-गति=अनन्य भाव के साथ।

अनन्य भक्ति (५)

सतो अनिन भगति यह नाही।
जब लग सिरजत मन पाँचो गुन ब्यापत है या माही ॥टेक॥
सोई आन अतर करि हरि सो, अपमारग को आनै।
काम क्रोध मद लोभ मोह की, पल पल पूजा ठानै ॥१॥
सत्य सनेह इष्ट अग लावै, अस्थल अस्थल खेलै।
जो कछु मिलै आन आखत सो, सुत दारा सिर मेलै ॥२॥
हरिजन हरिहि और न जानै, तजै आन तन त्यागी।
कह रैदास सोइ जन निर्मल, निसदिन जो अनुरागी ॥३॥

अनिन=अनन्य। जब सिरजत=जब तक मन की प्रवृत्तियाँ चचल रहा करती है। सोई सो=वही मन हरि से विलग होकर। आन आखत=अन्न तथा अक्षत, अर्थात् चावल इत्यादि।

बाह्य पूजन (६)

दूधु बछरं थनहु बिटारिउ। फूलु भँवरि, जलु मीनि बिगारिउ ॥१॥
माई गोबिद पुजा कहालै चरावउ। अवरु न फूलु अनूपुन न पावउ ॥रहाउ॥
मैलागर वेर्हे है भुइअगा। बिषु अम्रितु बसहिं इक सगा ॥२॥
धूपदीपनई वेदहि बासा। कैसे पूज करहि तेरी दासा ॥३॥
तनु मनु अरपउ पूज चरावउ। गुर परसादि निरजनु पावउ ॥४॥
पूजा अरचा आहि न तोरी। कहि रविदास कवन गति मोरी ॥५॥

बिटारिउ=जूठा कर दिया। भँवरि=भँवरे ने। चरावउ=चढाऊँ। मैलागर=मलयागिरि वेर्हे=लिपटे है। भुइअगा=भुजग, सर्प। बासा=सूँघ लिया है। पूज=पूजा।

पाठभेद—'थनहर दूध जो बछरु जुठारी', 'मलयागिर वेधियो भुअगा', 'पूजा अरचा न जानूं तेरी', 'धूपदीप दासा, की जगह 'मन ही पूजा मन ही धूप, 'मन ही लेउ सहज सरूप' पाठ भी आता है।'

परमतत्वानुभूति (७)

गाइ गाइ अब का कहि गाऊँ। गावनहार को निकट बताऊँ ॥टेक॥
जब लग है या तनकी आसा, तब लग करै पुकारा।
जब मन मिल्यो आस नहिं तन की तबको गावनहारा ॥१॥
जब लग नदी न समुद समावै, तब लग बढै हकारा।
जब मन मिल्यो रामसागर सो, तब यह मिटी पुकारा ॥२॥
जब लग भगति मुकति की आसा, परम तत्त्व सुनि गावै।
जह जह आस धरत है यह मन, तह तहं कछु न पावै ॥३॥
छाडै आस निरास परम पद, तब सुख सति कर होई।
कह रैदास जासो और करत है, परम तत्त्व अब सोई ॥४॥

हकारा=टेर, चिल्लाहट। सुनि=सुनता है।

वेदना-रहस्य ( ८ )

सहकी सार सुहागनि जानै, तजि अभिमानु सुष रलीआ मानै ।
तनु मनु देइ न अंतरु राषै, अवरा देषि न सुनै अभाषै ॥१॥
सो कत जानै पीर पराई । जाकै अंतरि दरदु न आई ॥रहाउ॥
दुषी दुहागनि दुइ पष हीनी । जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी ।
पुरष लात का पथु दुहेला । संगि न साथी गवनु इकेला ॥२॥
दुषीआ दरदवदु दरि आइआ । बहुतु पिआस जवाबु न पाइआ ।
कहि रविदास सरनि प्रभ तेरी । जिउ जानहु तिउ करु गति मोरी ॥३॥

सहकी सार = साथ रहने का आनंद । रलीआ = रमण मे । पुरष लात = परमात्मा मे रत ।

पाठभेद—'सुख की सार सुहागिन जानै', 'स्याम प्रेम का पंथ दुहेला', 'बहुत उमेद जवाब न पाया ।'

कठिनाई ( ९ )

सब कछु करत कहौ कछु कैसे । गुन विधि बहुत रहत ससि जैसे ॥टेक॥
दरपन गगन अनिल अलेप जस । गंध जलधि प्रतिबिंब देखि तस ॥१॥
सब आरंभ अकाम अनेहा । विधि निषेध कीयो अनेकेहा ॥२॥
यह पद कहत सुनत जेहि आवै । कह रैदास सुकृत को पावै ॥३॥

अनिल = हवा । अनेकेहा = अनेक प्रकार के । सुकृति को पावै = सुकृती है ।

विनय ( १० )

कूपु भरिओ जैसे दादिरा, कछु देस विदेस न बूझ ।
असे मेरा मनु विषिआ विमोरिआ, कछु आरापार न सूझ ॥१॥
सगल भवन के नाइका, एक छिनु दरस दिषाइजी ॥रहाउ॥
मलिन भई मति माधवा, तेरी गति लषी न जाइ ।
करहु क्रिया भ्रमु चूकई, मैं सुमति देहु समझाइ ॥२॥
जोगीसर पावहि नही, तुअ गुण कथन अपार ।
प्रेम भगति के कारणै, कहु रविदास चमार ॥३॥

दादिरा = दादुर, मेढक । मैं = मुझे ।

नाम-महत्व ( ११ )

सुष सागरु सुरतर चिंतामनि कामधेनु बसि जाके ।
चारि पदारथ असट दसा सिधि, नवनिधि करतल ताके ॥१॥
हरि हरि हरि न जपहि रसना । अवर सभि तिआगि बचन रचना ॥रहाउ॥
नाना षिआन पुरान वेद विधि, चउतीस अषर मांही ।
बिआस विचार कहिउ परमारथु, रामनाम सरि नाही ॥२॥

सहज समाधि उपाधि रहत फुनि, बडै भागि लिव लागी ।
कहि रविदास प्रगासु रिदै धरि, जनम मरन भै भागी ॥३॥

पिआन=आख्यान। चउतीस . माही=वर्णमाला के ही अतर्गत। बिआस=व्यासदेव। सरि=समान। रहत=रहित।

नश्वरता ( १२ )

जलकी भीति पवन का थभा, रकत बुद का गारा।
हाड मास नाडी को पिंजरु, पखी बसै बिचारा ॥१॥
प्रानी किआ मेरा किआ तेरा। जैसा तरवर पखि बसेरा ॥रहाउ॥
राखहु कध उसारहु नीवाँ। साडे तीनि हाथ तेरी सीवा ॥२॥
वके वाल पाग सिर डेरी। इहु तनु होइगो भसम की ढेरी ॥३॥
ऊँचे मदर सुदर नारी। राम नाम बिनु बाजी हारी ॥४॥
मेरी जाति कमीनी, पाति कमीनी, ओछा जनमु हमारा।
तुम सरनागति राजा राम, कहि रविदास चमारा ॥५॥

पिंजरु=पजर, शरीर। उसारहु=उठाते हो। डेरी=टेढी।

अपनी अभिलाषा ( १३ )

चित सिमरनु करउ नैन अविलोकनो, स्रवन बानी सुजसु पूरि राखउ।
मनु सु मधुकरु करउ चरन हिरदे धरउ, रसन अम्रित रामनाम भाखउ ॥१॥
मेरी प्रीति गोविंद सिउ जिनि घटै, मैं तउ मोलि महँगी लई जीअ सटै ॥रहाउ॥
साध सगति बिना भाउ नही ऊपजै, भाव बिनु भगति नही होइ तेरी ॥२॥
कहै रविदास इक बेनती हरि सिउ, पैज राखहु राजा राम मेरी ॥३॥

अविलोकनो=अवलोकन करना, देखना। जीअ सटै=प्राणो के बदले मे।

स्तुति ( १४ )

दारिदु देखि सभको हँसै, ऐसी दसा हमारी।
असट दसा सिधि करतलै, सभ क्रिपा तुम्हारी ॥१॥
तू जानत मैं किछु नही भव खडन राम।
सगल जीअ सरनागती प्रभ पूरन काम ॥रहाउ॥
जो तेरी सरनागता तिन नाही भारु। ऊँच नीच तुमते तरे आलजु ससारु ॥२॥
कहि रविदास अकथ कथा बहु काइ करीजै।
जैसा तू तैसा तुही किआ उपमा दीजै ॥३॥

साखी

हरि सा हीरा छाडिकै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ॥ १ ॥

रैदास कहै जाके हृदै, रहै रैन दिन राम।
सो भगता भगवत सम, क्रोध न व्यापै काम।। २ ।।

जा देखे घिन ऊपजै, नरक-कुंड मे वास।
प्रेम भगति सों ऊधरे, प्रगटत जन रैदास।। ३ ।।

## सत कमाल

सत कमाल कबीर साहब के औरस पुत्र एव शिष्य थे। वे एक पहुँचे हुए फकीर भी थे, किन्तु उनके जीवन की घटनाएँ अभी तक विदित नही है। प्रसिद्ध है कि, कबीर साहब ने इन्हे सतमत प्रचार के लिए अहमदाबाद की ओर भेजा था और दादूदयाल की गुरु-परम्परा मे भी इनका नाम आता है। इनकी कुछ रचनाओ द्वारा इनके कबीर-पुत्र होने एव पंढरपुर के पुण्य-क्षेत्र से परिचित होने की बात भी सिद्ध होती है। ये उनमे अपने को मुस्लिम जाति का होना भी स्वीकार करते है और उधर के विठ्ठलनाथ तथा वारकरी सप्रदाय के भक्तो के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए-से जान पडते है। कहा जाता है कि ये सदा अविवाहित ही रह गए। इनका सारा जीवन एक शुद्ध सतोगुणी विरक्त साधु का जीवन रहा जिसे इन्होने अपने उच्च सिद्धातो के ही अनुसार व्यतीत किया। कबीर साहब का देहात हो जाने के अनतर उनके नाम पर इन्होने किसी पथ का चलाना अस्वीकार कर दिया था। इस कारण, इनके लिए 'बूडा बस कबीर का उपजा पूत कमाल' जैसी उक्तियाँ तक प्रसिद्ध हो चली, किन्तु इन्होने इस बात की रचमात्र भी परवा नही की। इनकी जीवनी के लिखने वालो ने इनके कई चमत्कारो का भी उल्लेख किया है। फिर भी इनके जन्म एवं मरण की तिथियाँ अभी तक अज्ञात है। इनकी एक समाधि मगहर मे कबीर साहब की समाधि के ही निकट वर्तमान है।

सत कमाल की रचनाओ का अभी तक कोई प्रामाणिक सग्रह प्रकाशिती नी है। इनकी फुटकर बानियो के देखने से प्रतीत होता है कि इनकी विचारधारा का भह मूलस्रोत कबीर साहब के ही निर्मल जलाशय से मिला हुआ था। ये बाह्य विडबनाओ से सदा दूर रहते रहे और उन्ही की भाँति, शुद्ध, निष्कपट तथा स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने का उपदेश भी देते रहे। ये उन्ही की भाँति खरी-चुटीली बातो के कहने मे भी निपुण हैं, किन्तु अपने आचरण मे ये सदा नम्र भाव के व्यवहार करते जान पडते है। इनकी उपलब्ध रचनाओ मे खडीबोली का व्यवहार अधिक दीख पडता है और उनमे फारसी तथा अरबी शब्द पाये जाते है।

### पद

चेतावनी (१)

इतना जोग कमाय के साधू, क्या तूने फल पाया।
जगल जाके खाक लगाये, फेर चौरासी आया ।।१।।
राम भजन है अच्छा रे, दिलमो रखो सच्चा रे ।।ध्रुव।।
जोग जुगत की गत है न्यारी, जोग जहर का प्याला।
जीने पावे उने छुपावे, वोही रहे मतवाला ।।२।।
जोग कमाय के बाबू होना, ये तो बड़ा मुश्कल है।
दोनो हात जब निकल गये, फेर सुधरन भी मुश्कल है ।।३।।

सुख से बैठो आपने मेहलमो, राम भजन अच्छा है।
कछु काया झीजे नही खरचे, ध्यान धरो सोइ सच्चा है ॥४॥
कहत कमाल सुनो भाई साधू, सब से पथ न्यारा है।
वेद शास्तर की बात येही, जमके माथा फत्तर है ॥५॥

जीने छुपावे = जिसने पाया है, उसी ने छिपा रखा है। झीजे = छीजे, नष्ट हो। फत्तर = पत्थर।

उपदेश (२)

राम सुमरो, राम सुमरो, राम सुमरो भाई।
कनक काता तजकर बावा, आपनी बादशाही ॥१॥
देश बदेस तीरथ बरतमे, कछु नही काम।
बैठे जगा सुख से ध्यावो, अखिल राजाराम ॥२॥
कहे कमाल इतना बचन, पुरानो का सार।
झूठा सच्चा आपनो दिलमो, आपही आप पछानन हार ॥३॥

जगा = अपने स्थान पर। पछाननहार = पहचान करने वाला।

## धन्ना भगत

धन्नाजी की कुछ पक्तियो के अनुसार जान पडता है कि वे उनके पहले नामदेव, कबीर, रविदास एव सेन नाई नामक सतो का आविर्भाव हो चुका था। उनके महत्त्व एव त्याग की कथाओ से प्रभावित होकर ही, इन्होने भी भक्ति-साधना के क्षेत्र मे पदार्पण किया था। कबीर, सेन नाई, रविदास तथा पीपाजी की भाँति इनकी भी गणना स्वामी रामानन्द के शिष्यो मे की जाती है। इनका जन्म-स्थान राजस्थान के टाक इलाके का धुअनगाँव समझा जाता है। इनकी जाति कृषि व्यवसायोपजीवी जाटो की कही जाती है। मेकालिफ साहब ने इनके जन्म का सवत् १४७२ ठहराया है जो कुछ पहले जाता हुआ जान पडता है। सभी बातो पर विचार कर लेने पर ये विक्रम की सोलहवी शताब्दी के प्रथम वा द्वितीय चरण से पहले के नही ठहरते। ये एक भोली बुद्धि के किसान समझ पडते है। इनके सम्बन्ध मे अनेक चमत्कारपूर्ण कथाएँ प्रसिद्ध हैं जिनमे से एक के अनुसार इन्होने भगवान की मूर्ति को हठात् भोजन कराया था। एक दूसरी के अनुसार इन्होने, एक बार, खेत मे डालने के लिए सुरक्षित गेहूँ के बीज को अपने घर आये हुए हरिभक्तो को खिला दिया था और अपने पिता के क्रुद्ध होने के भय से खेत मे जाकर ये योही हल चला आए थे। 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास का कहना है कि इनके भजन का प्रभाव ऐसा था कि उस खेत मे बिना बोये ही बीज उग आये और उसकी फसल भी बहुत अच्छी हुई।

सिखो के 'आदिग्रन्थ' मे इनके केवल चार पद सगृहीत हैं जो 'धनसारी' एव 'आसा' नामक रागो के अंतर्गत दिये गए हैं। इन रचनाओ मे इनके आध्यात्मिक जीवन एवं गार्हस्थ्य-जीवन के आदर्शो की अच्छी झलक मिलती है। इन्हे भगवान की दयालुता मे पूर्ण विश्वास है और इनका हृदय अत्यन्त सरल, शुद्ध एव छलरहित है। इनकी भाषा भी इनके भावो का ही अनुसरण करती है और इनकी कथन-शैली की विशेपता भी इसी कारण, उनके सीधे-सादे एव स्पष्ट होने मे दीख पड़ती है।

## पद

भक्ति क्यों अपनायी (१)

गोबिंद गोबिंद गोबिंद संगि नामदेउ मनु लीणा ।
आढ दाम को छीपरो होइउ लाषीणा ।।रहाउ।।
बुनना तनना तिआगिकैं, प्रीति चरन कबीरा ।
नीच कुला जोलाहरा भइउ गुनीय गहीरा ।।१।।
रविदासु ढुवता ढोरनी, तिन्हि तिआगी माइआ ।
परगटु होआ साथसंगि, हरि दरसनु पाइआ ।।२।।
सैनु नाई बुतकारीआ, उहु घरिघरि सुनिआ ।
हिरदे बसिआ पारब्रह्म भगता महि गनिआ ।।३।।
इह बिधि सुनिकै जाटरो, उठि भगती लागा ।
मिले प्रतषि गुसाईआ, धना वड़भागा ।।४।।

आढ लाषीणा=साधारण-सी आर्थिक स्थिति का छीपी लखपती की कोटि का हो गया। गुनीय गहीरा=गम्भीर गुणो से सम्पन्न हो गया। रबिदासु माइआ=ढोरो का व्यवसायी रैदास चमार विरक्त बन गया। बुतकारीआ=प्रेमी हो गया।

चेतावनी (२)

रे चित चेतसि कीन दयाल, दमोदर बिबहित जानसि कोई ।
जे धावहि षड ब्रहिमंड कउ, करता करै सु होई ।।रहाउ।।
जननी केरे उदर उदक महि, पिंडु कीआ दस दुआरा ।
देइ अहारु अगनि महि राषै, अैसा षसमु हमारा ।।१।।
कुंभी जल माहि तन तिसु, बाहरि पष षीरु तिन्ह नाही ।
पूरन परमानन्द मनोहर, समझि देषु मद माही ।।२।।
पाषणि कीटु गुपतु होइ रहता, ताचो मारगु नाही ।
कहे धना पूरन ताहू को, मतरे जाअ डराही ।।३।।

कीन=क्यो नही। बिवहित=छोड कर (?)। पाषणि कीटु=पत्थर का कीड़ा।

# २. मध्ययुग (पूर्वार्द्ध)

## (स० १५५०—स० १७००)

### सामान्य परिचय

कबीर साहब तथा उनके समसामयिक संतो के समय तक संतमत के किसी संगठित प्रचार-कार्य का पता नही चलता। प्रत्येक संत अपने अनुभव की बातो को देशाटन एव सत्सग के ही द्वारा यत्र-तत्र प्रकट कर दिया करता था। उसकी बानियो से प्रभावित होकर बहुत-से व्यक्ति उसके सम्पर्क मे रहने लगते थे और उसे गुरुवत् मानकर उससे उपदेश भी ग्रहण करते थे। ऐसे लोग उसकी बानियो को बहुधा लिख वा कठस्थ भी कर लिया करते थे। इस प्रकार उनका सग्रह भी होता रहता। किसी सत के किसी व्यक्ति को विधिवत् दीक्षा प्रदान करने अथवा उसे अपने पीछे का उत्तराधिकारी बनाकर अपने मत का प्रचार करने के लिए आदेश दे जाने आदि का कोई विवरण आज तक उपलब्ध नही। उस समय के सतो के नामो पर जो विविध पथ वा सम्प्रदाय चलते हुए दीख पडते हैं, उनमे से किसी का भी इतिहास उस काल तक जाता नही जान पडता।

कबीर साहब के समय संतमत का प्रधान केन्द्र काशी क्षेत्र हो रहा था और वही से प्रेरणा पाकर उसका प्रचार अन्यत्र होना भी सम्भव था। परन्तु गुरु नानकदेव (स० १५२६-१५९५) के समय से उसका एक अन्य प्रमुख केन्द्र पजाब प्रान्त भी हो गया। वहाँ से उसका प्रचार-कार्य सिखधर्म के अनुयायियो द्वारा सुव्यवस्थित रूप से चलने लगा। फिर तो गुरु नानकदेव की ही भाँति राजस्थान प्रान्त मे दादूदयाल एव हरिदास ने क्रमश. दादूपथ और निरजनी सम्प्रदाय को प्रवर्तित वा सुसगठित किया। उसी प्रकार मध्यप्रदेश एव उत्तरप्रदेश मे भी क्रमश कबीर पथ और मलूक पथ का भी सूत्रपात हो गया। जान पड़ता है कि राजस्थान के एक अन्य सत जभनाथ ने भी गुरु नानकदेव के समय मे अपना विश्नुई सम्प्रदाय चलाया था। हरिदास निरजनी की समकालीन बावरी साहिबा ने अपना बावरी-पथ दिल्ली के निकट प्रवर्तित किया था।

संत-परम्परा के इतिहास के इस मध्ययुग के सतो के उद्गारो तथा उपदेशो का लिखित रूप मे रखा जाना भी आरम्भ हो गया। उनके श्रद्धालु शिष्यो के लिए उनकी विविध बानियो को सगृहीत कर उन्हे सुरक्षित रखना भी एक पुनीत कर्त्तव्य-सा हो गया। तदनुसार गुरु नानकदेव एव दादूदयाल की शिष्य-परम्परा के लोगो ने इस ओर विशेष ध्यान देकर ऐसे रचना-सग्रहो के निर्माण की एक परिपाटी-सी चला दी। इस प्रकार संत-साहित्य की रचना के साथ-साथ उसकी सुरक्षा का भी प्रबन्ध हो गया। ऐसे सग्रहो मे कभी-कभी अपने पथो वा सम्प्रदायो के प्रवर्तको और प्रचारको के अतिरिक्त उन अन्य ऐसे सतो की भी रचनाएँ सम्मिलित कर ली जाती थी जिनकी विचारधारा की उन नवसगठित संस्थाओ के मत मे न्यूनाधिक समानता रहा करती थी। इस कारण उनके द्वारा कतिपय ऐसी कृतियाँ भी सुरक्षित हो गई जो केवल कंठस्थ रहने के कारण, बहुत पहले ही खो गई होती अथवा जिनके लिखित रूप मे रहने पर भी, हम उन्हे

कदाचित् प्राप्त नही कर पाते। इस काल से न केवल सतमत के प्रचार-क्षेत्र का ही विस्तार हुआ, अपितु उसके साधनो मे भी वृद्धि हो चली।

प्रचार-क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ इस समय की रचनाओ पर उसके निवासियों की भाषा का भी प्रभाव कुछ-न-कुछ पड़ा। यद्यपि कबीर साहब तथा गुरु नानकदेव एव दादूदयाल की कथन-शैलियाँ मूलत एक ही प्रकार की थी और ये दोनो सत भी उन्ही की भाँति प्रधानतः पदो और साखियों के ही माध्यम से अपने उपदेश देते रहे, तथापि उनकी भाषा उनके स्थानानुसार बहुत कुछ भिन्न हो गई थी। इस दृष्टि से कुछ अन्तर भी लक्षित होने लगा। गुरु नानकदेव की रचनाओ पर जिस प्रकार पजाबीपन का प्रभाव पडा, उसी प्रकार दादूदयाल की बानियो पर भी राजस्थानी भाषा की छाप स्पष्ट दीख पडी और यही नियम अन्यत्र सब कही भी प्रचलित हो गया। यह विशेषता पहले न तो प्रारम्भिक युग के उड़ियावासी सत जयदेव के पदो मे लक्षित होती थी, न महाराष्ट्रीय नामदेव की ही बानियो मे उतनी दूर तक प्रकट हुई थी। उस समय की रचनाओ मे इस विचार से बहुत कम अन्तर जान पडता था। मध्ययुग के पिछले डेढ सौ वर्षो मे कुछ अन्य प्रकार की विशेषताएँ भी आ गई जैसे कि इसके उत्तरार्द्ध की रचनाओं मे जान पडेगा।

## संत जंभनाथ

संत जभाजी, स० १५०८ (विक्रमी) की भादो बदि ८ को, जोधपुर के अतर्गत नागोर इलाके के पयासर गाँव मे उत्पन्न हुए थे। इनका पितृकुल परमार राजपूतो का था और ये अपनी माता की एकमात्र सन्तान थे। प्रसिद्ध है कि ये अपनी प्राय: ३४ वर्षों की वय तक एक शब्द भी नही बोला करते थे और अपने चमत्कारो के ही कारण, ये 'अचभा' शब्द से 'जभाजी' कहलाये थे। इनकी शिक्षा-दीक्षा का कुछ पता नही चलता, किन्तु इनकी रचनाओ मे इनकी गम्भीर साधना का प्रभाव लक्षित होता है। ये अपनी योग-सम्बन्धी पहुँच के कारण 'मुनीन्द्र जम्भ ऋषि' नाम से भी प्रसिद्ध है और इनकी अनेक बानियो पर नाथपथ के हठयोग का भी प्रभाव है। इन्होने कदाचित् राजस्थान से बाहर जाकर भी अपने उपदेश दिये थे और अपने मत का नाम 'विश्नुई सम्प्रदाय' का सिद्धान्त रखा था। इनके अनुयायी, राजस्थान प्रान्त के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के बिजनौर, बरेली तथा मुरादाबाद जिलो मे भी पाये जाते है। इनकी मृत्यु ८४ वर्ष की अवस्था मे हुई थी।

सत जभाजी वा जंभनाथ की केवल फुटकर रचनाएँ ही मिलती है। उनमे वस्तुत देहभेद, योगाभ्यास, कायासिद्धि जैसे विषय ही अधिकतर पाये जाते है तथा उनकी शब्दावली भी नाथ-साहित्य के ही पारिभाषिक शब्दो से अधिक मिलती-जुलती है। जान पडता है कि ये संतमत के अनुयायी होने पर भी अपने नाथपथी पूर्वसस्कारों का पूर्ण परित्याग नही कर पाये थे।

### पद

साधना

अजपा जपोरो अवधू, अजपा जपो। पूजो देव निरजन थान ॥
गगन मडल मे जोति लखाऊ। देव धरो वा ध्यान ॥

मोह न बंधन मन परबोधक। शिक्षा से ध्यान बिचारं ॥
पंच सावत-कर सकसो ड्राख्या। तो यो उतर वा पार ॥ १ ॥

पच .राख्या=पचेंद्रियो को वश मे लाकर उन्हे सबल तथा सयत रखा।

## साखी

वही अपार सरूप तू, लहरी इद्र धनेस।
मित्र वरुन और अरजमा, अदिती पुत्र दिनेस ॥ १ ॥

तु सरवग्य अनादि अज, रवि मम करत प्रकास।
एक पाद मे सकल जग, निसदिन करत निवास ॥ २ ॥

इस अपार ससार मे, किस बिध उतरू पार।
अनन्य भगत मैं आपका, निश्चल लेहु उबार ॥ ३ ॥

अरजमा=अर्यमा, सूर्य। लहरी=अपनी मौज वा लीला के अनुसार करने वाला।

## गुरु नानकदेव

गुरु नानकदेव का जन्म स० १५२६ के वैशाख मास (शुक्ल पक्ष) की तृतीया को राइमोई की तलवडी नामक गाँव मे हुआ था। यह गाँव वर्तमान लाहौर नगर के दक्षिण-पश्चिम, लगभग तीस मील की दूरी पर बसा हुआ है और 'नानकाना' के नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं कि इस भूभाग के इर्द-गिर्द पहले घना जगल था और बालक नानक को इसमे घूमना बहुत पसन्द था। ये उसमे एकान्त पाकर बहुधा घटो बैठे कुछ-न-कुछ सोचा करते थे और अपने चिंतन के फलस्वरूप शान्त-भाव से रहा करते थे। इन्हे बचपन मे पजाबी, हिन्दी, सस्कृत एवं फारसी की शिक्षा दी गई। किन्तु पुस्तको से कही अधिक इन्हे एकातवास और विचार करने का अभ्यास ही प्रिय रहा। कुछ लोगो का अनुमान है कि ऐसे ही किसी अवसर पर इन्हे कुछ उच्चकोटि के महात्मा भी मिल गए होगे जिनके उपदेशों से प्रभावित होकर इन्होने आध्यात्मिक बातो के मनन की ओर विशेष रूप के ध्यान दिया होगा। जो हो, इनकी इस प्रकार की प्रवृत्ति से आशकित होकर इनके पिता ने इन्हे किसी कारोबार मे लगाना चाहा, किन्तु कभी सफलता नही मिली और ये अपनी भैंसे तक भी नही चरा सके। फिर भी, अपनी बहन का विवाह हो जाने पर ये उसके घर चले गए और अपने बहनोई की सहायता मे इन्होने वही मोदीखाने मे नौकरी कर ली। तब तक इनका विवाह भी हो गया था और कुछ दिनो मे इन्हे दो पुत्र हो गए थे।

परन्तु मोदीखाने मे, एक दिन आटा तोलते समय, ये अपने पूर्वसस्कारानुसार तराजू का क्रम गिनते समय 'तेरह' को बडी देर तक 'तेरा' 'तेरा', कहते ही चले गए। इस प्रकार, भावावेश के कारण इन्होने उचित से कही अधिक आटा दे डाला। फलत' इनके मालिको ने रुष्ट होकर इन्हे नौकरी से बाहर कर दिया और ये विरक्त होकर देश-भ्रमण के लिए निकल पडे। इन्होने अपनी वेशभूषा मे भी बहुत कुछ परिवर्तन कर लिया और अपने एक साथी मर्दाना नामक मुसलमान को अपने साथ ले लिया। ये पहले

पूर्व की ओर चले और सैयदपुर, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार आदि तक हो आए। फिर क्रमशः दक्षिण, पश्चिम एव उत्तर भी जाते रहे। ये घूमते समय मार्ग मे पडने वाले सतो एवं फकीरो से भी भेंट किया करते थे। उनसे सत्सग कर मर्दाना के साथ एकात मे भजन गाया करते थे तथा मर्दाना अपना रबाब बजाया करता था। यात्रा करते-करते एक बार इनका दक्षिण की ओर सिंहलद्वीप तक चला जाना अनुमान किया जाता है। प्रसिद्ध है कि वहाँ के राजा के लिए इन्होंने 'प्राणसगली' की रचना की थी। ऐसे भ्रमण के ही अवसर पर इन्होने विख्यात फकीर शेख फरीद से भी दो बार भेंट की थी और ये उनके साथ मे ठहरे थे। इनका मुसलमानो के पवित्र स्थान मक्के तक जाना और वहाँ के पुजारियो से सत्संग करना भी बतलाया जाता है। अपने अन्तिम दिनो मे ये कर्तारपुर मे रह कर भजन एव सत्सग करने लगे थे जहाँ स० १५९५ की आश्विन सुदि १० के दिन इनका देहान्त हो गया।

गुरु नानकदेव सिखधर्म के मूल प्रवर्तक थे। उनके अनन्तर उनके शिष्यो की परम्परा मे क्रमश नव गुरुओ ने उनका प्रचार किया। वे सभी अपने आदिगुरु द्वारा अनुप्राणित एव उन्ही के प्रतिनिधिस्वरूप भी समझे जाते रहे और उन्हे 'नानक' ही कहा जाता रहा। दसवे गुरु गोविन्दसिंह के अनन्तर इस परम्परा का रूप बदल गया और मानवीय गुरु का स्थान सदा के लिए 'गुरु ग्रथ साहब' ने ले लिया। 'आदिग्रथ' मे उक्त गुरुओं तथा बहुत-से अन्य सतो की भी रचनाएँ सगृहीत है, किन्तु 'दसमग्रथ' प्रधानतः गुरु गोविन्दसिंह की ही रचना है। गुरु नानक देव की बानियाँ 'आदिग्रथ' के 'अन्तर्गत महला', अर्थात् सर्वप्रथम गुरु के नीचे दी गई पायी जाती है। इनमे 'शब्द' और 'सलोक' अर्थात् साखियाँ है तथा उनके अतिरिक्त, गुरु नानकदेव की रचना 'जपुजी', 'असादीवार', 'रहिरास' एवं 'सोहिला' का भी सग्रह है। फुटकर शब्दो वा पदो को विविध रागो के अन्तर्गत रखा गया है और 'सलोक' अधिकतर भिन्न-भिन्न 'बारो' मे पाये जाते है। रचनाओ मे गुरु नानकदेव के धार्मिक सिद्धान्त तथा उनकी प्रमुख साधना नाम-स्मरण का परिचय प्राय सर्वत्र मिलता है। उनका एकेश्वरवाद, परमात्मा की सर्व-व्यापकता के प्रति एकातनिष्ठा, विश्व-प्रेम, नाम की महत्ता मे पूर्ण विश्वास आदि बाते विशेषतः उल्लेखनीय है। उनके शब्दो मे भावगाभीर्य के साथ-साथ मस्ती की झलक भी दीख पड़ती है। उनका प्रत्येक उद्‌गार अनुभूति की गहराई से निकलता प्रतीत होता है। वे झूठी सासारिक विडबनाओ के प्रबल विरोधी है, नम्रता एव सहृदयता के सच्चे समर्थक है। उनकी सर्वप्रसिद्ध रचना 'जपुजी' से यह भी प्रकट होता है कि उन्होने वास्तविक मानवता के पूर्ण विकास के लिए अपना एक विशेष कार्यक्रम भी चला रखा था। गुरु नानकदेव की कथन-शैली मे विस्तार की अपेक्षा समास-पद्धति का ही अनुसरण अधिक दीखता है। उनके पदो मे पजाबी शब्दों के प्रयोग भी बहुत से है।

## पद

उरप्रेरक परमात्मा (१)

जा तिसु भावा तदही गावा। ता गावे का फलु पावा॥
गावे का फलु होई। जा आपे देवै सोई॥ १॥
मन मेरे गुर बचनी निधि पाई। ताते सच महि रहिआ समाई॥ रहाउ॥

गुर साखी अंतरि जागी । ता चचल मति तिआगी ।
गुर साखी का उजीआरा । ता मिटिआ सगल अंधिआरा ॥२॥
गुर बचनी मनु लागा । ता जम का मारगु भागा ॥
भै विचि निरभउ पाइआ । ता सहजै कै घरि आइआ ॥३॥
भणति नानकु बूझै को बीचारी । इस जग महि करणी सारी ॥
करणी कीरति होई । जा आपे मिलिआ सोई ॥४॥

जा: भावा=जो व्यक्ति उस परमात्मा को प्रिय है। तदही=वही। साखी=साक्षी, सकेत, उपदेश।

गुरु-महत्व (२)

गुर कै सबदि तरे मुनि केते, इंद्रादिक ब्रह्मादि तरे ।
सनक सनदन तपसी जन केते, गुर परसादी पारिपरे ॥१॥
भव जलु बिनु सबदै किउ तरीऐ । नाम बिना जगु रोगि ॥
बिआपिआ दुबिधा डूबि डूबि मरीऐ ॥रहाउ॥
गुरु देवा गुरु अलख अभेवा, त्रिभवण सोझी गुरकी सेवा ।
आपे दाति करी गुरि दातै, पाइआ अलख अभेवा ॥२॥
मनु राजा मनु मन ते मानिआ, सनसा मनहि समाई ।
मनु जोगी मनु बिनसि बिओगी, मनु समझै गुण गाई ॥३॥
गुर ते मनु मारिआ सबदु बिचारिआ, ते बिरले ससारा ।
नानक साहिबु भरिपुरि लीणा, साच सबदि निसतारा ॥४॥

पारिपरे=मुक्त हो गए। सोझी=सीधी-सादी, सरल, सहज। आपै..करी=स्वय प्रदान कर दिया। दातै=दातव्य वस्तु, परमावश्यक पदार्थ को। गुरते=गुरु के सकेतानुसार।

तीर्थरूपी गुरु (३)

अम्रितु नीरु गिआनि मन मजनु, अठसठि तीरथ सगि गहे ।
गुर उपदेसि जवाहर माणक, सेवे सिखु सो खोजि लहै ॥१॥
गुर समानि तीरथ नही कोइ । सरु सतोखु तासु गुरु होइ ॥रहाउ॥
गुरु दरिआउ सदा जलु निरमलु, मिलिआ दुरमति मैलु हरै ।
सतिगुरि पाइऐ पूरा नावण, पसू परेतहु देव करै ॥२॥
रता सचि नामितल हीअलु, सोगुरु परमलु कहीऐ ।
जाकी वासु बनासपति सउरै, तासु चरण लिव रहीऐ ॥३॥
गुर मुखि जीअ प्राण उपजहि, गुरमुखि सिवघरि जाईऐ ।
गुरु मुखि नाग सचि समाईऐ, गुरमुखि निजपद पाईऐ ॥४॥

अम्रितु लहै=शिष्य अपने गुरु की सेवा द्वारा मन को ज्ञान के अमृत मे स्नान करा कर सारे तीर्थों का फल पा जाता है और उससे उपदेश रत्न भी पा लेता है।

अठसठि तीरथ=६८ प्रधान तीर्थ। सरु=सर जलाशय। तासु=उसके लिए। पाइअै... नावणु=पूर्ण प्रवेश कर लेने पर। तलहीअंलु=हृदय में। वनासपति=वह पौधा वा वृक्ष जिसका फूल प्रत्यक्ष न हो। सउरै=समान।

## सतगुरु का कार्य (४)

सतिगुरु मिलै सु मरण दिखाए। मरण रहण रसु अंतरि भाए॥
गरबु निवारि गगन पुरु पाए॥१॥
मरण लिखाइआ एनही रहणा। हरि जपि जापि रहण हरि सरणा॥रहाउ॥
सतिगुरु मिलै त दुविधा भागै। कमलु बिगसि मनु हरि प्रभ लागै।
जीवतु मरै महारसु आगै॥२॥
सतिगुरि मिलिअै सच संजमि सूचा। गुरकी पउड़ी ऊँचे ऊँचा॥
करमि मिलै जमका भउ मूँचा॥३॥
गुरि मिलिअै मिलि अंकि समाइआ। करि किरपा घरु महलु दिखाइआ।
नानक हउ मै मारि मिलाइआ॥४॥

मरण रहण रसु=मर कर जीने का रहस्य। अंतरि भाए=भीतर पसंद आया। एनही=इधर ही, यहीं। जीवतु मरै=सासारिक जीवन का अंत हो जाय। पउड़ी=पौरी, ड्योढ़ी। करमि=करम, कृपा। मूँचा=जाता रहा।

## परमात्मा ही सब कुछ (५)

आपे रसीआ आपि रसु, आपे रावण हारु।
आपे होवे चोलड़ा, आपे सेज भतारु॥१॥
रंगिरता मेरा साहिबु, रवि रहिआ भरपूरि॥रहाउ॥
आपे माछी मछुली, आपे पाणी जालु।
आपे जाल मणकड़ा, आपे अंदरि लालु॥२॥
आपे बहुविधि रंगुला, सखी ए मेरा लालु।
नित रवै सोहागणी, देखु हमारा हालु॥३॥
प्रणवै नानकु बेनती, तू सरवरु तू हंसु।
कउलु तूहै कवीआ तू है, आपे वेखि बिगसु॥४॥

रावण हारु=भोगने वाला। चोलड़ा=चोलीवाली स्त्री। मणकड़ा=चमकीला। लालु=चारा। रंगुला=रंगीला, खेलवाड़ी। कवीआ=कुमुदनी, केवड़ा, (दे० 'आपण ही मछ कछ आपण ही जाल, आपण ही धीवर आपण ही काल—गोरख-बानी, पद ४१, पृष्ठ १३५-६।)

## उसी का पसारा (६)

एको सरवरु कमल अनूप। सदा बिगासै परमल रूप।
ऊजल मोती चूगहि हंस। सरब कला जग दीसै अंस॥१॥
जो दीसै सो उपजै बिनसै। बिनु जल सरवरि कमलु न दीसै॥रहाउ॥
बिरला बूझै पावै भेदु। साखा तीनि कहै नित वेदु।
नाद बिंद की सुरति समाइ। सति गुरु सेवि परम पदु पाइ॥२॥

मुकतो रातउ रवि रवातउ। राजन राजि सदा बिगसातउ।
जिसु तू राखहि किरपा धारि। बूडत पाहन तारहि तारि ॥३॥
त्रिभवण महि जोति त्रिभवण महि जाणिआ।
उलट भई घरु घरमहि आणिआ।
अहि निसि भगति करे लिव लाइ। नानकु तिनकै लागै पाइ ॥४॥

रवातउ = रमा हुआ। बिगसातउ = विकास पाता हुआ।

साधना (७)

उलटिउ कमलु ब्रह्म बीचारि। अम्रित धार गगनि दस दुआरि।
त्रिभवण बेधिआ आपि मुरारि ॥१॥
रे मन मेरे भरमु न कीजै। मनि मानिऐ अम्रित रसु पीजै ॥रहाउ॥
जनमु जीति मरणि मनु मानिआ।
आपि मूआ मनु मनते जानिआ। नजरि भई घरु घरते जानिआ ॥२॥
जतु सतु तीरथु मजनु नामि। अधिक बिथारु करउ किसु कामि।
नर नाराइण अतर जामि ॥३॥
आन मनउ तउ परघर जाउ। किसु जाचउ नाही को थाउ।
नानक गुर मति सहजि समाउ ॥४॥

बिथारु = विस्तार। थाउ = स्थान।

सच्चा योग (८)

जोगु न खिथा जोगु न डडै, जोगु न भसम चड़ाईऐ।
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइऐ, जोगु न सिंगी वाइऐ।
अजन माहि निरजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ ॥१॥
गली जोगु न होई। एक द्रिस्टि करि समसरि जाणै जोगी कहीऐ सोई ॥रहाउ॥
जोगु न बाहरि मढी मसाणी, जोगु न ताडी लाईऐ।
जोगु न देसि दिसतरि भविऐ, जोगु न तीरथि नाईऐ।
अजनि मारि निरजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ ॥२॥
सतिगुरु भेटै ता सहसा तूटै, धावतु बरजि रहाईऐ।
निझरु झरै सहज धुनि लागै, घरही परचा पाईऐ।
अजन माहि निरजनि रहीऐ, जोग जुगति इव पाईऐ ॥३॥
नानक जीवतिआ मरि रहीऐ, ऐसा जोगु कमाईऐ।
बाजे बाझहु सिंगी वाजै, तउ निरभउ पदु पाईऐ।
अजन माहि निरजनि रहीऐ, जोगु जुगति तउ पाईऐ ॥४॥

मुंदी = मुद्रा। गली = साधारण स्थिति मे। बाजे बाझहु = बिना बाजे के भी।

आत्मोपलब्धि (९)

हम घरि साजन आए। साचे मेलि मिलाए।
सहजि मिलाए हरि मनि भाए। पंच मिले सुखु पाइआ।

साई बसतु परापति होई, जिसु सेती मनु लाइआ।
अनदिनु मेलु भइआ, मनु मानिआ घर मदर सोहाए।
पच सबद धुनि अनहद बाजे, हम घरि साजन आए ॥१॥
आवहु मीत पिआरे। मगल गावहु ना रे।
सचु मगल गावहु, ता प्रभ भावहु सोहिलडा जुग चारे।
अपनै घरि आइआ, थानि सुहाइआ, कारज सबदि सवारे।
गिआन महारसु नेत्री अजनु, त्रिभवण रूपु दिखाइआ।
सखी मिलहु रसि मगल गावहु, हम घरि साजन आइआ ॥२॥
मनु तनु अम्रिति भिना। अंतरि प्रेम रतना।
अतरि रतनु पदारथु मेरे, परम ततु बीचारो।
जत भेख तू सफलिउ दाता, सिरि सिरि देवण हारो।
तू जानु गिआनी अतरजामी, आपे कारण कीना।
सुनहु सखी मन मोहन मोहिआ, तनु मनु अम्रितु भीना ॥३॥
आतमा राम ससारा। साचा खेलु तुम्हारा।
सचु खेलु तुम्हारा अगम अपारा, सुध बिनु कउण बुझाए।
सिध साधिक सिआणै केते, तुझ बिनु कवण कहाए।
कालु बिकालु भए देवाने, मनु राखिआ गुरि ठाए।
नानक अवगण सबदि जलाए, गुण सगमि प्रभ पाए ॥४॥

साई = वास्तविक। सोहिलडा = मागलिक गीत। थानि = स्थान। सवारे = संपन्न किया।

चेतावनी (१०)

रैणि गवाई सोइकै, दिवसु गवाइआ खाइ।
हीरे जैसा जनमु है, कउडी बदले जाइ ॥१॥
नामु न जानिआ रामका।
मूढे फिरि पाछै पछुताहिरे ॥रहाउ॥
अनता धुन धरणी धरे, अनत न चाहिआ जाइ।
अनत कउ चाहन जोगए, से आये अनत गवाइ ॥२॥
आपण लीआ जे मिलै, ता सभु को भागनु होइ।
करमा ऊपरि निवड़ै, जे लोचै सभु कोइ ॥३॥
नानक करणा जिनि कीआ, सोई सार करेइ।
हुकमु न जापी खसम का, किसै वडाई देइ ॥४॥

लोचै = अभिलाषा करते है। सार = पूरा। जापी = पूरा किया।

उपदेश (११)

अतरि बसै न बाहरि जाइ। अम्रितु छोडि काहे बिखु खाइ ॥१॥
ऐसा गिआनु जपहु मन मेरे। होवतु चाकर साचे केरे ॥रहाउ॥
गिआनु धिआनु सभु कोइ रवै। बाधनि बाधिआ सभु जगु भवै ॥२॥

सेवा करे सु चाकर होइ। जलिथलि मही अलि रवि रहिआ सोइ ।।३।।
हम नही चगे बुरा नहि कोइ। प्रणवरी नानकु पतारे सोइ ।।४।।

भावै = चक्कर काटता रहता है। रवि रहिया = रमा हुआ है।

विनय (१२)

काची गागरि देह दुहेली, उपजै बिनसै दुखु पाई।
इहु जगु सागरु दुतरु किउ तरीऐ, बिनु हरिगुर पार न पाई ।।१।।
तुझ बिनु अवरु न कोई मेरे पिआरे, तुझ बिनु अवरु न कोइ हरे।
सरबी रगी रूपी तू है, तिसु बरवसे जिसु नदरि करे ।।रहाउ।।
सासु बुरी घरि वासु न देवै, पिरसिउ मिलण न देइ बुरी।
सखी साजनी के हउ चरन सोवउ हरिगुर किरपाते नदरि धरी ।।२।।
आपु बीचारि मारि मनु देखिआ, तुमसा मीतु न अवरु कोई।
जिउ तूं राखहि तिवही रहणा, दुखु सुखु देवहि करहि सोई ।।३।।
आसा मनसा दोऊ बिनासत, त्रिहु गुण आस निरास भई।
तुरीआ वसथा गुर मुखि पाईऐ, सत सभा की उट लही ।।४।।
गिआन धिआन सगले सभि जपतप, जिसु हरि हिरदै अलख अभेवा।
नानक राम नामि मनु राता, गुरमति पाए सहज सेवा ।।५।।

दुतरु = दुस्तर। पिरसिउ = पियसे। सरेवउ = पडती हूँ। उट = ओट, आश्रय।

आत्मस्वरूप ( १३ )

अलख अपार अगम अगोचरि, ना तिसु कालु न करमा।
जाति अजाति अजोनी सभउ, ना तिसु भाउ न भरमा ।।१।।
साचे सचिआ रवि टहु कुर वाण।
ना तिसु रूप वरनु नही रेखिआ, साचै सबदि नीसाण ।।रहाउ।।
ना तिसु मात पिता सुत बधप, ना तिसु कामु न नारी।
अकुल निरजन अपरपरपर, सगली जोति तुमारी ।।२।।
घट घट अतरि ब्रह्म लुकाइआ, घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकेत गुरमती, निरभै ताडी लाई ।।३।।
जत उपाइ कालु सिरि जता, वसगति जुगति सवाई।
सति गुरु सेवि पदारथु पावहि, छूटहि सबदु कमाई ।।४।।
सूचै भाडै साचु समावै, विरले सूचा चारी।
ततै कउ परम ततु मिलाइआ, नानक सरण तुमारी ।।५।।

बधप = बाधव, भाई-बधु।

रती ( १४ )

गगन मै थालु रवि चदु दीपक बने, तारिका मडल जनक मोती।
धपु मलआनलो पवण चवरो करे, सगल बनराइ फूलत जोती ।।१।।

। कैसी आरती होइ भव खडना तेरी आरती ।
अनहता सबद बाजत भेरी ।।रहाउ।।
सहस तव नैन नन नैन है तोहि कउ, सहस मूरति नन एक तोही ।
सहस पद विमल नन एक पद गंध बिन, सहस तव गंधइव चलत मोही ।।२।
सभ महि जोति जोति है सोई । तिसकै चानणि सभ महि चानण होइ ।
गुरसाखी जोति परगटु होइ । जो तिसु भावै सु आरती होइ ।।३।।
हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो, अनदिनो मोहिआ ही पिआसा ।
क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ । होइ जाते तेरै नामि वासा ।।४।।

जनक = मानो । चवरो करे = चँवर डुलाता है । नन = बिना । चानणि = चाँदनी । महि = पृथ्वी पर । सारिंग = सारंग, पपीहा ।

## साखी

मिटी मुसलमान की, पेड़ै पई कुम्हिआर ।
घडि भाडेइ टाकीआ, जलदी करे पुकार ।।१।।
जलि जलि रोवै बपुडी, झडिझडि पवहि अंगिआर ।
नानक जिनि करतै कारणु कीआ, सो जाणै करतार ।।२।।
सचु तापरु जाणीऐ, जा रिदै सचा होइ ।
कूड की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ ।।३।।
कुंभे बधा जलु रहै, जल बिनु कुंभ न होइ ।
गिआन का बधा मनु रहै, गुर बिनु गिआन न होइ ।।४।।
सभु को निवै आपकउ, परकउ निवै न कोइ ।
धरि ताराजू तोलीऐ, निवै सु गउरा होइ ।।५।।
मनका सूतकु लोभु है, जिहवा सूतकु कूड ।
अखी सूतकु देखण, पर त्रिय परधन रूपु ।।६।।
भडहु ही भड उपजे, भड बाझु न कोइ ।
नानक भड बाहरा, एको सचा सोइ ।।७।।
जिनी न पाइउ प्रेम रसु, कंत न पाइउ साउ ।
सूने घर का पाहुणा, जिउ आइआ तिउ जाउ ।।८।।
कमरि कटारी बंकुडा, बंके का असवारु ।
गरबु न कीजै नानका, मनु सिरि आवै भारु ।।९।।
जिनि कीआ तिनि देखिआ, आपे जाणै सोइ ।
किसनो कहीऐ नानका, जाघरि वरतै सभु कोइ ।।१०।।
धनवता इवही कहे, अवरी धनकउ जाउ ।
नानकु निरधनु तितु दिनि, जितु दिनि बिसरै नाउ ।।११।।
वैदु बुलाइआ वैदगी, पकडि ढंढोले बाह ।
भोला वैदु न जाणई, करक कलेजै माहि ।।१२।।
नानक सावणि जे वसै, चहु उमाहा होइ ।
नागा मिरगा मछीआं, रसीआ घरि धनु होइ ।।१३।।
जिनकै पलै धनु वसै, तिनका नाउ फकीर ।
जिन्हकै हिरदै वसहि, ते नर गुणी गहीर ।।१४।।

मिटी=मिट्टी। पेड़ै=पाले। जलदी=जल के लिए।' तापरु=उस दशा मे। कूड=बुराई। निवैं=झुकता है। गउरा=गरुवा, भारी। बाहरा=अतिरिक्त। साउ=उसने। वके=तेज घोडे। 'वैंदु माहि' कुछ पाठातर के साथ मीराबाई के पद-सग्रहो मे भी आती है (दे० 'मीराँबाई की पदावली, हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग, पद ७४, पृ० ३७)। बसै=बरस जाय। उमाहा=उमग। पर्ल=पास।

## शेख फरीद

शेख फरीद का एक अन्य नाम 'शाह ब्रह्म' था। वे अपने पूर्वज बाबा फरीद प्रसिद्धि के कारण, 'फरीद सानी' भी कहलाते थे। मेकालिफ साहब ने उनकी मृत्यु का समय, 'खोलासातुत्तवारीख' के आधार पर २१वी रज्जब हिजरी सन् ६६०, अर्थात् स० १६०६ दिया है। यह भी कहा गया है कि उस काल तक वे अपनी गद्दी पर ४० वर्षो तक बैठ चुके थे। उनके शिष्यो मे से शेख सलीम चिश्ती बहुत प्रसिद्ध है। लोचलिन साहब के अनुसार, उनका जन्म दीपालपुर के निकटवर्ती किसी कोठीवाल गाँव मे हुआ था और सरहिंद मे उनकी समाधि वर्तमान है। गुरु नानक ने अपनी पूर्ववाली यात्रा से लौटते समय उनसे भेट की थी। जब वे 'शेख इब्राहिम' भी कहलाते थे और पाकपत्तन मे इसके अनन्तर रहते थे। इन दोनो सतो की एक दूसरी भेट हुई थी, गुरु नानक के दूसरी बार पाकपत्तन जाने पर।

उनकी रचनाओ मे से 'आदिग्रथ' के अन्तर्गत लगभग १३० सलोक एव ४ पद सगृहीत है। उनके रूपक तथा दृष्टात बडे सुदर उतरे है।

### सलोक (साखी)

जिंदु वहूटी मरण वर, लैं जासी परणाइ।<br>
आपण हथी जोलिकै, कै गलि लगै धाइ ।।१।।<br>
फरीदा जो तैं मारनि मुकीआ, तिना न मारे घु मि।<br>
आपनड़ैं घरि जाईऐ, पैरा तिन्हादे चु मि ।।२।।<br>
फरीदा जिन लोइण जगु मोहिआ, सो लोइण मै डिठु।<br>
कजल रेख न सहदिआ, से पखी सूइ बहिठु ।।३।।<br>
फरीदा खाकु न निंदीऐ, खाकु जेडु न कोइ।<br>
जीवदिआ पैरा तलै, मइआ ऊपरि होइ ।।४।।<br>
रूपी सूपी खाइ कै, ठढा पाणी पीउ।<br>
फरीदा, देखि पराई चोपडी, ना तरसाए जीउ ।।५।।<br>
फरीदा, वारि पराइऐ वैसणा, साईं मुझै न देहि।<br>
जे तू एवैं रखसी, जीउ सरीरहु लेहि ।।६।।<br>
फरीदा काले मैडे कपडे, काला मैडा वेसु।<br>
गुनही भरिआ मैं फिरा, लोकु कहै दरवेसु ।।७।।<br>
फरीदा पालक पलक महि, पलक वसै रब माहि।।<br>
मदा किसनो आपीऐ, जा तिसु बिग कोई नाहि ।।८।।<br>
फरीदा मैं जानिआ, दुखु मुझकु, दुखु सबाइऐ जगि।<br>
ऊचै चडिकै देखिआ, तो घरि घरि एहा अगि ।।९।।

काग़ा करग ढढोलिआ, सगला खाइआ मासु ।
ए दुइ नैना मति छुहउ, पिव देखन की आस ।।१०।।
आपु सवारहि मै मिलहि, मै मिलिआ सुखु होइ ।
फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि, सभु जगु तेरा होइ ।।११।।
सरवर पखी हेकड़े, फाहीवाल पचास ।
इहु तनु लहरी गडुथिआ, सचे तेरी आस ।।१२।।
विरहा विरहा आखीऐ, विरहा तू सुलतानु ।।
फरीदा जितु तनि विरहु न ऊपजै, सो तनु जाण मसानु ।।१३।।
बूढा होआ शेख फरीदु, कबणि लगी देह ।
जे सउ वरिआ जीवणा, भी तनु होसी खेह ।।१४।।
फरीदा सिरु पलीआ, दाडी पली मूछा भी पलीआ ।
रे मन गहिले बावले, माणहि किआ रलीआ ।।१५।।

जिदु परणाइ=जीवन-वधू को मरण-वर विवाह कर ले जाएगा । जो... घुमि=जो तुझ पर आघात करे, तू उस पर भी न कर बैठ । से ..बहिठु =उनमे पक्षियो की चोचे चुभाई जा रही हैं । मइआ होइ=मरणोपरांत कब्र का अग बन कर हमारे ऊपर आ जाती है । देखि जीउ =दूसरे की घी मे चुपडी गई रोटी, अर्थात् ऐश्वर्य को देखकर उसके लिए तरसना छोड़ दे । वारि=द्वार पर । एवै =इस प्रकार से । दुखु जगि =दु ख सर्वत्र ससार भर मे दीख पडता है । करग =हड्डियो की ठठरी का ढाँचा । आपु होइ =अपने को सभी के 'मैं' मे लीन कर दो तभी सुख मिल सकेगा, स्वार्थ एवं परार्थ मे भेद न रखो । सरवर .पचास =तालाब के इर्द-गिर्द बलिष्ट पक्षी ताक मे हैं और इन मेरे शत्रुओ की सख्या कम नही है । इहु आस =हे परमात्मन् ! मैने तेरे ही भरोसे पर शरीर को लहरों मे छिपा रखा है । जे वेह =यदि सौ साल भी जीना हो फिर भी, अत मे, उसे मिट्टी मे मिल जाना है । पलीआ =पक कर श्वेत हो गया । गहिले =नादान, गँवार, मूर्ख । माणहि रलीआ =अहकार वा गर्व मे क्यो चूर हो रहा है ।

## संत सिंगाजी

सत सिंगाजी का जन्म रियासत बडवानी (मध्यभारत) के खूजरी वा खूजर-गाँव मे स० १५७६ की बैशाख सुदि ११ को हुआ था । इनके पिता-माता की जाति ग्वालो की थी । वे इनके जन्म के ५-६ वर्ष पीछे इन्हे तथा अपना सब सामान और ३०० गायें लेकर हरसूद गाँव मे जाकर बस गए । स० १५९८ मे सिंगाजी अपनी २१ वर्ष की अवस्था मे भामगढ (निमाड) के राव साहब के यहाँ एक रुपया मासिक वेतन पर चिट्ठी-पत्री पहुँचाने के काम मे नियुक्त हुए और क्रमश अपने मालिक के विश्वासपात्र सेवक हो गए । परन्तु इनके मन का झुकाव बहुत पहले से ही कुछ विरक्ति की ओर भी रहा करता था । इसलिए, एक दिन जब ये चपरासी के वेश मे घोड़े पर चढकर जा रहे थे कि इन्हे मार्ग मे किसी मनरगीर जी साधु का गाना सुन पडा जो वैसे ही भावो से भरा था । उससे प्रभावित होकर ये उनके शिष्य हो गए । इन्होने राव साहब की नौकरी का परित्याग कर दिया और पीपल्या के जगलों में जाकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना मे लीन रहने लगे । यही पर रहते समय इन्होने अपने अनुभवो की उमग मे आकर लगभग ८०० बानियों की रचना की । अत मे, अपने गुरु के रुष्ट हो जाने पर सं० १६१६ मे जीवित

समाधि ले ली। इनकी समाधि के चिह्न वहाँ की किंकड नदी के किनारे आज भी वर्तमान हैं, जहाँ प्रतिवर्ष आश्विन मे मेला लगता है।

सत सिंगाजी की रचनाओ का कोई सग्रह बहुत दिनो तक प्रकाशित नही रहा है। ये वहाँ की जनता द्वारा बडे प्रेमभाव के साथ गायी जाती हैं। इनके कतिपय पदो का एक बहुत छोटा-सा सग्रह, इनके सक्षिप्त परिचय के साथ खडवा से प्रकाशित हुआ है। इनकी विचारधारा का मूल स्रोत भी अन्य सतो के ही मत से लगा हुआ जान पडता है। इनकी बानियो मे भी स्वानुभूति की ही मात्रा अधिक है। इनका हृदय नितात स्वच्छ तथा सरल है और अपने इष्ट परमतत्त्व के प्रति प्रगाढ एव अगाध निष्ठा है। इनके शब्दो मे प्रेमभाव भरा हुआ है और ये एक उच्चकोटि की आत्मानुभूति मे सदा लीन रहते हुए जान पडते है। इनकी भाषा निमाडी द्वारा प्रभावित हिन्दी है। इस कारण, इनके कई उद्‌गारो का भाव-गाभीर्य सबके लिए बहुधा स्पष्ट नही हो पाता।

## पद

स्वामिन् (१)

मैं तो जाण साई दूर है, तुझे पाया नेडा।
रहणी रही सामरथ भई, मुझे पखवा तेरा ।।टेक।।

तुम सोना हम गहणा, मुझे लागा टाका।
तुम तो बोलो हम देह धरि, बोले कँ रग भाखा ।।१।।

तुम चंदा हम चादणी, रहणी उजियाला।
तुमतो सूरज हम घामला, सोई चौजुग पुरिया ।।२।।

तुम तो दरियाव हम मीन है, विश्वास का रहणा।
देह गली मिट्टी भई, तेरा तूही मे समाणा ।।३।।

तुम तरुवर हम पछीडा, बैठे एक ही डाला।
चोच मार फल भाजिया, फल अमृत सारा ।।४।।

तुम तो वृक्ष हम वेलडी, मूल से लपटाना।
कह सिंगा पहचाण ले पहचाण ठिकाणा ।।५।।

नेडा=निकट मे ही। जाणू=जान रहा था। रहणी भई=वास्तविक आचरण से ही मुझमे शक्ति आई। पखवा=सहारा। टाका=गहनो मे जोडते समय लगाया जाने वाला भिन्न धातु का अंश, यहाँ सासारिकता का दोष। घामला=घाम, धूप। पंछीडा=साधारण-सा पक्षी। भाजिया=बिगाड दिया।

चेतावनी (२)

मन निर्भय कैसा सोवै, जग मे तेरा को है ।।टेक।।
काम क्रोध मे अतिवल योधा, हरे नर! विख का बीज क्यो बोवे ।।१।।

पाँच रिपु तेरी सग चलत हैं, हरे वो! जड़ा मूल से खोवे।
मात पिता ने जनम दिया है, हरे वो! त्रिया संग न जोवे ।।२।।

भरम भरम नर जनम गमायो, हरे ! ये आई बाजू खोवे ।
कहे जन सिंगा अगम की वाणी, हरे नर ! अंत काल को रोवे ।।३।।

जोवे = आसरा न देख । बाजू = बाजी, अवसर । अगम की वाणी = रहस्य की बात ।

अनस्थिरता (३)

संगी हमारा चचला, कैसा हाथ जो आवे ।
काम क्रोध बिख भरि रह्या, तासें दुख पावे ।।टेक।।
मट्टी केरा सीधडा, पवन रग भरिया ।
पाव पलक घडी थिर नही, वहु फेरा फिरिया ।।१।।
आया था हरि नाम को, सो तो नही रे बिसाया ।
सौदा तो सच्चा नही, झूठा सँग कीया ।।२।।
घुरत नगारा शून्य मे, ताको सुध लीजे ।
मोतियन की वर्षा वर्षे, कोइ हरिजन भीजे ।।३।।
राह हमारी बारीक है, हाथी नही समाय ।
सिंगा जी चीटी हुई रह्या, निर्भय आवनो जाय ।।४।।

सगी - साथी, यहाँ पर मन । सीधडा = पात्र, बर्तन । पाव = चतुर्थांश, चौथाई । बिसाया = बेसाहा, खरीदा । घुरत = घहरा रहा है । बारीक = सूक्ष्म ।

अंतर्दृष्टि (४)

पाणी मे मीन पियासी, मोहे सुन सुन आवै हासी ।।टेक।।
जल बिच कमल कमल बिच कलिया, जँह वासुदेव अविनाशी ।
घट मे गगा घट मे जमुना, वही द्वारका कासी ।।१।।
घर वस्तु बाहर क्यो ढूंढो, वन वन फिरो उदासी ।
कहै जन सिंगा सुनो भाइ साधू, अमरापुर के वासी ।।२।।

यह पद, कुछ पाठभेद के साथ, कबीर की भी बानियो मे सगृहीत पाया जाता है ।

अगम्य परमात्मा (५)

निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोइ समझो समझण हारा ।।टेक।।
खोजत ब्रह्मा जनम सिराणा, मुनिजन पार न पाया ।
खोजत खोजत शिवजी थाके, वो ऐसा अपरपारा ।।१।।
शेष सहस मुख रटे निरतर, रैन दिवस एक सारा ।
ऋषि मुनि और सिद्ध चौरासी, वो तैंतीस कोटि पचिहारा ।।२।।
त्रिकुटी महल मे अनहद बाजे, होत शब्द झनकारा ।
सुकमणि सेज शून्य मे झूले, वो सोहं पुरुष हमारा ।।३।।

वेद कथे अरु कहे निर्वाणी, श्रोता कहो बिचारा।
काम क्रोध मद मत्सर त्यागो, ये झूठा सकल पसारा ॥४॥
एक बूंद की रचना सारी, जाका सकल पसारा।
सिंगाजी जो भर नजरा देखा, वो वोही गुरु हमारा ॥५॥

सुकमणि=सुषुम्ना नाडी। भर नजरा=खुली आँखो से प्रत्यक्ष।

## साखी

नर नारी मे देखिले, सब घट मे एकतार।
कहै सिंगा पहचान ले, एक ब्रह्म है सार ॥१॥
हम पथी पारिब्रह्म का, जो अपरपद दूर।
निराधार जहाँ मठ किया, जहँ चंदा नहिं सूर ॥२॥
सास श्वास दो बैल है, सुर्त रास लगाव।
प्रेम पिरहाणो करधरो, ज्ञान आर लगाव ॥३॥

पिरहाणो=लंबी लकडी। आर=लोहे की कील व नोक।

## भीषनजी

संत भीषनजी को मेकालिफ साहब ने बदायूँनी के आधार पर काकोरी का निवासी शेख भीषम नामक सूफी समझा है। उन्होने लिखा है कि वे इस्लामधर्म मे पक्की आस्था रखने वाले सदाचारशील व्यक्ति थे जिनकी मृत्यु स० १६३०-१ मे किसी समय हुई थी। परन्तु '*आदिग्रथ*' मे *संगृहीत* दो पदो के रचयिता सत भीषनजी का बदायूँनी के वर्णनानुसार फकीर होना कुछ नही जँचता। ये भीषन रामनाम के प्रति गहरी निष्ठा रखने वाले कोई सरल-हृदय हिन्दू ही जान पडते है। इनकी भाषा से इन्हे हम उत्तर प्रदेश का निवासी ठहरा सकते हैं। इससे हम अनुमान कर सकते है कि ये भी सभवत रैदासजी की भाँति कोई सात्त्विक जीवनयापन करने वाले व्यक्ति थे। इनके एक पद मे भगवत्कृपा एव दूसरे मे रामनाम के महत्त्व का वर्णन है। इनकी भाषा सीधी-सादी, किन्तु मुहावरेदार है। इनकी वर्णन-शैली भावपूर्ण होती हुई भी प्रसाद गुण के कारण अत्यन्त सुन्दर एव आकर्षक है।

## पद

अंतिम शरण (१)

नैनहु नीरु वहै तनु खीना, भए केस दुधावनी।
रूधा कंठु सबदु नही उचरै, अब किआ करहि परानी ॥१॥
राम राइ होहि वैद बनवारी। अपने सतह लेहु उबारी ॥रहाउ॥
माथे पीर सरीरि जलनि है, करक करेजे माही।
ऐसी वेदन उपजि खरी भई, वाका औखधु नाही ॥२॥
हरिका नामु अम्रित जलु निरमलु, इहु औखधु जगि सारा
गुर परसादि कहै जनु भीखनु, पावउ मोख दुआरा ॥३॥

दुधावनी=दूध की भाँति श्वेत। अैसी. भई=ऐसी तीव्र वेदना का अनुभव होने लगा। मोष दुआरा=मोक्ष की उपलब्धि।

नाम-महत्व (२)

अैसा नामु रतनु निरमोलकु, पुंनि पदारथु पाइआ।
अनिक जतन करि हिरदै राषिआ, रतनु न छपै छपाइआ॥१॥
हरिगुन कहते कहनु न जाई। जैसे गुंगे की मिठिआई॥रहाउ॥
रसना रमत सुनत सुषु स्रवना, चित चेते सुषु होई।
कहु भीषन दुइ नैन सतोषे, जहँ देषा तह सोई॥२॥

निरमोलकु=अनमोल, अनुपम। रसना होई=जिह्वा रामनाम एव हरि-गुण मे लीन है, कान उसे ही सुन कर आनंदित होते हैं तथा उसी का चिंतन कर अपना चित्त भी प्रसन्न रहा करता है। संतोषे =संतुष्ट हो गए हैं।

## सत धर्मदास

धर्मदास कबीर-पथ की छत्तीसगढ़ी शाखा के मूल प्रवर्तक थे। उसे उन्होंने अपने निवास-स्थान बाधोगढ़ मे सर्वप्रथम स्थापित की थी। उनके विषय मे अनेक प्रकार की कथाएँ प्रसिद्ध है जो अधिकतर पौराणिक पद्धति पर ही रची गई है। वे कबीर साहब के गुरुमुख चेले कहे जाते है। किन्तु छत्तीसगढी शाखा की गुरु-परंपरा की तालिका से ही जान पडता है कि उन दोनो के जीवन-काल मे बहुत अतर रहा होगा। धर्मदास की उपलब्ध रचनाओ मे भी यत्र तत्र यही दीखता है कि उन्होने कबीर साहब के किसी अलौकिक रूप के ही दर्शन किये थे। कबीर साहब के प्रति उनकी श्रद्धा दैवी-भावना लिये हुई थी। उन्होने उन्हे एक प्रकार का अवतारी महापुरुष मान रखा था। वे जाति के कसौंधन बनिया थे। उनका आविर्भाव, संभवत· विक्रम की सत्रहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे हुआ था।

धर्मदास की रचनाएँ भक्ति-रस द्वारा ओत-प्रोत हैं और उनमे इष्टदेव का स्थान प्रधानत: कबीर साहब ने ही ग्रहण किया है। उनका बनाया हुआ कोई ऐसा ग्रंथ नही मिलता जिसे असंदिग्ध रूप से उनकी कृति मान लिया जाय। फुटकर पद भी भिन्न-भिन्न संग्रहो मे ही मिलते है। कतिपय छोटी-छोटी पुस्तकें उनके एवं कबीर साहब के संवाद-रूप मे पायी जाती है। कबीर साहब का पौराणिक वृत्त तथा कबीर-पंथ की पूजन-प्रणाली ऐसी रचनाओ मे प्रधानत दीख पडती हैं और बहुत से पद्य स्तुति, प्रार्थनादि से भी सम्बद्ध हैं। धर्मदास की पंक्तियो मे सगुणोपासक भक्तो का आर्त्तभाव विद्यमान है और उनकी दास्यवृत्ति के भी उदाहरण प्रचुर मात्रा मे मिलते है। उनकी भाषा पर कहीं-कहीं पूर्बीपन का प्रभाव लक्षित होता है जिसका कारण अस्पष्ट है।

### पद

कबीर पिया (१)

मोरे पिया मिले सत ज्ञानी॥टेक॥
ऐसन पिय हम कबहुँ न देखा, देखत सुरत लुभानी॥१॥

आपन रूप जब चीन्हा बिरहिन, तब पिय के मनमानी ।।२।।
जब हंसा चले मानसरोवर, मुक्ति भरै जहँ पानी ।।३।।
कर्म जलाय के काजल कीन्हा, पढे प्रेम की बानी ।।४।।
धर्मदास कबीर पिय पाये, मिट गई आवाजानी ।।५।।

सत ज्ञानी = सत्स्वरूप की अनुभूति वाले। तब मनमानी = तभी प्रियतम द्वारा अपनायी गई। मुक्ति पानी = जहाँ पर मुक्ति का भी अपना महत्त्व नही रह जाता। आवाजानी = आवागमन, संसार मे जन्म लेने एव मरने का सिलसिला।

## नामस्मरण-महत्व (२)

हम सतनाम के बैपारी ।।टेक।।
कोइ कोइ लादै कासा पीतल, कोइ कोइ लौंग सुपारी।
हम तो लाद्यौ नाम धनी को, पूरन खेप हमारी ।।१।।
पूंजी न टूटै नफा चौगुना, वनिज किया हम भारी।
हाट जगाती रोक न सकिहैं, निर्भय गैल हमारी ।।२।।
मोती बुंद घटही मे उपजै, सुकिरत भरत कोठारी।
नाम पदारथ लाद चला है, धर्मदास बैपारी ।।३।।

धनी = मालिक, परमात्मा। जगाती = जकति या कर उगाहने वाले कर्मचारी। सुकिरत = संभवत कवीर साहब का 'सुकृत' नाम या सत्कर्म।

## विषम स्थिति (३)

पिया बिना मोहि नीक न लागै गाव ।। टेक।।
चलत चलत मोरे चरन दुखित भे, आंखिन परिगे धूर ।।१।।
आगे चलूं पंथ नहिं सूझै, पाछे परै न पाव ।।२।।
ससुरे जाउं पिया नहिं चीन्है, नैहर जात लजाउ ।।३।।
इहा मोर गाव उहा मोर पाही, बीचे अमरपुर धाम। ४।।
धरमदास बिनवै करजोरी, तहा गाव न ठाव ।।५।।

नीक गाव = ससार मे अब ठहरना पसंद नही। आंखिन धूर = बुद्धि कुंठित हो गई। चलत-चलत = आवागमन के कारण। आगे सूझै = सब कुछ रहस्यमय ही प्रतीत होता है। पाछे पाव = लौटना अब भला नही जान पडता। ससुर चीन्है = विश्वास नही होता कि परमात्मा मुझे अंगीकार कर लेगा। नैहर लजाउ = लौट कर त्यागे हुए स्थान को ही आ जाना लज्जास्पद है। पाही = दूर की खेती, अपरिचित स्थान मे की गई चेष्टा। तहा = अमरत्व की दशा मे।

## अंत.साधना (४)

झरि लागै महलिया, गगन घहराय ।।टेक।।
खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठै सोभा बरनि न जाय ।।१।।
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम अनद होइ साध नहाय ।।२।।

खुली किवरिया मिटी अधियरिया, धन-सतगुरु जिन दिया है लखाय ॥३॥
धरमदास विनवै कर जोरी, सतगुरु चरन मे रहत समाय ॥४॥

खन = कभी-कभी। झरि घहराय = अमृतस्राव एवं अनाहत शब्द। खुली अधियरिया = अनुभव होते-ही भ्राति दूर हो गई।

## संत दादू दयाल

संत दादू दयाल का जन्म फाल्गुन सुदि २, बृहस्पतिवार, स० १६०१ को हुआ था। इनका देहात ज्येष्ठ वदि ८, शनिवार, स० १६६० को हुआ। इनका जन्म-स्थान गुजरात प्रदेश का अहमदावाद नगर समझा जाता है और इनकी जाति धुनियाँ की मानी जाती है। इनका देहावहान राजस्थान प्रात के नराणा गाँव मे हुआ था, जहाँ पर इनके अनुयायियो का प्रधान मठ वा 'दादूद्वारा' आज भी वर्तमान है। वहाँ पर इनकी दादू-गद्दी चलती है और उसके उपलक्ष मे प्रतिवर्ष फाल्गुन की शुक्ल चतुर्थी से पूर्णिमा तक वहुत बडा मेला लगता है।

प्रसिद्ध है कि इन्हे अपनी आयु के ११वे वर्ष मे ही किसी अज्ञात संत द्वारा दीक्षा मिली थी जिसे वृद्धानन्द वा बुड्ढन कहा जाता है। उन्होने इन्हे उस समय अधिक प्रभावित नही किया, किन्तु १८वे वर्ष मे, इन्हे फिर एक वार दर्शन देकर उन्होने सत-पथ की ओर प्रेरित कर दिया। तव से ये कुछ दिनो तक देशाटन, सत्सग, चितन, मनन एव कतिपय साधनाओ मे लगे रहे। लगभग ३० वर्ष की अवस्था मे ये साभर आकर रहने लगे। वहाँ पर अपने उपलब्ध अनुभवो के आधार पर इन्होने 'ब्रह्म सप्रदाय' नाम की सस्था का सूत्रपात किया। यही सप्रदाय आगे चलकर, 'परब्रह्म सप्रदाय' कहा जाने लगा। फिर इसी का नाम 'दादू-पथ' के रूप मे भी विख्यात हुआ। जान पडता है कि उस समय तक इनका विवाह हो चुका था और ये गार्हस्थ्य-जीवन मे भलीभाँति प्रवेश कर चुके थे। उक्त साभर मे रहते समय ही इन्हे दो पुत्र उत्पन्न हुए जिन्हे गरीवदास और मिस्कीनदास वतलाया जाता है। इनके परिवार का पालन-पोषण सभवत इनकी पैतृक जीविका, अर्थात् धुनियागिरी से ही चलता था और ये साधारण गृहस्थ का जीवन व्यतीत करते थे। फिर भी इनका अधिक समय देशभ्रमण, सत्सग तथा सर्वसाधारण को उपदेश देने मे ही वीता और ये कुछ ही दिनो मे प्रसिद्ध हो चले। फलत. साभर का परित्याग कर आमेर मे रहते समय इन्हें अकवर वादशाह ने आध्यात्मिक चर्चा के लिए सिकरी मे बुला भेजा और सं० १६४३ मे किसी समय उसके साथ इनका सत्सग ४० दिनो तक चला।

सत दादू दयाल की पढ़ाई-लिखाई के सम्बन्ध मे हमे कुछ भी विदित नही। परन्तु इस प्रकार का अनुमान करना कुछ अनुचित नही कहा जायगा कि इनकी आध्यात्मिक अनुभूति बडी गहरी और सच्ची थी तथा उसे व्यक्त करने की भाषा के प्रयोग मे भी ये निपुण थे। इन्होने अपनी वानियो की रचना का आरंभ कदाचित् साभर मे ही कर दिया था। पर आमेर मे रहकर इन्होने उस ओर और भी अधिक ध्यान दिया और वही से इनके शिष्यो द्वारा उनका प्रचार भी होने लगा। आमेर से आकर नराणे मे रहते समय जव इनका देहात हो गया तो इनके शिष्यो ने इनकी विविध रचनाओ को सगृहीत करना भी उचित समझा। तदनुसार सतदास तथा जगन्नाथ दास ने उनका एक सग्रह 'हरडेवाणी' के नाम से प्रस्तुत किया और उसमे पायी जाने वाली कतिपय त्रुटियो को

दूर कर इनके प्रमुख शिष्य रज्जबजी ने एक अन्य सग्रह 'अगवधू' नाम से प्रचलित कर दिया। 'अगवधू' मे इनकी सारी उपलब्ध रचनाओ को वर्गीकरण करके सगृहीत किया गया था और वही आगे के सभी सग्रहो का आदर्श बन गया। इस समय दादू दयाल की रचनाओ के प्रधान प्रकाशित सग्रहो मे सुधाकर द्विवेदी, राय दलग जन सिंह, चद्रिका प्रसाद त्रिपाठी वा० बालेश्वरी प्रसाद, स्वामी मगलदास के सस्करण अधिक प्रसिद्ध है। उनमे भी त्रिपाठी जी का कदाचित् सबसे अधिक प्रामाणिक है। इसमे ३७ अंगो मे विभाजित साखियो की सख्या २६५८ है और पदो की संख्या, २७ रागो के अनुसार, ४४५ है। इधर नागरी प्रचारिणी सभा से प्रस्तुत लेखक का भी एक प्रामाणिक सस्करण प्रकाशित हुआ है।

पदों एव साखियो के अतिरिक्त दादू दयाल की एक अन्य रचना 'काया बेलि' के नाम से भी प्रसिद्ध है जो सभवत उनके पद सख्या ३५७ से लेकर ३६४ का ही एक पृथक् सकलन मात्र है। इन रचनाओ मे न केवल इनके सिद्धातो एव साधनाओ का ही परिचय मिलता है, प्रत्युत उनके एक-एक शब्द से इनके उस मत-हृदय का भी स्पष्ट पता चल जाता है जिसका क्रमिक विकास इनके शुद्ध सात्त्विक जीवन के सामान्य दैनिक व्यवहारो के बीच मे ही हुआ होगा। अपनी नम्रता, क्षमाशीलता एव कोमल-हृदयता के कारण ये केवल दादू से दादू 'दयाल' कहलाने लगे थे और सर्वव्यापक परमात्मतत्त्व के प्रति इनकी अविच्छिन्न विरहासक्ति ने इन्हे प्रेमोन्मत्त-सा बना दिया था। इनके असाधारण व्यक्तित्व का प्रभाव बहुत गहरा पडा करता था और जो कोई भी इनके सपर्क मे आता था, वह इनका सदा के लिए हो जाता था। इनकी रचनाओ की भाषा मुख्यतः राजस्थानी है। परतु उनमे गुजराती, सिंधी, पजाबी, मराठी, फारसी आदि के भी उदाहरण मिलते हैं। अनुमान होता है कि यह उनके देशाटन और सत्सग के कारण संभव हुआ होगा। सत दादू दयाल द्वारा प्रवर्तित दादू-पथ के अनुयायी इस समय अच्छी सख्या मे विद्यमान हैं और इनकी कृतियो का भी स्थान सत-साहित्य मे बहुत ऊँचा है।

## पद

सुमिरन

(१)

राम नाम नहिं छाडौ भाई, प्राण तजौ निकटि जिव जाई ॥टेक॥
रती रती करि डारै मोहि, साई सग न छाडौं तोहि ॥१॥
भावै ले सिर करवत दे, जीवन-मूरी न छाडौं ते ॥२॥
पावक मे ले डारै मोहि, जरै सरीर न छाडौ तोहि ॥३॥
इव दादू ऐसी बनि आई, मिलौ गोपाल निसान वजाई ॥४॥

निकटि जाई = राम के पास ही मेरा जीव जायगा।

विरह

(२)

क्यो विसरै मेरा पीव पियारा, जीव की जीवनि प्राण हमारा ॥टेक॥
क्यो करि जीवै मीन जल विछुरै, तुम बिन प्राण सनेही।
च्यतामणि जब करथैं छूटै, तब दुष पावै देही ॥१॥

माता बालक दूध न देवै, सो कैसे करि जीवै ।
निर्धन का धन अनत भुलाना, सो कैसैं करि जीवै ॥२॥

बरसहु राम सदा सुष अमृत, नीझर निर्मल धारा ।
प्रेम पियाला भरि भरि दीजैं, दादू दास तुम्हारा ॥३॥

व्यापक ब्रह्म (३)

निकटि निरंजन देषिहौ, छिन दूरि न जाई ।
बाहरि भीतरि येकसा, सब रह्या समाई ॥टेक॥

सतगुर भेद लषाइया, तब पूरा पाया ।
नैंन नहीं निरषूं सदा, घरि सहजैं आया ॥१॥

पूरेसौ परचा भया, पूरी मति जागी ।
जीव जानि जीवनि मिल्या, अैसैं बडभागी ॥२॥
रोम रोम मैं रमि रह्या, सो जीवनि मेरा ।
जीव पीव न्यारा नहीं, सब संगि बसेरा ॥३॥

सुंदर सो सहजैं रहै, घटि अंतरजामी ।
दादू सोई देषिहौं, सारौं संगि स्वामी ॥४॥

छिन = क्षण भर के लिए भी । जानि = जानकर, अनुभव प्राप्त कर के । सारौं = सभी के ।

जीवन्मुक्त (४)

अैसै गृह मैं क्यूं न रहै, मनसा बाचा राम कहै ॥टेक॥
संपति बिपति नहीं मैं मेरा, हरषि सोक दोउ नाही ।
राग दोष रहित सुष दुष थै, बैठा हरिपद माही ॥१॥

तन धन माया मोह न बांधै, बैरी मीत न कोई ।
आपा पर समि रहै निरंतर, निज जन सेवग सोई ॥२॥
सरवर कवंल रहै जल जैसै, दधि मथि घृत करि लीन्हाँ ।
जैसैं बनमैं रहै बटाऊ, काहू हेत न कीन्हाँ ॥३॥
भाव भगति रहै रसिमाता, प्रेम मगन गुन गावै ।
जीवन मुकत होइ जन दादू, अमर अभै पद पावै ॥४॥

अैसै = ऐसे, इस ढग से । रागदोष = रागद्वेष । समि = एकसमान, समान भाव के साथ । बटाउ = बटोही । काहूँ. कीन्हा = किसी मे भी आसक्ति का भाव नही रखता ।

साम्यभाव (५)

अलह राम छूटा भ्रम मोरा ।
हिंदू तुरक भेद कछु नाही, देषौ दरसन तोरा ॥टेक॥

सोई प्राण प्यंड पुनि सोई, सोई लोही मासा ।
सोई नैंन नासिका सोई, सहजैं कीन्ह तमासा ॥१॥

श्रवणौ सबद बाजता सुणिये, जिभ्या मीठा लागै।
सोई भूष सबन कौ व्यापै, एक जुगति सोइ जागै ॥२॥

सोई संधि बंध पुनि सोई, सोई सुष सोई पीरा।
सोई हस्त पाव पुनि सोई, सोई एक सरीरा ॥३॥

यहु सब षेल षालिक हरि तेरा, तैंहिं एक कर लीना।
दादू जुगति जांनि करि ऐसी, तब यहु प्रान पतीना ॥४॥

संधि बंध=मार्मिक सम्बन्ध।

सृष्टि-रहस्य (६)

क्यो करि यहु जग रच्यौ गुसाई।
तेरे कौंन विनोद बन्यौ मन माही ॥टेक॥

कै तुम्ह आपा परगट करणा, कै यहु रचिले जीव उधरना ॥१॥
कै यहु तुमको सेवग जानैं, कै यहु रचिले मनके मानैं ॥२॥
कै यहु तुमकौं सेवग भावै, कै यहु रचिले षेल दिषावै ॥३॥
कै यहु तुमकौ षेल पियारा, कै यहु भावै कीन्ह पसारा ॥४॥
यहु सब दादू अकथ कहानी, कहि समझावौं सारग पानी ॥५॥

अपना मत (७)

भाई रे ऐसा पथ हमारा।
द्वै पष रहित पथ गहि पूरा, अवरण एक अधारा ॥टेक॥

वादविवाद काहू सौ नाही, माँहि जगत थैं न्यारा।
समदृष्टि सुभाइ सहज मैं आपहि आप बिचारा ॥१॥

मै तै मेरी यहु मति नाही, निर्बैरी निरकारा।
पूरण सबै देपि आपा पर, निरालब निर्धारा ॥२॥

काहू के संगि मोह न ममिता, संगी सिरजनहारा।
मनही मन सौ समझि सयाना, आनद एक अपारा ॥३॥

काम कल्पना कदे न कीजै, पूर्ण ब्रह्म पिआरा।
इहि पथि पहुँचि पार गहि दादू, सो तत सहज सभारा ॥४॥

द्वै पष रहित=मध्य मार्ग का। माँहि=बीच मे रहते हुए भी। अवरण=अवर्ण, निर्गुण।

## साखी

सतगुरु

दादू सतगुर अजन वाहि करि, नैन पटल सब षोले।
बहरे कानौ सुणने लागे, गूगे मुख सौ बोले ॥१॥

सतगुर कीया फेरि करि, मन का औरै रूप।
दादू पचौ पलटि करि, कैसे भये अनूप ॥२॥

आतमबोध बझ कर बेटा, गुरमुषि उपजै आइ।
दादू पगुल पंच बिन, जहां राम तहां जाइ ॥३॥
साचा समरथ गुर मिल्या, तिन तत दिया बताइ।
दादू मोट महाबली, घटि घृत मथि करि षाइ ॥४॥

वाहि करि = प्रयोग कर के। बझ = वन्ध्या स्त्री, भक्ति। पच बिन = पाँचों विषयों से न्यारा रह कर। मोट महाबली = हृष्टपुष्ट हो गया। घटि षाइ = अपने भीतर ही ब्रह्मानंद-रूपी घृत खा लिया।

मन

दादू जिहि मत साधू धरै, सो मत लीया सोध।
मन लै मारग मूल गहि, यहु सतगुर का परमोध ॥५॥
दादू नैन न देषै नैनकूं, अंतर भी कुछ नाहि।
सतगुर दर्पन करि दिया, अरस परस मिलि माहि ॥६॥
दादू पचौं ये परमोधिले, इनहीकौं उपदेस।
यहु मन अपणा हाथि कर, तौ चेला सब देस ॥७॥
दादू चम्बक देषि करि, लोहा लागै आइ।
यौ मन गुण इंद्री एक सौं, दादू लीजै लाइ ॥८॥
मन का आसण जे जिव जाणै, तौ ठौर ठौर सब सूझै।
पचौं आणि एक घरि राषै, तब अगम निगम सब बूझै ॥९॥
कहै लषै सो मानवी, सैन लषै सो साध।
मन की लषै, सू देवता, दादू अगम अगाध ॥१०॥

परमोध = प्रबोध, ज्ञान। परमोधिले = समझा-बुझा कर सयत कर ले। चम्बक = चुम्बक। एक सौ = परमात्मा के साथ।

नाम-स्मरण

दादू नीका नाव है, हरि हिरदै न बिसतारि।
मूरति मन माहै बसै, सासै साम संभारि ॥११॥
दादू राम अगाध है, परिमित नाही पार।
अबरण बरण न जाणिये, दादू नाइ अधार ॥१२॥
सर्गुण निर्गुण ह्वै रहै, जैसा है तैसा लीन।
हरि सुमिरण ल्यौ लाइये, का जाणौ का कीन ॥१३॥
नाव सपीडा लीजिये, प्रेम भगति गुण गाइ।
दादू सुमिरण प्रीतसौं, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥१४॥
दादू रामनाम सबको कहै, कहिबै बहुत बमेक।
एक अनेकौ फिरि मिले, एक समाना एक ॥१५॥
सुमिरण का संसा रह्या, पछितावा मन माहि।
दादू मीठा राम रस, सगला पीया नाहि ॥१६॥

अगनि धोम ज्यौं नीकलै, देपत सबै बिलाइ।
त्यो मन बिछुरया रामसौं, दह दिसि बीषरि जाइ ॥१७॥

जहा सुरति तह जीव है, जह नाही तह नाहिं।
गुण निर्गुण जह राषिये, दादू घर बन माहिं ॥१८॥

सासै सास = अनन्य गति से, निरतर। अवरण जाणिये = अज्ञेय है। सपीडा = गहरी अनुभूति के साथ।

## प्रेम तथा विरह

श्रवना राते नादसौ, नैंना राते रूप।
जिभ्या राती स्वाद सौं, त्यौ दादू एक अनूप ॥१९॥

दादू इसक अल्लाह का, जे कबहूँ प्रगटै आइ।
तौ तन मन दिल अरवाह का, सब पडदा जलि जाइ ॥२०॥

साहिब सौं कुछ बल नही, जिनि हठ साधै कोइ।
दादू पीड पुकारिये, रोता सोइ सो होइ ॥२१॥

पहिली आगम विरह का, पीछे प्रीति प्रकास।
प्रेम मगन लैंलीन मन, तहा मिलन की आस ॥२२॥

मनही माहै झूरणा, रोवै मन ही माहि।
मन ही माहैं धाह दे, दादू बाहरि नाहि ॥२३॥

दादू विरह जगावै दरद कौं, दरद जगावै जीव।
जीव जगावैं सुरति कौं, पच पुकारै पीव ॥२४॥

प्रीति जु मेरे पीव की पैंठी पिंजर माँहि।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नाँहि ॥२५॥

विरह अगनि मैं जलि गये, मनके विषै विकार।
तार्थं पगुल ह्वै रह्या, दादू हरि दीदार ॥२६॥

जे हम छाडे रामकौ, तौ राम न छाडै।
दादू अमली अमल थै, मन क्यू करि काढै ॥२७॥

राम विरहनी ह्वै रह्या, विरहनि ह्वै गई राम।
दादू विरहा बापुरा, अैसै करि गया काम ॥२८॥

दादू इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अङ्ग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रङ्ग ॥२९॥

एक अद्वितीय परमात्मतत्त्व। अरवाह = आत्मा। धाह दे = पुकार करता है। प्रसिद्ध है कि इस साखी को सत दादू दयाल ने अकबर बादशाह के एक प्रश्न पर कहा था जो परमात्मा की जाति, रग, अग एव अस्तित्व से सम्बद्ध था। औजूद = वजूद, अस्तित्व।

## अनुभव का रूप

ज्ञान लहर जहा थैं उठै, वाणी का परकास।
अनभै जहा थैं ऊपजै, सबदै किया निवास ॥३०॥

दादू आपा जब लगै, तब लग दूजा होइ।
जब यहु आपा मिटि गया, तब दूजा नाही कोइ ॥३१॥

दादू है कौ भै घणा, नाही कौ कुछ नाहिं।
दादू नाही होइ रहु, अपणे साहिब माहिं ॥३२॥

सुन्य सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव।
दादू यहु रस बिलसिये, ऐसा अलष अभेव ॥३३॥

चर्म दृष्टी देषै बहुत, आतम दृष्टी एक।
ब्रह्म दृष्टि परचै भया, तब दादू बैठा देष ॥३४॥

येई नैना देहके, येई आतम होइ।
येई नैना ब्रह्म के, दादू पलटे दोइ ॥३५॥

दादू सबद अनाहद हम सुन्या, नषसिष सकल सरीर।
सब घटि हरि हरि होत है, सहजै ही मन थीर ॥३६॥
जे कुछ बेद कुरान थै, अगम अगोचर बात।
सो अनभै साचा कहै, यहु दादू अकह कहात ॥३७॥
प्राण हमारा पीवसौ, यौ लागा सहिये।
पुहप वास, घृत दूध मै, अब कासौ कहिये ॥३८॥
दादू हरि रस पीवता, कबहू अरुचि न होइ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ ॥३९॥

अनभै = अनुभव। भै = भय। चर्म दृष्टी = सामान्य दृष्टि। अकह = अनिर्वचनीय।

तन्मयता

दादू लै लागी तब जाणिये, जे कबहू छूटि न जाइ।
जीवत यौ लागी रहै, मूवा मझि समाइ ॥४०॥
सब तजि गुण आकार के, निहचल मन ल्यौ लाइ।
आतम चेतन प्रेम रस दादू रहै समाइ ॥४१॥
यौ मन तजै शरीर कौ, ज्यौ जागत सो जाइ।
दादू बिसरै देषता, सहज सदा ल्यौ लाइ ॥४२॥
आदि अंति मधि एक रस, टूटै नहि धागा।
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा ॥४३॥
भगति भगति सबको कहै, भगति न जाणै कोइ।
दादू भक्ति भगवत की, देह निरन्तर होइ ॥४४॥
दादू नैन बिन देषिबा, अङ्ग बिन पेषिबा, रसन बिन बोलिबा, ब्रह्मसेती।
श्रवण बिन सुणिवा, चरण बिन चालिबा, चित्त बिन चित्यवा, सहज एती ॥४५॥

लै विचार लागा रहै, दादू जरता जाइ।
कबहूँ पेट न आफरे, भावे तेता षाइ ॥४६॥
सोई सेवग सब जरै, जेता रस पीया।
दादू गूझ गंभीर का, परकास न कीया ॥४७॥

पेपिवा पेखना, प्रेक्षण करना, अवलोकन करना। ब्रह्मसेती =ब्रह्म के साथ, परमात्मा से। चित्यवा - चिंतन करना, विचारना। सहज एती यही सहज की स्थिति वा सहजावस्था है। लै जाइ = विचारपूर्वक भजन मे लगा रहे और परमात्मतत्त्व को पचाता वह अपनाता चले। आफरै - अजीर्ण के कारण फूलता नही, उद्वेग का कारण नही बनता। गूझ =गुह्य वा गुप्त रखना।

एकातनिष्ठा

प्रेम पियाला रामरस, हमकौं भावै येह।
रिधि सिधि मागै मुकति फल, चाहै तिनकौं देह ।।४८।।
तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा प्यड परान।
सब कुछ तेरा तू है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ।।४९।।

व्यापक ब्रह्म

दादू सबही गुर किये, पसु पपी बनराइ।
तीनि लोक गुण पचसौं, सबही माहिं पुदाइ ।।५०।।
दादू देपौं जिन पीवकौं, और न देपौं कोइ।
पूरा देपो पीव कौं, बाहरि भीतरि सोइ ।।५१।।
तन मन नाही मैं नही, नहि माया नहि जीव।
दादू एकै देपिये, दह दिसि मेरा पीव ।।५२।।
दह दिसि दीपक तेज के, बिन बाती बिन तेल।
चहु दिसि सूरज देपिये, दादू अद्भुत पेल ।।५३।।

सबही गुर किये =सभी को गुरुवत् मान कर उनके अनुसार चलने का निश्चय किया है। पूरा =पूर्ण, व्याप्त। दह दिसि -दशो दिशाओ मे, सर्वत्र।

अपना मन

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार।
निर्वैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार ।।५४।।

तन विकार आत्म शुद्धि कर ले।

## गुरु अर्जुनदेव

गुरु अर्जनदेव चौथे सिखगुरु रामदास के पुत्र थे। इनका जन्म वैशाख वदि ७, स० १६२० को अपने नाना गुरु अमरदास के घर हुआ था। गुरु अमरदास इन्हे बहुत प्यार करते थे और ये पहले बचपन मे सदा उन्ही के यहाँ रहते रहे। उनकी मृत्यु के अनन्तर अपने पिता के साथ रहने लगे। गुरु अर्जुनदेव के दो भाइयो को इनका अपने पिता का उत्तराधिकारी बनना बहुत खला और वे इनकी उन्नति मे सदा बाधाएँ डालते रहे। इनसे द्वेष-भाव रखने वाले अन्य व्यक्तियो मे एक प्रसिद्ध राजा बीरबल थे और दूसरा चदूशाह था जो अकबर बादशाह का अर्थमत्री था। चदू इनके पुत्र हरगोविन्द के साथ अपनी पुत्री का विवाह न कर सकने के कारण, अपने को अपमानित समझता रहा। उसने इनके भाई प्रिथिया से मिलकर इनके विरुद्ध अनेक प्रकार के षड्यत्र रचे और जहाँगीर बादशाह के

समय तक, इन्हे राजद्रोही तक घोषित करा दिया। फलत. ये राजबन्दी बनाये गए। इन्हे अनेक प्रकार के कष्ट दिये गए। अंत मे, इन्हे शरीरत्याग तक करने के लिए विवश होना पड़ा। इनका देहान्त स० १६६३ की जेठ सुदि ४ को, रावी नदी मे जल-समाधि लेने के कारण हुआ, जबकि इनकी अवस्था केवल ४३ वर्ष की ही थी।

गुरु अर्जुनदेव बडे ही योग्य व्यक्ति थे। सिखधर्म के लिए उन्होने अपने अल्प जीवन-काल मे ही बहुत से महत्त्वपूर्ण कार्य किये। उन्होने अपने सिखो की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया, उनके वाणिज्य-व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया। अमृतसर, तरन-तारन जैसे नगरो मे कई एक तालाब खुदवाये तथा अपने मत के प्रचारार्थ उन्हे घोडे का व्यापार करने के बहाने तुर्किस्तान आदि देशो तक भेजा। गुरु अर्जुनदेव के अन्य महत्त्व-पूर्ण कार्यों मे 'आदिग्रथ' का संग्रह तथा सम्पादन विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योकि वही आज तक सिखधर्म के आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक का काम करता आया है। गुरु अर्जुनदेव को उसमे सगृहीत पदो को एकत्र करने के लिए स्वय भी घूमना पडा। अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भक्तो के अनुयायियो को भी आमन्त्रित कर उनसे अपने-अपने श्रेष्ठ भजनो को चुनवाना पडा। फिर सभी ऐसी सगृहीत रचनाओ के पाठ आदि पर उन्हे गम्भीरता के साथ विचार करना पडा। 'आदिग्रथ' को उन्होने गुरु अगद द्वारा निर्मित गुरमुखी लिपि मे भाई गुरुदास से लिखवा कर भादो बदि १, स० १६६१ मे तैयार किया था। गुरु अर्जुनदेव की रचनाएँ उक्त ग्रथ के अन्तर्गत, सख्या मे सबसे अधिक है और वे 'महला' ५ के नीचे, भिन्न-भिन्न रागो, सलोको, छदो आदि मे आयी है। उनमे इनकी सत्यनिष्ठा, निरभिमानिता, भगवद्भक्ति और विश्वप्रेम के भाव प्राय सर्वत्र दृष्टिगोचर होते है। इनके भावो की अभिव्यक्ति मे गुरु नानकदेव से कही अधिक स्पष्टता तथा सरलता है और उनकी अपेक्षा इनमे पजाबीपन का भी प्रभाव बहुत कम दीख पडता है। इनकी 'सुखमनी' एक बहुत उच्चकोटि की रचना है और सिख लोग उसे प्राय वही स्थान देते है जो गुरु नानकदेव के 'जपुजी' को दिया जाता है।

## पद

### वही एक (१)

एक रूप सगलो पासारा। आपे बनजु आपि बिउहारा ॥१॥
ऐसी गिआनु बिरलोई पाए। जत जत जाईए, तत तत द्रिसटाए ॥रहाउ॥
अनिक रंग निरगुन इकरगा। आपे जलु आपही तरगा ॥२॥
आपही मदरु आपही सेवा। आपही पुजारी आपही देवा ॥३॥
आपही जोग आपही जुगता। नानक के प्रभु सदही मुकता ॥४॥

पासारा = विस्तृत सृष्टि। जत द्रिसटाए = जैसे-जैसे जानते हैं, वैसे-वैसे स्पष्ट होता जाता है। अनिक इकरंगा = सभी विभिन्नताओ मे भी अभिन्न है।

### आराध्य से आत्मीयता (२)

तू जलनिधि हम मीन तुमारे। तेरा नामु बूद हम चात्रिक तिपहारे।
तुमरी आस पिआसा तुमरी, तुमही संगि मनु लीना जीउ ॥१॥
जिउ बारिकु पी षीरु अघावै। जिउ निधनु धनु देषि सुषु पावै।
त्रिषावत जलु पीवत ठढा, तिउ हरि सगि इहु मनु भीना जीउ ॥२॥

जिउ अंधियारै दीपक परगासा। भरता चितवत पूरन आसा।
मिलि प्रीतम जिउ होत अनंदा, तिउ हरि रंगि मनु रंगीना जीउ ॥३॥
संतन मोकउ हरि मारगि पाइआ। साध क्रिपालि हरि संगि गिझाइआ।
हरि हमारा हम हरि के दासे, नानक सबदु गुरु सचु दीना जीउ ॥४॥

तिपहारे=प्यासे, तृषार्त्त। बारिकु=बालक। भरता आसा=स्वामी को देखते ही आशा पूर्ण हो जाती है। पाइआ=प्राप्त करा दिया। गिझाइआ=चस्का लगा दिया। दीना=दिया।

मेरे एक मात्र इष्टदेव (३)

प्रभ जी तू मेरे प्रान अधारै।
नमसकार डंडउति बंदना, अनिक बार जाउ बारै ॥रहाउ॥
उठत बैठत सोवत जागत, इहु मनु तुझहि चितारै।
सूप दूख इसु मनकी बिरथा, तुझही आगे सारै ॥१॥
तू मेरी ओट बल बुधि धन, तुमही तुमहि मेरै परवारै।
जो तुम करहु सोई भल हमरै, पेपि नानक सुप चरनावै ॥२॥

चितारै=बार-बार स्मरण करता है। सारै=विवृत करता है। बिरथा=व्यथा। ओट=सहारा। परवारै=परिवार वा प्रतिपाल।

तेराही सब कुछ (४)

मैं नाही प्रभ सभ किछु तेरा।
ईथै निरगुन ऊथै सरगुन, केल करत बिचि सुआमी मेरा ॥रहाऊ॥
नगर महि आपि बाहरि फुनि आपन, प्रभ मेरे को सागल बसेरा।
आपे ही राजन आपे ही राइआ, कह कह ठाकुरु कह कह चेरा ॥१॥
काकउ दुराउ कासिउ बल बचा, जह जह पेपउ तह तह नेरा।
साध मूरति गुरु भेटिउ नानक, मिलि सागर बूंद नही अनहेरा ॥२॥

ईथै ऊथै=एक ओर, दूसरी ओर। कह चेरा=कहीं स्वामी कहीं सेवक। काकउ बचा=किसे त्यागूँ और किससे सहायता माँगूँ। अनहेरा=बिना ढूँढा हुआ नहीं रह जाना।

प्रतिपालक (५)

प्रभ मेरो इत-उत सदा सहाई।
मन मोहनु मेरे जीअ को पिआरो, कवनु कहा गुन गाई ॥रहाउ॥
पेल पिलाइ लाड लाडावै, सदा सदा अनदाई।
प्रतिपारै बारिक की निआई, जैसे मात पिताई ॥१॥
तिसु बिनु निमप नही रहि सकीऐ, बिसरि न कबहू जाई।
कहु नानक मिलि संत संगति ते, मगन भए लिव लाई ॥२॥

अनदाई=आनंदित कर के। निआई=समान, भाँति।

रहस्यमय (६)

कवन रूपु तेरा आराधउ । कवन जोगु काइआ ले साधउ ॥१॥
कवन गुनु जो तुझलै गावउ । कवन षेल पारब्रह्म रिझावउ ॥रहाउ॥
कवन सु पूजा तेरी करउ । कवन सु विधि जितु भवजल तरउ ॥२॥
कवन तप जितु तपीआ होइ । कवनु सुनामु हउमै मलु षोइ ॥३॥
गुण पूजा गिआन धिआन नानक सगल घाल ।
जिसु करि किरपा सतिगुरु मिलै दइआल ॥४॥
तिसही गुनु तिनही प्रभु जाता । जिसकी मानि लेइ सुषदाता ॥रहाउ दूजा॥

षेल = खेल, मनोरजक कृत्य । घाल = कर डाल ।

प्रेमा भक्ति (७)

अैसी प्रीति गोविद सिउ लागी । मोलि लए पूरन बडभागी ॥रहाउ॥
भरता पेषि बिगसै जिउ नारी । तिउ हरिजनु जीवै नामु चितारी ॥१॥
पूत पेषि जिउ जीवत माता । ओतिपोति जनु हरि सिउ राता ॥२॥
लोभी अनदु करै पेपि धना । जन चरन कमल सिउ लागो मना ॥३॥
बिसरु नही इकु तिलु दातार । नानक के प्रभ प्रान आधार ॥४॥

मोलि लए = धारण कर लिया । चितारी = स्मरण करके । ओतिपोति = ओत-प्रोत, पूर्णत. । दातार = धनी, स्वामी ।

अनुराग (८)

बिसरत नाहि मन ते हरी ।
अब इह प्रीति महा प्रबल भई, आन बिषै जरी । रहाउ॥
बूद कहा तिआगि चात्रिक, मीन रहत न घरी ।
गुन गोपाल उचरु रसना, टेव एह परी ॥१॥
महानाद कुरक मोहिउ, बेधि तीषन सरी ।
प्रभ चरन कमल रसाल नानक, गाँठि बाँधि धरी ॥२॥

टेव = आदत, लत । सरी = सर, तीर ।

विरह (९)

मेरा मनु लोचै गुर दरसन ताई, विलप करे चात्रिक की निआई ।
त्रिपा न उतरै साति न आवै, बिनु दरसन सत पिआरे जीउ ॥१॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई, गुर दरसन सत पिआरे जीउ ॥रहाउ॥
तेरा मुषु सुहावा जीउ सहज धुनि बाणी । चिरु होआ देखे सारिंग पाणी ।
धंनु सुदेसु जहाँ बसिआ, मेरा सजणा मीत मुरारे जीउ ॥२॥
हउ घोली हउ घोलि घुमाई, गुर सजणा मीत मुरारे जीउ ॥रहाउ॥

इक घडी न मिलते ता कलिजुगु होता, हुणि कदि मिलीऐ प्रिअ तुधु भगवता।
मोहि रैणि न विहावै नीद न आवै, बिनु देखे गुर दरबारे जीउ ॥३॥
हउ घोली जिउ घोलि घुमाई, तिसु सचे गुर दरबारे जीउ ॥रहाउ॥
भागु होआ गुरि सतु मिलाइआ। प्रभु अविनासी घर महि पाइआ।
सेव करी पलु चसा न विछुडा, जन नानक दास तुमारे जीउ ॥४॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई, जन नानक दास तुमारे जीउ ॥रहाउ॥

लोचै = उन्मुक हो रहा है। ताई = के लिए। हउ घोली घुमाई = मैं उसी मे घुल-मिल गया हूँ। चिरु = बहुत समय। हुणि = हो जाय। चसा = तनिक भी।

### भीतरी साधना (१०)

सब किछु घर महि बाहरि नाही। बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही।
गुर परसादी जिनी अतरि पाइआ, सो अतरि बाहरि सुहेला जीउ ॥१॥
झिमि झिमि वरसै अम्रित धारा। मनु पीवै सुनि सबदु बीचारा।
अनद विनोद करे दिन राती, सदा सदा हरिकेला जीउ ॥२॥
जनम जनम का विछुडिया मिलिआ, साध क्रिपा ते सूका हरिआ।
सुमति पाए नाम धिआए, गुरमुखि होए मेला जीउ ॥३॥
जल तरग जिउ जलहि समाइआ। तिउ जोती सगि जोति मिलाइआ।
कहु नानक भ्रम कटे किवाडा, बहुडि न होइऐ जउला जीउ ॥४॥

सुहेला = सुन्दर। सूका हरिआ = सूखा हरा हो उठा। किवाडा = बाधा, रोक। जउला = जाना।

### स्थिरता की उपलब्धि (११)

अब मोरो नाचनो रहो।
लाल रगीला सहजे पाइउ, सतिगुर बचनि लहो ॥रहाउ॥
कुआर कनिआ जैसे सगि सहेरी, प्रिअ बचन उपहास कहो।
जउ सुरजनु ग्रिह भीतरि आइउ, तब मुखु काजि लजो ॥१॥
जिउ कनिको कोठारी चडिउ, कबरो होत फिरो।
जबते सुध भए है बारहि, तबते थान थिरो ॥२॥
जउ दिनु रैनि तऊ लऊ बजिउ, मूरत घरी पलो।
बजावनहारो उठि सिधारिउ, तब फिरि बाजु न भइउ ॥३॥
जैसे कु भ उदक पूरिआनिउ, तब उहु भिन द्रिसटो।
कहु नानक कु भु जलै महि डारिउ, अभै अभ मिलो ॥४॥

रहो = बद हो गया। कुआर कनिआ = क्वारी कन्या। जउ लजो = जब पति के घर आ जाती है तो लज्जा का अनुभव करने लगती है। जिउ थिरो = जिस प्रकार सुधारे जाने के पहले अन्न यहाँ-वहाँ घुमाया-फिराया जाता रहता है और शुद्ध होते ही अपना स्थान ग्रहण कर लेना है। जैसे द्रिसटो = जिस प्रकार घडे मे भरे जाने पर जल पृथक् जान पडता है।

हरिजन (१२)

उदमु करत होवै मनु निरमलु, नाचै आपु निवारे।
पंच जना ले वसगति राषै, मन महि एककारे ॥१॥
तेरा जनु निरति करे गुन गावै।
रबाबु पषावज ताल घुंघरू, अनहद सबदु बजावै ॥रहाउ॥
प्रथमे मनु परबोधै अपना, पाछै अवर गझावै।
राम नाम जपु हिरदै जापै, मुषतें सगल सुनावै ॥२॥
कर संगि साधू चरन पपारै, संत धूरि तनि लावै।
मनु तनु अरपि धरे गुर आगै, सति पदारथु पावै ।३।
जो जो सुनै पेषै लाइ सरधा, ताका जनम मरण दुषु भागै।
अैसी निरति नरक निवारै, नानक गुरमुषि जागै ॥४॥

नाचै निवारे=प्रपंच स्वयं छोड देता है। एककारे=एक ओंकार मात्र। गझावै=लाभ पहुँचाता है।

अपनी रहनी (१३)

बिसरि गई सभ ताति पराई। जबते साध संगति मोहि पाई ॥रहाउ॥
ना को बैरी नही बिगाना, सगल संगि हम कउ बनिआई ॥१॥
जो प्रभ कीनो सो भल मानिउ, एहु सुमति साधू ते पाई ॥२॥
सभ महि रवि रहिआ प्रभ एकै, पेषि पेषि नानक बिगसाई ॥३॥

ताति=अपनी। बिगसाई=प्रफुल्लित हो रहा है।

## साखी

नानक सोई दिनसु सुहावड़ा, जितु प्रभि आवै चिति।
जितु दिनि बिसरै पारब्रह्म, फिटु भलेरी रुति ॥१॥
अंतरि चिंता नैणी सुषी, मूलि न उतरै भूष।
नानक सचे नाम बिनु, किसै न लथो दूष ॥२॥
इकु सजणु सभि सजणा, इकु बैरी सभि बादि।
गुरु पूरै वेषालिआ, बिणु नावै सभ बादि ॥३॥
मेरै अंतरि लोचा मिलण की, किउ पावा प्रभु तोहि।
कोई अैसा सजणु लोडिलहु, जो मेले प्रीतमु मोहि ॥४॥
काहे मन तू डोलता, हरि मनसा पूरणहार।
सतिगुरु पुरषु धिआइ तू, सभि दुष बिसारणहार ॥५॥
सेज बिछाई कंत कूं, कीआ हभु सीगार।
इती मझि न समावई, जे गलि पहिरा हार ॥६॥
नानक जिसु बिनु घडी न जीवणा, बिसरे सरै न बिंद।
तिसु सिउ किउ मन रूसिअै, जिसहि हमारी चिंद ॥७॥

मरी मेरी किआ करहि, पुत्र कलत्र सनेह।
नानक नाम विहूणीआ, निमुणी आदि देह ॥८॥
पहिला मरणु कबूलि, जीवण की छडि आस।
होहु समना की रेणुका, तउ आउ हमारे पास ॥९॥
मुआ जीवदा प पु, जीवदे मरि जानि।
जिन्हा मुहबति इकसिउ, ते माणस परधान ॥१०॥

फिट = तिरस्कार के योग्य। रुति = ऋतु । वादि = शत्रु । वादि = व्यर्थ। वेपालिआ = दिखला दिया, जतला दिया। लोचा = अभिलापा। लोडिलहु = खोजूं। मनसा = मनोरथ। इसी समावई = इतना ही हम दोनो के बीच बाधा है कि। विसरे विद = जिसकी स्मृति एक क्षण के लिए भी नही जाती। चिद = ध्यान, ख्याल। रेणुका = धूल। मुआ जानि = जिन्होंने ससार की ओर से मरे हुए को ही जीवित समझा तथा मासारिक जीवन को मृत्युवत् माना। जिन्हा इकसिउ = जिन्हे केवल एक परमात्मा से ही प्रेम है।

## संत बषनाजी

मन बपनाजी नराणा नगर के निवासी थे जो साभर से तीन कोस पूर्व-दक्षिण की ओर बसा हुआ है और जहाँ दादू जी अत समय मे रहा करते थे। कहा जाता है कि वे वहीं उत्पन्न हुए थे और उनका देहावसान भी वही पर हुआ था। परन्तु प्रसिद्ध है कि उन्होंने दादूजी से साभर मे ही दीक्षा ली थी। उनके जन्मकाल का सवत् सोलह सौ और सोलह सौ दस के बीच होना अनुमान किया जाता है जिस कारण वे दादू जी के समवयस्क-से जान पडते हैं। उनकी जाति के विपय मे कुछ मतभेद है, किन्तु अधिक लोग उसे 'मैरागी' वा 'मीरासी' कहने के पक्ष मे है। वे गृहस्थ रूप मे रहा करते थे और उनका देहात भी इसी दशा मे, दादूजी की मृत्यु के कुछ दिनो पीछे, विक्रम की १७वी शताब्दी के अतिम चरण मे किसी समय हुआ था। वपनाजी दादूजी के प्रमुख शिष्यो मे गिने जाते है और उनकी प्रशसा 'भक्तमाल'-कार राघोदास ने भी की है। वे सच्चे हृदय के प्रेमी व्यक्ति और गायक भी थे। उनकी रचनाओ का एक सग्रह 'वपनाजी की वाणी' नाम से जयपुर के 'श्री लक्ष्मीराम ट्रस्ट' द्वारा प्रकाशित है। इसमे उनके १६७ पदों के अतिरिक्त ४० अगो मे विभाजित की हुई अनेक साखियाँ भी सगृहीत हैं जिनमे उनका सतगुरु एव परमात्मा के प्रति एकात प्रेम, सत्य के प्रति पूर्णनिष्ठा, जगत् की ओर से अनासक्ति तथा हृदय की सरलता स्पष्ट लक्षित होती है। उनकी बानियो मे यद्यपि साहित्यिक सौंदर्य अधिक नही दीखता, तथापि उनकी सुदर वर्णन-शैली के कारण, उनकी कई रचनाएँ सूक्तियों-सी बन गई है। उनकी कई पक्तियो को पढते समय कबीर का स्मरण हो आता है।

### पद

हृदय की कठोरता (१)

हिरदो बटो रे कठोर कोटि किया भीजै नहीं, ऐसो पाहण नाही और ॥टेक॥
गगा न गोदावरी न्हायो, कासी पुहकर माहि रे॥
कर्म कापडै मैण को, तार्थ रोम भींगो नाहि रे ॥१॥

वेद न भागोत सुनिया, कथा सुणी अनेक रे ।।
कर्म पाषर सारिषा, ताथै वाण न लागे एक रे ।।२।।

औंधा कलसा ऊपरै, जल बूठो अषडधार ।।
ततवेला निहालियो, तो पाणी नही लगार ।।३।।

ब्रह्म अगनि पाषाण जाल्या, चूना कीया सलेस रे ।।
बषना भिजोया रामरस, म्हारा सतगुरु ने आदेस रे ।।४।।

मैण को = मोम सा बना हुआ, चिकना । पापर = कवच, सनाह । बूठो = बरस गया वा बरसता रहा । ततवेला निहालियो = आवश्यकता पडने पर अर्थात् काम के समय जब उसे सँभाल कर देखा । सलेस = पायादार, दृढ । (टि०—यों देखा जाय तो पत्थर पानी मे भलीभाँति नही भीगा करता, किन्तु यदि उसे आग मे जला दिया जाय तो वह 'कली' का रूप ग्रहण कर लेता है और तब कठिनाई नही पडती । इसी प्रकार सतगुरु के उपदेश द्वारा कठोर से कठोर हृदय भी अपना स्वभाव छोडकर 'रामरस' मे भीग जाता है । इस विषय परबषनाजी की एक साखी भी प्रसिद्ध है) ।

विरह (२)

बिचालै अतरो रे, हरि हम भागो नाहि ।।
को जाणै कद भाजसी, म्हारे पछतावो मन माहि ।।टेक।।

आडा डूगर बन घणो, नदिया बहै अनंत ।
सो पषडिया पजर नही, हौ मिल-मिल आऊ नित ।।१।।

चरणा पाषै चालिवोरे, धरती पाषै वाट ।
परवत पाषै लघणा, विषमी औघट घाट ।।२।।

जाता जाता द्योहडा, म्हारे मन पछितावो होइ ।
जीवत मेलो हे सषी, मूवा न मिलिसी कोइ ।।३।।

हरि दरसन कारणि हे सषी, म्हारा नैन रह्या जल पूरि ।
सो साजन अगला हुवा, भ्वै भारी घर दूरि ।।४।।

पाती प्यारा पीव की, हू क्यो बाचो का लेइ ।
बिरह महाघन ऊनड्यो, म्हारो नैन न वाचण देइ ।।५।।

वटाऊ उहि वाट का, म्हारो संदेसो तिहि हाथि ।
आली नाही रहू, काहू साधू जनकै साथि ।।६।।

ज्यू वनकै कारणि हस्ती झुरै, चकवी पैलै पारि ।
यो बषना झूरै रामकू, ज्यू उलगाणा की नारि ।।७।।

बिचालै रे = हमारे आपके बीच अतर है । डूगर = पहाड । पषडिया = पाँखे । पजर = शरीर मे । पाषै = विना । औघट = ऊबड-खाबड । द्योहडा = दिन । भ्वै = भय, आशका । झुरै = रुदन करै, दुख का अनुभव करता है । उलगाणा = प्रवासी वा परदेशी ।

विरह　　(३)

बीछड्या राम सनेही रे, म्हारै मन पछतावो येही रे ।।
बीछड़िया वन दहिया रे, म्हारै हिवडै करवत वहिया रे।

बिलपी सपी सहेली रे, ज्यूं जल बिन नागरवेली रे ।।१।।
वा मुलकिन की छिवि छाही रे, म्हारे रहि गई हिरदै माही रे।
को उणिहारे नाँहीरे, हो ढूंढ रही जगमाही रे ।।२।।

सब फीको म्हारै भाई रे, मडली को मडण नाही रे।
कोण सभा मे सोहे रे, जाकी निर्मल वाँणी मोहे रे ।।३।।

भरि भरि प्रेम पिलावे रे, कोई दादू आण मिलावे रे।
बपना वहुत विसूरे रे, दरसण कै कारण झूरे रे ।।४।।

बीछड्या=दूर हो गया, मुझसे विमुक्त हो गया। हिवडै=हृदय मे। करवत=आरी। मुलकिन=मुसकान। उणिहारे=समान आकृति वाला। मडण=शोभा, शिरमौर, अग्रणीय। विसूरे=स्मरण कर के दु खी होता है, विलाप करता है।

विनय　　(४)

थारो रे गुण गोव्यदा, म्हारो ओगुणियो कान न कीजै ।।
हो तो थारो थाई रह्यो रे, मोने रामभगति दिढ दीजै रे ।।टेक।।

तुम्ह विना डहकायोथो रे, थारं सग्य न जागी रे।
आगै ही चोरासी भरम्यो, लपी न लागी रे ।।१।।

भूल्यो रे मै भेद न जाण्यौ, ताहरी भगति न साधी रे।
तू मिलिवानै रूडो थो, म्हारो मन न मिल्या अपराधी रे ।।२।।

तू समरथ मै मरणै आयो, तू म्हारी पति रापी रे।
वषना सो नीकै निरवहिये, मै तुझ ऊपर नापी रे ।।३।।

ओगुणियो=अवगुणो को। थारो=तेरा। थाई=तेरा ही। डहकायोथो=वहकता वा मारा-मारा फिरता रहा। रूडो=अच्छा, भला। निरवहिये=निभा दीजिए।

साखी

ढूढै दीप पतग नै, तौ बपना बिरद लजाइ।
दीपक माँहै जोति ह्वै, तौ घणा मिलैंगा आइ ।।१।।

भरया, न फूटै, चिणग न छूटै, जरणा कहिये ताहि।
वषना कहै समाई तिहि मै, सो बोलि बिगूचै नाँहि ।।२।।

अठसठि पाणी धोइये, अठसठि तीरथ न्हाइ।
कहु वपना मन मच्छ की, अजौ कौलाधि न जाइ ।।३।।

जिहि बरिया यहु सब हुवा, सो हम किया विचार।
वषना बरिया खुशी की, करता सिरजनहार ।।४।।

अणदीठे ओलू करै रे मो मन बारबार।
ऊझल फूटा क्यार ज्यू , म्हारै नैण न खंडै धार ॥५॥

बिरद = यश। घणा = अनेक, बहुत से। चिणग न छूटै = घडे की कोई छोटी-सी ककरी न निकल जाय और छिद्र हो जाय। जरणा = पचाना, आत्मसात् कर लेना। समाई = गहराई एव गभीरता। बिगूचै = बिगाडे वा उसे चौपट कर दे। अठसठि = अडसठ (प्रसिद्ध है कि प्रधान तीर्थों की सख्या अडसठ है)। कौलाधि = दुर्गंध, मछलीपन। जिहि हुवा = सृष्टि का आरंभ होते समय। सो बिचार = मैने विचारपूर्वक निश्चय किया है। अणदीठे = बिना देखे। ओलू = स्मरण, याद। ऊझल = भरपूर से अधिक पानी के कारण। नैण धार = आँसुओ की झडी नही टूटती।

## संत बावरी साहिबा

बावरी-पथ के मठो मे सुरक्षित वशावली से विदित होता है कि बावरी साहिबा मायानद की शिष्या थी। (इन मायानद के गुरु दयानद थे जो रामानंद के शिष्य थे और ये दोनो गुरु-शिष्य वर्त्तमान गाजीपुर जिला, उत्तर प्रदेश) के पटना गाँव के निवासी थे। बावरी साहिबा के जन्म-स्थान एव जीवन-काल का पता नही चलता। केवल इतना ही कहा जाता है कि ये किसी उच्च कुल की महिला थी और सत्य की खोज मे पडकर इन्हे बहुत कुछ कष्ट भी झेलने पडे थे। उक्त वंशावली के क्रमानुसार ये अकबर बादशाह (स० १५९९-१६६२) की समकालीन जान पड़ती है। इस प्रकार इनका समय भी लगभग वही हो सकता है जो संत दादूदयाल और हरिदास निरंजनी का था। बावरी-पंथ के मठो मे इनका एक चित्र मिलता है जिसमे इन्हे वेशभूषा विशेष मे दिखलाया गया है, किन्तु उसके द्वारा भी इनके व्यक्तित्व वा इनके मत की विशिष्ट बातो पर कोई स्पष्ट प्रकाश पडता हुआ नही दीखता। इनका 'बावरी' नाम 'पगली' अर्थ का द्योतक होने के कारण, इनका उपनाम-सा ही जान पड़ता है। इनके जीवन की घटनाओ का न तो कुछ परिचय उपलब्ध है, न नीचे दिये गए दो पद्यो के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ ही मिलती है जिनके आधार पर कुछ अनुमान किया जा सके। ये दोनो रचनाएँ (यदि वास्तव मे, इन्ही की है तो) इन्हे उच्चकोटि की साधिका के साथ ही अच्छी कवयित्री भी सिद्ध करती है।

### सवैया

बावरी रावरी का कहिये, मन ह्वै के पतंग भरे नित भावरी।
भावरी जानहि सत सुजान, जिन्हे हरिरूप हिरे दरसावरी॥
सावरी सूरत मोहनी मूरत, देकरि ज्ञान अनत लखावरी।
खावरी सौह तेहारी प्रभू, गति रावरी देखि भई मति बावरी॥१॥

खांवरी सौह = मैं शपथपूर्वक कहती हूँ। गति = विचित्र लीला।

### प्रभाती

अजपा जाप सकल घट बरतै, शो जानै सोइ पेखा।
गुरुगम जोति अगम घर बासा, जो पाया सोइ देखा॥

मैं बन्दी हौ पर्म तत्त्व की, जग जानत कि भोरी।
कहत बावरी सुनो हो बीरू, सुरति कमल पर डोरी ।।२।।

अजपा जाप = अनाहत नाद। सकल बरतै = सब की काया मे सदा चलता रहता है। बन्दी = दासी, साधिका। पर्म तत्त्व = परमात्मतत्त्व। भोरी = पगली, बावली। बीरू = बावरी का शिष्य बीरु साहब।

## सत बीरू साहब

बीरू साहब बावरी साहिबा के प्रमुख अथवा कदाचित् एकमात्र शिष्य थे और सभवत किसी पूर्वी जिले के ही निवासी थे। इनके जन्म-स्थान वा जीवन-काल के विषय मे कुछ पता नही चलता। अनुमान होता है कि इनके आविर्भाव का समय विक्रम की १७वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध रहा होगा और बावरी साहिबा का देहात हो जाने पर ये उनके उत्तराधिकारी रहे होगे। बावरी-पथ के मठो मे पाये जाने वाले इनके एक चित्र द्वारा यह भी सूचित होता है कि ये सत होने के साथ ही सगीतज्ञ भी थे। परतु इनके जीवन का कोई भी विवरण अभी तक उपलब्ध नही है। सग्रहो मे इनकी केवल तीन रचनाएँ पायी जाती है जिनका पाठ कुछ सदिग्ध जान पडता है। किन्तु उनके द्वारा भी इनके पूर्वीपन एव साधना-पद्धति पर कुछ प्रकाश अवश्य पडता है।

### पद

#### बधन से मुक्ति

हंसा रे बाझन मोर याहि घरा, करबो मैं कवनि उपाय।
मोतिया चुगन हसा आयल हो, सो नो रहल भुलाय ।।
झीलर को बकुला भयो है, कर्म कीट धरि खाय।
सतगुरु सत्य दया कियो, भवबधन ते लियो छोडाय ।।
यह संसार सकल है अधा, मोह मया लपटाय।
बीरू भक्ति भयो हसा सुख, सागर चल्यो है नहाय ।।१।।

हसा = जीवात्मा। बाझन = फँस गया, बधन मे पड गया। याहि घरा = इस जगत् मे। झीलर = झील, ताल। सागर = समुद्र, आत्मानुभूति।

#### अत साधना

त्रिकुटी के नीर तीर बाँसुरी बजावै लाल, भाल लाल से सबै सुरग रूप चातुरी।
यमुना ते और गग अनहद सुर तान सग, फेरि देखु जगमग को छोड देवै कादरी।
वायू प्रचड चड बकनाल मेरुदड, अनहद को छोडि दे आगे चलु बावरी।
ऊँकार धार बास इनहू का है विनास, खसम को साथ करु चीन्ह ले तू नाहरी ।।
जन बिरु सतगुरु शब्द रकाब धरु, चल शूर जीत मैदान घर आवरी ।।२।।

त्रिकुटी = इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाडियो का सधिस्थल। नीर तीर = किनारे, उस बिंदु पर ध्यानस्थ होने की दशा मे। बाँसुरी लाल = अनाहत की ध्वनि सुन पडने लगती है। कादरी = कादरता। बकनाल = त्रिकुटी के आगे का एक टेढा

मार्ग। मेरुदड = रीढ की हड्डी। खसम नाह = स्वामी, परमतत्त्व। रकाब = घोडे क काठी का पावदान, यहाँ पर आगे बढने की सोपान-भूमि।

## संत गरीबदासजी (दादूपथी)

गरीबदासजी सत दादूदयाल के प्रधान ५२ शिष्यो मे से एक थे। ये ही उनका देहात हो जाने पर उनके उत्तराधिकारी भी बने थे। अनुश्रुति के आधार पर इनका जन्म सवत् १६३२ बतलाया जाता है और इनके देहावसान का समय मवत् १६६३ मे ठहराया जाता है। इनके विषय मे यह भी प्रसिद्धि है कि ये सत दादूदयाल के ज्येष्ठ पुत्र भी थे और इनके अनुज का नाम मिस्कीनदास था। दादूजी के एक अन्य शिष्य जनी गोपालजी ने 'दादूजी की जन्मलीला' नामक अपनी रचना मे इन्हे 'दादू पिता प्रगट है जाके, गरीबदास सुत उपज्यो ताके' कहकर स्पष्ट शब्दो मे उनका पुत्र माना है। 'भक्त-माल' के लेखक राघोदासजी ने भी इन्हे इसी प्रकार 'दादूसुवन' कहा है। फिर भी 'गरीब-दासजी की वाणी' के सपादक स्वामी मंगलदासजी इस बात मे अपना सदेह प्रकट करते है। वे कहते है कि गरीबदासजी महाराज दादूजी के आशीर्वाद से उत्पन्न हुए थे। बाल्या-वस्था मे महाराज की शरण आ जाने से महाराज के पास पुत्रवत् ही पाले गए थे। अत वे दादूजीके औरस पुत्र न होकर वास्तव मे, उनके वरद पुत्र 'पोष्य पुत्र एव परम विश्वास-नीय शिष्य थे।' अपने इस अनुमान की पुष्टि वे इस बात से भी करना चाहते है कि गरीबदासजी ने दादूजी को सतगुरु, गुरु एवं परमगुरु तो कई स्थलो पर कहा है, किन्तु पिता वा जनक कही भी स्वीकार नही किया है। इसके लिए उन्होने इनकी कई पक्तियाँ भी उद्धृत की है।

गरीबदास जी, उच्चकोटि के साधक होने के अतिरिक्त कुशल कवि, सगीतज्ञ एव वीणाकार भी थे। कहा जाता है कि इनके ललित सगीत से प्रभावित होकर जहाँगीर बादशाह ने इनके रहने के लिए एक बारहदरी और पानी पीने के लिए एक कूप बनवा दिया था जो 'गरीबसागर' कहलाता है। कहते है कि दादूजी के प्रसिद्ध शिष्य रज्जवजी से इन्हे कुछ समय के लिए मतभेद हो गया था जो इनकी मृत्यु के समय दूर हुआ। इनकी वाणियो की सख्या २३००० बतलायी जाती है, परन्तु इनकी जो रचनाएँ उपलब्ध है, वे इससे बहुत कम है। इनकी वाणियो का सग्रह 'गरीबदास जी की वाणी' के रूप मे जय पुर से प्रकाशित हुआ है जिनमे 'अनभै प्रबोध', 'साखी', 'चौबोले' एव पद सगृहीत है। इनकी पंक्तियो मे कही-कही दुरूहता आ गई है, किन्तु फिर भी इनकी वानियाँ इनके-गूढ प्रेम तथा स्वानुभूति का अच्छा परिचय देती है।

### पद

सच्ची प्रीति (१)

प्रीति न तूटै जीवकी, जो अतरि होइ। तन मन हरिके रग रग्यो, जानै जन कोइ ॥टेक॥
लप जोजन देही रहै, चित सनमुख राखै। ताको काज न ऊजरै, जो हरिगुन भाषै ॥१॥
कवल रहै जल अतरै, रवि बसै अकास। सपट तबही बिगसि है, जब जोति प्रकाश ॥२॥
सब ससार असार है, मन मानै नाही ॥ गरीबदास नहिं बीसरै, चित तुमही माही ॥३॥

तूटै = टूटती, नष्ट होती। ऊजरै = बिगडता, असफल होता। सपट = सपुट, मुकुलित दल। बिगसि है = विकसित होगे, खिलेंगे।

अतर्मुखी साधना (२)

तन खोजै तव पावै रे ।
उलटी चाल चले जे प्राणी, सो सहज घर आवै रे ।।टेक।।
बारह मारग वहता रोकै, तेरह ताली लावे रे ।
चद सूर सहजै सत राखै, अणहद वेण वजावे रे ।।१।।
तीन्यू गुण चौथे घर राखै, पाच पचीस समावे रे ।
नऊ निरति सू और वहत्तर रोम रोम धुनि धावे रे ।।२।।
मैल निर्मल करे ग्यान सों, सतिगुरु कहि समझावे रे ।
गरीवदास अनभै घर उपजै तव जाइ जोति लखावे रे ।।३।।

उलटी.. चले = अतर्मुखी वृत्ति की साधना करता है। घर = निज स्वरूप में। बारह रोकै = कर्मेन्द्रियों के बारह मार्गों को सयत रखे। तेरह = सहस्रार में। चद.. गवै = ईडा तथा पिंगला नाडियों को सुषुम्ना मे लगा दे। अणहद वेण. रे = अनाहत नाद का अनुभव करे। चौथे राखै = निर्गुण चैतन्य मे स्थिर कर दे। पाच. समावै रे = पाँच तत्त्व तथा पच्चीस प्रकृतियों को लीन कर दे। वहत्तर = शरीर के बहत्तर कोठो से।

आत्मोपलब्धि (३)

जव मन निरभे घर को पावे ।
तजै आस अनियास जगत की, आदि पुरुष गहि गावे ।।टेर।।
नाना रूप भाँति वहु माया, गुरु मुष द्रष्टि पिछाणै ।
देषत जाइ नही सो अस्थिर, नाहिन हिरदे आणै ।।१।।
जे पहुचे ते कहै साषि सव, उपजै विनसै माया ।
केवल व्रह्म आदि द्रढ अस्थिर, जोनी कष्ट न आया ।।२।।
सोच विचार पुरुष करि ठावा, तासों निज अग परसै ।
गरीवदास वर सोई वरिये जु दोइ गुण भाव न दरसै ।।३।।

अनियास = अनायास ही। आणै = ग्रहण करे। ठावा = निश्चित, विश्वासनीय।

परमात्म-तरु (४)

भाई रे ! विरष अनूपम पाया ।
ताकी सरण आय हम सीतल, तीन्यू ताप भुलाया ।।टेक।।
धर आधार नही सो तरवर भापा पत्र न होई ।
कूपल फली पहुप पर नाही, फलरूपी सव सोई ।।१।।
ताकी छाया सव जग वरते, विन जाणै सुप दूरी ।
सरवर दादर कवल वसेरा, क्यू पावै गति ऊरी ।।२।।
पूरै भाग भवर अनभै घरि, आक पलास न भूलै ।
गरीवदास स्वाति तनि हूई, अपै सरोवर झूलै ।।३।।

अनूपम — अद्भुत। तीन्यू = दैहिक, दैविक तथा भौतिक। वरते = उपयोग मे लाता है। ऊरी = अपूर्ण। स्वाति शांति। अपै = अक्षय, अविनाशी।

आत्म-निवेदन (५)

पार पाऊ कैसे ।
माया सरिता तरुन तरंगनि, जल जोवन को वैसे ।।टेक।।
नैननि रूप नासिका परिमल, जिभ्या स्वाद श्रवण सुनिवे को ।
मन मारे मोहे ऐसे ।।१।।
पचो इद्री चचल चहु दिसि, असथिर होहि करहु तुम तैसे ।
गरीवदास कहै नाव नाव दो, खेइ उतारो जैसे ।।२।।

तरुन = प्रवल । परिमल = सुगध । असथिर = स्थिर एकनिष्ठ । खेइ = चला कर ।

## साखी

सुकृत मारग चालताँ, विघन वचै ससारा ।
दुख कलेश छूटै सवै जे कोइ चलै विचारा ।।१।।
जानि चलै तो अधिक सुख अणजाणै जे जाइ ।
लोहा पारस परसिलै, सो सब कनक कहाइ ।।२।।
भजन भाव समान जल भरि दै सागर पीव ।
जैसी उपजै तन त्रिषा, तेतो पावै पीव ।।३।।
सव अपने उनमान की, सापि कहै पद काबि ।
जिहिं लागै पर उरलौ, सो अपने कर ढावि ।।४।।
वे साधू करि जानिये, दरसन सब सुप होइ ।
जिहिं परसै लोहा कनक, पारस कहिये सोइ ।।५।।
दोइ हूणी सव देखिया, तीन त्रिगुण सव सोधि ।
नौ हूणा तजि एक भजि, आतम को परमोधि ।।६।।

सुकृत = सत्कर्म । जानि = समझ-वूझ कर । उनमान = अनुभव, पहुँच । काबि = काव्य । उरलौ = अत करण तक । ढावि = सुरक्षित रखे । दोइहूँणी = द्वैतभाव के साथ । तीन त्रिगुण = त्रिगुणात्मिका वृत्ति । नौहूँणा = नवद्वार के विषय-भोग । परमोधि = शिक्षा दे ।

## संत हरिदास निरजनी

संत हरिदास निरजनी को दादू-पथ की परपरा के अनुसार, दादू शिष्य प्राग-दास (मृ० स० १६८८) का शिष्य ठहराया जाता है। इनका उनसे दीक्षित होने का समय स० १६५६ वतलाया जाता है। उन प्रमाणो के आधार पर इनकी मृत्यु स० १६७० मे हुई थी और अपने अतिम समय तक ये प्रागदास के अनन्तर स्वय दादू के शिष्य वनकर क्रमश कवीर एव गोरखपथ मे भी आ चुके थे। निरजनी सम्प्रदाय का प्रचार इन्होने नाथ-पथ मे आने के कुछ दिनो पीछे किया था। परन्तु निरजनी सम्प्रदाय के अनुयायियो का कहना है कि ये राजस्थान प्रात के डीडवाणा परगने के कापडोद गाँव के निवासी थे एव जाति के क्षत्रिय थे और इनका नाम हरिसिंह था। ४५ वर्ष की अवस्था तक गार्हस्थ-जीवन व्यतीत कर लेने पर दुर्भिक्ष पडने के कारण इन्होने अपना

निवास-स्थान छोड दिया और अपने कतिपय मित्रो के साथ वन मे जाकर लूटपाट करने लगे। वही सयोगवश इनकी भेट किसी नाथ-पंथी महात्मा से हो गई जिसने इन्हे मत्रोपदेश देकर साधना का मार्ग बतलाया और इन्होने तीखली पहाडी की गुफा मे तप किया। फिर वहाँ से निकल कर ये नागौर, अजमेर, टोडा, जयपुर एव शेखावाटी आदि तक पर्यटन करते रहे। अन्त मे डीडवाणा लौट आये जहाँ पर अपने शिष्यो के साथ सत्सग करते हुए स० १७०० की फाल्गुन सुदि ६ को परमधाम सिधारे।

सत हरिदास निरजनी की विविध रचनाओ का एक सग्रह 'श्रीहरि पुरुष जी की वाणी' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसमे सगृहीत पद्यो मे से अधिकाश का पाठ शुद्ध एव प्रामाणिक नही जान पडता। कई स्थलो पर सदेह बना रह जाता है। फिर भी, इसे कुछ सावधानी के साथ अध्ययन करने पर पता चलता है कि इनका रचयिता योग्य व्यक्ति रहा होगा। इसमे आये हुए पदो, झूलनो, कुडलियो की पक्तियाँ अनेक स्थलो पर बडी सरस एव गम्भीर है। उनमे योगमूलक साधनाओ के साथ-साथ भक्ति एव ज्ञान की महत्त्वपूर्ण बातो पर भी स्पष्ट प्रकाश डाला और धार्मिक सहिष्णुता तथा सदाचरण की ओर भी ध्यान दिलाया गया है। इन रचनाओ की भाषा मे राजस्थानी शब्दो तथा मुहावरो का पूर्ण समावेश है, किन्तु कवि की सुबोध शैली के कारण ये सर्व-साधारण के लिए भी वैसी कठिन नही।

सच्ची योग-साधना (१)

अवधू आसण बैसण झूठा, जब लग मन बिसराम न पावे।
पख तजि फिरै न पूठा ॥टेक॥

ज्ञान गुफा जाणै नहि जोगी, अगम अरथ कहा बूझै।
पाच अगनि मे पडि पडि दाझे, वा सीतल ठौर न सूझै ॥१॥

विविध विकार बालि अरि इधण, धूई ध्यान न धारे।
ब्रह्म अगनि आकास न भेदै, तौ पारा क्यू मारे ॥२॥

निगम अगम तहा लगे आसन, गरव नाद नित बाजै।
नगरी माँहि भुगति वसि भूखा, जहा तहा उठि भाजै ॥३॥

मह गहि पवन अटकि ले उलटा, परम जोग उर धारे।
जन हरिदास निरवास भरम तजि, निरगुण जस निसतारे ॥४॥

आसण बैसण = आसन मार कर ध्यानावस्थित होना। पख तजि = विषय पक्ष का त्याग कर। विविध इधण = विविध मनोविकार-रूपी शत्रुओ को जलाकर। पारा मारे = रसायन की सिद्धि से क्या लाभ होगा। भुगति = भोग।

सच्ची गरीबी (२)

बाबा एह गरीबी झूठी, मन अरु पवन दोऊए फूटा।
मनसा फिरै न पूठी ॥टेक॥

त्रिविध ताप की कथा पहरी, मनी टोप सिर जाके।
रागद्वेष की कानो मुद्रा, कहा गरीबी जाकै ॥१॥

परूया भेख रेख ज्यूं की त्यूं, मोह मढी बसि जीवै ।
तन के भेख राम नही रीझे, विष अमृत करि पीवै ।।२।।

पाच चोर परदेश पहूता, मिलि खेलै ता माही ।
मनां जोर मुखि कहै गरीबी, असलि गरीबी नाही ।।३।।
जन हरिदास आन तजि अनरथ, राम नाम व्रत धारे ।
राग द्वेष काहू सूं नाही, असलि गरीबी तारे ।।४।।

एह गरीबी = दिखाऊ फकीरपन । मनी = अहकार । आन = अन्य, दूसरा ।

## मेरा एकमात्र हरि (३)

अब मैं हरि विन और न जाचूं, भजि भगवत मगन ह्वै नाचूं ।।टेक।।
हरि मेरा करता हू हरिकीया, मैं मेरा मन हरि कूं दीया ।।१।।
ज्ञान ध्यान प्रेम हम पाया, जब पाया तब आप गमाया ।।२।।
राम नाम व्रत हिरदै धारूं, परम उदार निमख न बिसारू ।।३।।
गाय गाय गावेथा गाया, मन भया मगन गगन मठ छाया ।।४।।
जन हरिदास आस तजि पासा, हरि निरगुण निज पुरी निवासा ।।५।।

मेरा = अपना । निजपुरी = परम पद ।

## अकथनीय (४)

रूप न रेख घणू नहिं थोडो, धरणी गगन फुनि नाही रे ।
अकल सकल संगि रहै निरतंरि, ज्यू चदा जल माही रे ।।टेक।।

अगम अथाह थाह नहिं कोई, थाह न कोई पावे रे ।
जैसा भजन तिसा सब कोई, मन उनमना बतावे रे ।।१।।

सागर मे कुभ कुभ मे जल है, निराकार निज ऐसा रे ।
सकल लोक ऐसे हरि माही, रूप कहो धू कैसा रे ।।२।।

अचल अघट सब सुख को सागर, घट घट सबरा माही रे ।
जन हरिदास अविनाशी ऐसा, कहे तिसा हरि नाही रे ।।३।।

घणूं . थोडो = अधिक न कम । उनमना = अनुमान के अनुसार । अघट = जो निर्मित न किया गया हो ।

## सच्चा फाग (५)

सखी हो मास बसंत बिराजै ।
गोपी ग्वाल घेरि गोकुल मे वेण मधुर धुनि बाजै ।।टेक।।

धागे सुरति पाँच नग गूथ्या, मन मोती मधि आया ।
बिगसत कमल परम निधि परगट, हरिकू हार चढाया ।।१।।

गरब गुलाल चरण तलि चूर्‌या, अगर अबीर खिडाया ।
परमल प्रीति परसी पर पूरण, पिव मे प्राण समाया ।।२।।

बफनालि निहचल नौ निरभै, ऐ कौतूहल भारी।
जन हरिदास आनद निज नगरी, खेलै फाग मुरारी ॥३॥

पाँच नग =पच इद्रियो को। चूर्या=-चूर-चूर कर दिया। खिडाया=बिखेर दिया। नौ=नव, नवीन।

## झूलना

जाति को भेद पणि सकल ऊपरि भयो, राग रगि रग्यो रग भले रात्यो।
दास कब्बीर जमलोक जावै नही, अलख रस पिवै मरतानि मातो॥
चोट सू चोट खिसि खेत चाल्यो नही, पाच परवल पिसुन मारि लीया।
अकल की चोट जम चोट लागे नही, उलट का पुलट रस भला पीया ॥१॥
साध की चाल सुणि सकल सशय मिट्यो, कह्यो त्यू रह्यो कछु सक नाही।
आनकी आस बिसवास बाधो नाही, रह्यो पणि रह्यो रमि राम माँही॥
जल मे कवल पणि नीर भदे नही, जगत मे भक्त यू रहे जूवा।
जन हरिदास हरि समद मे बूद कवीर, समद मे बूद मिलि एक हूवा ॥२॥

पणि=परतु, फिर भी। परबल=प्रवल। पिसुन=पिशुन, खल। जुवा=जुदा, पृथक्।

## कुंडलिया

आठ पहर की उनमनी, आठ पहर की प्रीति।
आठ पहर सनमुख सदा, यह साधू की रीति॥
यह साधू की रीति, एकरस लागा जीवै।
अगम पियाला हाथि राम रस पावै पीवै॥
जन हरिदास गोबिंद भजि आन असुर अरि जीति।
आठ पहर की उनमनी आठ पहर की प्रीति ॥१॥
कहा दिखावै औरकू उलटि आपकू देख।
लेखणि मसि कागद कहा लिखिए तहा अलेख॥
लिखिए तहा अलेख सुतौ निर्मल करि लीजै।
दिल कागद करि पाक सुतौ लिखि लिखि ठिक दीजै।
हरीदास हरि सुमरताँ सचर रहे न सेख।
कहा दिखावै और कू उलटि आपकू देख ॥२॥
जागौ रे सोवो कहा अवधि घटै घटि बीर।
कहो कहा लो राखिये फूटै भाडे नीर॥
फूटे भाडे नीर गरकि गाफिल नर सोवै।
भजै नही भगवत, बहोडि मलसू मल धोवै।
हरीदास सुर नर असुर सब मछली जम कीर।
जागौ रे सोवो कहा, अवधि घटै घटि बीर ॥३॥

सबको सरबस देत है, अपणी अपणी प्रीति ।।
साहिब कू सरबस दिया, या कछु उलटी रीति ।।
या कछु उलटी रीति जीति गुण गोबिंद गावै ।
सुंन मंडल मे बैसि साच सू सुरति लगावै ।।
हरीदास आनद भया, छूटी सबै अनीति ।
सबको सरबस देत है अपणी अपणी प्रीति ।।४।।

संचर=साथी वा स्थान। बहोडि=बहुरि, फिर। गरकि=मग्न होकर। कीर=मछुवा। बीर=भाई, मित्र। सबको=सभी कोई।

## साखी

अविनासी आठो पहर अपणें हिरदै धारि ।
हरीदास निरभै मतै, निरभै बस्त बिचारि ।।१।।

नाव निरजन निर्मला भजता होय सो होय ।
हरीदास जन यू कहै, भूलि पडै मति कोय ।।२।।

हरीदास कासू कहू, अपणा घर की लाय ।
ज्यू जाल्या त्यू ही जल्या, जलि बलि रह्या समाय ।।३।।

हरीदास अतरि अगह दीपग एक अनूप ।
जोति उजालै खेलिये, जह छाहडी न धूप ।।४।।

काया माया झूठ है, साच न जाणो बीर ।
कहि काकी भागी तृषा, मृगतृष्णा को नीर ।।५।।

जह आपा तह आतरो करुणा सागर दूरि ।
हरीदास आपा मिट्या, है हरि सदा हजूरि ।।६।।

नहि देवल सू बैरतर नहि देवलसू प्रीति ।
कृतम तजि गोबिंद भजै, या साधो की रीति ।।७।।

लोक दिखावो मति करै, हरि देखे त्यू देख ।
हरीदास हरि अगम है, पूरण ब्रह्म अलेख ।।८।।

जंह ज्वाला तह जल नही, हरि तह मैं तै नाहि ।
हरीदास केहरि कुरग, एकै बनि न बसाहि ।।९।।

सीतल दृष्टि चकोर की, चद बसै ता मांहि ।
हरीदास ज्वाला चुगै, देखो दाजै नाहि ।।१०।।

निरभै बस्त=निर्भयतत्त्व, परमात्मा । लाय=आग। देवल=मूर्त्तियो का मन्दिर। बैरतर=शत्रुता। कृतम=कृत्रिम, मूर्ति। मै-तै=किसी प्रकार का भेदभाव। दाजै=दाझै, जलता।

## संत आनंदघन

आनदघन का नाम, उनकी दीक्षा के पहले, लाभानद वा लाभ-विजय था। वे जैन धर्मानुयायी थे। वे कही गुजरात प्रान्त वा राजस्थान की ओर के निवासी थे। उनके

अतिम दिन, जोधपुर राज्य के अतर्गत बसे हुए, मेडता नगर मे व्यतीत हुए थे जो मीराँबाई की जन्मभूमि है। उनके जीवन-वृत्त की बातो का पता नही चलता। उनकी केवल दो रचनाएँ उपलब्ध है जिनसे उनके समय का अनुमान किया जा सकता है। उनकी 'आनदघन चौबीसी' की कई पंक्तियाँ उनके पूर्ववर्ती प्रशस्तिकारो की रचनाओ मे भी प्राय ज्यो-की-त्यो दीख पडती है। इस कारण उसकी रचना का समय, वैसे लेखको मे से सबसे अतिम जिनराजसूरि (स० १६७८) के अनतर ठहरता है और स्वय आनदघन की भी प्रशस्ति के लिखने वाले योशविजय (मृ० स० १७४५) से जीवन-कालानुसार वह विक्रम की १७वी शताब्दी के अतिम चरण मे मान लिया जा सकता है। उनकी रचनाओ पर वैष्णव कवि सूरदास एव मीराँबाई की रचना-शैली का भी प्रचुर प्रभाव लक्षित होता है। उनकी उक्त 'चौबीसी' के एक टीकाकार ज्ञानविमलसूरि के उल्लेखो से यह भी जान पडता है कि उसके २२ स्तवनो मे से अतिम दो कदाचित् उनकी कृति नही है। इसी प्रकार उनकी रचना 'आनदघन बहोत्तरी' के उपलब्ध एक सौ ग्यारह पदो मे सभवत कबीर, सूर, बनारसीदास, द्यानत और घनानंद की रचनाएँ भी सम्मिलित है।

उनकी रचनाओ को पढने से पता चलता है कि वे उच्चकोटि के अनुभवी व्यक्ति और कवि थे। उनकी उक्त दो पुस्तको के जो सस्करण आज तक निकले है, उनमे उनकी वास्तविक रचनाओ की पूरी छानबीन की गई नही मिलती। इस कारण उनके आधार पर उनकी मौलिक विचारधारा का ठीक-ठीक परिचय पाना अत्यत कठिन कहा जा सकता है। फिर भी, जहाँ तक अनुमान किया जा सकता है, उनकी आध्यात्मिक प्रेरणा का मूलस्रोत बहुत व्यापक एव उदार था। उनमे स्वानुभूतिजनित सहृदयता की भी कमी नही थी। उनकी कथन-शैली मे भी, अन्य सत कवियो की ही भाँति, सरलता वा स्वाभाविकता लक्षित होती है। उसमे पदलालित्य एव सरसता भी बहुत-कुछ पायी जाती है।

### आत्मानुभूति का महत्व (१)

आतम-अनुभव-फूल की नवली कोऊ रीत।
नाक न पकरै बासना, कान गहै परतीत।
अनुभव नाथ कू क्यो न जगावै।
ममता-सग सो पाय अजागल-थन ते दूध दुहावै।
मेरे कहे ते खीज न कीजै, तू ऐसिही सिखावै।
बहोत कहे ते लागत ऐसी, अगुली सरप दिखावै।
औरन के सग राते चेतन, चेतन आप बतावै।
आनदघन की सुमति अनदा, सिद्ध सरूप कहावै॥

बासना = गध। कान गहे परतीत = अनाहत की ध्वनि का अनुभव होता है। अजागल-थन = बकरी के गले मे लटकने वाली और स्तन-सी जान पडने वाली छीमियाँ। अंगुली .दिखावै = जैसे उँगली दिखलाने से सर्प खीज उठता है। औरन बतावै = औरो (विषयादि) से अनुरक्त रहकर अज्ञानी हो जाने पर भी अपने को ब्रह्म कहता है।

## आत्मानुभूति की दशा (२)

आतम-अनुभव-रीति वरी री।
और वनाय निज रूप अनूपम, तिच्छन रुचि कर तेग धरी री।
टोप सनाह सूर को वानो, एकतारी चोरी पहिरी री।
सत्ता थल में मोह विदारत, ए ए सुरजन मुह निसरी री।
केवल कवला अपछर सुन्दर, गान करे रसरग-भरी री।
जीत-निसान वजाइ विराजै, आनदघन सर्वंग धरी री।

वरी = ग्रहण की। तिच्छन धरी = तीव्र इच्छा की तलवार धारण कर ली है। एकतारी...पहिरी = एक तार की चोली पहन ली, अर्थात् तारी लगी रहती है। ए ए निसरी = देवता भी स्वागत करते है।

## आत्म-दर्शन (३)

साधु भाइ अपना रूप जब देखा।
करता कौन कौन फुनि करनी, कौन मागेगो लेखा।
साधु सगति अरु गुरु की कृपा तें, मिट गइ कुल की रेखा।
आनदघन प्रभु परचो पायो, उतर गयो दिल भेखा॥

उतर. भेखा = माया का आवरण हट गया।

## ज्ञानोदय (४)

मेरे घट ज्ञान-भानु भयो भोर।
चेतन चकवा चेतना चकवी, भागो विरह को सोर।
फैली चहुँ दिस चतुर-भाव-रुचि, मिटचो भरम तम जोर।
आपकी चारी आपही जानत, और कहत न चोर।
अमल कमल विकच भये भूतल, मद विषय-ससि-कोर।
आनदघन एक वल्लभ लागत, और ना लाख किरोर॥

चतुर रुचि = ज्ञान की ज्योति। विकच भये = खिल उठे। कोर = किरण। वल्लभ = प्रियतम।

## मध्यस्थ की अनावश्यकता (५)

रिसानी आप मनावो रे प्यारे, विच्च वसीठ न फेर।
सौदा अगम है प्रेम का रे, परखत बूझै कोय।
ले दे वाही गम पड़ै प्यारे, और दलाल न होय।
दो वाता जियकी करोरे, मेटो मनकी आट।
तन की तपत बुझाइये प्यारे, वचन सुधारस छाट।

नेक नजर निहालिये रे, उजर न कीजे नाथ।
तनक नजर मुजरे मिलै प्यारे, अजर अमर सुख साथ।
निसि अंधियारी घन घटा रे, पाऊँ न वाट को फद।
करुणा करो तो निरबहु प्यारे, देखू तुम मुख चंद।
प्रेम जहा दुविधा नही रे, नहि ठकुराइत रेज।
आनदघन प्रभु आइ बिराजे, आपहि ममता-सेज॥

आप=स्वयं। विच्च फेर=बीच-बिचाव करने वाले किसी अन्य व्यक्ति मे सहायता न लो। परखत कोय=अपने निजी अनुभव से ही इसकी जानकारी हो पाती है। ले दे पईं=जो इसमे रहता है, उसी को इसका रहस्य विदित होता है। वाता=बाते। जियकी=मर्म की। आट=गाँठ। छाट=चुनकर। निहालिये=दृष्टिपात कीजिए। उजर=आपत्ति, आलाकानी। फद=उपाय, सकेत। ठकुराइत=स्वामीपन। रेज=नीच कोटि का व्यक्ति, दासपन।

आत्म-लीला (६)

देखो एक अपूरव खेला।
आपही बाजी आपही बाजीगर, आप गुरू आप चेला।
लोक अलोक बिच आप बिराजित, ज्ञान प्रकाश अकेला।
बाजी छाड तहा चढ बैठे, जिहा सिंधु का मेला।
वागवाद खटनाद सहूं मे, किसके किसके बोला।
पाहण को भार काही उठावत, एक तारे का चोला।
षटपद-पद के जोग सिरीखस, क्योकर गज-पद तोला।
आनदघन प्रभु आय मिलो तुम, मिट जाय मन का झोला॥

अलोक=भिन्न लोक वा लोकेतर। वाजी=प्रपच। सिंधु मेला=प्रेम का समुद्र उमड रहा है। वागवाद=वाणी का विलास। खटनाद=छह प्रकार के शब्द। सहू मे=सबमे सर्वत्र। पाहण=पाषाण, पत्थर। काही=किस प्रकार। एक चोला=केवल एक तार का ही बना हुआ शरीर। षटपद-पद=भ्रमर के चरण। सिरीखस=सदृश, बराबरी वा तुलना मे। झोला=चंचलता, बेचैनी।

अनिर्वचनीयता (७)

निसानी कहा बताऊँ रे, तेरो वचन अगोचर रूप।
रूपी कहूं तो कछू नाही रे, कैसे बधै अरूप।
रूपारूपी जो कहू प्यारे, ऐसे न सिद्ध अनूप।
सिद्ध सरूपी जो कहू रे, बधन मोक्ष बिचार।
न घटे संसारी दसा प्यारे, पुन्य पाप अवतार।
सिद्ध सनातन जो कहूं रे, उपजै विणसै कौण।
उपजै विणसै जो कहूं प्यारे, नित्य अबाधित गौन।
सर्वांगी सवनय धणी रे, माने सब परवान।

नयवादी पल्लोग्रही प्यारे, करै लराई ठान।
अनुभव-गोचर वस्तु कोरे, जाणवो यह ईलाज।
कहन सुनन को कछू नहिं प्यारे, आनंदघन महराज ।।

वचन अगोचर = अनिर्वचनीय। रूपारूपी अनूप = साकार-निराकार दोनो कहूँ तो यह विचित्र बात सभव नही दीखती। सिद्ध बिचार = स्वरूप वाला कहने पर बध-मोक्ष का प्रश्न रह जाता है। नयवादी = ज्ञानी। पल्लोग्रही = ऊपर-ऊपर की ही बाते करने वाले। जाणवो .ईलाज = स्वानुभूति ही साधन है।

आत्म-निरूपण (८)

अवधू नाम हमारा राखै, सोई परम महारस चाखै।
ना हम पुरुष नही हम नारी, बरन न भाति हमारी।
जाति न पाति न साधन साधक, ना हम लघु नहिं भारी।
ना हम ताते ना हम सीरे, ना हम दीघ न छोटा।
ना हम भाई ना हम भगिनी, ना हम बाप न घोटा।
ना हम मनसा ना हम सबदा, ना हम तन की धरणी।
ना हम भेख भेखधर नाही, ना हम करता करणी।
ना हम दरसन ना हम परसन, रसन गध कछु नाही।
आनदघन चेतनमय मूरति, सेवक जन बलि जाही।

बरन = वर्ण। भाँति = भेद। घोटा = पुत्र। धरणी = वृत्ति।

इष्टदेव निरंजन (९)

अब मेरे पति गति देव निरजन।
भटकू कहा कहा सिर पटकू, कहा 'करू जन रंजन।
खंजन-दृगन दृग न लगावू, चाहू न चितवन अजन।
संजन घट अतर परमातम, सकल दुरित-भयभंजन।
एह काम-गवि एह काम-घट, एही सुधारस मजन ।।
आनदघन प्रभु घट वन-केहरि, काम-मतग-गज-गजन ।।

सजन = सज्जन, सत। काम-गवि = कामधेनु। मंजन = मार्जन, स्नान।

## भीषजनजी (दादूपथी)

भीषजनजी शेखावाटी के फतेहपुर नगर के निवासी थे। ये जाति के महा-ब्राह्मण थे। इनके जन्म-सवत् वा मृत्यु-सवत् का पता नही चलता, किन्तु इनकी प्रसिद्ध रचना 'सवंगी बावनी' के निर्माण-काल स० १६८३ से अनुमान होता है कि इनके जीवन-काल का अधिकाश कदाचित् १७वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे बीता होगा। यही बात इनकी रचना 'भारती नाममाला' के आरभ-काल स० १६८५ से भी सिद्ध होती है। भीषजनजी दादू-शिष्य सतदासजी के शिष्य थे जो सभवत अपनी अधिक रचनाओ के

कारण 'बारह-हजारी' कहलाते थे। ये महान् त्यागी थे। भीषजनजी को भगवद्भक्ति एवं सत्संत मे पूरी निष्ठा थी और इनका अधिक समय इसी मे व्यतीत हुआ करता था। कहते है कि एक बार जब ये फतेहपुर के लक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर मे गये हुए थे, वहाँ के पुजारियो ने इन्हे हीन ब्राह्मण समझकर निकाल दिया। इस पर दु खी होकर भीषजनजी उक्त मदिर के पिछवाडे जा बैठे और वही से भगवद्भजन गाने लगे। जब प्रात काल हुआ तो लोगो ने देखा कि मन्दिर मे पधरायी गई मूर्त्ति का मुख उसी ओर हो गया है जिधर भीषजनजी रातभर बैठे रहे। इस बात से उन्हे महान् आश्चर्य हुआ। पुजारियो ने इस घटना से अत्यन्त प्रभावित होकर भीषजनजी से क्षमा-याचना की और तब से इनकी बडी प्रसिद्धि हो चली। ऐसी ही एक अन्य घटना की चर्चा प्रसिद्ध भक्त बामदेव के सम्बन्ध मे भी की जाती है और वैसा वर्णन कबीर की रचनाओ मे भी मिलता है।

भीषजनजी की उक्त दो रचनाओ के अतिरिक्त किसी अन्य वाणी आदि का पता नही चलता। उक्त दो पुस्तको मे से 'भारती नाममाला' भी 'अमरकोश' नामक प्रसिद्ध ग्र थ का हिंदी पद्यानुवाद जान पडती है। 'सर्वंगी बावनी' मे इनके ५४ छप्पय सगृहीत है जो नागरी के अक्षरो के क्रमानुसार लिखे गये है। इसमे प्राय उन्ही विषयो की चर्चा की गई है जो अन्य बानियो मे भी मिलते है। इसमे किये गए वर्णनो की विशेषता उनमे दीख पडने वाले विविध दृष्टातो मे लक्षित होती है। भीषजनजी, रज्जब-जी की भाँति, किसी विषय का प्रतिपादन करते समय, उसे अनेक प्रसगो द्वारा पुष्ट करने की चेष्टा बराबर किया करते है और उनमे नयी सूझे भी ला देते है। इनकी भाषा प्रवाहपूर्ण है और इनकी रचनाओ मे इनके निजी अनुभव का भी समावेश दीख पडता है।

### छप्पय

वह अबिगत गति अमित अगम अनभेव अषडित।
अबिहर अमर अनूप अरुचि अपरूप अमडित ॥
निर्मल निगह निरग निगम निहसग निरनन।
निज निरबध निरसध निधर निरमोह निचिंतन ॥
जगजीवन जगदीश जपि नारायन रजक सकल।
भुव-धारन भव दुख-हरन भजु जन भीष अनत बल ॥१॥

आहि पुहुप जिमि बास प्रगट तिमि बसै निरतर।
ज्यो तिलयिन मे तेल मेल यो नाहिन अतर ॥
ज्यूं पय घृत सजोग सकल यौ है सपूरन।
काष्ठ अगनि प्रसग प्रगट कीये कहु दूर न ॥
ज्यूं दर्पण प्रतिबिम्ब मैं होत जाहि विश्राम है।
सकल बियापी भीषजन अैसे घटि घटि राम है ॥२।

इक सरवर तजि मीन कैसे सुष पावत।
बायस बोहिथ छाडि फिरत फिर तासुहि आवत ॥

सबै भीति की दौर ठौर कहाँ समावत।
उडै पष बिन आहि सु तौ धरती फिर आवत॥
पात सीचियत पेड़ बिन पाय नहि द्रुम ताहि कौ।
अैसे हरि बिन भीषजन भजै सु दूजा काहि कौ॥३॥

दग्ध वृक्ष नहि नवै नवै सु आहि सु फलतर।
नाहि कसौटो काच साच कै सहै हेमवर॥
विद्रुम पात न चोट षात सो हीर चोट अति।
पाहन भिदै न नीर भिदै सैंधव कोमल मति॥
अल्प कुम्भ बोलै अधिक सपूरन बोलै नही।
त्यूं सठसग सु भीषजन साध सिद्ध मति है वही॥४॥

रबि आकरषै नीर विमल मल हेत न जानत।
हस क्षीर निज पान सूप तजि तुस कन आनत॥
मधुमापी सग्रहै ताहि नहि कूकस काजै।
बाजीगर मणि लेत नाहि विष देत बिराजै॥
ज्यूं अहीरी काढि घृत तक्र हेत है डारि कै।
यूं गुन ग्रहै सु भीषजन औगुन तजै विचार कै॥५॥

अबिगत = अज्ञात। अनभेव = अपूर्व। अविहर = अविहड, अनश्वर। अरुचि = बिना कांति का। निगह = अग्राह्य। निज निर्बंध = अपनी ही सीमा मे रहने वाला। निरसध = बिना छिद्र का। रजक = आनददायक। छीन = क्षीण, वियुक्त। बायस = काग। वोहिथ = जहाज। भीति = भय। पेड = तना। नव = झुकता है। हेमवर = उत्कृष्ट सोना। विद्रुम = मूंगा। भिदै = ममाना। सैंधव = नमक। अन्य = अधमरा। आकरषै = ऊपर को खीचता है। तुस = भूसी। कन = अन्न। कूकस = स्थूल भाग। काजै = मतलब।

## संत वाजिदजी (दादूपथी)

वाजिदजी सत दादू दयाल के एक सौ बावन शिष्यो मे से अन्यतम थे। ये जाति के पठान थे। इनके विषय मे कहा जाता है कि एक बार जब ये किसी हरिणी का शिकार कर रहे थे, इनके हृदय मे करुणा का भाव जागृत हो उठा और इनके जीवन मे काया-पलट हो गई। इन्होने उसी समय अपने तीर एव कमान तोडकर फेक दिये और घर लौटकर शीघ्र किसी सद्गुरु की खोज मे निकल पड़े। ऐसे ही अवसर पर इन्हे सत दादू दयाल के साथ सत्संग करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये उनसे पूर्ण प्रभावित होकर उनके शिष्य हो गए। इनके जन्म-स्थान अथवा जीवन-काल की तिथियो का न तो कोई पता चलता है, न इनकी सभी रचनाएँ ही अभी तक उपलब्ध है। इनका जीवन-काल विक्रम की १७वी शताब्दी में ठहराया जा सकता है। यह भी सभव है कि ये १८वी के प्रारभ काल मे भी रहे हो। इनके जीवन मे घोर परिवर्तन लाने का कारण इनके कठोर शिकारी हृदय का अकस्मात् कोमल बन जाना कदाचित् इनके अत समय तक कायम रहा। इनकी रचनाओ मे इस बात के अनेक उदाहरण मिलते है जो इनकी दया, दान-

शी लता, सहानुभूति आदि के भावो मे व्यक्त हुए है। इन्हे सघर्ष एव भेदभाव के जीवन के प्रति कुछ भी आकर्षण नही और ये सर्वसाधारण के जीवन-स्तर को, नैतिक आधार पर ऊँचा करना चाहते है। इसकी ओर इन्होने अपनी रचनाओ द्वारा प्राय सर्वत्र संकेत किया है।

वाजिदजी की रचनाओ की सख्या बहुत बडी बतलायी जाती है। उनमे से १५ का एक सग्रह स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा के पास वर्तमान था। परन्तु अभी तक उनमे से न तो कोई प्रकाशित है, न इनके सभी ग्रन्थो का कोई विस्तृत विवरण ही उपलब्ध है। इनकी कुछ साखियो को रज्जबजी ने अपने 'सर्वंगी' नामक सग्रह मे तथा जगनाथजी ने अपने 'गुणगजनामा' मे उद्धृत किया है। फिर भी वाजिदजी की अरिल्ल छद की ही रचनाएँ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उन्ही का एक छोटा-सा सग्रह जयपुर से प्रकाशित 'पचामृत' नामक पुस्तक मे छपा है। इसमे केवल एक सौ पैंतिस ही अरिल्ल है जो क्रमश. सुमरण, विरह, पतिव्रता, साध, उपदेश, चिन्तामणि, विश्वास, कृपण, दातव्य, दया, अज्ञान, उपजण, जरणा, साँच एव भेष जैसे विविध अगो के अतर्गत विभाजित है। इनसे इनके सत-हृदय का अच्छा परिचय मिलता है। इनकी भापा सीधी-सादी, स्पष्ट एव प्रभावपूर्ण है और इनकी पक्तियो मे किसी प्रकार की उग्रता नही लक्षित होती। कहते है कि इनकी बहुत-सी रचनाएँ दोहे-चौपाइयो मे भी मिलती है और उनकी भी भाषा मे ये गुण पाये जाते है।

## अरिल्ल

गाफिल रहिबा वीर कहो क्यू वनत है।
रे मानस का श्वास जुरा नित गनत है॥
जाग लागि हरिनाम कहा लगि सोइ है।
हरिहा, चाके के मुखधरे सु मैदा होइ है॥१॥
टेढी पगडी बाध झरोखा झाकते।
ताना तुरग पिराण चहूंटे डाकते॥
लारे चढती फौज नगारा बाजते।
वाजिद वे नर गये बिलाय सिंह ज्यू गाजते॥२॥
शिर पर लम्बा केश चले गज चालसी।
हाथ गह्या शमशेर ढलकती ढालसी॥
एता यह अभिमान कहा ठहरायगे।
हरिहा, वाजिद ज्यू तीतर कू बाज झपट ले जायगे॥३॥
काल फिरत है हाल रैंण दिन लोइ रे।
हनै राव अरु रक गिणे नहि कोइ रे॥
यह दुनिया वाजिद बाट की दूब है।
हरिहा, पाणी पहिले पाल बँधै तू खूब है॥४॥
आवेगे किहि काम पराई पौर के।
मोती जर वरजाहु न लीजे और के॥

परिहरि ये वाजिद न छूवे माथ को।
हरिहा, पाहन नीको बीर ! नाथ के हाथ को ॥५॥
दरगह बड़ो दिवान न आवे छेह जी।
जे शिर करवत बहे तो कीजे नेह जी ॥

हरिते दूर न होय दु ख कूं हेरि के।
हरिहा, वाजिद जानराय जगदीश निवाजै फेरि के ॥६॥
भगत जगत मे वीर जानिये ऐन रे।
श्वास सरद मुख जरद निर्मले नैन रे ॥
दुरमति गइ सब दूर निकट नहिं आवही।
हरिहां, साध रहे मुख मौन कि गोविंद गावही ॥७॥
बडा भया तो कहा बरस सो साठ का।
घणा पढ्या तो कहा चतुर्बिध पाठ का ॥
छापा तिलक बनाय कमडल काठ का।
हरिहा, वाजिद एक न आया हाथ पसेरी आठ का ॥८॥
कहे वाजिद पुकार सीष एक सु न रे।
आडो बाकी बार आइहै पुंन रे ॥
अपनो पेट पसार बडो क्यू कीजिये।
हरिहा, सारी मै तैं कौर और क्यू दीजिये ॥९॥
भूखो दुर्बल देख मुँह नहिं मोडिये।
जो हरि सारी देय तो आधी तोडिये ॥
भी आधी की आध आध की कोर रे।
हरिहा, अन्न सरीखा पुण्य नही कोइ और रे ॥१०॥
खैर सरीखी और न दूजी बसत रे।
मेल्हे बासण माहि कहा मु ह कसत रे ॥
तूं जन जाने जाप रहेगी ठान रे।
हरिहा, माया दे वाजिद धणी के काम रे ॥११॥

रहिवा = रहना। बीर = भाई। मानस = मनुष्य। जुरा = बुढापा। लागि = लग जा। झरोखा = महल की खिडकी से। ताता = तेज दौडने वाला। पिराण = पलान [illegible]ाठी वा जीन। चहूटें = चारों ओर। डाकते = दौड लगाते। लारे = पीछे, साथ-[illegible]ाथ। [illegible]शेर = तलवार। ढलकती = लटकती। ढालसी = ढाल के साथ। एता = इतना [illegible]ा। पाल = बाँध। पराई के = दूसरे घर वाले। वरजहु = उत्तम से भी उत्तम। [illegible]ाथ = मस्तक। नाथ = अपने स्वामी। दरगह = दरबार मे। दिवान = दीवान, उच्च [illegible]ोटि के पुरुष। छेह = न्यून कोटि वाले। हेरि के = अनुभव कर। ऐन = असली, सच्चे। घणा = बहुत कुछ, अधिक। चतुर्बिध का = चारो प्रकार से, सभी प्रकार से। न हाथ = वश मे नही आया। पसेरी ..का = आठ पसेरी वाला, अर्थात् अपना मन। सीष = शिक्षा, उपदेश वा सलाह। सुन = सुन ले। आडो आइहै = गाढे वा सकट के समय काम देगा। बाकी बार = सकट वा कठिनाई आ जाने पर। पुन = पुण्य, सत्कर्म। सारी = अपने पूरे धन मे से। कौर = कुछ भाग। और = दूसरो को। भी = फिर,

अथवा। कोर = टुकडा। खैर = खैरात, दान देना। वसत = वस्तु, बात, कर्त्तव्य। मेल्हे = डाल कर, द कर के। बासण = बर्तन, घडे आदि मे। कसत है = ऊपर मे बाँधता है। जाप = जाफत (अरबी शब्द जियाफत = दावत, भोज से), उत्सवादि। ठाम = स्थान पर, अपनी जगह पर, ज्यो का त्यो अथवा स्थिर। धणी = मालिक वा ईश्वर के नाम पर।

## गुरु तेगबहादुर

गुरु तेगबहादुर सिखो के छठे गुरु हरगोविंद के पुत्र थे। उनका जन्म वैशाख बदि ५, स० १६७६ को हुआ था। गुरु तेगबहादुर के बडे भाई गुरु दिता थे जिनके पुत्र हरराय गुरु हरगोविंद के उत्तराधिकारी बनाये गए थे। गुरु हरराय के पीछे उनके पुत्र हरकृष्णराय गुरु बने थे। गुरु तेगबहादुर इसी गुरु हरकृष्णराय के अनन्तर नवम सिखगुरु के रूप मे गुरु-गद्दी पर बैठे थे। गुरु तेगबहादुर अपने बचपन से ही बडे शातिप्रिय तथा मितभापी थे। इनके प्रति सभी लोग बडी श्रद्धा का भाव रखते थे। फिर भी, निकटवर्ती सिखो मे द्वेषभाव तथा षड्यत्र की भावना प्रबल हो जाने के कारण, इन्हे कई बार अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पडे और ये अंत तक चैन से नही रह सके। इन्हे बहुधा भ्रमण भी करना पडता रहा जिसमे इन्होने समय-समय पर सत मलूकदास जैसे कुछ महान् व्यक्तियो से भेट की। पूरब की ओर ये असम प्रदेश के काम-रूप तक गये थे और वहाँ के राजा के साथ इन्होने बादशाह औरगजेब की सधि करायी थी। परन्तु उक्त बादशाह की धर्म-सम्बन्धी नीति ने ऐसा घटना-चक्र निर्मित कर दिया कि इन्हे अत मे उसका बदी बन जाना पडा। ये उसके बदीगृह मे रहकर बहुत कष्ट झेलते रहे और इन पर भिन्न-भिन्न प्रकार के दोपारोपण होते रहे, यहाँ तक कि एक मिथ्या अभियोग लगाकर इन्हे एक दिन प्राणदड तक दे दिया गया। इनकी हत्या अगहन सुदि ५, सवत् १७३२ को बुरे ढग से करायी गई और इनका शव आग लगाने के कारण भस्म हुआ।

गुरु तेगबहादुर को उनके पिता गुरु हरगोविंद ने आखेटादि का भी अभ्यास कराया था, किन्तु उनका हृदय कोमल एव क्षमाशील ही बना रहा। उनमे जीवन की क्षणभगुरता एव विरक्ति के भाव पूर्णरूप से भरे हुए थे और जगत् के प्रति वे सदा उदासीन रहे। उन्होने बहुत से पदो तथा साखियो की रचना की थी जो 'आदिग्रथ' मे 'महला ९' के अतर्गत सगृहीत है। उनके प्रत्येक पद मे उनकी 'रहनी' की छाप स्पष्ट लक्षित होती है और उनके शब्द उनकी गहरी अनुभूति के रग मे रँगे हुए जान पडते है। छोटे-छोटे भजनो की रचना करने तथा चुभती हुई चेतावनी देने मे ये अत्यन्त प्रवीण है। इनके द्वारा प्रयुक्त वाक्यो का प्रभाव अधिकतर गहरा एव चिरस्थायी हुआ करता है। यही कारण है कि गुरु तेगबहादुर की रचनाएँ अन्य सिख गुरुओ की बानियो से कही अधिक लोकप्रिय है। ऐसी रचनाओ मे से बहुत-सी, अत मे 'नानक' शब्द का प्रयोग होने के कारण भ्रमवश गुरु नानकदेव की समझ ली गई है। इनके पदो मे पजाबीपन का प्राय अभाव है और वे अपनी रूपरेखा मे, कृष्णभक्त हिन्दी-कवियो की रचनाओ की श्रेणी के है।

### पद

सासारिक मानव

(१)

प्रानी कउ हरिजसु मनि नही आवै।
अहिनिसि मगनु रहै माइआ मैं, कहु कैसे गुन गावै ॥रहाउ॥

पूत मीत माइआ ममता सिउ, इह बिधि आपु बधावै ।।
म्रिगत्रिसना जिउ झूठो इह जग, देषि तासि उठि धावै ।।१।।
भुगति मुकति का कारनु सुआमी, मूढ ताहि बिसरावै ।।
जन नानक कोटनमै कोऊ, भजनु राम को पावै ।।२।।

जिउ=ज्यो, जैसा, तुल्य, समान ।

मनोव्यथा (२)

विरथा कहउ कउन सिउ मन की ।
लोभि ग्रसिउ दसहू दिस धावत, आसा लागिउ धन की ।।रहाउ।।
सुषकै हेतु बहुत दुषु पावत, सेव करत जन जन की ।
दुआरहि दुआर सुआन जिउ डोलत, नह सुध राम भजन की ।।१।।
मानस जनमु अकारथ षोवत, लाजन लोक हसन की ।
नानक हरि जसु किउ नहि गावत, कुमति बिनासै तन की ।।२।।

विरथा = व्यथा, चिंता । नह = नही । लाजन = लोक-लज्जा के कारण । तनकी -=अपनी ही ।

अविवेकी मन (३)

यह मनु नैकु न कहिउ करै ।
सीप सिषाइ रहिउ अपनी सी, दुरमति ते न टरै ।।रहाउ।।
मदि माइआकै भइउ बावरो, हरि जसु नहि उचरै ।
करि परपचु जगत कउ डहकै, अपनो उदरु भरै ।।१।।
सुआन पूछ जिउ होइ न सूधो, कहिउ न कान धरै ।
कहु नानक भजु राम नाम नित, जाते काजु सरै ।।२।।

कहिउ परामर्शानुसार। डहकै = भुलावा देता रहता है। सुआन सूधो = श्वान, अर्थात् कुत्ते की टेढी पूँछ जिस प्रकार अनेक बार सीधी की जाने पर भी फिर ज्यो की त्यो टेढी हो जाती है, उसी प्रकार हमारे मन मे भी स्थायी सुधार नही हो पाता। कहिउ.. धरै किसी कथन पर ध्यान नही देता।

भ्रमात्मक जगत् (४)

साधो रचना राम बनाई।
इकि बिनसै इक असथिरु मानै, अचरजु लषिउ न जाई ।।रहाउ।।
कामु क्रोधु मोह बसि प्रानी, हरि मूरति बिसराई ।
झूठा तनु साचा करि मानिउ, जिउ सुपनारै नाई ।।१।।
जो दीसै सो सगल बिनासै, जिउ बादर की छाई ।
जन नानक जग जानिउ मिथिआ, रहिउ राम सरनाई ।।२।।

रचना =सृष्टि के सारे पदार्थ। इकि .मानै =एक वस्तु को अपने सामने नष्ट होती हुई देख कर भी अन्य को स्थायी मान लिया जाता है। सुपनारै स्वप्नावस्था मे।

### स्वार्थ का प्रेम (५)

जगत मै झूठी देषी प्रीति ।
अपने ही सुष सिउ सभ लागे, किआ दारा किआ मीत ।।रहाउ।।
मेरउ मेरउ सभै कहत है, हित सिउ बाधिउ चीत ।
अति कालि सगी नह कोऊ, इह अचरज है रीत ।।१।।
मन मूरप अजहू नह समझत, सिषदै हारिउ नीत ।
नानक भउ जल पारि परै जउ, गावै प्रभ के गीत ।।

हित चीत = स्वार्थ मे ही मन लिप्त रहा करता है । नह = नही ।

### समभाव की स्थिति (६)

साधो मन का मानु तिआगउ ।
कामु क्रोधु सगति दुरजन की, ताते अहिनिसि भागउ ।।रहाउ।।
सुषु दुषु दोनो सम करि जानै, अउरु मान अपमाना ।
हरष सोगते रहै अतीता, तिनि जगि ततु पछाना ।।१।।
उसतति निंदा दोऊ तिआगै, षोजै पदु निरवाना ।
जन नानक इहु षेलु कठनु है, किनहू गुरमुषि जाना ।।२।।

अतीता = अप्रभावित । ततु = भेद, रहस्य । षेलु = रहनी । कठनु = कठिन ।

### मुक्तावस्था (७)

साधो राम सरनि बिसरामा ।
वेद पुरान पढे को इह गुन, सिमरे हरि को नामा ।।रहाउ।।
लोभ मोह माइआ ममता फुनि, अउ बिषअन की सेवा ।
हरष सोग परसै जिन नाहनि, सो मूरति है देवा ।।१।।
सुरग नरक अम्रित बिषु ए सभ, तिउ कचन अरु पैसा ।
उसतति निंदा ए सभ जाकै, लोभु मोहु फुनि तैसा ।।२।।
दुषु सुषु ए बाधे जिह नाहिन, तिह तुम जानहु गिआनी ।
नानक मुकति ताहि तुम मानहु, इह विधि को जो प्रानी ।।३।।

बिसरामा = शाति । इह गुन = यही प्रयोजन है । जिह = जिस व्यक्ति को । मुकति = मुक्त, जीवन्मुक्त ।

### ब्राह्मीभूत (८)

जो नर दुषमै दुषु नही मानै ।
सुषु सनेहु अरु भै नहि जाकै, कंचन माटी मानै ।।रहाउ।।
नह निंदिआ नह उसतति जाकै, लोभु मोहु अभिमाना ।
हरष सोगते रहै निआरउ, नाहि मान अपमाना ।।१।।
आसा मनसा सगल तिआगै, जगते रहै निरासा ।
कामु क्रोधु जिह परसै नाहनि, तिह घट ब्रह्म निवासा ।।२।।
गुर किरपा जिह नर कउ कीनी, तिह इह जुगति पछानी ।
नानक लीन भइउ गोबिंद सिउ, जिउ पानी सिउ पानी ।।३।।

रहे निआरउ = न्यारे, अर्थात् अलग वा निर्लिप्त रहता है। जुगति पछानी = रहस्य को समझा है।

चेतावनी (९)

काहे रे बन षोजन जाई।
सरब निवासी सदा अलेपा, तोही सांगे समाई ॥रहाउ॥
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है, मुकर माहि जैसे छाई।
तैसेही हरि बसै निरंतरि, घटही षोजहु भाई ॥१॥
बाहरि भीतरि एको जानहु, इहु गुर गिआनु बताई।
जन नानक बिनु आपा चीन्है, मिटै न भ्रम की काई ॥२॥

पुहप छाई = जिस प्रकार पुष्प मे सुगधि और दर्पण मे प्रतिबिम्ब वर्तमान है। बिनु चीन्है = बिना आत्म-ज्ञान प्राप्त किये। काई = दोष।

हरिनाम (१०)

हरिको नामु सदा सुपदाई।
जाकउ सिमरि अजामिलु उधरिउ, गनकाहू गति पाई ॥रहाउ॥
पचाली कउ राज सभा मै, राम नाम सुधि आई।
ताको दुषु हरिउ करुणामै, अपनी पैज बढाई ॥१॥
जिह नर जसु किरपा निधि गाइउ, ताकउ भइउ सहाई।
कहु नानक मै इही भरोसै, गही आन सरनाई ॥२॥

पंचाली = द्रौपदी। पैज बढाई = प्रतिज्ञा के महत्त्व को बढाया।

विनय (११)

हरिजू राषि लेहु पति मेरी।
जमको त्रास भइउ उर अतरि, सरन गही किरपानिधि तेरी ॥रहाउ॥
महा पतित मुगध लोभी फुनि, करत पाप अब हारा।
भै मरबे को बिसरत नाहिन, तिह चिंता तनु जारा ॥१॥
कीए उपाव मुकति के कारनि, दहदिसि कउ उठि धाइआ।
घटही भीतरि बसै निरजनु, ताको मरमु न पाइआ ॥२॥
नाहिन गुनु नाहिन कछु जपु तपु, कउनु करमु अब कीजै।
नानक हारि परिउ सरनागति, अभै दानु प्रभ दीजै ॥३॥

पति = लाज।

## सलोक (साखी)

गुन गोविंद गाइउ नही, जनमु अकारथ कीन।
कहु नानक हरि भजु मना, जिहि बिधि जलकौ मीन ॥१॥
सुषु दुषु जिहि परसै नही, लोभ मोह अभिमानु।
कहु नानक सुन रे मना, सो मूरत भगवान ॥२॥

भै काहू कउ देत नहि, नहि भै मानत आनि ।
कहु नानक सुन रे मना, गिआनी ताहि बखानि ॥३॥
जिहि माइआ ममता तजी, सभते भइउ उदास ।
कहु नानक सुन रे मना, तिह घटि ब्रह्म निवासु ॥४॥
जो प्रानी निसि दिन भजे, रूप राम तिह जानु ।
हरि जन हरि अतरु नही, नानक साची मानु ॥५॥
नर चाहत कछु अउर, अउरै की अउरै भई ।
चितवत रहिउ ठगउर, नानक फासी गलि परी ॥६॥
सुआमी को ग्रिह जिउ सदा, सुआन तजत नही नित ।
नानक इह विधि हरि भजउ, इक मन हुइ इकि चित ॥७॥
तरनापो इउही गइउ, लीउ जरा तनु जीति ।
कहु नानक भज हरि मना, अउध जातु है बीति ॥८॥
पतित उधारन भैहरन, हरि अनाथ के नाथ ।
कहु नानक तिह जानिअै, सदा बसतु तुम साथ ॥९॥
जिहि बिखिआ सगली तजी, लीउ भेष बैराग ।
कहु नानक सुन रे मना, तिह नर माथै भाग ॥१०॥
जो प्रानी ममता तजै, लोभ मोह अहकार ।
कहु नानक आपन तरै, अउरन लेत उधार ॥११॥
जतनु मै करि रहिउ, मिटिउ न मन को मानु ।
दुरमति सिउ नानक फधिउ, राखि लेहु भगवानि ॥१२॥
एक भगति भगवान, जिह प्रानी के नाहि मन ।
जैसे सूकर सुआन, नानक मानो ताहि तन ॥१३॥
तीरथ बरत अरु दान करि, मनमै धरै गुमानु ।
नानक निरफल जात तिह, जिउ कुंचर असनानु ॥१४॥
सिरु कपिउ पग डगमगे; नैन जोति ते हीन ।
कहु नानक इह विधि भई, तऊ न हरिरस लीन ॥१५॥
सग सखा सभ तजि गए, कोउ न निबहिउ साथ ।
कहु नानक इह बिपतमै, टेक एक रघुनाथ ॥१६॥

जिहि .मीन=जिस प्रकार मछली सदा जल मे रह कर ही जीती है, उसी प्रकार तुम भी उसमे लीन रहो। भै .आनि =जो न तो कभी किसी प्रकार के भय का अनुभव करता है, न किसी अन्य को ही किसी प्रकार का भय पहुँचाता है। ठगउर=ठगा हुआ, भौचक्का सा। इउही =योही। अउध=जीवन की अवधि। अउरन . उधार=दूसरो को भी जरा-मरण से मुक्त कर देता है। फधिउ=बधन मे पड़ गया हूँ। दुरमति सिउ=अपनी मूर्खता के कारण। कुचर असनानु=कुजर, अर्थात् हाथी जिस प्रकार पानी से नहा कर निकलने पर अपने शरीर पर धूल डाल कर ज्यो-का-त्यो बन जाता है, उसी प्रकार सब कुछ करते हुए भी केवल एक गर्व के कारण, अपनी भी दशा सुधर नही पाती। टेक=एकमात्र आश्रय वा सहारा।

## संत मलूकदास

सत मलूकदास का जन्म बैशाख बदि ५ स० १६३१ को इलाहाबाद जिले के कड़ा नामक गाँव मे हुआ था। इनके पूर्वज खत्री जाति के कक्कड़ थे और इनका प्यार का नाम 'मल्लू' था। मल्लू अपने बचपन से ही कोमल हृदय के व्यक्ति थे और खेलते समय मार्ग वा गली मे काँटा वा ककड़ पा लेने पर उसे दूसरो को कष्ट से बचाने के उद्देश्य से कही दूसरी ओर डाल दिया करते थे। साधु-सेवा की लगन इन्हे इतनी थी कि किसी ऐसे अतिथि के घर पर आ जाने पर उसके लिए सभी प्रकार से उद्यत हो जाते थे। इनके माता-पिता ने इन्हे कुछ बड़े होने पर कबल बेचने का काम सौपा और ये प्रत्येक आठवें दिन पेठ जाने लगे। एक दिन जब ये बचे हुए कबल वहाँ से वापस लाने लगे तो भारी होने के कारण अपना गट्ठर इन्होने किसी अपरिचित मजदूर को दे दिया। वह मजदूर, इनसे कुछ अधिक तेज चल कर इनके घर पहले ही पहुँच गया। किन्तु इनकी माता को उस पर सदेह जान पड़ा जिस कारण उसे उन्होने खिलाने के बहाने एक कमरे मे बद कर दिया। मल्लू के आने पर जब उन्होंने कबल सहेजने के लिए कमरा खोला तो मजदूर को उसमे नही पाया और आश्चर्य मे पड़ गईं। इधर मल्लू पर इस घटना का ऐसा प्रभाव पडा कि उसने उस मजदूर को स्वय भगवान समझ लिया तथा पड़ी हुई रोटी को भी उसका प्रसाद रूप मान कर उसे ग्रहण करता हुआ भगवद्दर्शनो की लालसा मे अपने को निरन्तर तीन दिनो बन्द रखा। तीसरे दिन वह मलूकदास होकर ही निकला।

मलूकदास ने फिर किसी मुरार स्वामी से दीक्षा ग्रहण की और चारो ओर देशाटन करते हुए सत्सग मे लगे रहे। ये अपने अन्त समय तक गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करते रहे और प्रसिद्धि के अनुसार, १०८ वर्ष की आयु पाकर इन्होने अपना चोला छोडा। इनकी शिक्षा के विषय मे कुछ भी पता नही, किन्तु इनकी रचनाओ की सख्या ६ बतलायी जाती है जो सभी प्रकाशित नही हैं। इनकी फुटकर बानियो का एक सग्रह 'मलूकदासजी की बानी' के नाम से 'बेलवेडियर प्रेस' द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इनकी रचनाओ मे इनके अटल विश्वास, प्रगाढ़ भक्ति एव विश्वप्रेम की झलक सर्वत्र लक्षित होती है। इनके प्रत्येक कथन के पीछे स्वानुभूति एव निर्द्वन्द्वता की शक्ति काम करती हुई जान पडती है। ये स्वभावत: निर्भीक तथा निश्चित समझ पडते है। इनकी भाषा मे क्लिष्ट शब्दो का अभाव-सा है और इनकी वर्णन-शैली मे ओज एव प्रसाद का अच्छा समावेश पाया जाता है।

### पद

अनुपम सतगुरु (१)

हमारा सतगुरु बिरले जाने।
सुई के नोके सुमेर चलावै, सो यह रूप बखानै ॥१॥
की तो जानै दास कबीरा, की हरिनाकस पूता।
की तो नामदेव औ नानक, की गोरख अवधूता ॥२॥
हमरे गुरु की अद्भुत लीला, ना कछ खाय न पीवै।
ना वह सोवै ना वह जागै, ना वह मरै न जीवै ॥३॥

बिन तरवर फलफूल लगावै, सोतो वाका चेला।
छिन मे रूप अनेक धरत है, छिन मे रहै अकेला ।।४।।
बिन दीपक उँजियारा देखैं, एडी समु द थहावै।
चीटी के पग कुजर बाधै, जाको गुरू लखावै ।।५।।
बिन पखन उड़ि जाय अकासे, बिन पखन उडि आवै।
सोई शिष्य गुरू का प्यारा, सूखे नाव चलावै ।।६।।
बिन पायन सब जग फिरि आवै, सो मेरा गुरुभाई।
कहै मलूक ताकी बलिहारी, जिन यह जुगति बताई ।।७।।

हरिनाकस पूता=प्रहलाद।

## आत्मानुभूति (२)

आपा खोजरे जिय जाई।
आपा खोजे त्रिभुवन सूझै, अधकार मिटि जाई ।।१।।
जोई मन सोई परमेसुर, कोइ बिरला अवधू जानै।
जौन जोगीसुर सब घट व्यापक, सो यह रूप बखानै ।।२।।
सब्द अनाहत होत जहाँ ते, तहाँ ब्रह्म कर वासा।
गगन मडल मे करत कलोलै, परम जोति परगासा ।।३।।
कहत मलूका निरगुन के गुन, कोई वडभागी गावै।
क्या गिरही औ क्या बैरागी, जेहि हरि देय सो पावै ।।४।।

## मस्त फकीर (३)

दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मनधीरा ।।१।।
प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते, ज्यो माता हाथी ।।२।।
उनकी नजर न आवत, कोइ राजा रका।
बधन तोडे मोह के, फिरते निहसका ।।३।।
साहब मिलि साहब भये, कछु रही न तमाई।
कहै मलूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई ।।४।।

अकीदा=यकीद, विश्वास, प्रतीति। साथी=सासारिक मनोविकार। तमाई =वासना, इच्छा।

## अपनी रहनी (४)

देव पितर मेरे हरिके दास। गाजत हौ तिनके बिस्वास ।।१।।
साधू जन पूजौ चित लाई। जिनके दरसन हिया जुडाई ।।२।।
चरन पखारत होइ अनदा। जन्म जन्म के काटे फदा ।।३।।
भाव भगति करते निष्काम। निसदिन सुमिरै केवल राम ।।४।।

घर वन का उनके भय नाही। ज्यों पुरइनि रहता जल माही ॥५॥
भूत परेतन देव वहाई। देवखर लीयै मोर वलाई ॥६॥
वस्तु अनूठी संतन लाऊँ। कहै मलूक सब मर्म मिटाऊँ ॥७॥

देवखर=देवस्थान।

### आत्मसंतोष (५)

अबकी लागी खेप हमारी।
लेखा दिया साह अपने को, सहजै चीठी फारी ॥१॥
सौदा करत बहुत जुग बीते, दिन दिन टूटी आई।
अबकी बार बेबाक भये हम, जमकी तलब छोड़ाई ॥२॥
चार पदारथ नफा भया मोहि, बनिजै कबहूँ न जैहौं।
अब डहकाय बलाय हमारी, घरही बैठे खइहौं ॥३॥
वस्तु अमोलक गुप्तै पाई, ताती वायु न लावौं।
हरि हीरा मेरा ज्ञान जौहरी, ताही सों परखावौं ॥४॥
देव पितर औ राजारानी, काहू से दीन न भाखौं।
कह मलूक मेरे रामै पूँजी, जीव बराबर राखौं ॥५॥

खेप=लदान, कर्मों के फलादि का अंत। टूटी=हानि। तलब=माँग। जीव बराबर राखौं=अपने प्राणों की भाँति सुरक्षित रखूँगा।

### निश्चिंत (६)

नैया मेरी नीके चलै लागी ॥टेक॥
आंधी मेंह तनिक नहिं डोलै, साहु चढ़े बड़भागी ॥१॥
रामराय डगमगी छुड़ाई, निर्भय कड़िया लैया।
गुन लहासि की हाजत नाही, आछा साज बनैया ॥२॥
अवसर पड़ै तो पर्वत बोझै, तहूं न होवै भारी।
धन सतगुरु यह जुगत बताई, तिनकी मैं बलिहारी ॥३॥
सूखे पड़ै तो कछु डर नाही, ना गहिरे का संसा।
उलटि जाय तो बार न बाकै, याका अजब तमासा ॥४॥
कहत मलूक जो बिन सर खेवै, सो यह रूप बखानै।
या नैया के अजब कथा, कोइ बिरला केवट जानै ॥५॥

कड़िया=करिया, पतवार। लहासि=लहासी, नाव बाँधने की मोटी रस्सी। गुन=गून, नाव खीचने की रस्सी। हाजत=आवश्यकता, जरूरत।

### सिद्धि (७)

अब मै अनुभव पदहिं समाना ॥टेक॥
सब देवन को भर्म भुलाना, अविगति हाथ बिकाना ॥१॥

पहिला पद है देवी देवा, दूजा नेम अचारा।
तीजे पद मे सब जग बंधा, चौथा अपरम्पारा ॥२॥
सुन्न महल मे महल हमारा, निरगुन सेज बिछाई।
चेला गुरु दोउ सैन करत हैं, बडी असाइस पाई ॥३॥
एक कहै चल तीरथ जइये, (एक) ठाकुरद्वार बतावै।
परम जोति के देखे सतो, अब कछु नजर न आवै ॥४॥
आवागमन का सशय छूटा, काटी जम की फाँसी।
कहै मलूक मैं यही जानिकै, मित्र कियो अबिनासी ॥५॥

अविगति = अविगत अज्ञात, परमात्मा। सैन = शयन। असाइस = आसाइश, चैन, आराम।

आत्मीयता (८)

सबहिन के हम सबै हमारे। जीव जतु मोहि लगै पियारे ॥१॥
तीनो लोक हमारी माया। अत कतहु से कोइ नहिं लाया ॥२॥
छत्तिस पवन हमारी जात। हमही दिन औ हमही रात ॥३॥
हमही तरवर कीट पतगा। हमही दुर्गा हमही गगा ॥४॥
हमही मुल्ला हमही काजी। तीरथ बरत हमारी बाजी ॥५॥
हमही पडित हमी बैरागी। हमही सूम हमी है त्यागी ॥६॥
हमही देव औ हमही दानौ। भावै जाको जैसा मानौ ॥७॥
हमही चोर हमही बटमार। हम ऊँचे चढि करै पुकार ॥८॥
हमही महावत हमही हाथी। हमही पाप पुण्य के साथी ॥९॥
हमही अस्व हमही असवार। हमहिं दास हमही सरदार ॥१०॥
हमही सूरज हमही चदा। हमही भये नद के नदा ॥११॥
हमही दसरथ हमही राम। हमरै क्रोध हमारे काम ॥१२॥
हमही रावन हमही कस। हमही मारा अपना बस ॥१३॥
हमही जियावै हमही मारै। हमही बोरै हमही तारै ॥१४॥
जहाँ तहाँ सब जोति हमारी। हमही पुरुष हमही है नारी ॥१५॥
ऐसी विधि कोई लव लावै। सो अविगत से टहल करावै ॥१६॥
सहै कुसब्द औ सुमिरै नाव। सब जग देखै एकै भाव ॥१७॥
या पद कोइ करै निवेरा। कहै मलूक मैं ताकर चेरा ॥१८॥

**कवित्त**

बीर रघुबीर पैगम्बर खुदा मेरे, कादिर करीम काजी माया मत खोई है।
राम मेरे प्रान रहमान मेरे दीन ईमान, भूल गयो भैया सब लोक लाज धोई है ॥
कहत मलूक मैं तो दुबिधा न जानौ दूजी, जोई मेरे मन मे नैनन मे सोई है।
हरि हजरत मोहि माधव मुकुद की सौं, छाड़ि केशवराम मेरो दूसरो न कोई है ॥१॥

सुपने के सुक्ख देखि मोहि रहे मूढ नर, जानत हमारे दिन ऐसही बिहायेंगे।
क्या करैंगे भोग अच्छी सुदरी रमैंगे नित्त, छाह को लैं चारि जून खूद खूद खावंगे ।।
सीकरा सो काल है कलसरी सो लपेट लैहैं, चगुल के तले दबे दबे चिचयायेंगे।
कहत मलूकदास लेखा देत होइहै दुक्ख, बडे दरबार जाय अत पछितायेंगे ।।२।।

सौ = शपथ, सौह । खूद-खूद = उछल-कूद कर । सीकरा = शिकरा बाज पक्षी । कलसरी = कलसिरी, एक चिड़िया जिसका सिर काला होता है । चिचियायेंगे = चिचियाने वा चीखने लगेंगे ।

## साखी

मलुका सोई पीर है, जो जानै पर पीर ।
जो पर पीर न जानही, सो फकीर बेपीर ।।१।।

बहुतक पीर कहावते, बहुत करत है भेस ।
यह मन कहर खोदायका, मारे सो दुरवेस ।।२।।

पीर पीर सब कोइ कहे, पीरे चीन्हत नाहि ।
जिंद पीर को मारिके, मुरदहि ढूंढन जाहि ।।३।।

जहा जहा बच्छा फिरै, तहा तहा फिरै गाय ।
कहै मलूक जह सत जन, तहाँ रमैया जाय ।।४।।

भेष फकीरी जे करै, मन नहि आवै हाथ ।
दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिनके साथ ।।५।।

जीवहुं ते प्यारे अधिक, लागै मोही राम ।
बिन हरि नाम नही मुझे, और किसी से काम ।।६।।

कह मलूक हम जबहि ते, लीन्ही हरि की ओट ।
सोवत है सुख नीद भरि, डारि भरम की पोट ।।७।।

रहू भरोसे राम के, बनिजे कवहु न जाउ ।
दास मलूका यो कहै, हरि बिड़वै मैं खाउं ।।८।।

औरहि चिता करन दे, तू मत मारे आह ।
जाके मोदी राम से, ताहि कहा परवाह ।।९।।

राम राम असरन सरन, मोहि आपन करि लेहु ।
सतन संग सेवा करौ भक्ति मजूरी देहु ।।१०।।

कठिन पियाला प्रेम का, पियै जो हरिके हाथ ।
चारो जुग माता रहै, उतरै जियके साथ ।।११।।

सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार ।
मदिर ढूंढत को फिरै, मिल्यौ बजावन हार ।।१२।।

करै पखावज प्रेमका, हृदय बजावै तार ।
मनै नचावै मगन होय, तिनका मता अपार ।।१३।।

जब लग थो अधियार घर, मूस थके सब चोर ।
जब मंदिर दीपक बरचो, वही चोर धन मोर ।।१४।।

मन मिरगा बिन मूडका, चहुं दिस चरने जाय।
हाक ले आया ज्ञान तब, बाधा तात बिकाय ॥१५॥
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि समुझाव।
अतरजामी जानिहै, अंतरगत का भाव ॥१६॥
सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लखै न कोय।
ओठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय ॥१७॥
माला जपो न कर जपो, जिभ्या कहो न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम ॥१८॥
जे दुखिया ससार मे, खोवो तिनका दुक्ख।
दलिद्दर सौप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख ॥१९॥
पीर सभन की एकसी, मूरख जानत नाहिं।
काँटा चूभै पीर होय, गला काट कोउ खाहिं ॥२०॥
सब कोउ साहब बदते, हिन्दू मूसलमान।
साहेब तिसको बंदता, जिसका ठौर इमान ॥२१॥
दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥२२॥
कोई जीति सकै नही, यह मन जैसे देव।
याके जीते जीत है, अब मैं पायो भेव ॥२३॥
जेते सुख ससार के, इकठे किये बटोर।
कन थोरे काकर घने, देखा फटक पछोर ॥२४॥
काम मिलावै राम को, जो राखै यह जीति।
दास मलूका यो कहै, जो मन आवै परतीति ॥२५॥
प्रभुता ही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, प्रभुता दासी होय ॥२६॥

कहर खोदायका = दैवी सकट का प्रतीक है। ओट = आश्रय। पोट = पोटली, बोझ। बिडवै = बिढते वा कमाते हैं। मजूरी = मजदूरी। थो = था, रहा। मूस थके = भरपेट चुराते रहे। ठौर = दुरुस्त, ठीक। कन = अन्नवत् असली। काकर = ककड़ के समान, निकृष्ट श्रेणी का।

# ३. मध्य युग (उत्तरार्द्ध)

(सं० १५५०--सं० १७००)

## सामान्य परिचय

संत-साहित्य के इतिहास के मध्य युग का उत्तरार्द्ध काल कई दृष्टियों से महत्त्व-पूर्ण है। संतमत का प्रचार इस काल में पहले की अपेक्षा बहुत अधिक हुआ और उसी प्रकार अनेक रचनाओं की भी सृष्टि हुई। इस समय के संतो ने बहुत-से पंथो तथा संप्रदायों का सगठन किया और प्रत्येक का दूसरे के साथ कुछ-न-कुछ अन्तर भी स्पष्ट लक्षित होने लगा। सभी वर्गों ने अपने-अपने लिए नियमावली बनायी, धर्मग्रन्थ निश्चित किये तथा अपने-अपने मतों के अनुसार पूजन-पद्धति स्वीकार कर ली। इस काल के कुछ संतो ने प्राचीन महापुरुषों को अपना सद्गुरु कहा तथा कभी-कभी अपने को उनका अवतार मानना तक आरम्भ किया और एकाध ने अपने को भविष्य का उद्धारक अथवा मसीहा तक घोषित कर दिया। उदाहरण के लिए, गरीबदास ने अपने को कबीर साहब का गुरुमुख शिष्य बतलाया और उसी भाँति चरणदास ने भी शुकदेव मुनि को अपना सद्गुरु स्वीकार किया। दरियासाहब (मारवाडी) इसी प्रकार दादू साहब के अवतार माने गए और दरियादास (बिहारी) दूसरे कबीर साहब कहे जाने लगे। प्राणनाथ ने अपने को कल्कि अवतार, अथवा ससार को सुधार कर एक सूत्र में बाँधने वाला मसीहा बतलाया तथा इसके लिए पुराने धर्मग्रन्थों के प्रमाण तक उद्धृत किये।

फिर भी इस काल की एक विशेषता तत्कालीन संतों के हृदयों मे धर्म-समन्वय का भाव जागृत होने मे भी लक्षित होती है। संत बाबालाल ने इसी काल मे वेदात एवं सूफीमतो मे सामंजस्य प्रदर्शित किया। सुदरदास एवं भीखा साहब ने वेदात को तथा यारी साहब एवं बुल्लेशाह ने सूफीमत को संतमत से अभिन्न सिद्ध किया। धरनीदास एवं चरणदास तथा दूलनदास ने वैष्णव संप्रदाय की विचारधारा को अनेक अंशों मे अपनाया, रामचरण ने जैनधर्म के सदाचार-सम्बन्धी कई नियमो का अनुसरण किया और प्राणनाथ ने हिंदू, इस्लाम एवं ईसाई धर्मो को मूलतः एक ठहराया। इस प्रकार एक ओर जहाँ इन सतो के विभिन्न वर्गों पर साम्प्रदायिकता का रंग चढ़ता गया, वहाँ दूसरी ओर ये लोग इस बात के भी इच्छुक दीख पड़े कि हमारा मत अन्य सभी धर्मों का भी प्रतिनिधित्व करता है और यह वस्तुतः सबसे अधिक उच्च और उदार है। मध्ययुग के पूर्वार्द्धकालीन सन्तो ने पंथो वा संप्रदायो का निर्माण करते समय भी संतमत के मौलिक उद्देश्यो को सदा अपने ध्यान मे रखने का प्रयत्न किया था। उन्होने अपने उस नवीन कार्यक्रम का उपयोग केवल उन्ही की सिद्धि के लिए किया था। परन्तु इन पिछले संतों ने अपनी-अपनी संस्थाओ के अन्तर्गत गौण

बातों को भी समाविष्ट कर उन्हे ठेठ सांप्रदायिक रूप देना आरम्भ कर दिया। इस कारण, पहले से अधिक सक्रिय होते हुए भी वे उसके पूर्वरूप को कायम न रख सके।

इन संतो की सक्रियता का एक स्पष्ट परिणाम इस काल की रचनाओ की अधिकता और विविधता मे लक्षित होता है। इस समय के सत कवि, पदो एवं साखियों की रचना-शैली को न्यूनाधिक अपनाते हुए भी अन्य प्रणालियो को भी प्रश्रय देना आरम्भ कर देते है। ये संतमत के मूल आदर्शो से क्रमश दूर होते जाने के कारण, उनके विषयो मे भी कुछ-न-कुछ विस्तार एवं परिवर्तन ला देते है। इस काल के अधिक प्रचलित कहे जाने वाले छंदो मे से सवैये, कवित्त और अरिल्ल आदि का प्रयोग कुछ पहले से अधिक दीख पडने लगा था। हरिदास निरजनी एवं मलूकदास जैसे कतिपय संतो ने इन्हे पूर्वार्द्ध काल मे ही अपना लिया था। इस काल के रज्जबजी, सुदरदास, गुरु गोविंद सिंह, चरणदास आदि ने उनका और भी अधिक प्रयोग किया और उनके साहित्यिक रूप की ओर भी ध्यान दिया। इस काल के कुछ संत कवियो मे भाव के ही समान भाषा एवं वर्णन-शैली को भी महत्त्व प्रदान करने की प्रवृत्ति स्पष्ट दीख पडती है। गुरु गोविंद सिंह के लिए यह भी प्रसिद्ध है कि हिन्दी के कुशल कवियो को वे अन्य राजाओ-महाराजाओं से कम सम्मानित नही किया करते थे। अपनी निजी रचनाओ तथा उन कवियो की स्वतंत्र एवं अनुवादित कृतियो का उन्होने एक बृहत्संग्रह भी प्रस्तुत करा लिया था जो तौल मे ३ मन १५ सेर तक भारी था। इसका नाम उन्होने 'विद्याधर' रखा था। यह ग्रन्थ आनन्दपुर की लडाई के अनन्तर उनके दक्षिण की ओर जाते समय मार्ग की किसी नदी मे प्रवाहित हो गया जिसके कारण उन्हे मार्मिक कष्ट पहुँचा।

इस काल के दो संतों अर्थात् दुखहरण एवं धरनीदास द्वारा प्रेम-कहानियो का भी लिखा जाना बतलाया जाता है। बाबा धरनीदास का 'प्रेम प्रगास' ग्रन्थ तथा सत दुखहरण की 'पुहपावती' अभी तक प्रकाशित नही है, किन्तु दोनो ही उपलब्ध हैं। इनकी रचना-शैली सूफी प्रेम-गाथाओ का बहुत कुछ अनुसरण करती हुई भी उनसे कई बातो मे भिन्न जान पडती है। इन प्रबन्ध रचनाओ के अतिरिक्त फुटकर विषयो को लेकर भी कुछ पुस्तकें लिखी गई है। उनके उदाहरण मे हम स्वरोदय-विज्ञान-सम्बन्धी चरणदास एवं दरियादास की दो रचनाओ का उल्लेख कर सकते हैं। मध्ययुग के पूर्वार्द्ध काल वाले बहुप्रसिद्ध लेखको मे हम जहाँ केवल अर्जुनदेव, नानकदेव तथा मलूकदास के ही नाम ले सकते है, वहाँ उत्तरार्द्ध काल वालो मे रज्जबजी, सुदरदास, तुलसीदास, गुरु गोविंद सिंह, गरीबदास, चरणदास, दरियादास एवं रामचरण को गिना सकते है। काव्य-कला मे निपुण होने की दृष्टि से भी इस काल के कवियो की संख्या उस काल वालों से अधिक है। यह काल सन्तो मे समन्वय की प्रवृत्ति, सांप्रदायिकता की भावना तथा साहित्यिक अभिरुचि की वृद्धि आ जाने के कारण उनके विविध साहित्य-निर्माण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया। यह सत-साहित्य का स्वर्ण युग कहलाने योग्य है। हाँ, यदि संतो की ऊँची पहुँच, उनके हृदय की सरलता एवं भाव-गाभीर्य के ही विचार से देखा जाय तो यह उत्तरार्द्ध काल पूर्वार्द्ध काल से बढ़ कर कदापि नही कहा जा सकेगा।

## संत बाबालाल

'बाबालाल' नाम के चार महात्माओं का केवल पंजाब प्रान्त में ही होना प्रसिद्ध है। इस कारण सत बाबालाल का निश्चित परिचय देना कठिन हो जाता है और इनके सम्बन्ध की बहुत-सी बातें संदिग्ध रह जाती है। जिस सत बाब लाल की भेंट शाहजादा दाराशिकोह के साथ हुई और जिनकी सवाद-वार्ता प्रकाशित हो चुकी है, उनके जन्म-स्थान का मालवा मे होना बतलाया जाता है। कहा जाता है कि ये अपने गुरु के आदेशानुसार सरहिंद के निकट ध्यानपुर मे रहा करते थे। इनका जन्म किसी समय सम्राट् जहाँगीर के शासन-काल (स० १६६२-१६८४) मे हुआ था। ये जाति के क्षत्रिय थे। इनके गुरु चेतन स्वामी थे जिन्होंने इनकी कडी परीक्षा ली थी और इन दोनों के सम्बन्ध मे अनेक चमत्कारपूर्ण बातें कही जाती है। दाराशिकोह कधार के अवरोध मे असफल होकर जब लौटा, ये लाहौर के उपनगर कोटल मेहरा मे निवास करते थे। उसके वहाँ तीन सप्ताह तक ठहरने की अवधि मे, दिसम्बर सन् १६५३ (स० १७१०) के मध्य तक, उसकी इनके साथ भेंट हुई और किसी चद्रभान ब्राह्मण के घर पर, लाहौर के नियुला नामक भाग मे दोनो के बीच एक अत्यत रोचक धार्मिक सवाद भी हुआ जिसका पूरा विवरण उपलब्ध है। वार्तालाप वस्तुतः उर्दू मे हुआ और उसे किसी राय जाधवदास ने लिपिबद्ध किया। उसी का अनुवाद फारसी मे राय चद्रभान द्वारा 'नादिरुलनुकात' के रूप मे होकर प्रकाशित हुआ। सत बाबालाल योग-साधना मे निपुण थे और ये वेदान्त एव सूफीमतों द्वारा पूर्णरूप से प्रभावित थे।

'नादिरुलनुकात' मे पाये जाने वाले इनके वक्तव्यो के अतिरिक्त इनके नाम से कतिपय दोहे आदि भी प्रचलित है जिनकी संख्या बडी नही है। ये विशुद्ध एकेश्वर-वादी हैं और परमात्मा को 'राम' वा 'हरि' कहा करते है। इनके अनुसार, परमात्मा आनन्द का सागर है और उससे हमारे वियोग का कारण अपनी 'अहंता' है जिसे चित्तशुद्धि एवं सहज भाव द्वारा दूर किया जा सकता है। विश्व-प्रेम से जीवन को ओतप्रोत करना इनका लक्ष्य है।

### चौपाई

जाके अंतर ब्रह्म प्रतीत। धरे मौन, भावे गावे गीत ॥
निसदिन उन्मन रहित खुमार। शब्द सुरत जुड एको तार ॥
ना गृह गहे ना बनको जाय। लाल दयालु सुख आतम पाय ॥

उन्मन = ईश्वरोन्मुख। शब्द···तार = शब्द एवं सुरत को संयुक्त कर देता है।

### साखी

आशा विषय विकार की, बाध्या जग संसार।
लख चौरासी फेर मे, भरमत बारंबार ॥१॥
जिह की आशा कछु नही, आतम राखै शून्य।
तिहकी नहि कुछ भमंणा, लागै पाप न पुण्य ॥२॥

देहा भीतर श्वास है, श्वासा भीतर जीव।
जीवे भीतर बासना, किस विध पाइये पीव ॥३॥
जाके अंतर बासना, बाहर धारे ध्यान।
तिह को गोबिंद ना मिलै, अंत होत है हान ॥४॥

आशा...की=वासना। भर्मणा=भ्रांति वा आवागमन। बासना=किसी पूर्व स्थिति के जमे प्रभाव द्वारा उत्पन्न मनोदशा, संस्कारजन्य कामना।

## संत तुरसीदास निरंजनी

संत तुरसीदास निरंजनी सप्रदाय के महात्मा और उच्चकोटि के विद्वान् एवं कवि भी थे। इनकी रचनाओ के एक सग्रह का प्रतिलिपि-काल सं० १७४५ दिया हुआ मिलता है जिसके आधार पर इन्हे सं० १७०० मे वर्तमान रहने वाला कहा जाता है। संतो की प्रसिद्ध 'भक्तमाल' के प्रणेता राघोदास ने इन्हे सेरपुर का निवासी बतलाया है, किंतु उस सेरपुर का कुछ परिचय नही दिया है। इनकी ४२०२ साखियों, ४६१ पदो तथा ४ छोटी-छोटी रचनाओं का एक संग्रह डॉ० बडथ्वाल के पास था। उसमे इनके कुछ श्लोक एव शब्द भी सम्मिलित थे और उनके आधार पर उन्होने इन्हे एक बहुत बडा विद्वान् ठहराया था। परंतु कदाचित् उन्हे भी इनके व्यक्तिगत जीवन अथवा आविर्भाव-काल का ठीक-ठीक पता नही चल पाया था। उन्होने इनकी रचनाओ मे निरंजनी संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धातों का सुन्दर प्रतिपादन देखा है और आध्यात्मिक जिज्ञासा तथा रहस्यवादी उपासना की भी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उक्त भक्तमालकार राघोदास ने भी कहा है कि तुरसीदास को सत्य-ज्ञान की उपलब्धि हो गई थी। इनका मन सभी प्रपचो से हट चुका था और इनके अखाड़े मे सर्वत्र करणी की ही शोभा दीख पडती थी जिससे ये एक साधुशील महा-पुरुष जान पडते है।

सत तुरसीदास की उपलब्ध रचनाओ मे शब्द-माधुर्य का अभाव है और इनकी शैली भी वैसी आकर्षक नही जान पडती। कम-से-कम इनकी प्राप्त साखियो मे सिद्धातों का निरूपण सीधो-सादी भाषा मे किया गया मिलता है। इनमे कतिपय भावनाओ का स्पष्टीकरण है, स्थितियों का वर्णन है और अपने मत का प्रतिपादन है। ये अपने विषय का परिचय साधारण ढग से दे देना ही पर्याप्त समझते है और इनकी अधिकाश बाते उपादेशात्मक-सी लगती है। इनकी भाषा मे भी राजस्थानी शब्दों की कमी नही, किन्तु ये अधिकतर सरल एव बोधगम्य है।

सत तुरसीदास ने सगुणोपासकों द्वारा बतलायी जाने वाली नवधा भक्ति का वर्णन अपने मतानुसार किया है। इन्होने नवधा भक्ति के इस वृक्ष को सींचकर प्रेमा-भक्ति का फल प्राप्त करने की ओर निम्नलिखित ९ साखियों द्वारा सकेत किया है।

### साखी

सार सार मत स्रवण सुनि, सुनि राखै रिद माहि।
ताहीको सुनिबौ सुफल, तुरसी तपति सिराहि ॥१॥
तुरसी ब्रह्म भावना यहै, नाव कहावै सोय।
यह सुमिरन सतन कह्या, सारभूत सजोय ॥२॥
तुरसी तेज पुज के चरन वे, हाड चाम के नाहि।
वेद पुराननि बरनिए, रिद कवल के माहि ॥३॥
तुरसिदास तिहूं लोक मैं, प्रित्मा (प्रतिमा) ऊंकार।
वाचक निर्गुन ब्रह्मको, वेदनि वरन्यो सार ॥४॥

गुरु गोविंद संतनि विषै, अभिन भाव उपजाय।
मगल सू बंदन करै, तौ पायन रहई काय ॥५॥
तुरसी बनै न दास कू, आलस एक लगार।
हरिगुरु साधू सेवा मैं, लगा रहै यकतार ॥६॥
बराबरी की भाव न जानै, गुन औगुन ताको कछू न आनै।
अपनो मित जानिबो राम, ताहि समरपै अपना धाम ॥७॥
तुरसी तन मन आतमा, करहु समरपन राम।
जाकि ताहि दे उरन होहु, छाडिहु सकल सकाम ॥८॥
तुरसी यह साधन भगति, तरलौ सीची सोय।
तिन प्रेमा फल पाइआ, प्रेम मुक्ति फल जोय ॥९॥
बहरा गुझि बानी सुनै, सुरता सुनै न कोय।
तुरसी सो बानी अघट, मुख बिन उपजै सोय ॥१०॥
बिन पग उठि तरवर चढ़ै, सपगे चढ्या न जाय।
तुरसी जोती जगमगै, अधेकू दरसाय ॥११॥
मूरति मे अमूरति बसै, अमल आतमा राम।
तुरसी भ्रम बिसरायकै, ताही कौ लै नाम ॥१२॥
जनम नीच कहिये नहीं, जौ करनी उत्तम होय।
तुरसी नीच करम करै, नीच कहावै सोय ॥१३॥
तुरसी त्रिभुवन नाथ को, सुहृत सुभाव जु एह।
जेनि केनि ज्यू भज्यौ जिनि, तैसेहि उधरे तेह ॥१४॥

रिद = हृदय। तपति = त्रिविध ताप। सिराहिं = शात होते है। सजोय = एकत्र कर के। प्रित्मा = प्रतिमा, प्रतीक। अभिन = अभिन्न, भेदरहित। लगार = भेदिया। उरन = उऋण। तरलौ तरु, अर्थात् पेड की भाँति। गुझि = गुह्य, अस्पष्ट, गुप्त। सुरता = श्रोता, कानवाला। सपगे = पैर वाले से। सुहत = सोहाता है, अच्छा लगता है। जेनि...तेह = जिस किसी भी प्रकार से कोई भजन करे, उसका उद्धार उसके अनुसार हो जाता है। तेह = वह, वे।

## संत रज्जबजी

रज्जबजी सत दादू दयाल के कदाचित् सर्वप्रधान शिष्य थे और उन्ही के साथ बराबर रहा भी करते थे। इनका जन्म संवत् १६२४ के लगभग सागानेर के पठान-कुल मे हुआ था और २० वर्ष की अवस्था मे इन्होने दादूजी से दीक्षा ग्रहण की थी। कहा जाता है कि स० १६४४ मे जब ये अपना विवाह करने के लिए, दूल्हे के वेश मे, सागानेर से जा रहे थे तो आमेर मे इन्हे दादूजी मिल गए। युवक रज्जब अली महात्मा दादू के दर्शन कर उनसे अत्यन्त प्रभावित हो गया और अपनी विवाह-यात्रा भंग कर वहीं रम गया। उसने अपने को दादूजी के चरणो मे समर्पित कर दिया और उनसे दीक्षित होकर 'रज्जबजी' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। रज्जबजी की गुरु-भक्ति ईश्वर-भक्ति से किंचित्मात्र भी कम न थी और ये उनके क्षणिक वियोग को भी असह्य मानते रहे। दादूजी की मृत्यु हो जाने पर ये सागानेर मे रहते थे और वहीं पर अपने कई गुरुभाइयो तथा शिष्यो के साथ सत्सग किया करते थे। ऐसे सभी व्यक्तियो

के प्रति ये पारिवारिक स्नेह प्रदर्शित करते थे और सुन्दरदास जी (छोटे) इनके लिए परम प्रिय अनुज के रूप मे थे। रज्जबजी का अनुभव बहुत व्यापक था और इनकी भक्ति मे सूफी लोगो की मस्ती भी दीख पडती थी। कहते हैं कि अपने गुरु दादूजी का देहावसान हो जाने के अनन्तर इन्होने अपनी आँखे बहुत कम खोली थी। जनश्रुति के अनुसार, इनका सवत् १७४६ मे देहान्त हुआ।

रज्जबजी उच्चकोटि के सत होने के अतिरिक्त अच्छे कवि भी थे। इनकी वाणियो का सग्रह प्रकाशित हो चुका है, किन्तु उसका सम्पादन अच्छे ढग से नही हुआ है। इनकी अनेक रचनाएँ बहुत कुछ विकृत रूप मे दिखलाई पडती हैं। बम्बई से प्रकाशित हुए उसके, संवत् १६७५ वाले उपलब्ध, संस्करण मे इनकी साखियो की संख्या ५४२८ जान पडती है। ये १६४ अंगो मे विभाजित होकर संगृहीत हुई है। इन साखियो के अतिरिक्त, उक्त संग्रह मे इनके २१८ पद, ११६ सवैये, ८३ अरिल्ल, ८६ छप्पय तथा कुछ त्रिभगी छन्द की भी फुटकर कविताएँ प्रकाशित है। छोटी-छोटी बावनी, अविगतिलीला-जैसी १३ अन्य रचनाएँ भी आ गई है। रज्जबजी ने अपने गुरु दादूजी की रचनाओ को क्रम देकर उन्हे भी 'अंगबंधू' के नाम से संगृहीत किया था। इन्होने बहुत-से अन्य सन्तो तथा महात्माओ की वाणियो को भी विषयानुसार एकत्र कर उन्हे अपने 'सर्वंगी' नामक बृहत् ग्रन्थ मे संगृहीत किया था। 'सवगी' मे रज्जबजी के न केवल अथक् परिश्रम एवं मनोयोग का परिचय मिलता है, बल्कि इनके गहरे ज्ञान, प्रेम तथा पाण्डित्य का भी पता चलता है। रज्जबजी की रचना की एक बहुत बडी विशेषता इनके दृष्टान्तो के प्रयोग मे पायी जाती है जो इनके विस्तृत अनुभव एव गम्भीर चिन्तन को प्रकट करती है।

## पद

**परमात्मा** (१)

औधू अकल अनूप अकेला।
महापुरुष माहै अरु बाहर, माया मधि न मेला ॥टेक॥
सब गुन रहित रमे घट भीतरि, नार्दविद मे न्यारा।
परम पवित्र परमगति खेलै, पूरण ब्रह्म पियारा ॥१॥
अंजन माहिं निरंजन निर्मल, गुण अतीत गुण माही।
सदा समीप सकल विधि समरथ, मिले सुमिलि नहिं जाही ॥२॥
सरबंगी समसरि सब ठाहर, काहू लिपित न होई।
जन रज्जब जगपति की लीला, बूझै बिरला कोई ॥३॥

अकल = अवयव रहित, सर्वाङ्गपूर्ण। समसरि = एकसमान, समरस।

**सच्चे शिष्य-गुरु** (२)

सतगुरु सो जो चाहि विन, चेला बिन कीया।
यू परि दोष न दीजिये, मिलि अमृतरस पीया ॥टेक॥
ज्यू ससिकै सरधा नही, कोई कमल बिगासै।
मुदित कुमोदिनि आपसो, बाधी उस पासै ॥१॥

ज्यूं दीपक कै दिल नही, को पडै पतंगा।
तनमन होमै आपसो-मोड़ै नहिं अंगा ॥२॥
कमल कोष आपै खुलै, मन मधुकर नाही।
भंवर भुलाना आपसो, बीधा यूं माही ॥३॥
ज्यूं दन चचाहै नही, कोइ विषधर आवै।
जन रज्जब अहि आवसो, सो सोधिर पावै ॥४॥

चाहि बिन=बिन इच्छा के, अपने आप। बिन कीया=बिन प्रयत्न, अपने आप। सोधिर=सोधि। अरु=ढूंढ लेता है, और।

मन का स्वभाव ( ३ )

मन की प्यास प्रचंड न जाई।
माया बहुत बहुत बिधि बिलसै, तृप्ति नही निरताई ॥टेक॥
ज्यूं जलधार असख्य अवनि थल, परत न सो ठहराई।
तैसे यहु मन भर्या भूख सो, देखि परखि सुधि पाई ॥१॥
असन वसन बहु होमि अगनि मुख, नहिं सतोष मिलाई।
ऐसी विधि या मन की क्षुधा है, बुझती नाहिं बुझाई ॥२॥
भूख पियास सगले सूता, सो सपने न अघाई।
इहै सुभाव रहै मन माहै, तृष्णा तरुन बधाई ॥३॥
मन मायासो कदे न धापै, सतगुरु साखि बताई।
जन रज्जब याकी यहु औषधि, राम भजन करि भाई ॥४॥

निरताई = पूरी होती। बधाई=बढ़ाया। धापै=संतुष्ट होता, तृप्त होता। साखि बताई=प्रमाणित किया है, सिद्ध कर दिखाया है।

( ४ )

सतो मगन भया मन मेरा।
अहनिशि सदा एकरस लागा, दिया दरीबै डेरा ॥टेक॥
कुल मर्याद मेड सब भागी, बैठा भाठी नेरा।
जाति पाति कुछ समझौ नाही, किसकूं करै परेरा ॥१॥
रसकी प्यास आस नहिं औरा, इहि मन किया बसेरा।
ल्याव ल्याव याही लय लागी, पीवैं फूल घनेरा ॥२॥
सो रस माग्या मिलै न काहू, सिरसाटै बहुतेरा।
जन रज्जब तन मन दै लीया, होय घणी का चेरा ॥३॥

दरीबै = चौराहे पर। सिरसाटै=शिर देकर।

संसार गुरु ( ५ )

ऐसो गुरु संसार यह, सुणि समझि बिचारा।
जे चाहे उपदेश को, तो पूछ पसारा ॥टेक॥
चौरासी लख जीव का, लछिन लै माही।
माजा मिली मरदि गये, पर मेले नाही ॥१॥
अबल मता उर लीजिये, गिरि तरवर ताकी।
जहं रोपे तह रहि गये, सुन सतगुर साखी ॥२॥

चन्द सूर पाणी पवन, धरणी आकासा।
रज्जब समिता पूछले, षट् दर्शन पासा ॥३॥

मरदि गये = गूँधे गये।

सतगुरु

## साखी

जन रज्जब गुरु की दया, दृष्टि परापति होय।
परगट गुपत पिछानिये, जिसहि न दीखै कोय ॥१॥
माया पानी दूध मन, मिलै सु मुहकम बंधि।
जन रज्जब बलि हंस गुरु, सोधि लही सो संधि ॥२॥

घटा गुरु आशोज की, स्वाति बूँद सत बेन।
सीप सुरति सरधा सहित, तह मुकता मन ऐन ॥३॥
जन रज्जब गुरु ज्ञान जल, सीचे सिख बनराय।
लघु दीरघ अरु स्वादविध, ह्वै अंकुर स्वभाव ॥४॥

सेवक कुंभ कुभार गुरु, घडि घडि काढै खोट।
रज्जब माहि सहाय करि, तब बाहिर दे चोट ॥५॥
चंद सूर पाणी पवन, धरती अरु आकास।
ये साईं के कहे मे, त्यूं रज्जब गुरुदास ॥६॥

(२) मुहकम = भले प्रकार से। संधि = पार्थक्य का आधार। (३) आशोज = आश्विन मास। ऐन - ठीक, उपयुक्त। (५) खोट = दबा हुआ, बुरा।

विरह

तनमन ओले ज्यूं गलहि, बिरह सूर की ताप।
रज्जब निपजै देखतूं, यो आपा गलि आप ॥७॥
घट दीपक बाती पवन, ज्ञान जोति सु उजास।
रज्जब सीचे तेल लै, प्रभुता पुष्टि प्रकास ॥८॥

साधु

दरपन मे सब देखिये, गहिबेकूं कछु नाहिं।
त्यूं रज्जब साधू जुदे, माया काया माहि ॥९॥
साधू सदनि पधारतै, सकल होहिं कल्यान।
रज्जब अघ उडुगन दुरहि, पुनि प्रगटैं ज्यो भान ॥१०॥
सृष्टि सहित साईं लिया, साधू ने उर माहिं।
उभै समाने दास दिलि, तौ सेवक सम कोउ नाहिं ॥११॥

नम्रता

नान्हौ सौ नन्हे हुए, बारिकहूं बारीक।
सो रज्जब रामहि मिले, जो चाले लघु लीक ॥१२॥

अंत शुद्धि

रज्जब अज्जब राम है, कहे सुने मे नाहिं।
यहु अशुद्ध अंतःकरण, वह देखै दिल माहि ॥१३॥

(८) पुष्टि = कृपा। (१०) दुरहिं = लुप्त हो जाते है। (१२) लघु लीक = लघुताई वा नम्रता के मार्ग पर।

## व्यापक ब्रह्म

अमिल मिल्या सब ठौर है, अकल सकल सब माहि।
रज्जब अज्जब अगह गति, काहू न्यारा नाहि ॥१४॥
प्यड प्राण दोन्यू तपहि, जथा कडाही तेल।
रज्जब हरि शशि ज्यू रहै, अगनि मध्य नहि गेल ॥१५॥
सब घट घटा समानि है ब्रह्म बिज्जुली माहि।
रज्जब चिमकै कौन मे, सो समझै कोइ नाहि ॥१६॥

## अंतर्मुख

अतरि लाघै लोक सब, अतरि औघट घाट।
अतरजामी को मिलै, जन रज्जब उर बाट ॥१७॥
रज्जब बूद समद की, कित सरकै कहू जाय।
साझा सकल समद सो, त्यू आतम राम समाय ॥१८॥

## ज्ञान

जब लग जीव जाण्या कहै, तब लग कछु न जाण।
जब रज्जब जाण्या तबै, जाणि भये अजाण ॥१९॥
आतम जे कछु उच्चरै, सब अपणा उनमान।
रज्जब अज्जब अकल गति, सो किन्हू नहि जान ॥२०॥
माया माहै ब्रह्म पाइए, ब्रह्म मध्यतै माया।
फलै सु मनकी कामना, रज्जब भेद सु पाया ॥२१॥

## शब्द

एक शब्द मायामई, एक ब्रह्म उनहार।
रज्जब उभै पिछाणि उर, करहु बैन ब्यौहार ॥२२॥
मुख फानूस रसन है बाती, वह्नी बैन जोति तहं राती।
काजर कपट उजास बिचार, चतुर भाति दीपक ब्यौहार ॥ २३॥
साच माहि सतयुग बसै, कलियुग कपट मंझार।
मनसा बाचा कर्मना, रज्जब कही बिचार ॥२४॥

(२२) उनहार = सदृश, समान। (२३ फानूस = शीशे का गिलास।

## मानव जन्म

मिनखा देही दिन उदै, जन रज्जब भजि तात।
चौरासी लखि जीवकी देही दीरघ रात। २५॥
जैसे मन माया मिलै, जीव ब्रह्म यू मेलि।
रज्जब बहुरि न पाइये, यहु औसर यू खेलि ॥२६॥
दशो दिशा मन फेरि करि, जहा उठै तहा राखि।
जन रज्जब जगपति मिलै, सतगुरु साधू साखि ॥२७॥

जैसे छाया कूपकी, फिरि घिरि निकसै नाहिं।
जन रज्जब यूं राखिये, मन मनसा हरि माहिं ॥२८॥

साध सबूरी स्वान की, लीजै करि सुबिबेक।
वे घर बैठा एक कै, तू घर घर फिरहि अनेक ॥२९॥
साबुण सुमिरण जल सतसग, सुकल कृत करि निर्मल अग।
रज्जब रज उतरै इहि रूप, आतम अबर होइ अनूप ॥३०॥

लय

शून्य सजीवनि उरि अमर, रसना रहते माहिं।
जन रज्जब आव्यू अखिल, प्राणी मरैसु नाहिं ॥३१॥
अडग सुरति आठो पहर, अस्थिर सगि अडोल।
सो रज्जब रहसो सदा, साखी साधू बोल ॥३२॥

नर निर्भय हरि नाम मे, यहु गढ अगम अगाध।
रज्जब रिपु लागै नही, सदा सुखी तहा साध ॥३३॥
पातशाह पहरै भया, तब देशहु उर नाहिं।
रज्जब चोर कहा करै, जै राजा चेतनि माहिं ॥३४॥

(२५) चौरासी = ८४ लाख योनियों में जन्म। (३०) सुकल कृत = सत्कर्मों द्वारा। (३१) रहते = अविनश्वर।

अद्वैत

रज्जब जीव ब्रह्म अन्तर इता, जिता जिता अज्ञान।
है माही निर्णय भया, परदे का परवान ॥३५॥

निर्वैरता

नर निरवैरी होतही, सब जग वाका दास।
रज्जब दुबिधा दूर गई, उर आए इकलास ॥३६॥
औगुण ढाकै और के, अपने औगुण नाहिं।
रज्जब अज्जब आतमा, निरबैरी जगमाहिं ॥३७॥

कथनी-करणी

जन रज्जब गढ ज्ञानकै, दीसै द्वै दरबार।
एकै सुमिरण संचरै, एक पुण्य व्यवहार ॥३८॥
औषध बिन पथ्य का करे, पथ्य बिन औषधि बादि।
यूं सुमिरण सुकृत अमिल, उभै न पावहिं दादि ॥३९॥

(३६) इकलास = समान भाव।

विश्वास

शील रहै सुमिरण गहै, सत्य संतोषण नेह।
रज्जब प्रत्यक्ष रामजी, प्रकट भये तेहि देह ॥४०॥
स्वामी सेवक हो रह्या, यहि सारे संसार।
रे रज्जब विश्वास गहि, मूरख क्रिया न हार ॥४१॥

जै हिरदै विश्वास ह्वै, तौ हरि हिरदा माहिं।
जन रज्जब विश्वास बिन, बाहरि भीतरि नाहिं ॥४२॥

## रहणी

कहे सुणे कछु ह्वै नही, जै कछु किया न जाय।
रज्जब करणी सत्य है, नर देखो निरताय ॥४३॥
करणी कठिन सु बन्दगी, कहणी सब आसान।
जन रज्जब रहणी बिना, कहाँ मिलै रहिमान ॥४४॥
तन मन आतम रामसूं, ये जोड़े नहिं जाहिं।
तौ रज्जब क्या पाइये, शब्दो जोड़े माहिं ॥४५॥

(४३) निरताय=अंतिम निर्णय कर के।

मनगोली पहुँचे पहल, पीछे शब्द अवाज।
यूँ करणीसूं कथनी लगी, तिनके सीझै काज ॥४६॥
श्वान शब्द सुनि श्वान का, बिन देखे भुसि देय।
त्यूँ रज्जब साखी सबद, जै देखि निरखि नहिं लेय ॥४७॥
कूरम ग्रीवागत गिरा, प्रकट गुपत ह्वै जत।
साधु शब्द निकसैं सु यूँ, ज्यूँ रज्जब गजदत ॥४८॥

## भेष

ज्यूँ सुन्दरि सर न्हावता, अभरण धरै उतारि।
त्यूँ रज्जब रमि राम जल, स्वाग शरीरहिं डारि ॥४९॥
शृंगार सहित अथवा रहित, पति परसे सुत होय।
रज्जब भामिनी भेषबल, फल पावै नहिं कोय ॥५०॥

## शब्द-महिमा

सकल पसारा शब्द का, शब्द सकल घट माहिं।
रज्जब रचना राम की, शब्द सुन्यारी नाहिं ॥५१॥
षट् दर्शन खालिक खलक, सत्य शब्द के माहिं।
जन रज्जब श्रीपति सहित, बाहरि दीसैं नाहिं ॥५२॥
साधु शब्द डूंगर भये, भाव गुपत बिच घात।
रज्जब टाकी ज्ञान बिन, कोई तहा न जात ॥५३॥

## प्राकृत-संस्कृत

बोजरूप कछु और था, वृक्षरूप भया और।
त्यो प्राकृतें सस्कृत, रज्जब समझा और ॥५४॥

(४६) सीझै=सिद्ध होते है। (४९) न्हावता=स्नान करते समय।

वेद सुवाणी कूपजल, दूखसूं प्रापति होय।
शब्द साखी सरवर सलिल, सुख पीवै सब कोय ॥५५॥

## मन की लीला

मन हस्ती मैला भया, आप बाहि सिर धूरि।
रज्जब रज क्यूं ऊतरै, हरि सागर जल दूरि ॥५६॥

जब मनकू माया मिली, तन मन अधा होय।
रज्जब माया चलि गई, सब कछु देखै सोय ॥५७॥

यहु मन मृतक देखि करि, घोजि न कीजै नेह।
रज्जब जीवै पलक मे, ज्यू मीडक जल मेह ॥५८॥
तन मे मन चचल सदा, ज्यू मोती मधि थाल।
जन रज्जब क्यू राखिये, यहु अतर गति साल ॥५९॥

यहु मन भाड भडार मे, राखै रग अनेक।
रज्जब काढै समै सिरि, जुदी जुदी रग रेख ॥६०॥
थकित होत पाका सुमन, ज्यूँ कण हाडी माहि।
काचा कूदै ऊछलै, निहचल बैठे नाहि ॥६१॥

(५६) बाहि = डालता है। (५८) घोजि = विश्वास करके। (५९) अतर गति साल - अपने भीतर कसक उत्पन्न करता है। (६०) भाड = बहुरूपिया।

पाप-पुण्य

पाप पुण्य का मूल है, तामे फेर न सार।
धर्म कर्म करि ऊपजै, रज्जब समझि बिचार ॥६२॥
जे जड पैठे जिमी मे, अंकुर जाय अकास।
त्यूँ पाप पुण्य का मूल है, सुनहु बिबेकी दास ॥६३॥

अनुभूति

रज्जब देखो मीन सुत, तिरन सिखावै कौन।
ऐसे उपजण आपसो, गहै ज्ञान मग गौन ॥६४॥

भक्ति स्वरूप

बेहद भजि बेहद मतै, हद का हेत उठाय।
रज्जब रमिये रामसो, अतिगति लावै भाय ॥६५॥
मन माया धापै नही, क्षुधा जो वधती जाय।
यँही रज्जब रामकू, भजिये लावै भाय ॥६६॥

(६५) लावै भाय—निरंतर। (६६) बधती जाय—बढती जाती है।

## संत सुंदरदास (छोटे)

सुंदरदास (छोटे) संत दादू दयाल के योग्यतम शिष्यो मे से थे। ये बूसर गोत के खडेलवाल वैश्य थे। इनका जन्म जयपुर राज्य की प्राचीन राजधानी द्यौसा नगर मे सं० १६५३ की चैत सुदि ९ को हुआ था। इनके जन्म-स्थान का खंडहर आज भी वर्तमान है। दादूजी की द्यौसा-यात्रा के समय, अर्थात् स० १६५८ वा १६५९ मे ही इनके पिता ने इन्हे उनके चरणो मे डालकर दीक्षित कर दिया। उस समय से ये अधिकतर उन्ही के निकट रहने लगे थे और उनकी मृत्यु के अवसर पर भी विद्यमान थे। इनके गुरु-भाई रज्जबजी एवं जगजीवनजी का इन पर विशेष प्रेमभाव रहा करता था और उनके प्रयत्नो से इन्हे बालकपन मे ही दादू-वाणी का ज्ञान होने लगा। इन्हे उन लोगो ने विद्योपार्जन के लिए काशी भी पहुँचा दिया, जहाँ लगभग

१४ वर्षो तक रहकर इन्होने अनेक शास्त्रो का गम्भीर अध्ययन किया और दर्शन, साहित्य आदि में पारंगत होकर सं० १६८२ मे ये फतेहपुर (शेखावाटी) लौट आए। फतेहपुर की एक गुफा मे ये फिर अपने छः साथियो के साथ बारह वर्षो तक योगाभ्यास की साधना करते रहे और संयम एवं स्वाध्याय में लगे रहे। इसके अनंतर इन्होने पूर्व की ओर बंगाल से लेकर पश्चिम की ओर द्वारका तक तथा उत्तर के बदरिकाश्रम से लेकर दक्षिण मे मध्य प्रदेश तक देशाटन करते रहे। अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त कर उसके अनुसार ये काव्य-रचना मे भी प्रयत्नशील रहे। अंत मे, कई स्थानों पर कुछ अधिक दिनो तक निवास करने के अनंतर, ये सागानेर चले गए, जहाँ सं० १७४६ मे इनका देहात हो गया।

सुदरदास अपने अतिम समय तक उच्चकोटि के सत एव महापुरुष के रूप मे प्रसिद्ध हो चले थे। इनके कई शिष्य भी हो गए थे। इन्होंने कुल छोटे-बडे मिला कर ४२ ग्रथो की रचना की थी जिनका एक सुसपादित सग्रह 'सुदर-ग्रन्थावली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इनके दो बडे-बडे ग्रथ 'ज्ञान समुद्र' और 'सुदर विलास' हैं जिनमे से प्रथम मे प्रधानत. नवधाभक्ति, अष्टागयोग, सेश्वर साख्य तथा अद्वैतमत का पाडित्यपूर्ण निरूपण किया गया है और द्वितीय मे ५६३ छदो द्वारा अनेक विषय प्रतिपादित हुए है। इनकी रचनाओ मे अधिकतर दार्शनिक विषयो का ही समावेश है, किंतु इनके भाषाधिकार एव काव्य-कौशल के कारण वे रोचक हो गए हैं। अपनी विद्वत्ता में ये अपने गुरु भाई रज्जबजी की से भी बढे-चढे थे और साहित्यिक प्रवीणता भी इनमें उनसे अधिक थी। फिर भी रज्जबजी आध्यात्मिक अनुभूति कुछ अधिक गहरी जान पड़ती है और अपनी सूफीयानी मस्ती के कारण वे इनसे अपने गुरु संत दादू दयाल के कुछ अधिक अनुरूप समझ पडते है। सुंदरदास में बुद्धि का चमत्कार और कलानैपुण्य अधिक स्पष्ट है, जहाँ रज्जबजी की एक-एक उक्ति के पीछे उनके हृदय का लगाव सर्वत्र लक्षित होता है। छदों की विविधता दोनो सतो की रचनाओ की विशेषता है, किंतु रज्जबजी ने जहाँ पदों एवं साखियो को अधिक अपनाया है, वहाँ सुदरदास ने सवैये तथा मनहर छद के कवित्त अधिक लिखे हैं और इन्हे ही उन्होने अपनी प्रतिभा द्वारा अत्यत सजीव रूप दे दिये है। इसके सिवाय रज्जबजी की भाषा जहाँ प्रधानतः राजस्थानी दीख पडती है, वहाँ सुदरदास ने ब्रजभाषा, खडीबोली आदि को भी प्रश्रय दिया है। हिंदी कविता के रीतिकाल का प्रभाव सुंदरदास पर बहुत अधिक पडा है और इन्होने चित्र काव्य तक की रचना कर डाली है। वास्तव मे, व्याकरण एवं छदोनियम के अनुसार दोषहीन रचना करने की दृष्टि से तथा रस, अलकार जैसे साहित्यिक अवयवो के प्रयोग मे प्रवीणता दिखलाने के विचार से भी सुदरदास का स्थान सारे संत कवियो में सर्वोच्च जान पड़ता है।

## पद

**वास्तविक ज्ञान** (१)

ज्ञान तहा जहा द्वंद्व न कोई।
वाद विवाद नही काहूसो, गरक ज्ञान मैं ज्ञानी सोई ॥टेक॥
भेदाभेद दृष्टि नहिं जाकै हर्ष शोक उपजै नहिं दोई।
समता भाव भयौ उर अंतर, सार लियौ सब ग्रंथ विलोई ॥१॥

स्वर्ग नरक संशय कुछ नाही, मनकी सकल बासना धोई ।।
वाही कै तुम अनुभव जानो, सुन्दर उहै ब्रह्ममय होई ।।२।।

गरक = मग्न । बिलोई—मथन वा मनन कर के ।

अनिर्वचनीय माया (२)

ब्याली तेरै ब्याल का, कोई अंत न पावै ।
कब का पेल पसारिया, कछु कहत न आवै ।।टेक।।
ज्यौं का त्यौं ही देषिये, पूरन संसारा ।
सरिता नीर प्रवाह ज्यों, नहिं खडित धारा ।।१।।
दीप जरत त्यौं देषिये, जैसे का तैसा ।
को जानै केता गया, जग पावक ऐसा ।।२।।
जैसे चक्र कुलाल का, फिरता बहु दीसै ।
ठौर छाडि कतहूँ न गया, यह बिसवा बीसै ।।३।।
प्रगट करै गुपता करै, घट घूघट ओटा ।
सुन्दर घटत न देषिये, यह अचिरज मोटा ।।४।।

कुलाल=कुम्हार ।

मुक्ति-स्वरूप (३)

मुक्ति तौ धोषै की नीसानी ।
सो कतहूँ नहिं ठौर ठिकाना, जहा मुक्ति ठहरानी ।।टेक।।
को कहै मुक्ति व्योम कै ऊपर, को पाताल के माही ।
को कहै मुक्ति रहे पृथ्वी पर, ढूंढै तौ कहूँ नाही ।।१।।
बचन बिचार न कीया किनहूँ, सुनि सुनि उठि धाये ।
गोदंडा ज्यो मारग चालै आगे षोज बिलाये ।।२।।
जीवत कष्ट करै बहुतेरे, मुये मुक्ति कहँ जाई ।
धोषैह धोषै सब भूले, आगे ऊवा बाई ।।३।।
निज स्वरूप को जानि अखडित, ज्यौं का त्यौं ही रहिये ।
सुन्दर कछु ग्रहै नहिं त्यागै, वहै मुक्ति पद कहिये ।।४।।

गोदंडा = गुवरैला । निज......कहिये = जीवन्मुक्त की दशा ही वास्तविक मुक्ति है ।

खब्रह्म (४)

देषो भाई ब्रह्माकाश समान ।
परब्रह्म चैतन्य व्योम जड, यह विशेषता जान ।।टेक।।
दोउ व्यापक अकल अपरिमिति, दोऊ सदा अखंड ।
दोऊ लिपै छिपै कहु नाही, पूरन सब ब्रह्मण्ड ।।१।।
ब्रह्म माहि यह जगत देषियत, व्योम माहि घन त्यौही ।
जगत अभ्र उपजे अरु विनसै, वै है ज्यो के त्यौही ।।२।।
दोऊ अक्षय अरु अविनाशी, दृष्टि मुष्टि नहि आवें ।
दोऊ नित्य निरन्तर कहिये, यह उपमान बतावें ।।३।।

यह तौ येक दिषाई है रुष, भ्रम मति भूलहु कोई ।
सुन्दर कंचन तुलै लोह संग, तौ कहा सरभरि होई ।।४।।

अभ्र=मेघ, बादल ।

## साखी

प्रीति सहित जे हरि भजे, तब हरि होहि प्रसन्न ।
सुन्दर स्वाद न प्रीति बिन, भूष बिना ज्यौं अन्न ।।१।।
जौ यह उसके ह्वै रहै, तौ वह इसका होय ।
सुन्दर बातौ न मिलै, जब लग आप न षोय ।।२।।
अपणा सारा कछु नहीं, डोरी हरि कै हाथ ।
सुन्दर डोलैं बादरा, बाजीगर कै साथ ।।३।।
सुन्दर बधै देह सौ, तौ यह देह निषिद्ध ।
जौ याको ममता तजै, तौ याही मे सिद्धि ।।४।।
पाप पुण्य यह मैं कियौ, स्वर्ग नरक हूं जाउं ।
सुन्दर सब कछु मानिले, ताहीतें मन नाउ ।।५।।
जब मन देषै जगत कौ, जगत रूप ह्वै जाइ ।
सुन्दर देषैं ब्रह्मकौ, तन मन ब्रह्म अबाइ ।।६।।
उहै ब्रह्म गुरु सत उह, बस्तु बिराजत येक ।
बचन बिलास बिभाग श्रम, बन्दन भाव बिबेक ।।७।।
तमगुण रजगुण सत्त्वगुण, तिनकौ रचित शरीर ।
नित्य मुक्त यह आतमा, भ्रमते मानत सीर ।।८।।
तीन गुननि की वृत्ति मंहि, है थिर चंचल अंग ।
ज्यौ प्रतिबिंबहि देषिये, हीलत जल के संग ।।९।।
शुद्ध हृदय जाकौ भयौ, उहै कृतारथ जान ।
सोई जीवनमुक्त है, सुन्दर कहत बषान ।।१०।।

(२) आप=अपनपा, अहकार । (८) सीर=हिस्सेदारी, सम्बन्ध । (९) वृत्ति=व्यापार, कार्य ।

## संत यारी साहब

यारी साहब का पूर्व सम्बन्ध किसी शाही घराने से बतलाया जाता है और अनुमान किया जाता है कि ये पहले सूफी भी रह चुके होंगे । इनका पूर्वनाम यार मुहम्मद था और अपने ऐश्वर्यमय जीवन का परित्याग कर ये फकीर बन गये थे । आगे चल कर जब इनका सत्संग बीरू साहब के साथ हुआ तो ये संतमत मे भी दीक्षित हो गये और यारी साहब के नाम से प्रसिद्ध हो चले । इनके जीवन की घटनाओ का न तो अधिक विवरण पाया जाता है, न इनके जीवन-काल का ही ठीक पता चलता है । इनके आविर्भाव का समय, बावरी-पंथ की वंशावाली के अनुसार, विक्रम की १८वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध समझ पडता है । इनकी समाधि का दिल्ली नगर मे आज तक वर्तमान होना बतलाया जाता है और वही पर इनके निवास-स्थान का भी अनुमान होता है । इनके चार चेले, अर्थात् केशवदास, सूफीशाह, शेखन शाह और हस्त मुहम्मद

भी कही उस ओर के रहने वाले थे। इनके पाँचवें शिष्य बूला साहब भुरकुडा, जिला गाजीपुर के निवासी थे जहाँ इस पथ की एक गद्दी अभी तक प्रतिष्ठित है।

यारी साहब की रचनाओ का एक छोटा-सा संग्रह 'रत्नावली' नाम से प्रसिद्ध है। इनके कुछ अन्य पद भी भिन्न-भिन्न संग्रहो मे मिलते हैं जिनसे जान पडता है कि इनकी आध्यात्मिक पहुँच बहुत उच्चकोटि की रही होगी। इनकी पंक्तियो मे तल्लीनता एवं निर्द्वन्द्वता के भाव विशेष रूप से लक्षित होते है। अनुमान होता है कि ये सदा किसी ऊँचे भावस्तर से उन्हे कहा करते थे। इनकी भाषा मे फारसी एवं अरबी के शब्द अधिक सख्या मे आते है और इनकी वर्णन-शैली का मस्तानापन भी इनका सूफियो द्वारा वहुत कुछ प्रभावित होना सिद्ध करता है। फिर भी, इनकी रचनाओं के विषय तथा लक्ष्य से इन्हे सत को टिका कहना ही अधिक उपयुक्त है।

## पद

अध्यात्म योग ( १ )

बिरहिनी मंदिर दियना बार ॥टेक॥
बिन बाती बिन तेल जुगति सों, बिन दीपक उजियार ॥१॥
प्रानपिया मेरे गृह आयो, रचिपचि सेज संवार ॥२॥
सुखमन सेज परमतत रहिया, पिय निर्गुन निरकार ॥३॥
गावहु री मिलि आनद मगल, यारी मिलि के यार ॥४॥

मदिर=घट वा शरीर मे ही। जुगति सो=साधना की युक्ति से। सुखमन=सुषुम्ना नाडी।

परमात्मा ( २ )

हमारे एक अलह पिय प्यारा है ॥टेक॥
घट घट नूर मुहम्मद साहब, जाका सकल पसारा है ॥१॥
चौदह तबक जाकी रुसनाई, झिलमिलि जोति सितारा है ॥२॥
वेनमून वेचून अकेला, हिन्दु तुरुक से न्यारा है ॥३॥
सोइ दरवेस दरस निज पायो, सोइ मुसलम सारा है ॥४॥
आवै न जाये मरै नहि जीवै, यारी यार हमारा है ॥५॥

(२) तबक=लोक। रुसनाई=रोशनी, प्रकाश। बेनमून=अनुपम। बेचून=अखड।

अंतर्दृश्य ( ३ )

झिलमिल झिलमिल वरसै नूरा, नूर जहूर सदा भरपूरा ॥१॥
रुनझुन रुनझुन अनहद बाजै, भवर गुजार गगन चढि गाजै ॥२॥
रिमझिम रिमझिम वरसै मोती, भयो प्रकाश निरंतर जोती ॥३॥
निरमल निरमल निरमल नामा, कह यारी तहं लियो बिस्रामा ॥४॥

नूर जहूर=प्रकट ज्योति।

विहंगम मार्ग ( ४ )

जोगी जुगति जोग कमाव ॥टेक॥
सुखमना पर वैठि आसन, सहज ध्यान लगाव ॥१॥

दृष्टि समकरि सुन्न सोओो, आपा मेटि उडाव ॥२॥
प्रकट जोति अकार अनुभव, सब्द सोहं गाव ॥३॥
छोडि मठ को चलहु जोगी, बिना पर उडि जाव ॥४॥
यारी कहै यह मत बिहंगम, अगम चढ़ि फल खाव ॥५॥

सोओो=स्थिर हो जाओो। उडाव=नष्ट कर दो। मत बिहंगम=विहंगम मार्ग की साधना।

परम पद ( ५ )

उडु उडु रे बिहंगम चढु अकास ॥टेक॥
जहं नहिं चंद सूर निस बासर, सदा अगमपुर अगम बास ॥१॥
देखै उरध अगाध निरंतर, हरष सोक नहिं जम कै त्रास ॥२॥
कह यारी उह बधिक फास नहिं, फल पायो जगमग प्रकास ॥३॥

अगाध=अपरिमेय परमतत्त्व।

## कवित्त

आंधरे को हाथी हरि हाथ जाको जैसो आयो,
बूझो जिन जैसो तिन तैसोई बताओो है ॥१॥
टकाटोरी दिन रैन, हिये हूं के फूटे नैन,
आंधरे की आरसी मे कहा दरसायो है ॥२॥
मूल की खबरि नाहि जासो यह भयो सब,
फूल को बिसारि भोदू डारै अरुझायो है ॥३॥
आपनो सरूप रूप आपु माहि देखै नाहि,
कहै यारी आंधरे ने हाथी कैसो पायो है ॥४॥

टकाटोरी=टटोलना, ढूंढना। डारै=शाखाओं मे, प्रपंच में।

## सवैया

देखु बिचारि हिये अपने नर, देह धरो तौ कहा बिगरो है।
मिट्टी को खेल खिलौना बनो, एक भाजन नाम अनंत धरो है॥
नेक प्रतीत हिये नहिं आवत, मर्म भुलो नर अवर करो है।
भूषन ताहिं गवाह के देखु, यारी कंचन अैनको अैन खरो है ॥१॥

भाजन=पात्र, बर्तन। अवर=अन्यथा, विपरीत ढंग से। अैनको अैन=जहाँ का तहाँ, ज्यो का त्यो।

## साखी

बाजत अनहद बाँसुरी, तिरबेनी के तीर।
राग छतीसो होइ रहे, गरजत गगन गंभीर ॥१॥
आठ पहर निरखत रहौ, सन्मुख सदा हजूर।
कह यारी घरही मिलै, काहे जाते दूर ॥२॥

तिरबेनी=त्रिकुटी, इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना नामक नाडियो का संधिस्थल। आठ पहर=निरंतर, प्रत्येक क्षण।

## बाबा धरनीदास

बाबा धरनीदास के जन्म-काल वा मरण-काल की निश्चित तिथियों का पता नही चलता। उनके 'प्रेमप्रगास' की कुछ पंक्तियो द्वारा इतना ही विदित होता है कि सं० १७१३ मे उन्होने वैराग्य का वेश धारण किया था। इस प्रसग के अनुसार विचार करने पर उनके अनुयायियों द्वारा बतलाया गया उनका जन्म-काल सं० १६३२ बहुत पहले जाता हुआ जान पड़ता है। जो हो, केवल सं० १७१३ के आधार पर हम इतना कह सकते हैं कि उनका जीवन-काल विक्रम की सत्रहवी शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर उसकी अठारहवी के संभवतः तृतीय चरण तक रहा होगा। ये छपरा जिले के माँझी गाँव मे रहने वाले कायस्थ-परिवार मे उत्पन्न हुए थे और अपने जीवन के पूर्व भाग मे वही के किसी जमीदार के यहाँ लिखने-पढ़ने की नौकरी करते थे। सं० १७१३ मे किसी दिन अपने पिता का देहात हो जाने पर उनके हृदय मे वैराग्य का भाव जागृत हो गया और उन्होने नौकरी छोड दी। तब से वे कुछ दिनों तक किसी सच्चे गुरु की खोज मे भटकते फिरे। अन्त मे, पातेपुर (जि० मुजफ्फरपुर) के स्वामी विनोदानन्द से दीक्षित हो गए। स्वामी विनोदानन्द को उन्होने स्वामी रामानन्द की शिष्य-परम्परा मे गिनाया है और उनका मृत्यु-काल सं० १७३१ दिया है। अपने गुरु के यहाँ से लौट कर फिर वे अपने जन्म-स्थान के ही निकट कुटी बनाकर भजन-भाव मे लीन रहा करते थे और वही पर गंगा-स्नान करते समय उन्होने समाधि ले ली।

बाबा धरनीदास पहुँचे हुए सन्त थे। धरनीदास की रचनाओं द्वारा इनकी गंभीर साधना का परिचय मिलता है। इनकी रचनाओ मे 'शब्द प्रकाश,' 'प्रेमप्रगास' तथा 'रतनावली' प्रसिद्ध है, किन्तु वे अभी तक अप्रकाशित है। उनकी चुनी हुई कुछ बानियो का एक संग्रह 'धरनीदासजी की बानी' नाम से बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित हो चुका है। उनकी उपलब्ध रचनाओ को देखने से भी जान पडता है कि सन्त एवं भक्त श्रेणी के कवियो मे उनका स्थान ऊँचा है। उनकी बानियो मे अनेक स्थलो पर आलंकारिक भाषा का प्रयोग हुआ है और उनमे शब्द-माधुर्य एवं संगीतोपयुक्त प्रवाह की भी कमी नही। उनके 'प्रेमप्रगास' ग्रन्थ मे एक प्रेम-कहानी दी है जो प्रेमाख्यान-परम्परा का स्मरण दिलाती है। भोजपुरी पदों मे व्यक्त किया हुआ उनका माधुर्यभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

### पद

विनय (१)

प्रभुजी अब जनि मोहि बिसारो।
असरन-सरन अधम-जन-तारन, जुग जुग बिरद तिहारो ॥१॥
जहं जहं जनम करम वसि पाये, तह अरुझे रस खारो।
पाचहु के परपच भुलानो, धरेउ न ध्यान अधारो ॥२॥
अधगर्भ दस मास निरंतर, नखसिख सुरति संभारो।
मंजा मूत्र अग्नि मल कृम जह, सहजै तह प्रतिपारो ॥३॥
दीजै दरस दयाल दया करि, ऐगुन गुन न बिचारो।
धरनी भजि आयो सरनागति, तजि लज्जा कुल गारो ॥४॥

सुरति=आकृति, रूप। मंजा=मज्जा। प्रतिपारो=रक्षा की। गारो=गाली, निन्दा।

विरहण (२)

पिया मोर बसै गउरगढ़, मैं बसौ प्राग हो।
सहजहिं लागु सनेह, उपजु अनुराग हो ॥१॥
असन बसन तन भूषन, भवन न भावै हो।
पल-पल समुझि सुरति मन, गहबरि आवै हो ॥२॥
पथिक न मिलहिं सजन जन, जिनहिं जनावो हो।
बिह्वल बिकल बिलखि चित, चहुँदिसि धावो हो ॥३॥
होइ अस मोहिं लेजाय कि, ताहि ले आवै हो।
तेकरि होइबो लउंडिया, जे रहिया बतावै हो ॥४॥
तबहिं त्रिया पत जाय, दोसर जब चाहे हो।
एक पुरुष समरथ धन, बहुत न चाहै हो ॥५॥
धरनी गति नहिं आनि, करहु जस जानहु हो।
मिलहु प्रगट पट खोलि, भरम जनि मानहु हो ॥६॥

गउरगढ=एक दूर के नगर का नाम, ज्योतिर्मय पद। गहबरि=घबराहट। लउंडिया=चेरी। पत=धर्म, मर्यादा। पट=घूँघट, आवरण।

विरह-दु:ख (३)

भइ कंत दरस बिनु बावरी।
मो तन व्यापे पीर प्रीतम की, मूरख जानै आवरी ॥१॥
पसरि गयो तरु प्रेम साखा सखि, बिसरि गयो चित चावरी।
भोजन भवन सिंगार न भावै, कुल करतूति अभावरी ॥२॥
खिन खिन उठि उठि पंथ निहारौं, बार बार पछितावरी।
नैनन अंजन नींद न लागै, लागै दिवस बिभावरी ॥३॥
देह दसा कछु कहत न आवै, जस जल ओछे नावरी।
धरनी धनी अजहूँ पिय पावों, तो सहजै अनद बधावरी ॥४॥

आवरी=और, कुछ दूसरा ही। बिभावरी=रात। ओछे=छिछले।

विरह-निवेदन (४)

अजहूँ मिलो मेरे प्रान पियारे।
दीन दयाल कृपाल कृपानिधि, करहु छिमा अपराध हमारे ॥१॥
कल न परत अति बिकल सकल तन, नैन सकल जनु बहत पनारे।
माँस पचो अरु रक्त रहित भे, हाड दिनहुं दिन होत उघारे ॥२॥
नासा नैन स्रवन रसना रस, इंद्री स्वाद जुआ जनु हारे।
दिवस दसो दिसि पथ निहारति, राति बिहात गनत जस तारे ॥३॥
जो दुख सहत कहत न बनत मुख, अंतरगत के ही जाननहारे।
धरनी जिन झलमलित दीप ज्यों, होत अंधार करो उजियारे ॥४॥

राति...तारे=रात जैसे तारे गिनते-गिनते ही बीत जाया करती है।

अपनी बात

( ५ )

मैं निरगुनिया गुन नहिं जाना। एक धनी के हाथ बिकाना ॥१॥
सोइ प्रभु पक्का मैं अति कच्चा। मैं झूठा मेरा साहब सच्चा ॥२॥
मैं ओछा मेरा साहब पूरा। मैं कायर मेरा साहब सूरा ॥३॥
मैं मूरख मेरा प्रभु ज्ञाता। मैं किरपिन मेरा साहब दाता ॥४॥
धरनी मन मानो इक ठाउ। सो प्रभु जीवो मैं मरिजाउ ॥५॥

प्रीतम स्वागत

( ६ )

बहुत दिनन पिय बसल बिदेसा। आजु सुनल निज अवन संदेसा ॥१॥
चित चितसरिया मैं लिहलो लिखाई। हृदय कमल धइलो दियना लेसाई ॥२॥
प्रेम पलंग तहं धइलो बिछाई। नखसिख सहज सिंगार बनाई ॥३॥
मन हित अगुमन दिहल चलाई। नयन धइल दोउ दुअरा बैसाई ॥४॥
धरनी धनि पलपल अकुलाई। बिन पिया जिवन अकारथ जाई ॥५॥

चितसरिया = चित्रशाला। दियना लेसाई = दीपक जला कर। मन...चलाई = मन को अगवानी के लिए भेज दिया।

उपदेश

( ७ )

सुमिरो हरि नामहि बौरे ॥टेक॥
चक्रहु चाहि चलै चित चंचल, मूलमता गहि निस्चल कौरे ॥१॥
पाचहु ते परिचै कर प्रानी, काहे के परत पचीस के झौरे।
जौं लगि निरगुन पंथ न सूझै, काज कहा महि मडल बौरे ॥२॥
सब्द अनाहद लखि नहिं आवै, चारो पन चलि ऐसहि गौरे।
ज्यो तेली को बैल वेचारा घरहिं मे कोस पचासक भौरे ॥३॥
दया धरम नहिं साधु की सेवा, काहे के सो जनमे घर चौरे।
धरनीदास तासु बलिहारी, झूठ तज्यो जिन साचहि धौरे ॥४॥

चक्रहु चाहि = घूमते चक्र से भी अधिक। कौ = कर लो। गौ = बीत गए। भौ = हो गये। धौ = ग्रहण कर अपना लिया।

## साखी

धरनी परवत पर पिया, चढते बहुत डेराव।
कबहुँक पाँव जु डिगमिगै, पावो कतहुँ न ठाव ॥१॥
धरनी धरकत है हिया, करकत आहि करेज।
ढरकत लोचन भरि भरी, पीया नाहिन सेज ॥२॥
धरनी पलक परै नही, पिय की झलक सोहाय।
पुनि पुनि पीवत परमरस, तबहूँ प्यास न जाय ॥३॥
बिनु पग निरत करो तहा, बिनु कर दै दै तारि।
बिनु नैनन छवि देखना, बिनु सरवन झनकारि ॥४॥
बहुत दुवारे सेवना, बहुत भावना कीन्ह।
धरनी मन संशय मिटी, तत्वपरो जब चीन्ह ॥५॥

तब लगि प्रगट पुकारिया, जब लगि निबरो नाहिं ।
धरनी जब निबरी परी, मनकी मनही माहिं ॥६॥
अच्छर सब घट उच्चरै, जेते जिव संसार ।
लागि निरच्छर जो रहे, ता अच्छर टकसार ॥७॥

काहूके बहु बिभव भइ, काहू बहु परिवार ।
धरनी कहत हमहिं बल, एहो राम तुम्हार ॥८॥
धरनी नहिं बैराग बल, नाहिं जोग सन्यास ।
मनसा वाचा कर्मना, बिस्वंभर बिस्वास ॥९॥

धरनी सो पंडित नही, जो पढि गुन कथै बनाय ।
पडित ताहि सराहिये, जो पढा बिसरि सब जाय ॥१०।
विष लागे दुनिया मरै, अमृत लागे साध ।
धरनी ऐसो जानि है, जाको मता अगाध ॥११॥

जाहि परो दुख आपनो, सो जानै पर पीर ।
धरनी करत सुन्यो नही, बाझ की छाती छीर ॥१२॥

सरवन = श्रवण, कान । निरच्छर = निरक्षर, अविनाशी परमात्मा । अच्छर= अक्षर, शब्द, बानी । टकसार = टकसाली, प्रामाणिक, पक्की । अमृत...साध= स्वानुभूति द्वारा सत लोगो के जीवन मे कायापलट हो गया रहता है । छाती= स्तन ।

## संत बूला साहब

बूला साहब वा बुल्ला साहब का मूल नाम बुलाकी राम था और ये जाति के कुनबी वा कुर्मी थे । ये गाजीपुर जिले ( उत्तर प्रदेश ) के भुरकुडा गाँव के निवासी थे । बसहरि तालुका, जिला गाजीपुर के एक जमीदार के यहाँ ये हलवाहे का काम करते थे । एक बार किसी मुकदमे के सिलसिले मे इन्हे अपने मालिक के साथ दिल्ली जाना पडा, जहाँ इन्हे यारी साहब के सत्संग का सुअवसर मिल गया । उनसे उपदेश ग्रहण कर इन्होंने अपने मालिक का साथ छोड अकेले घर की राह ली तथा घूमते-घामते फिर भुरकुडा पहुँच गए । इनके मालिक ने घर लौटकर इनकी खोज करायी तो पता चला कि ये निकट के ही जंगलो मे बुलाकी दास के रूप मे रहा करते है । अतएव उन्होने इन्हे वापस बुला लिया और एक बार फिर इन्हे अपने पहले काम पर नियुक्त कर दिया । किन्तु अब ये कुछ और हो गए थे । इस कारण एक दिन हलवाही करते समय ये अचानक मेड पर बैठ कर ध्यानस्थ हो गए और मालिक ने इन्हे ऐसी स्थिति मे पाकर जब क्रुद्ध हो इन्हे धक्के मार कर गिरा देना चाहा तो इनके हाथ से दही छलक पडा । मालिक के पूछने पर पता चला कि ये ध्यान मे मग्न होकर किन्ही संतो को भोजन करा रहे थे और अब दही परसने ही जा रहे थे कि इन्हे चोट लगी । बुलाकी राम के इस कथन से प्रभावित हो इनके मालिक इनके चरणों पर गिर पडे और इनके शिष्य भी हो गए । तब से ये सदा बूला साहब के नाम से ही प्रसिद्ध रहे और इनका काम जंगल की एक कुटी में रह कर सत्संग कराना हो गया । इनका जन्म सं० १६८९ मे हुआ था और इनका देहान्त सं० १७६६ मे ७७ वर्षों की आयु पाकर हुआ ।

इनके जीवन की शेष घटनाओ का हाल कुछ भी नही मिलता, किंतु इनकी उपलब्ध रचनाओ को देखने से पता चलता है कि ये उच्चकोटि के साधक रह चुके होगे। इनकी आध्यात्मिक पहुँच भी बहुत गहरी रही होगी। इनकी रचनाओ का एक सग्रह 'शब्दसार' नाम से बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इनके कुछ अन्य पद आदि 'महात्माओ की वाणी' मे मिलते है जिनसे इनकी प्रेम-विह्वलता तथा रहस्य-ज्ञान का अच्छा परिचय मिल जाता है। इनकी भाषा साधारण है तथा इनकी पक्तियो मे पद लालित्य का भी अभाव है। फिर भी उनके विषय की गभीरता एवं भेद के साथ घनिष्ट सम्बन्ध के परिचायक इनके वर्णनो द्वारा उनका महत्त्व बहुत-कुछ बढ जाता है और उन्हे पढने की ओर प्रवृत्त हो जाना पडता है।

पद

एकांत निष्ठा (१)

या बिधि करहु आपुहि पार।
मीन जल की प्रीत जानै, देखु आपु बिचार ॥१॥
सीप रहत समुद्र माही, गहत नाहिन वार।
वाकी सुरत आकास लागी, स्वाती बुद अधार ॥२॥
चकोर चाद सो दृष्टि लावै, अहार करत अंगार।
दहत नाहिन पान कीन्हे, अधिक होत उजार ॥३॥
कांट भृङ्ग की रहनि जानो, जाति पाति गँवाय।
बरन अबरन एक मिलि भै, निरंकार समाय ॥४॥
दास बुल्ला आस निरखहिं, राम चरन अपार।
देहु दरसन मुक्ति परसन, आवागवन निवार ॥५॥

वार = वारि, जल। उजार = सचेत।

निरुपम स्वामी (२)

भाई इक साई जग न्यारा है।
सो मुझपे मैं वाही माही, ज्यो जल मध्ये तारा है ॥१॥
वाके रूप रेख काया नहि, नहि माया निस्तारा है ॥२॥
अगम अपार अमर अबिनासी, सो संतन का प्यारा है ॥३॥
अनंत कला जाके लहरि उठतु है, परम तत्त निरकारा है ॥४॥
जन बुल्ला ब्रह्म ज्ञान बोलतु है, सतगुरु शब्द अधारा है ॥५॥

संत रहनी (३)

ओढ़ो चूनरी ततसार।
अचल अमल अपार अंगिया, खाडे की ज्यो धार ॥टेक॥
नाहि मारै मरै विनसै, ऐसो है ब्रह्म तार।
उमगि सोहं अधर चढिया, बहुरि नहि औतार ॥१॥
एका येकी होत अविगति, साधु यह व्योहार।
दास बूला माडो बाजी, जानै क्या ससार ॥२॥

अंगिया = चोली। तार = बिनावट का धागा। अधर = गगन की ओर। माडो = मार ली है।

## अरिल

झूठा यहु संसार झूठ सब कहत है ।
संत सब्द की रहनि कोऊ नहिं गहत है ।।
बिना सत्त नहिं गत्त कुगत्त मे परत है ।
बूला हृदै बिचारि सत्त सो रहत है ।।१।।

ऐसी बनिज हमारि राम को लेन को ।
मन पवना दोउ दाम साहु को देन को ।।
पाँच पचीस तिन लादि आपमे बैठिके ।
बूला दीन्ही हाकि जोति मे पैठिके ।।२।।

क्या भयो ध्यान के किधे हाथ मन ना हुआ ।
माला तिलक बनाय देत सबको दुआ ।।
आसा लागी डोरी कहत भला हुआ ।
बूला कहत बिचारि झूठ से मर घुआ ।।३।।

का भये सब्द के कहे, बहुत करि ज्ञान दे ।
मन परतीत नही तो, कहा जम जान दे ।।
का भयो तीरथ किये, हिये नहिं आवई ।
बूला कहै बिचारि, खाली सब जावई ।।४।।

गत्त=गति, उद्धार । तिन=तीनो गुण । दुआ=आशीर्वाद, उपदेश । घुआ=ढेंढो । जान दे=जाने दे, छोड सके ।

## रेखता

प्रीति की रीति सो जोति मैदा लिया,
पवन के घोरा सो जोरा जाय किया है ।।
पाच अरु तीन पच्चीस को बसि किया,
साहब को ध्यान धरि ज्ञान रस पिया है ।।

भूख औ प्यास नहिं आस औ बास नहिं,
एक साहब सों ब्रह्म जा थिया है ।।
दास बूला कहै अगमं गति तौ लहै,
तोरि कै कुफुर तब गगन गढ़ लिया है ।।१।।

जोरा=युद्ध वा भिडंत । थिया है=स्थिर हो गया । कुफुर=संदेह का ताला ।

## साखी

आठ पहर चौसठ घरो, जन बूला धर ध्यान ।
क्या जाने कौने घरी, आइ मिलै भगवान ।।१।।
आठ पहर चौसठ घरी, भरो पियाला प्रेम ।
बूला कहै विचारि कै, इहै हमारो नेम ।।२।।
बिना नीर बिनु मालिही, बिनु सीचे रंग होय ।
बिनु नैनन तहं दरसनो, अस अचरज इक सोय ।।३।।

ऐसन अद्भुत वुंद है जुग जुग अचल अपार ।
आवै जाय न वीनसै, सदा रहै यकतार ।।४।।

अछै रग मे रगिया, दीन्हो प्रान अंकोल ।
उनमुनि मुद्रा भस्म धरि, बोलत अमृत बोल ।।५।।

अछै=अक्षय, अविनाशी । अंकोल=अंकोर, सुस्वादु भेंट । उनमुनि मुद्रा=परमात्मा के प्रति सदा उन्मुख रहने की स्थिति ।

## गुरु गोविन्द सिंह

गुरु गोविंद सिंह का पूर्व नाम गोविंदराय था । ये गुरु तेगवहादुर के पुत्र थे । इनका जन्म सं० १७२३ को पौष सुदि ७ को पटना मे हुआ था । ये अपनी छोटी अवस्था से ही खेल-कूद, आखेट, युद्ध-कला आदि के अभ्यासो मे वडा भाग लेते रहे । पटना से अपने पिता के निकट आनदपुर आ जाने पर इन्होने वाण-विद्या मे विशेष कुशलता प्राप्त कर ली थी तथा अपने सहयोगियो का सगठन भी करने लग गए थे । गुरु तेगवहादुर की हत्या हो जाने पर इन्होने प्रतिशोध की भावना से प्रेरित हो निकटवर्ती राजाओ के साथ मैत्री-सम्बन्ध करना आरभ किया और थोडे ही दिनो मे इनका एक दल-सा वन गया जो दिल्ली के वादशाहो को सशकित करने लगा । सिख धर्म के अनुयायियो मे युद्ध का भाव जागृत करने के लिए इन्होने उनका एक नवीन 'खालसा पथ' निर्मित किया । उनमे आत्म-त्याग की भावना भरी । तव से ये गोविंद-राय से गोविंदसिंह हो गए और सभी एक विशेष व्रत के व्रती बनकर इनके अनुसरण मे वलिवेदी पर चढने लगे । मुगल राज्य के विरुद्ध इन्हे कई युद्ध लडने पडे और कई बार इन्हे उनमे सफलता भी मिली, किंतु अत मे इन्हे अपनी जन्म-भूमि छोडनी पडी । ये लडते-झगडते हुए दक्षिण की ओर नादेड तक पहुँच गए और वही पर किसी पठान द्वारा पेट मे कटार चुभो दी जाने के कारण, मिति कार्तिक सुदि ५, सं० १७६५, को इन्होने अपना शरीर त्याग दिया ।

गुरु गोविंद सिंह शस्त्रविद्या के साथ-साथ काव्यशास्त्र मे भी निपुण थे और उनके यहाँ गुणियो का सम्मान भी हुआ करता था । प्रसिद्ध है कि उनके दरवार मे ५२ कवियो को आश्रय प्राप्त था । सस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्र थो का शुद्ध एव सुन्दर अनुवाद कराने के लिए भी उन्होने प्रयत्न किये । वे एक धर्मगुरु होने के अतिरिक्त, साहसी वीर, नीतिपरायण नेता तथा कुशल कवि भी थे । उनकी रचनाएँ सिखो के 'दसमग्रन्थ' मे सगृहीत हैं जिसे वे लोग 'गुरु ग्र थ साहिव' कहते तथा जिसकी गुरुवत् पूजा किया करते हैं । उनकी रचनाओ मे उनके पदो, कवित्तो, सवैयो, साखियो आदि के द्वारा उनकी विचारधारा का परिचय मिलता है और उनकी 'विचित्र नाटक' नामक रचना का प्रधान विषय, उनके अनेक जन्मो की कथा है जो वास्तव मे अद्भुत ढंग की है । इस पुस्तक मे तथा कई अन्य रचनाओ मे भी चौपाई, दोहे वहुत आये हैं । इनका 'चडी चरित्र ग्र थ 'दुर्गा सप्तशती' का अनुवाद है, किंतु उसकी पक्तियाँ साहित्यिक व्रजभाषा के लिए अच्छा उदाहरण मानी जा सकती हैं । इनकी 'गोविंद रामायण' मे रामकथा कही गई है ।

## पद

विनय (१)

प्रभुजी तोकहं लाज हमारी।
नीलकंठ नरहरि नाराइण, नील वसन बनवारी ॥रहाउ॥
परम पुरख परमेस्वर स्वामी, पावन पउन अहारी।
माधव महाजोति मध-मरदन, मान मुकंद मुरारी ॥१॥
निर्विकार निरजुर निद्राविन, निर्विख नरक निवारी।
कृपा सिंधु काल त्रैदरसी, कुकृत-प्रनासन-कारी ॥२॥
धनुर बान धृत मान धराधर, अनिविकार असिधारी।
हौं मतिमंद चरन सरनागत, करन गहि लेहु उबारी ॥३॥

—(शब्द हजारे)

मध मरदन=मधु दैत्य का नाश करने वाले। निरजुर=विना वृद्धावस्था के। निर्विख=निष्पाप, विशुद्ध। अनिविकार=विकाररहित।

## कवित्त

कोऊ भयो मुंडिया सन्यासी, कोऊ जोगी भयो,
कोऊ ब्रह्मचारी, कोऊ जतियन मानबो।
हिन्दू तुरक कोऊ राफजी, इमाम शाफी,
मानस की जात सबै एकै पहचानबो॥
करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो।
एक ही की सेव सबही को गुरुदेव एक,
एक ही सरूप सबै, एकै जोत जानबो ॥१॥

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे,
न्यारे न्यारे ह्वै कै फेरि आगमैं मिलाहिंगे।
जैसे एक धूरते अनेक धूर धूरत हैं,
धूरके कनूका फेर धूरही समाहिंगे॥
जैसे एक नदते तरंग कोट उपजत हैं,
पान के तरंग सब पानही कहाहिंगे॥
तैसे विस्वरूप तें अभूत भूत प्रगट होइ,
ताहीते उपज सबै ताही मैं समाहिंगे ॥२॥

निर्जन निरूप ही कि सुन्दर स्वरूप ही कि,
भूपन के भूप हौ कि दानी महादानी हौ।
प्रान के बचैया दूधपूत के देवैया,
रोग सोग के मिटैया किधौं मानी महामानी हौ।
विद्या के विचार ही कि अद्वैत अवतार हौ,
कि सुद्धता की मूर्ति ही कि सिद्धता की सात्र हौ।

जोवन के जाल हौ कि कालीहू के काल हौ,
साधुन के साल हौ कि मित्रन के प्रान हौ ॥३॥

राफजी इमाम साफी=मुस्लिम फिरके। मानस=मनुष्य। राजक=रोजी देने वाला। कनूका=कण। कोटि=कोट वा ढेर। पूरत है=हो जाती है। पान=पानी, जल। अभूत=विचित्र, अनेकानेक। निर्जन=शून्य। सान=आदर्श। जाल=पसारा, प्रपच।

## चौपाई

गुरु घर जन्म तुम्हारे होय। पिछले जाति वरन सब खोय॥
चार वरन के एको भाई। धरम खालसा पदवी पाई॥
हिन्दु तुरक ते आहि निआरा। सिंह मजब अब तुमने धारा॥
राखहु कच्छ, केस, किरपान। सिंह नाम को यही निशान॥

खालसा=विशुद्ध वा खालसा धर्म। सिंह मजब=सिक्ख धर्म।

## साखी

आज्ञा भई अकाल की, तभी चलायो पथ।
सब सिक्खन को हुकम है, गुरु मानियहु ग्रन्थ ॥१॥
गुरु ग्रन्थ जी मानियहु, प्रकट गुरो की देह।
जाका हिरदा शुद्ध है, खोज शब्द मे लेह ॥२॥

## संत बुल्लेशाह

सत बुल्लेशाह के विषय मे पहले प्रसिद्ध था कि वे बलख शहर के बादशाह थे और मियाँ मीर से भेंट करके फकीर हो गए थे। इसी प्रकार कुछ लोगो का यह भी कहना था कि ये अपने जन्म-स्थान कुस्तुन्तुनियाँ से आकर इनायत शाह के मुरीद बने थे। परन्तु इधर की खोजो के अनुसार पता चला है कि उनका जन्म भारत में ही, लाहौर जिले के पंडील गाँव मे, स० १७३७ मे हुआ था। वे पहले साधु दर्शनीनाथ के सत्संग मे रहे और इनायत शाह के संपर्क मे आ गए। वे आमरण ब्रह्मचारी बने रह गए और कुसूर नामक स्थान मे निवास करते हुए सदा अपनी साधना मे लीन रहे। इनका देहात भी कुसूर मे ही रहते समय, सं० १८१० मे हुआ था जहां पर इनकी समाधि आज तक वर्तमान है।

संत बुल्लेशाह की विचारधारा, सूफीमत की ही भाँति, वेदात के सिद्धातो से भी बहुत-कुछ प्रभावित थी। कबीर साहब के समान विचार-स्वातंत्र्य मे इनकी आस्था थी और उन्ही की भाँति बाह्याडंबर के ये कट्टर विरोधी भी थे। मस्जिद, मंदिर, ठाकुरद्वारा आदि को ये "चोरो और डाकुओ का अड्डा" कहा करते थे। इनकी धारणा थी कि उनमे प्रेमरूपी परमात्मा का निवास होना असंभव-सा है। इनके अनुसार सरलहृदयता तथा अहंता का परित्याग सबसे अधिक आवश्यक है। ये अपना काफिर होना स्वीकार करते थे। इनके ये सिद्धात इनकी रचनाओ मे बडे स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त किये गए है। इनके दोहरे, सीहर्फी, काफी, अठवारा आदि प्रसिद्ध है। इनकी इन सभी रचनाओ मे शुद्ध एवं सरल पंजाबी के उदाहरण प्रचुर मात्रा मे मिलते है।

## पद

चेतावनी (१)

टुक बूझ कौन छप आया है।
कइ नुकते में जो फेर पडा, तब ऐन गैन का नाम धरा।
जब मुरसिद नुकता दूर कियो, तब ऐनो गैन कहाया है॥
तुसी इल्म किताबा पढदे हो, केहे उलटे माने करदे हो।
बे मूजब ऐबे लडदे हो, केहा उलटा बेद पढाया है॥
दुइ दूर करो कोइ सोर नही, हिन्दु तुरक कोइ होर नही।
सब साधु लखो कोइ चोर नही, घट घट मे आप समाया है॥
ना मैं मुल्ला ना मैं काजी, न मैं सुन्नी ना मैं हाजी।
बुल्लेशाह नाल जाई बाली, अनहद सबद न जाया है॥१॥

छप=अगोचर वेष में। कइ=कहीं। नुकते मे=एक विंदु मात्र वा केवल उपाधियो के कारण। फेर=भेद। ऐन=पूर्णतत्त्व, ع अक्षर। गैन=غ अक्षर, छोटा-सा बैल। कइ...धरा=जिस प्रकार अरबी के ع अक्षर पर एक विंदु मात्र देने से ही वह غ अक्षर बन जाता है, उसी प्रकार पूर्ण निरुपाधि तत्त्व भी केवल नाम रूप की किंचित् उपाधि के ही कारण सीमित जान पडता है। मुरसिद=मुरशिद, सतगुरु। तब=वह वस्तु। तुसी=तुम। बे...ऐबे=उन उपाधियों के ही आधार पर। होर=और, भिन्न। नाल=जुए के अड्डे मे ही।

वही (२)

अब तू जाग मुसाफिर प्यारे, रैन घटी लटके सब तारे।
आवागवन सराई डेरे, साथ तयार मुसाफिर तेरे।
अजे न सुनदा कूच नकारे, करले आज करन दी बेला।
बहुरि न हौसी आवन तेरा, साथ तेरा चल चल्ल पुकारे॥१॥
आपो अपने लाहे दौडी, क्या सरधन क्या निरधन बौरी।
लाहा नाम तू लेहु संभारे, बुल्ले सहुदी पैरी परिये।
गफलत छोड हीला कुछ करिये, मिरग जतन बिन खेत उजारे॥२॥

सराई डेरे=सराय के निवास की भाँति है। अजे=अब तक भी। लाहे=लाभार्थ। सरधन=धनवान्। लाहा नाम=नामस्मरणजन्य लाभ। सहुदी=साह वा मालिक के। हीला=साधना वा प्रयत्न। मिरग=हरिण, इंद्रियाँ।

उद्गार (३)

ऐन ही आप है बिना नुकते, सदा चैन महबूब दिलदार मेरा।
इक्कबार महबूब नूँ जिनी डिठा, ओह देखणे हार है सम्म केरा।
उसतों लख बहिस्त कुरवाण कीते, पहुँचे महल बेगम्म चुकाइ झेंडा।
बुल्लेशाह उस हाल मस्तान फिरदे, हाथी मस्त तोड जंजीर जेड़ा॥३॥

महबूब=प्रियतम। नूँ=को। जिनी=जिसने। सम्म=उस परमात्मा का ही। उसतों=उस पर। झेंडा=झंझट, बखेडा। जेडा=जिसका बंधन।

## संत गुलाल साहब

गुलाल साहब जाति के क्षत्रिय थे और तालुका बसहरि, परगना सादियाबाद, तहसील एव जिला गाजीपुर के रहने वाले थे। ये जमीदार थे और इन्ही के यहाँ बूलासाहब पहले बुलाकीराम कुर्मी के रूप में हलवाही का काम करते थे। इनके बुलाकीराम के प्रति किए गए व्यवहार की चर्चा बूला साहब के परिचय मे की गई है। बूला साहब के ठाकुर और मालिक होते हुए भी, जब ये उनसे प्रभावित होकर उनके चरणो मे गिर पड़े तो उन्होने इन्हे अपने शिष्य रूप मे स्वीकार कर लिया। तब से ये उन्ही के सत्सग मे सदा रहने लगे और उनका देहात होने पर उनकी गद्दी के उत्तराधिकारी भी हुए। इनके हृदय की उदारता एवं भावुकता का पता केवल इसी एक बात से चल सकता है कि इन्होने अपने नीच टहलुवे के भी आध्यात्मिक व्यक्तित्व के सामने आत्मसमर्पण कर दिया और अपने पूर्व-संस्कारो को तिलाजलि देकर ये सदा के लिए उसके सच्चे अनुयायी बन गए। वास्तव मे हमे इनकी रचनाओ के अंतर्गत, भक्ति तथा प्रेम की भावना इनके गुरु अथवा दादागुरु से भी अधिक मिलती है। भुरकुडा की गद्दी पर ये अपने अंत समय तक रहे और सं० १८१६ मे इनका देहावसान हो गया। इनके जीवन की अन्य किसी घटना का न तो पता चलता है, न इनकी शिक्षा आदि के सम्बन्ध मे ही विवरण उपलब्ध है।

इनकी रचनाओ का एक संग्रह 'गुलाल साहब की बानी' के नाम से बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। इनके बहुत-से अन्य पद भी भुरकुडा से छपी हुई पुस्तक 'महात्माओ की वाणी' के अंतर्गत दिये हुए है। इनके दो ग्रंथ 'ज्ञान गुष्टि' तथा 'राम सहसनाम' के नाम से बतलाये जाते है, किंतु उनका प्रकाशन अभी तक नही हो पाया है। इन्ही दो नामो से इनकी दो रचनाएँ 'महात्माओं की बानी' मे भी दीख पडती हैं और संभव है, ये वे ही हो। गुलाल साहब की भाषा में भोजपुरी शब्दो एव मुहावरो की प्रचुरता पायी जाती है। इनकी पक्तियो मे इनकी प्रेम विह्वलता, इनका हृदयोल्लास तथा इनकी श्रद्धामयी भक्ति का प्राय. सर्वत्र परिचय मिलता है। ये उच्च श्रेणी के साधक भी जान पडते है। इनकी वर्णन-शैली मे तन्मयता के साथ-साथ स्वानुभूति की भी झलक मिलती है और उनमे प्रवाह की मात्रा भी कम नही।

### पद

उद्गार (१)

राम मोर पुजिया राम मोर धना,
निस बासर लागल रहु मना ॥टेक॥
आठ पहर तहं सुरति निहारी,
जस बालक पालै महतारी ॥१॥
धन सुत लछमी रह्यो लोभाय,
गव मूल सब चल्यो गंवाय ॥२॥
बहुत जतन भेष रचो बनाय,
बिन हरिभजन इंदोरन पाय ॥३॥

हिंदू तुरुक सब गयल बहाय,
चौरासी मे रहि लिपटाय ।।४।।
कहै गुलाल सतगुरु बलिहारी,
जाति पाति अब छुटल हमारी ।।५।।

पुजिया=पूंजी । गव मूल=घमंड का आधार-स्वरूप । इंदोरन=एक फल जो सुदर लाल रंग का होने पर भी कड़ुवा होता है, इंद्रासन (दे०—'बिनु हरि भजन इंद्रासनि के फल तजत नही करुआई'—तुलसीदास) ।

उपदेश ( २ )

मन तुम कपट दूर अडाव ।
भटक को तुम पंथ छोडो, सुरत सब्द समाव ।।टेक।।
करत चाल कुचाल चालत, मकर मेल सुभाव ।
तीन तिरगुन तपत दिनकर, कैसहू बुझलाव ।।१।।
अति अधीन मलीन माया, मोह मे चितलाव ।
अगम घर की खबरि नाही, मूढ तासच पाव ।।२।।
सुन्न सिखर सरोज फूलो, बंक नालहि जाव ।
कह गुलाल अतीत पूरन, आपु मे घर पाव ।।३।।

अडाव=रोक रख । बुझलाव=बुझा दे, शात कर दे । तासच=उस सत्य को ।

प्रेम ( ३ )

जो पै कोइ प्रेम गाहक होई ।
त्याग करै जो मन कि कामना, सीस दान दै सोई ।।टेक।।
और अमल की दर जो छोडै, आपु अपन गति जोई ।
हरदम हाजिर प्रेम पियाला, पुलिक पुलिक रस लेई ।।१।।
जीव पीव महं पीव जीव महं, बानी बोलत सोई ।
सोई समन मह हम सबहन महं, बूझन बिरला कोई ।।२।।
बाकी गती कहा कोइ जानै, जो जिय साचा होई ।
कह गुलाल वे राम समाने, मत भूले नर लोई ।।३।।

दर=द्वार, सबंध ।

उपदेश ( ४ )

हे मन धोवहु तनकी मैली ।
यह संसार नाहि सूझत घट, खोजत निसु दिन गैली ।।टेक।।
नही नाव नहिं केवट बेडा, फिरत फिरत दिन ऐली ।
पाच पचीस तीन घट भीतर, कठिन कलुष जिम मैली ।।१।।
गुरु परताप साध की संगति, प्रान गगन चढ़ि गैली ।
कहै गुलाल राम भयो मेला, जन्म सुफल तब कैली ।।२।।

गैली=गैल, मार्ग । ऐली=आ गया । कठिन...मैली = मन में हार्दिक कष्ट हुआ । कैली = किया ।

परमात्मा ( ५ )

अवधू निर्मल ज्ञान विचारो ।
ब्रह्म स्वरूप अखंडित पूरन, चौथे पद सो न्यारो ।।टेक।।
ना वह उपजै ना वह बिनसै, ना भरमै चौरासी ।
है सतगुरु सत पुरुष अकेला, अजर अमर अबिनासी ।।१।।

ना वाके बाप नही वाके माता, वाके मोह न माया ।
ना वाके भोग जोग वाके नाही, ना कही जाय न आया ।।२।।
अद्‌भुत रूप अपार बिराजै, सदा रहै भर पूरा ।
कहै गुलाल सोई जन जानै, जाहि मिलै गुरु पूरा ।।३।।

चौथे पद=परम पद मे ।

माया ( ६ )

संतो कठिन अपरबल नारी ।
सब ही बरलहि भोग कियो है, अजहूँ कन्या क्वारी ।।टेक।।
जननी ह्वै के सब जग पाला, बहु बिधि दूध पियाई ।
सुन्दर रूप सरूप सलोना, जोय होइ जग खाई ।।१।।

मोह जाल सो सबहि बझायो, जह तक है तनधारी ।
काल सरूप प्रगट है नारी, इन कहु चलहु बिचारी ।।२।।
ज्ञान ध्यान सब ही हरि लीन्हों, काहु न आप समारी ।
कहै गुलाल कोऊ कोउ उबरै, सत गुरु की बलिहारी ।।३।।

अपरबल=अपूर्व । बरलहि=विवाह सम्बन्ध करके । जोय=स्त्री ।

स्वानुभूति ( ७ )

आजु झरि बरखत बूंद सोहावन ।
पिय कै रीति प्रीति छबि निरखत, पुलकि पुलकि मन भावन ।।टेक।।
सुखमन सेज जे सुरति सवारहि, झिलमिल झलक देखावन ।
गरजत गगन अनंत सब्द धुनि, पिया पपीहा गावन ।।१।।

उमग्यो सागर सलिल नीर भरो, चहुदिसि लगत सोहावन ।
उपज्यो सुख सनमुख तिरपित भयो, सुधिबुधि सब बिसरावन ।।२।।
काम क्रोध मद लोभ छूट्यौ सब, अपने साहब भावन ।
कहै गुलाल जंजाल गयो तब, हरदम भादो सावन ।।३।।

झरि=बूंदो की झडी लगाकर ।

रेखता

अजर जरै पूर मन सूर तब ही भयो,
काम अरु क्रोध को घरि जलाया ।
सीस का खेलना सुरति का मेलना,
नूर सतगुरु का मनि बरा पाया ।।

जोग अरु जुक्ति सो साफ साहब मिल्यो,
भयो आनंद सब दुख बहाया।
कहै गुलाल साहिब दाखिल कियो।
रोज फरै मुक्ति सतलोक छाया ॥१॥

भोर भयो उदै हरि नाम तब ही जगो,
लोक अरु वेद सो जीति पाया।
रहत निरद्वंद आनद लहरें उठत,
प्रेम अरु प्रीति सो लव लगाया ॥

रहत अडोल कलोल दिन रैन मे,
पूर भयो मन तब थीर पाया।
कहै गुलाल जंजाल तब ही गयो,
राम रमो जीव अवधूत काया ॥२॥

बरा=प्रकाशित। छाया=निवास कर लिया।

## साखी

गूदर धागा नामका, सुई पवन चलाय।
मन मानिक मनिगन लग्यो, पहिर गुलाल बनाय ॥१॥
बिनु जल कवला विगसेऊ, बिना भँवर गुजार।
नाभि कँवल जोती बरै, तिरबेनी उजियार ॥२॥

जिन पावल तिन गावल, अवर सकल भ्रम डार।
कहै गुलाल मनोरवा, पूरल आस हमार ॥३॥
अनुभौ फाग मनोरवा, दहुँ दिसि परलि धमार।
काया नगर मे रंग रचो, प्राननाथ बलिहार ॥४॥

मानिक भवन उदित तहाँ, भाँवर दै दै गाय।
जन गुलाल हरखित भयो, कौतुक कह्यो न जाय ॥५॥
राम नाम को मसि करो, शून्य कै कागज बनाय।
चित की कलम लिये लिखै, जन गुलाल मन लाय ॥६॥

मनोरवा=मनोरा नामक एक फाग का राग। धमार=एक राग का नाम। मानिक......तहा=घट मे माणिक्य जैसा प्रकाश फैला है।

## संत जगजीवन दास (सत्तनामी)

जगजीवन साहब का जन्म बाराबंकी जिले के सरहदा नामक गाँव मे, कोटवा से दो कोस की दूरी पर, क्षत्रिय-कुल में हुआ था। ये चंदेल ठाकुर थे और अपने बालपन मे गाय तथा भैंस चराया करते थे। प्रसिद्ध है कि उसी समय एक दिन दो साधुओ ने आकर उनसे अपनी चिलम चढ़ाने के लिए कुछ आग माँगी, किंतु बालक आग के साथ-साथ उनके पीने के लिए कुछ दूध भी लेता आया। साधु बच्चे का स्वभाव देखकर उस पर बहुत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद के रूप मे उसकी कलाइयो पर उन्होने धागे बाँध दिये। कहते है कि बालक जगजीवन ने उसी समय से साधु-सेवा एवं सत्संग करना आरम्भ किया और अपनी युवावस्था तक आते-आते उसने अपने

आध्यात्मिक अभ्यास में भी पर्याप्त उन्नति कर ली। उक्त साधुओं मे से एक बूला साहब समझे जाते है, दूसरे के लिए गोविंद साहब का अनुमान किया जाता है। जगजीवन दास की चर्चा भी इसी आधार पर, बावरी-परम्परा के संतों मे की जाती है। उसकी वंशावली मे उनका नाम भी दीख पडता है, परंतु कुछ लोगों का यह भी अनुमान है कि वे किसी बिश्वेश्वरपुरी के शिष्य थे जो काशी के निवासी थे। इस मत के अनुसार, वे एक स्वतंत्र सप्रदाय के प्रचारक माने जाते है जिसे 'सत्तनामी सप्रदाय' कहा जाता है और वे उसकी कोटवां शाखा के प्रवर्त्तक भी समझे जाते है। जगजीवन दास का जन्म सं० १७२७ माना जाता है और उनके देहात का समय सं० १८१८ मे ठहराया जाता है।

जगजीवन साहब ने अत तक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत किया था और सरहदा छोडकर पीछे कोटवां मे रहने लगे थे। इनके नाम से ७ पुस्तकें प्रसिद्ध है जिनमे से इनका केवल 'शब्द-सागर' मात्र बेलवेडियर प्रेस से दो भागो मे प्रकाशित हुआ है। इनकी रचनाओ से पता चलता है कि इन्होने परमात्मा को अधिकतर 'सत्त वा सत्य' का नाम दिया है और उसी को एक अलौकिक व्यक्तित्व प्रदान कर उसके प्रति अपनी प्रगाढ भक्ति का भी प्रदर्शन किया है। ये उसके ऊपर अपने को पूर्णत निर्भर मानते है और उसी की कृपा व अत.प्रेरणा द्वारा अपनी सारी क्रियाओ का संपन्न होना समझते है। इनकी विनय, इनका आत्म-निवेदन, इनकी श्रद्धा एवं दैन्य-भाव सभी सगुणोपासक भक्तो की शैली में ही प्रकट किये गये है। इनकी भाषा मे अवधी बोली के शब्दो एवं मुहावरों की भरमार है और आलकारिक भाषा के प्रयोग इन्होने बहुत ही कम किये है।

## पद

**भगवत्प्रेरणा** (१)

प्रभुजी का बसि अहै हमारी।
जब चाहत तब भजन करावत, चाहत देत बिसारी ॥१॥
चाहत पल छिन छूटत नाही, बहुत होत हितकारी।
चाहत डोरि सूखि पल डारत, डारि देत ससारी ॥२॥
कहं लगि विनय सुनावो तुमते, मैं तो अहो अनारी।
जगजिवन दास पास रहै चरनन, कबहूँ करहुँ न न्यारी ॥३॥

चाहत...डारत = यदि चाहते हो तो मुझे अपने बंधनो मे रखने वाली रस्सो को सुखा कर शीघ्र निर्बल कर डालते हो।

**उसका अन्तर्यामित्व** (२)

प्रभुजी तुम जानत गति मेरी।
तुमते छिपा नही आहै कछु, कहा कहो मैं टेरी ॥१॥
जहं जहं गाढ पर्यो सतन का, तहं तहं कीन्हो फेरी।
गाढ मिटाय तुरंतहि डार्यो, दीन्हो सुक्ख घनेरी ॥२॥

जुग जुग होत ऐस चलि आवा, सो अब साझ सबेरी ।
दियो जनाय सोई तस जानै, वास मनहिं तेहि केरी ॥३॥
कर औ सीस दियो चरनन महै, नहिं अब पाछे हेरी ।
जगजीवन के सतगुरु साहब, आदि अंत तेहि केरी ॥४॥

गाढ़ = संकट ।

हैरान (३)

तेरा नाम सुमिरि ना जाय ।
नही बस कछु मोर आहै, करहु कौन उपाय ॥१॥
जबहिं चाहत हितू करिकै, लेत चरनन लाय ।
बिसरि जब मन जात आहै, देत सब बिसराय ॥२॥

अजब ख्याल अपार लीला, अंत काहु न पाय ।
जीव जन्त पतंग जगमहं, काहु ना बिलगाय ॥३॥
करौ बिनती जोरि दुहुँ कर, कहत अहौ सुनाय ।
जगजीवन गुरु चरन सरन, ह्वै तुम्हार कहाय ॥४॥

सच्ची करणी (४)

हमारा देखि करै नहिं कोई ।
जो कोई देखि हमारा करिहै, अंत फजीहति होई ॥१॥
जस हम चलै चलै नहिं कोई, करो सो करै न सोई ।
मानै कहा कहे जो चलि है, सिद्धि काज सब होई ॥२॥

हम तो देह धरे जग नाचब, भेद न पाई कोई ।
हम आहन सतसंगी बासी, सूरति रही समोई ॥३॥
कहा पुकारि बिचारि लेहु सुनि, वृथा सब्द नहिं होई ।
जगजीवनदास सहज मन सुमिरत, बिरले यहि जग कोई ॥४॥

हमारा...कोई = मेरा कोई अनुकरण न करे । चलै...कोई = उस प्रकार व्यवहार न करे । मानै...चलिहै = मेरे कथन को समझ बूझ कर जो चलेगा । आहन = है ।

संसारी जीव (५)

भाई रे कहा न मानै कोई ।
जिहि समुझायकै राह बतावौ, मन परतीत न होई ॥१॥
कपट रीति कै करहिं बंदगी, सुमति न ब्यापै सोई ।
भये नर हीन कुमारग परिकै, डारिन सर्बस खोई ॥२॥

गे भरुहाय तनिक सुख पाये, मैं तैं रहे समोई ।
फिर पछिताने कष्ट भये पर, रहे मनहि मन रोई ॥३॥
देखि परत नैनन से वैसे, कठिन जीव है वोई ।
जगजीवन अतर मह सुमिरै, जस होई तस होई ॥४॥

कपट...सोई=ऊपरी ढंग से उपासनादि कर लेते हैं, उसके अनुसार उनकी बुद्धि भी ठीक नहीं रहती। गे भरुहाय=उबल पड़ते हैं। समोई=मग्न, पड़े हुए।

सत्तनाम का जप (६)

साधो सत्तनाम जपु प्यारा ।।टेक।।
सत्तनाम अंतर धुनि लागी, बास किहे संसारा।
ऐसे गुप्त चुप्प ह्वै सुमिरहु, बिरले लखै निहारा ।।१।।
तजहु बिवाद, कुसंगति सबकै, कठिन अहै यह धारा।
सत्तनाम कै बेड़ा बाधहु, उतरन का भवपारा ।।२।।
जन्म पदारथ पाइ जक्त महं, आपुन मरहु संभारा।
जगजीवन यह सत्तनाम है, पापी केतिक तारा ।।३।।

जक्त=जगत्, संसार। आपुन...संभारा=अपने को स्मरण मे खो दो।

कठिन साधना (७)

साधो केहि विधि ध्यान लगावै।
जो मन चहै कि रहौं छिपाना, छिपा रहै नहिं पावै ।।१।।
प्रगट भये दुनिया सब धावत, साचा भाव न आवै।
करि चतुराई बहु विधि मनते, उलटे कहि समुझावै ।।२।।
भेष जगत दृष्टी तें देखत, औरै रचिकै गावै।
चाहत नही लहत नहिं नामहिं, तृस्ना बहुत बढ़ावै ।।३।।
गहि मन मंत्र रहै अतर महं, ताहो कहि गोहरावै।
जगजीवन सतगुरु की मूरति, चरनन सीस नवावै ।।४।।

सच्चा स्मरण (८)

साधो रसनि रटनि मन सोई।
लागत लागत लागि गई जब, अंत न पावै कोई ।।१।।
कहत रकार मकारहि माते, मिलि रहे ताहि समोई।
मधुर मधुर ऊंचे को धायो, तहा अवर रस होई ।।२।।
दुइ कै एक रूप करि बैठे, जोति झलमली होई।
तेहिका नाम भयो सतगुरु का, लीह्यो नीर निकोई ।।३।।
पाइ मंत्र गुरु सुखी भये तब, अमर भये हहि वोई।
जगजीवन दुइ करते चरन गहि, सीस नाइ रहे सोई ।।४।।

रसनि=स्वाद, चाट।

जप का स्वरूप (९)

ऐसी डोरि लगावहु पोढ़ि। टूटै डोरि लेहु फिरि जोरि ।।१।।
जब लग मुखतें कहिये बात। तब लगि नाम बिसरि मन जात ।।२।।
जग प्रपच संगति नहिं करिये। हिये नामकी रटना धरिये ।।३।।

चितमा चित जो राखै लाय। तापर कालकि कछु न बसाय ॥४॥
जगजीवन के चरन अधार। सतगुरु संत उतारहिं पार ॥५॥

पोढ़ि=मजबूत।

विचित्र संसार (१०)

ऐ सखि अब मै काह करौ।
भूलि परिउ मैं आइके नगरी, केहि बिधि धीर धरौ ॥१॥
अंत नही यहि नगरक पावौ, केतो बिचार करौ।
चहत जो अहौ मिलौ मैं पियकहं, भ्रम की गैल परौ ॥२॥
हित मोर पाच होत अनहितई, बहुतक खेच करौ।
केतो प्रबोधि के बोध करौ मैं, ई कहै धरौ धरौ ॥३॥
तीस पचीस सहेली मिलि संग, ई गहै कैसे बरौ।
पाय पकरि कै बिनती करौ मैं, लै चलु गगन परौ ॥४॥
निरत निरखि छवि मोहि कहौ अब, गहि रहु नाहि टरौ।
जगजीवन सत दरस करौ सखि, काहेक भटक फिरौ ॥५॥

वियोग (११)

यहि नगरी महं परिउ भुलाई।
का तकसीर भई धौ मोहिते, डारे मोर पिय सुधि बिसराई ॥१॥
अब तो चेत भयो मोहि सजनी, ढुढत फिरहुं मैं गइउ हिराई।
भसम लाय मैं भइउं जोगिनिया, अब उन बिनु मोहि कछु न सुहाई ॥२॥
पाच पचीस की कानि मोहि है, तातें रहौ मैं लाज लजाई।
सुरति सयानप अहै इहै मत, सब इक बसि करि मिलि रहु जाई ॥३॥
निरति रूप निरखि कै आवहु, हम तुम तहा रहहिं ठहराई।
जगजीवन सखि गगन मंदिर महं, सत की सेज सूति सुख पाई ॥४॥

तकसीर=भूल, अपराध। पांच=पंचतत्त्व, पचीस प्रकृतियां। कानि=मर्यादा का ख्याल।

एकाग्रता (१२)

गगरिया मोरी चितसो उतरि न जाय ॥टेक॥
इक कर करवा एक कर उबहनि, बतिया कहौ अरथाय।
सास ननद घर दारुन आहैं, तासो जियरा डेराय ॥१॥
जो चित छूटै गागरि फूटै, घर मोरि सास रिसाय।
जगजीवन अस भक्ती मारग, कहत कहौ गोहराय ॥२॥

करवा=डोल। उबहनि=डोरी। अरथाय=बातें गढ़-गढ के, पूरी-पूरी व्याख्या करता हुआ।

आत्म-निवेदन (१३)

साई मोहि सब कहत अनारी।
हम कह कहत अजान अहैं येइ, चतुर सबै संसारी ॥१॥

अहै अभेद भेद नहिं जानत, सिखि पढि कहत पुकारी।
देखि करत सो आवत नाही, डारिन भजन बिगारी ॥२॥
कहा कहौ मन समुझि रहत हौ, देख्यौ दृष्टि पसारी।
समुझाये कोउ मानत नाही, कपट बहुत अधिकारी ॥३॥
बिरले कोइ जन करत बंदगी, मैं तै डारत मारी।
जगजीवन गुरु चरन सीस दै, निरखत रूप निहारी ॥४॥

अनारी=मूर्ख। अधिकारी=अधिक। निहारी=ध्यानपूर्वक।

### साखी

सत्तनाम जपि जीयरा, और वृथा करि जान।
माया तकि नहिं भूलसी, समुझि पाछिला ज्ञान ॥१॥
काया नगर सोहावन, सुख तबही पै होय।
रमत रहै तेहि भीतरे, दुख नहिं ब्यापै कोय ॥२॥
जिन केहु सुरति संभारिया, अजपा जपि भे संत।
न्यारे भवजल सबहिं ते, सत्त सुकृति ते तंत ॥३॥
सत समरथ ते राखि मन, करिय जगत को काम।
जगजीवन यह मंत्र है, सदा सुःख बिसराम ॥४॥

जीयरा=जीव वा मन। तत=बराबर जैसे गुरुता आदि मे, समान। सुःख-बिसराम=सुख मे शातिमय जीवन व्यतीत करना।

## संत दीन दरवेश

दीन दरवेश पाटन वा पालनपुर राज्य के किसी गाँव के रहने वाले एक साधारण लोहार थे। 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' की सेना मे क्रमश मिस्त्री का काम करने लग गए थे, जहाँ से संयोगवश गोला लगने से बाँह कट जाने के कारण नौकरी से निकाल दिये गए थे। एक बाँह के दीन दरवेश फिर घर छोडकर साधुओ मे भ्रमण करने लगे। अन्त मे, उन्होने किसी बाबा बालानाथ से दीक्षा ग्रहण कर ली। उन्होने कई हिन्दू तीर्थो मे भी भ्रमण किया था और सूफियो तथा वेदातियो के साथ सत्संग किया था। परन्तु अपने नाथ पंथी गुरु के आदेशानुसार उन्होने अपने सिद्धान्त स्वतन्त्र रूप से ही स्थिर किये और अन्त तक उन्ही का प्रचार करते रहे। उनका समय विक्रम की अठारहवी शताब्दी से लेकर उन्नीसवी से प्रथम चरण तक समझा जाता है। प्रसिद्ध है कि वे अन्त मे काशी मे मरे थे।

दीन दरवेश की कुण्डलियाँ प्रसिद्ध है जिनमे सरल स्वतंत्र जीवन, विश्व-प्रेम, परोपकार, ईश्वर-भक्ति, आदि के भाव पाये जाते हैं। उनकी भाषा पर पंजाबीपन का प्रभाव अधिक पाया जाता है और उनकी वर्णन-शैली सच्ची अनुभूति पर आश्रित जान पडती है।

### कुंडलिया

हिंदू कहे सो हम बडे, मुसलमान कहे हम्म।
एक मूग दो फाड है, कुण ज्यादा कुण कम्म।

कुण ज्यादा कुण कम्म, कभी करना नहिं कजिया ।।
एक भगत हो राम, दूजा रहिमान सो रजिया ।
कहै दीन दरवेश, दोय सरिता मिलि सिन्धू ।
सब का साहब एक, एक मुसलिम एक हिन्दू ।।१।।

बदा बाजी झूठ है, मत साची करमान ।
कहां बीरबल गंग है, कहा अकब्बर खान ।।
कहाँ अकब्बर खान, भले की रहे भलाई ।
फतेह सिंह महाराज, देख उठ चल गए भाई ।।
कहा दीन दरवेश, सकल माया का धधा ।
मत साची कर मान, झूठ है बाजी बदा ।।२।।

कजिया = लडाई, झगडा । कुण = कौन । रजिया = राजी । सिन्धू = सिंधु, समुद्र, अंतिम लक्ष्य । बाजी = दुनिया का खेल, प्रपंच का पसारा । उठ...गए = मर गये ।

## बाबा किनाराम

बाबा किनाराम बनारस जिले की चंदौली तहसील के रामगढ़ गाँव निवासी अकबर सिंह क्षत्रिय के घर मे उत्पन्न हुए थे । बचपन से ही ये एकांतप्रेमी, विरक्त एवं श्रद्धालु व्यक्ति थे । इनका विवाह केवल १२ वर्ष की अवस्था मे ही हो गया था, किन्तु ये गौना कराने नही जा सके और इनके हृदय मे आध्यात्मिक ज्ञान के प्रति आकर्षण इतना प्रबल हो उठा कि ये घर से किसी गुरु की खोज मे निकल भागे । ये पहले बलिया जिले के कारो गाँव निवासी बाबा शिवाराम के शिष्य हुए, किंतु वहाँ अधिक दिनो तक नही ठहर सके । ये फिर घर आकर दूसरी बार देश-भ्रमण के लिए निकले । इस प्रकार, अंत मे एक बार घूमते-फिरते जूनागढ मे बंदी भी बनाये गये । परन्तु अबकी बार इन्हे सत्संगत से पूरा लाभ हो चुका था और उन्होने अध्यात्म-चिंतन भी बहुत कुछ कर लिया था । अतएव कारा-मुक्त हो जाने पर जब ये गिरनार पर्वत पर किसी महात्मा के सपर्क मे आये तो इनके जीवन में कायापलट हो गया और इन्हे शाति मिल गई । फिर तो ये उधर से लौटकर काशी आ गए और वहाँ पर केदारघाट के निकट रहने वाले महात्मा कालूराम अघोरी से दीक्षित हो गये । यह घटना सं० १७५४ मे हुई थी और तब से ये अधिकतर काशी तथा उसके आस पास ही रहते रहे । इन्होने अपने प्रथम गुरु बाबा शिवाराम की स्मृति मे चार मठ भिन्न-भिन्न स्थानो पर स्थापित किये और उसी प्रकार बाबा कालूराम की भी स्मृति मे अन्य चार मठ बनवाये । इनका प्रधान मठ काशी के क्रीकुड (कृमिकुड) पर है, जहाँ पर सं० १८२६ मे इनका देहात हुआ था । वहाँ इनकी तथा अन्य लोगों की समाधियाँ हैं ।

इनकी प्रधान रचना 'विवेकसार' है जिसे इन्होने सं० १८१२ मे लिखा था । इनकी अन्य छोटी-छोटी पुस्तके 'रामगीता,' 'गीतावली', 'रामरसाल' आदि हैं जो सभी प्रकाशित हो चुकी है और जिनके द्वारा इनके 'अवधूत मत' पर बहुत-कुछ प्रकाश पडता है । इनके 'विवेकसार' से पता चलता है कि इनके मत एव सतमत मे प्राय: कुछ भी अतर नही है । सिद्धांत एवं साधना दोनो ही दृष्टियों से विचार

करने पर ये भी कबीर साहब द्वारा प्रचलित किये गये विचारों के ही समर्थक जान पडते है। इनकी प्रधान रचनाओ की शब्दावली तक मे संतमत की छाप स्पष्ट लक्षित होती है। इनके दोहो एवं पदो की भाषा बहुत सरल, सीधी-सादी और स्पष्ट है। इनके कथन मे वह शक्ति पायी जाती है जो बिना निजी अनुभव के कभी उत्पन्न नही हो सकती। बिहार का सरभंग सम्प्रदाय इन्ही की प्रेरणा का फल बतलाया जाता है।

## पद

प्रेम-मार्ग (१)

प्रेमदा पैडो सब दा न्यारो ।।टेक।।
मगन मस्त खुश होने प्यारे, नाक धनीदा प्यारो।
जीवन मरन काम कामादिक, मनते सबै बिसारो ।।१।।
बेद कितेब करनि लज्जा को, चिंता चपल नेवारो।
नेम अचार येकई राखै, संगत राखै सचारो ।।२।।

अभै असोच सोच ना आनै, कोउ जन जानि निहारो।
रहत अजानि जानि के बूडत, सूझत नहि उजियारो ।।३।।
उतरत चढत रहत निसिबासर, अनुभव याहि बिचारो।
राम किना यह गैल अटपटी, गुरु गम को पतियारो ।।४।।

पैड़ो=मार्ग। दा=का। सचारो=सत्य की वा सच्चे पुरुष की।

विडंबना (२)

सतो भाई भूल्यो कि जग बौरानो, यह कैसे करि कहिये।
याही बडो अचभो लागत, समुझि समुझि उर रहिये ।।१।।
कथै ज्ञान असनान जग्य व्रत, उरमे कपट समानी।
प्रगट छाडि करि दूर बतावत, सो कैसे पहचानी ।।२।।

हाड चाम अरु मास रक्त मल, मज्जा को अभिमानी।
ताहि खाय पडित कहलावत, वह कैसे हम मानी ।।३।।
पढे पुराण कोरान वेद मत, जीव दया नहि जानी।
जीवनि भिन्न भाव करि मारत, पूजत भूत भवानी ।।४।।

वह अदृष्ट सूझै नहि तनिकौ, मनमे रहै रिसानी।
अंधहि अधा डगर बतावत, बहिरहि बहिरा बानी।
राम किना सतगुरु सेवा बिनु, भूलि मर्‌यो अज्ञानी ।।५।।

अदृष्ट=परमतत्त्व जो अगोचर है।

## रेखता

शब्द का रूप साचो जगत पुरुष है, शब्द का भेद कोइ संत जानै।
शब्द अज अमर अद्वितीय व्यापक पुरुष, सतगुरु शब्द सुबिचार आनै।

चंद मे जोति है जोति में चंद है, अरथ अनुभी करै येक मानै ।
राम किना अगम यह राह बाकी निपट, निकट को छाड़ि कै प्रीति ठानै ॥१॥

## साखी

अनुभव सोई जानिये, जो नित रहै बिचार ।
राम किना सत शब्द गहि, उतर जाय भौपार ॥१॥
चाह चमारी चहडी, सब नीचन ते नीच ।
त तो पूरन ब्रह्म था, चाहन होती बीच ॥२॥

चाह = वासना । चहडी = डोमिन । चाह...बीच = यदि वासना आकर तुम्हे अज्ञान मे डाल कर बाधा न उपस्थित कर देती ।

## संत दरिया साहब (मारवाड़ वाले)

मारवाड प्रदेश के जैतारन गाँव मे उत्पन्न होने वाले दरिया साहब जाति के धुनियाँ थे और उनका जन्म सं० ४७३३ मे हुआ था । उनके समसामयिक एक अन्य दरिया भी थे जो अधिकतर दरियादास बिहार वाले नाम से प्रसिद्ध है । अपने पिता का देहात हो जाने के कारण ये परगना मेडता के रैनगाँव मे अपने नाना के यहाँ रहने लगे थे । कहा जाता है कि उन्होने सं० १७६९ मे बीकानेर प्रान्त के खियानसर गाँव के रहने वाले किसी प्रेमजी से दीक्षा ग्रहण की थी । उनके एक शिष्य ने मारवाड प्रान्त के शासक महाराज बखत सिंह के किसी असाध्य रोग को उसके कहने से दूर कर दिया । उस समय से उनकी ख्याति इतनी बढी कि दूर-दूर से आकर अनेक स्त्री-पुरुष उनके सत्संग से लाभ उठाने लगे । वे सदा अपने नवीन गाँव रैन मे ही रहते रहे और वही पर उन्होने अपना चोला सं० १८१५ मे छोडा ।

इन दरिया साहब की अधिक रचनाओ का कुछ पता नही चलता । इनके अनुयायियो की संख्या भी बडी नही है । इनके अनुयायी इन्हे प्रसिद्ध संत दादू दयाल का अवतार मानते है और इसके लिए कुछ पंक्तियाँ भी उद्धृत करते है । परन्तु इनकी उपलब्ध रचनाओं पर कबीर साहब का प्रभाव बहुत स्पष्ट दीख पडता है । इनकी वाणी की संख्या १०००० कही जाती है । इनकी रचनाओं का जो एक छोटा-सा संग्रह 'बेलवेडियर प्रेस' से निकला है, उससे इनकी विशेषताओ का कुछ आभास मिलता है । इनके पदो एवं साखियो के अंतर्गत इनके साधना-सम्बन्धी गहरे अनुभव के अनेक उदाहरण मिलते है । इनका हृदय बहुत ही कोमल और स्फटिकवत् स्वच्छ जान पडता है और इनकी रचनाएँ भी प्रसादपूर्ण है । इनकी भाषा पर अपने प्रान्त की बोलियो का प्रभाव उतना नही दीख पडता जितना अनुमान किया जा सकता है । इनके हृदय की उदारता का एक उदाहरण इस बात मे भी मिल सकता है कि स्त्रियो की इन्होने महत्ता ही बतलायी है ।

इन दरिया साहब का पूर्वनाम कुछ लोगों ने दरियावजी माना है तथा इन्हें धुनियाँ न मानकर मानजी पिता एवं मीगा बाई माता का पुत्र बतलाया है । इन्हे वे लोग 'रामसनेही पंथ' का एक प्रवर्त्तक भी कहते है, किन्तु इन बातों के लिये यथेष्ट पुष्ट प्रमाणों की कमी है ।

## पद

परमात्मा (१)

आदि अनादि मेरा साईं ।।टेक।।
दृष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर, यह सब माया उनकी माई ।।१।।
जो बनमाली सींचे मूल, सहजै पिवै डाल फल फूल ।।२।।
जो नरपति को गिरह बुलावै, सेना सकल सहज ही आवै ।।३।।
जो कोई कर भान प्रकासै, तो निसतारा सहजहि नासै ।।४।।
गरुड पंख जो घर मे लावै, सर्प जाति रहने नहिं पावै ।।५।।
दरिया सुमिरै एकहि राम, एक राम सारै सब काम ।।६।।

दृष्ट.. है = न दीख सकता है, न पकडा जा सकता है। सेना = परिचारक। कर = किरण।

परमात्मा-प्रेम ( २ )

है कोइ संत राम अनुरागी, जाकी सुरति साहब से लागी ।।टेक।।
अरस परस पिवके संग राती, होय रही पतिबरता।
दुनिया भाव कछू नहिं समझै, ज्यों समुद्र समानी सरिता ।।१।।
मीन जायकर समुद समानी, जहं देखै जह पानी।
काल कीर का जाल न पहुचै, निर्भय ठौर लुभानी ।।२।।
बावन चंदन भौंरा पहुँचा, जहं बैठ तहं गधा।
उडना छोडके थिर हो बैठा, निसदिन करत अनंदा ।।३।।
जन दरिया इक राम भजन कर, भरम बासना खोई।
पारस परस भया लोह कचन, बहुर न लोहा होई ।।४।।

कीर = मछुहा। बावन = उत्कृष्ट जाति का।

स्वानुभूति ( ३ )

अमृत नीक कहै सब कोई, पीये बिना अमर नहिं होई ।।१।।
कोई कहै अमृत बसै पताल, तर्क अत नित ग्रासै काल ।।२।।
कोइ कहै अमृत समुदर माहि, बडवाअगिन क्यो सोखत ताहि ।।३।।
कोइ कहै अमृत ससि मे बास, घटै बढ़ै क्यो होइहै नास ।।४।।
कोइ कहै अमृत सुरगा माहि, देव पिवै क्यो खिरखिर जाहि ।।५।।
सब अमृत बातो का बात, अमृत है सतन के साथ ।।६।।
दरिया अमृत नाम अनंत, जाको पी-पी अमर भये सत ।।७।।

सुरगा = स्वर्ग।

संसार ( ४ )

संतो कहा गृहस्त कहा त्यागी।
जहि देखू तेहि बाहर भीतर, घट घट माया लागी ।।टेक।।

माटी की भीत पवन का थंबा, गुन औगुन मे छाया ।
पांचतत्त आकार मिलाकर, सहजां गिरह बनाया ॥१॥

मन भयो पिता मनसा भइ माई, दुख सुख दोनो भाई ।
आसा तृस्ना बहिनें मिल कर, गृह की सौज बनाई ॥२॥

मोह भयो पुरुष कुबुधि भइ घरनी, पाचो लडका जाया ।
प्रकृति अनत कुटुंबी मिल कर, कलहल बहुत उपाया ॥३॥

लडको के संग लडकी जाई, ताका नाम अधीरी ।
बनमे बैठो घर घर डोलै, स्वारथ संग खपीरी ॥४॥

पाप पुन्न दोउ पाड पडोसी, अनंत वासना नाती ।
राग द्वेष का बंधन लागा, गिरह बना उतपाती ॥५॥

कोइ गृह मांड गिरह मे बैठा, वैरागी बनवासा ।
जन दरिया इक राम भजन बिन, घट घट मे घर नासा ॥६॥

गिरह=गृह, घर । सौज=सामान, सामग्री । कलहल=कलह । माड=बनाकर, सुसज्जित करके ।

आत्मोपलब्धि ( ५ )

दरिया दरबारा खुल गया अजर किनारा ॥टेक॥
चमकी बीज चली ज्यो धारा, ज्यो बिजली बिच तारा ॥१॥
खुल गया चन्द बन्द बदरी का, घोर मिला अंधियारा ॥२॥
लौ लगी जाय लगन के लारा, चादनी चौक निहारा ॥३॥

सूरत सैल करै नभ ऊपर, बंकनाल पट फारा ॥४॥
चढ गई चाप चली ज्यो धारा, ज्यो मकडी मकतारा ॥५॥
मैं मिली जाय पाय पिउ प्यारा, ज्यो सलिता जलधारा ॥६॥
देखा रूप अरूप अलेखा, ताका वार न पारा ॥७॥
दरिया दिल दरवेस भये तब, उतरे भौजल पारा ॥८॥

खुल...का=बादलो से आवृत चंद बाहर निकल आया । मकतारा=मकडी के जाले का तार ।

## साखी

सकल ग्रंथ का अर्थ है, सकल बात की बात ।
दरिया सुमिरन रामका, कर लीजै दिन रात ॥१॥
दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाय ।
यह बिरहा मेरे साथ को, सोता लिया जगाय ॥२॥

दरिया बान गुरुदेव का, बेधै भरम विकार ।
बाहर घाव दिखै नही, भीतर भया सिमार ॥३॥
दरिया सतगुरु सब्दसौं, मिट गइ खैचा तान ।
भरम अधेरा मिट गया, परसा पद निरवान ॥४॥

पान वेल से बीछुड़ै, परदेसा रस देत ।
जन दरिया हरिया रहै, (उस) हरी वेल के हेत ॥५॥
अलल वसै आकास मे, नीची सुरत निवास ।
ऐसे साधू जगत मे, सुरत सिखर पिउ पास ॥६॥

दरिया नाम है निरमला, पूरन ब्रह्म अगाध ।
कहे सुने सुख ना लहैं, सुमिरे पावै स्वाद ॥७॥
दरिया सूरज ऊगिया, चहुँ दिसि भया उजास ।
नाम प्रकासै देह मे तौ सकल भरम का नास ॥८॥

दरिया सो सूरा नही, जिन देह करी चकचूर ।
मन को जीत खडा रहै, मैं वलिहारी सूर ॥९॥
अमी झरत बिगसत कमल, उपजत अनुभव ज्ञान ।
जन दरिया उस देसका, भिन भिन करत वखान ॥१०॥

त्रिकुटी माही सुख घना, नाही दुखका लेस ।
जन दरिया सुख-दुख नही, वह कोइ अनुभवि देस ॥११॥
मन वुध चित हकार की, है त्रिकुटी लग दौड ।
जन दरिया इनके परे, ब्रह्म सुरत की ठौर ॥१२॥

मन वुध चित ह कार यह, रहैं अपनी हद माहि ।
आगे पूरन ब्रह्म है, सो इनकी गम नाहि ॥१३॥
दरिया सुरति सिरोमनी, मिली ब्रह्म सरोवर जाय ।
जहं तीनो पहुँचै नही, मनसा वाचा काय ॥१४॥

तज विकार आकार तज, निराकर को ध्याय ।
निराकार मे पैठ कर, निराधार लौ लाय ॥१५॥
प्रथम ध्यान अनुभौ करै, जासे उपजै ज्ञान ।
दरिया वहुते करत हैं, कथनी मे गुजरान ॥१६॥

जात हमारी ब्रह्म है, मात पिता है राम ।
गिरह हमारा सुन्न मे, अनहद मे विसराम ॥१७॥
दरिया सोता सकल जग जागत नाही कोय ।
जागे मे फिर जागना, जागा कहिये सोय ॥१८॥

दरिया लच्छन साध का, क्या गिरही क्या भेख ।
नि.कपटी निरसक रहि, वाहर भीतर एक ॥१९॥
मतवादी जानै नही, ततवादी की वात ।
सूरज ऊगा उल्लुवा, गिनै अंधेरी रात ॥२०॥

पारस परसा जानिये, जो पलटै अंग अग ।
अंग अग पलटै नही, तौ है झूठा सग ॥२१॥
साव स्वांग अस आंतरा, जस कामी नि काम ।
भेष रता ते भीख मे, नाम रता ते राम ॥२२॥
सोई कथ कवीर का, दादू का महराज ।
सव सनन का वाल्मा, दरिया का सिरताज ॥२३॥

नारी जननी जगत की, पाल पोस दे पोष ।
मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष ।।२४।।

सिमार = मिसमार, चूर-चूर । बुध = बुद्धि । मतवादी = साप्रदायिक विचारानुसार केवल रूढिगत बाहरी बातो पर चलने वाला । ततवादी — परमतत्व का प्रत्यक्ष अनुभव कर चुकने वाला । स्वाग = केवल बाहरी भेष के आधार पर साधु कहलाने वाला ।

## संत गरीबदास

गरीब-पंथ के प्रवर्त्तक संत गरीबदास का जन्म रोहतक जिले के छुडानी नामक गाँव मे, सं० १७७४ की बैशाख सुदि १५ को हुआ था । ये जाति के जाट थे और इनका व्यवसाय जमीदारी का था जिसका इन्होने कभी परित्याग नही किया । इन्होने आमरण गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत किया और साधु के भेष मे भी कभी नही रहे । इनके चार लडके और दो लडकियाँ थी । ये अंत तक अपने जन्म-स्थान मे ही रहकर सत्संग करते-कराते रहे और सं० १८३५ की भादो सुदि २ को इन्होने वही पर चोला छोडा । इनका देहात हो जाने पर इनके गुरुमुख चेले सलोतजी इनकी गद्दी पर बैठे थे, किंतु आज तक वहाँ सभी वंश-परंपरानुसार ही बैठते है । इनका स्वभाव अत्यंत सीधा-सादा था और ये क्षमाशील व्यक्ति थे । कहा जाता है कि इन्हे किसी साधु ने, केवल १३ वर्ष की अवस्था मे, बहुत प्रभावित कर लिया था और ये तभी से संतमत की ओर आकृष्ट हो गये थे । परंतु एक दूसरा अनुमान इस प्रकार का भी किया जाता है कि सर्वप्रथम, इन्हे स्वयं कबीर साहब ने ही स्वप्न देकर दीक्षित किया था । जो हो, गरीबदास ने स्पष्ट शब्दों में कबीर साहब को अपनी रचनाओ मे अनेक स्थलो पर अपना गुरु स्वीकार किया है ।

गरीबदास की रचनाओ की संख्या बहुत बडी बतलायी जाती है । प्रयाग 'बेलवेडियर प्रेस' द्वारा उनकी चुनी हुई बानियो का एक संग्रह 'गरीबदासजी की बानी' के नाम से प्रकाशित हुआ है जिसमे उनकी साखियों, सवैयो, पदो आदि के उदाहरण है । उनकी रचनाओ पर कबीर साहब के सिद्धांतो की छाप स्पष्ट लक्षित होती है और उनकी शैली भी प्रायः उन्ही की है । उनके परमात्मा 'सत्त पुरुष' है जो 'निरगुन' एवं 'सरगुन' दोनों से ही भिन्न और परे की वस्तु है । वह 'पारब्रह्म महबूब' हमारे पिंड में भी वर्तमान है, जिस कारण स्वानुभूति द्वारा उसका परिचय पा लेना नितात आवश्यक है । इसके लिए उन्होने सुरत, निरत, मन एवं पवन—इन चारो के समीकरण की साधना भी बतलायी है, किंतु उनके अनुसार इसमे भी सफलता तभी हो सकती है जब हमारे भीतर पूर्ण विश्वास का अस्तित्व हो । साहब का परमात्मा 'परतीत' के सिवाय कुछ नही है । सत गरीबदास ने संतो एव भक्तो के नाम बहुत बार लिये हैं और उनके दृष्टातो द्वारा अपनी बाते प्रमाणित की है । कबीर साहब के प्रति उनकी बडी गहरी निष्ठा है और उनमे वे वस्तुतः, 'तेज पुंज' परमात्म तत्त्व के ही दर्शन करते है । उनकी भाषा पर पंजाबीपन का प्रभाव है, किंतु वह भी इतना अधिक नही है जिससे किसी कठिनाई का अनुभव किया जा सके ।

## पद

आत्मस्वरूप ( १ )

सेस सहस मुख गावै साधो, सेस सहस मुख गावै ।।टेक।।
ब्रह्मा बिस्नु महेसर थाके, नारद नाद बजावै ।
सनक सनंदन ध्यान धरत है, दृष्ट मुष्ट नहि आवै ।।१।।

लघु दीरघ कछु कहा न जाई, जो पावै सो पावै ।
जो जूनी कू कैसे दरसै, गौरज सीस चढ़ावै ।।२।।

ब्रह्म रघ्र का घाट जहा है, उलट खेचरी लावै ।
सहस कमल दल झिलमिल रंगा, चोखा फूल चुवावै ।।३।।

गंगा जमन मद्ध सरसुती, चरन कमल से आवै ।
परवी कोटि परम पद माही, सुख के सागर न्हावै ।।४।।

सुरत निरत मन पौन पदारथ, चारो तत्त मिलावै ।
आकासै उड चलै बिहंगम, गंगन मंडल कू धावै ।।५।।

मोर मुकुट पीतावर राजै, कोटि कला छवि छावै ।
अवरन वरन तासु के नाही, विचरत है निरदावै ।।६।।

विनही चरनौ चलै चिदानंद, विन मुख बैन सुनावै ।
गरीवदास यह अकथ कहानी, ज्यू गूगा गुड खावै ।।७।।

जो जूनी = जीव योनि । खेचरी = एक प्रकार की मुद्रा । परवी = पर्व । निर-दावै = बिना किसी प्रकार का दावा करता हुआ ।

साधु ( २ )

जो सूते सो जना विगूते, जागे सोई जगे है ।।टेक।।
सूरे तेई नगर पहुँचे, कायर उलट भगे हैं ।
नौवें द्वारे दरस दरीवा, दसवें ध्यान लगे है ।।१।।

सुन्न सहर मे हुई सगाई, हमारे हंस मंगे हैं ।
निरगुन नाम निरालव चीन्हो, हमरे साध सगे हैं ।।२।।

विन मुख वानी सतगुरु गावै, नाही दस्त पगे हैं ।
दास गरीव अमरपुर डेरे, संत के दाग दगे हैं ।।३।।

विगूते = असमजस मे पड़ते हैं । दरीवा = हाट, चौमुहानी । मगे है = मंगनी हुई है । पगे = पैर ।

## रेखता

देवही नही तौ सेव किसकी करू,
किसे पूजू कोई नाहि दूजा ।
करता ही नही तौ किरत किसकी करू,
पिंड ब्रह्मांड मे एक सूझा ।।१।।

जागाही नही तौ जाग किसकू कहूँ,
सोताही नही किसकू जगाऊं।
खोया ही नही तौ खोज किसका करूं,
बिछुडा ही नही किसे ढूढ लाऊ ॥२॥
बोलता संग औ डोलता है नही,
कला के कोट (अलख) छिप रहा प्यारा।
गैब से आया औ गैब छिप जायगा,
गैब ही गैब रचिया पसारा ॥३॥
प्रानकू सोध कर मूलकू दर गहो,
वेद के धुंध से अलख न्यारा।
वेद कुरान कू छाड दे बावरे,
नूर ही नूर कर ले जुहारा ॥४॥
करमना भरमना छाड दे बावरे,
छाड दे बरत इक बैठ ठाही।
दास गरीब परतीत ही तैं कहै,
ब्रह्माड की जोत इस पिंड माही ॥५॥

किरत=कीर्त्तन। धुंध=धुधलापन, अँधेरा। जुहारा=अभिवादन।

## अरिल्ल

### ( १ )

क्या राजा क्या रेत अतीत अतीम रे।
जोधा गये अपार न चम्पी सीम रे ॥१॥
यह दुनिया संसार बताशा खाड का।
जोरा पीवे घोर बिसरजन माड का ॥२॥
काम क्रोध मद लोभ बटाऊ लूटही।
हिरस खुदी घर माहि सुबहु बिष कूटही ॥३॥
ससा सोग सरीर सुरसरी बहत है।
नाही चौदह भुवन, गमन मे रहत है ॥४॥
दुरमत दोजख माहि बलै बहु भांत है।
सतगुरु भेंटा होय तो निःचै सात है ॥५॥
आजिज जीव अनाथ परा है बंद मे।
हरे हा, कहता दास गरीब जगत सब फंद मे ॥६॥

### ( २ )

सांवत औ मंडलीक गये बहु सूर रे।
राजा रंक अपार मिले सब धूर रे ॥१॥
रूई लपेटी आग मे अंगीठी आठ रे।
कोतवाल घट माहि मारता काठ रे ॥२॥

नरक बहै नौ द्वार देहरा गंध रे।
क्या देखा कलि माँहि पडा क्यू फंद रे ॥३॥
हासिल का घर दूर हजूर न चालता।
हरे हा, कहता दास गरीब हटी मे लाल था ॥४॥

रेत=रैयत। अतीम=यतीम, अनाथ। न...रे=उस बेहद को न पा सके। जोरा...माडका=फिर भी मनुष्य माड का धोवन मात्र ही पिया करता है। सुरसरी=नदी। बलै=जलता है। मारता...रे=काठ के छेद मे पैर डाल कर बंदी करना। हासिल=वास्तविक तत्व।

## रमैनी

आदि सनातन पंथ हमारा।
जानत नाही यह संसारा ॥१॥
पंथो सेंती पथ अलहदा।
भेखो बीच पडा है वहदा ॥२॥
षट दरसन सब खटपट होई।
हमारा पंथ न पावै कोई ॥३॥
हिन्दू तुरक कदर नहिं जाने।
रोजा ग्यारस करै धिक ताने ॥४॥
दोनो दीन यकीन न आसा।
वे पूरब वे पच्छिम निवासा ॥५॥
दुहूं दीन का छोडा लेखा।
उत्तर दक्खिन मे हम देखा ॥६॥
गरीब दास हम नि'चै जाना।
चारो खूट दसो दिस घ्याना ॥७॥

वहदा=वाद-विवाद। ग्यारस=एकादशी व्रत। ताने=उन्हे।

## साखी

आध घडी की अध घड़ी, आध घडी की आध।
साधू सेंती गोसटी, जो कीजै सो लाभ ॥१॥
आदि समय चेता नही, अत समय अंधियार।
मद्ध समय माया रते, पाकर लिये गंवार ॥२॥
ऐसा अंजन आजिये, सूझै त्रिभुवन राय।
कामधेनु अरु कलप वृच्छ, घटही माहि लखाय ॥३॥
पंछी उडे अकास कू, कितकू कीन्हा गौन।
यह मन ऐसा जात है, जैसे बुदबुद पौन ॥४॥
ऐसे लाहा लीजिए, संत समागम सेव।
सतगुरु साहब एक है, तीनो अलख अभेव ॥५॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, सुरत सिंधु के माह।
सब्द सरूपी अंग है, पिंड प्रान नहिं छांह ॥६॥

ऐसा सतगुरु हम मिला, सुरत सिंधु के नाल ।
गमन किया परलोक से, अलल पच्छ की चाल ॥७॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, तेज पुज के अंग ।
झिलमिल नूर जहूर है, रूप रेख नहिं रंग ॥८॥

साहब से सतगुरु भये, सतगुरु से भये साध ।
ये तीनो अंग एक है, गति कछु अगम अगाध ॥९॥
सतगुरु पूरन ब्रह्म है, सतगुरु आप अलेख ।
सतगुरु रमता राम है, यामे मीन न मेख ॥१०॥

अलल पंख अनुराग है, सुन्न मंडल रह थीर ।
दास गरीब उधारिया, सतगुरु मिले कबीर ॥११॥
अल्लह अबिगत राम है, बेचगून चित माहिं ।
सब्द अतीत अगाध है, निरगुन सरगुन नाहिं ॥१२॥

साहब साहब क्या करै, साहब है परतीत ।
भैस सीग साहब भया, पांडे गावे गीत ॥१३॥
फूल सही सरगुन कहा, निरगुन गंध सुगंध ।
मन माली के बाग मे, भंवर रहा कंह बंध ॥१४॥

नाम जपा तो क्या भया, उरमे नही यकीन ।
चोर मुसै घर लुटही, पाच पचीसों तीन ॥१५॥
सुमिरन तबही जानिये, जब रोम-रोम धुनि होय ।
कुज कमल में बैठ कर, माला फेरै सोय ॥१६॥

सुरत निरत मन पवन कू, करो एकत्तर चार ।
द्वादस उलट समोय ले, दिल अंदर दीदार ॥१७॥
चार पदारथ महल मे, सुरत निरत मन पौन ।
सिव द्वारा खलिहै जबै, दरसै चौदह भौन ॥१८॥

जित सेंती दम ऊचरै, सुरत तहाई लाय ।
नामी कुडल नाद है, त्रिकुटी कमल समाय ॥१९॥
सनकादिक सेवक करै, सुकदे बोले साख ।
कोटि ग्रंथ का अरथ है, सुरत ठिकाने राख ॥२०॥

जल का महल बनाइया, धन समरथ साईं ।
कारीगर कुरबान जा, कुछ कीमत नाईं ॥२१॥
बैराग नाम है त्याग का, पाच पचीसौ संग ।
ऊपर की केंचल तजी, अंतर विषय भुअंग ॥२२॥

नित ही जामै नित मरै, ससय माहिं सरीर ।
जिनका संसा मिट गया, सो पीरन सिर पीर ॥२३॥
लौ लागी तब जानिये, हरदम नाम उचार ।
एकै मन एकै दिसा, साईं के दरबार ॥२४॥

ज्ञान बिचार बिबेक बिन, क्यो दम तोरै स्वास ।
कहा होत हरि नाम सू, जो दिल न बिस्वास ॥२५॥

ऐसी जरना चाहिए, ज्यो अगिन तत्त मे होय ।
जो कछु परै सो सब जरै, बुरा न बाचै कोय ॥२६॥

ऐसी जरना चाहिए, ज्यो चंदन के अंग ।
मुख से कछू न कहत है तनकू खात भअंग ॥२७॥
साई सरीखे संत है, यामे मीन न मेख ।
परदा अंग अनादि है, बाहर भीतर एक ॥२८॥

साई सरीखे साध है, इन सम नहि और ।
संत करै सोइ होत है, साहब अपनी ठौर ॥२९॥
साध समुदर कमल गति, माहे साई गंध ।
जिनमे दूजो भिन्न क्या, सो साधू निरबध ॥३०॥

साधू ..गोसटी=सत्सग । पाकर=एक प्रकार का सन्निपात ज्वर जिसमें वात, कफ एवं पित्त तीनो के बलाबल मे उपाधियाँ होती है । बुदबुद=बबूला । नाल=निकट । बेचगून =बेचून, अखड । भैंस...गीत=भैस के दृढ ध्यान मे मग्न पाडे के अनुसार । समोयले=लीन कर दे । कारीगर...जा = उस कारीगर को प्राण न्योछावर है । निरबंध=मुक्त ।

## संत दरियादास (बिहारवाले)

दरियादास का जन्म बिहार प्रात के धरकंधा नामक गाँव के मुस्लिम-परिवार मे हुआ था जो पहले उज्जैन-वशी क्षत्रिय रह चुका था । 'दरिया-सागर' के संपादक इनका जन्म-काल स० १७३१ मे ठहराते है, किंतु दलदास दरियापंथी के अनुसार वह स० १६९१ मे होना चाहिए । इनके मृत्यु-काल (सं० १८३७) के विषय में मतभेद नही जान पडता । अतएव पहले अनुमान के ये अपने देहावसान के समय, यदि १०६ वर्ष के रहते है तो दूसरे के अनुसार इनकी अवस्था १४६ वर्ष की हो जाती है जो अधिक कही जा सकती है। इनका विवाह केवल ९ वर्ष की अवस्था मे हुआ था, १५वें वर्ष मे इन्हे वैराग्य हुआ था । २० वर्ष में इनके हृदय मे भक्ति का पूर्ण विकास हो आया और ३०वें मे इन्होने 'तख्त पर बैठ कर' उपदेश देना आरंभ किया था । प्रसिद्ध है कि ये अपना स्थान छोड कर अपने जीवन भर कही अन्यत्र नही गये और वही इन्होने अपना चोला भी छोडा । फिर भी, दरियापथियो के अनुसार, इनका कुछ दिनों के लिए केवल काशी, मगहर, वाईसो (जि० गाजीपुर), हरदी तथा लहठान (जि० शाहाबाद) जाना भी मानते है ।

दरियादास की लगभग २० रचनाएँ बतलायी जाती है जिनमे से 'दरिया-सागर' एवं 'ज्ञानदीपक' मात्र प्रकाशित है । कुछ फुटकर पदो एवं साखियो आदि का भी एक छोटा-सा सग्रह 'वेलवेडियर प्रेस' द्वारा प्रकाशित हुआ है । दरियादास की रचनाओ पर कबीर साहब का प्रभाव बहुत स्पष्ट है और इनकी बहुत-सी बातें तो कबीर-पंथ की धारणाओ से मेल खाती है । ये अपने को कबीर साहब का अवतार मानते हुए से भी जान पडते है । जो हो, इनमे साप्रदायिकता की मात्रा अधिक दीख पडती है । दरियादास ने 'स्वरविज्ञान' पर भी एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है जो बहुत कुछ प्रचलित परपरा का ही अनुसरण है । इनकी रचनाओ मे दाम्पत्य-भाव की

झलक प्रायः सर्वत्र लक्षित होती है जो इनकी प्रेमाभक्ति के कारण ही अधिक संभव है। इनकी रचनाओं मे जितना प्रयत्न रहस्य-परिचय की ओर किया गया है, उतना भाषा की सजावट के लिए नही।

## पद

साधना-महत्त्व (१)

अवधू कहे सुने का होई।
जो कोई सब्द अनाहद बूझै, गुरु ज्ञानी है सोई ॥१॥
थाके बाट चलत न थाके, थाके मुनिवर लोई।
प्यासा वाला के मिले न पानी, अनप्यासे जल बोही ॥२॥

पहले बीज फूल फल लागा, फूल देखि बीज नसाई।
जहा बास तहा भौरा नाही, अनबासे लपटाई ॥३॥
जहा गगन तहं तारा नाही, चद सूरका मेला।
जहा सुरज तहा पवन न पानी, येहि बिधि अबिगति खेला ॥४॥

जब सरूप तब रूप न देखे, जहा छाह तहा घूपा।
बिनु जल नदिया माछ बियानी, इक बकता इक चूपा ॥५॥
बृच्छ एक तेतिस तन लागा, अमृत फल बिनु पीया ॥
कहै दरिया कोइ सत बिबेकी, मूवत उठिके जीया ॥६॥

यह पद सुरत शब्द योग की साधना, उसकी सिद्धि तथा संत की स्थिति का वर्णन करने के लिए लिखा गया है। इसमे उल्टवासी की शैली के अनुसार उसकी प्रायः सारी बातों को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। बोही = पूर्णतः डूबा हुआ, मग्न।

स्व (२)

जहँ तक दृष्टि लखन मे आवै, सो माया का चीन्हा।
का निरगुन का सरगुन कहिये, वै तो दोउ ते भीना ॥१॥
दीपक जरै प्रकास जहा तक, बाती तेल मिलाया।
जाकी जोति जगत मे जाहिर, भेद सो बिरले पाया ॥२॥

परस पखान पारस जो कहिये, सोना जुगुति बनाई।
जेहि पारस से पारस भयऊ, सो संतन ने गाई ॥३॥
परिमल बास परासहि बेधे, कह वो चदन हूआ।
जेहि पारस से परिमल भयऊ, सो कबही नहि मूआ ॥४॥

जो पारस भृंगी यह जाने, कीट से भृंग बनाई।
वाका भेद लखै नहि कोई, अपने जाति मिलाई ॥५॥
सनद परी मत गुरु के पासे, भरमि रहा सब कोई।
बिरला उलटि आपको चीन्हा, हंस बिमल मल धोई ॥६॥

जल थल जीव जहा लगि व्यापक, वेद कितेबे भाखे।
वाकी सनद नबहु नहि आई, गुम अमाने राखे ॥७॥

सतगुरु ज्ञान सदा सिर ऊपर, जो यह भेद बतावै ।
कहै दरिया यह कथनी मथनी, बहु प्रकार से गावै ।।८।।

जहं...आवै=जहाँ तक वस्तुएं दृष्टिगोचर होती हैं । सनद=प्रमाण, प्रमाणित करने की युक्ति । कितेबे=इस्लामियो, ईसाइयो तथा यहूदियो के धर्मग्रंथो मे । अमाने=उस अपरिमित वा इयत्ता-शून्य को । मथनी=सारतत्त्व निकालने की क्रिया ।

पूर्णयोग ( ३ )

मानु सब्द जो कर विवेक, अगम पुरुष जह रूप न रेख ।।१।।
अठदल कमल सुरति लौ लाय, अछपा जपि के मन समुझाय ।
भवर गुफा मे उलटि जाय, जगमग जोति रहे छबि छाय ।।२।।

बंकनाल गहि खेंचे सूत, चमके बिजुली मोती बहूत ।
सेत घटा चहु ओर घनघोर, अजरा जहवा होय अंजोर ।।३।।
अमिय कंवल निज करो विचार, चुवत बुद जह अमृत धार ।
छव चक्र खोजि करो निवास, मूल चक्र जहं जिवको बास ।।४।।

काया खोजि जोगि भुलान, काया बाहर पद निर्बान ।
सतगुरु सब्द जो करे खोज, कहै दरिया तब पूरन जोग ।।५।।

अछपा=अजपा । अमिय कंवल=सहस्रार । छव चक्र...बास=छहो चक्रो का भेदन कर उस मूल चक्र मे ही स्थिर हो जाओ जहाँ जीवात्मा का अपना स्थान है । काया=ठेठ पिंड के ही भीतर त्रिकुटी से नीचे की ओर ।

स्वानुभूति ( ४ )

हरिजन प्रेम जुगुति ललचाना ।
सतगुरु सब्द हिये जब दीसै, सेत धुजा फहराना ।।१।।
हृदे कंवल अनुराग उठे जब, गरजि घुमरि घहराना ।
अमृत बुद विमल तह झलकै, रिमझिमि सघन सोहाना ।।२।।

बिगसित कवल सहसदल तहवा, मन मधुकर लपटाना ।
बिलगि बिहरि फिर रहत एकरस, गगन मधे ठहराना ।।३।।
उछरत सिन्धु असख तरग लहि, लहरि अनेक समाना ।
लाल जवाहिर मोती तामे, किमि करि करत बखाना ।।४।।

विवरन बिलगि हंस गुन राजित, मानसरोवर जाना ।
मंजन मैलि भई तन निर्मल, बहुरि न मैल समाना ।।५।।
एक से अनंत अनंत से एक है, एक मे अनंत समाना ।
कहै दरिया दिल चसमा करिलै, रतन झरोखे जाना ।।६।।

सघन=अविरल, एक मे एक लगा हुआ-सा । बिलगि ..एकरस=पृथकत्व की अनुभूति करके एकरमता का आनंद उठाता हुआ । उछरत...समाना=आनंदोल्लास की अनत लहरें उठती तथा विलीन होती रहती है ।

आत्मोपलब्धि ( ५ )

मैं कुलवंती खसम पियारी, जाचत तू लै दीपक वारी ॥१॥
गंध सुगंध थार भरि लीन्हा, चंदन चर्चित आरति कीन्हा।
फूलन सेज सुगंध बिछायो, आपन पिया पलग पौढायो ॥२॥
सेवत चरन रैन गइ बीती, प्रेम प्रीति तुमही सो रीती।
कहै दरिया ऐसो चित लागा, भई सुलच्छनि प्रेम अनुरागा ॥३॥

## रेखता

पेंड को पकड तब डार पालो मिलै,
डार गहि पकड नहिं पेड यारा।
देख दिव दृष्टि असमान मे चन्द्र है,
चन्द्र की जोति अनगिनित तारा ॥
आदि औ अंत सब मध्य है मूल मे,
मूल मे फूल धौं केति डारा।
नाम निर्लेप निर्गुन निर्मल बरै,
एक से अनत सब जगत सारा ॥१॥
पढि वेद कितेब विस्तार वक्ता कथै,
हारि बेचून वह नूर न्यारा।
नि पेच निर्वान निःकर्म निर्भर्म वह,
एक सर्वज्ञ सत नाम प्यारा ॥
तजु नाम मनी करु काम को काबु यह,
खोजु सतगुरु भरपूर सूरा।
असमान कै बुंद गरकाव हूआ,
दरियाव की लहरि कहि बहुरि मूरा ॥२॥

पेंड=वृक्ष का तना। पालो=पल्लव, पत्तियाँ। यारा=हे मित्र। निःपेच=बिना किसी उलझन का। मनी=अहंकार। काबु=काबू मे, वश में। गरकाव=निमग्न, लीन। मूरा=मुडा।

## साखी

है मगु साफ बराबरे, मंदा लोचन माहि।
कवन दोष मगु भान कहं, आपे सूझत नाहिं ॥१॥
पहिले गुड सक्कर हुआ, चीनी मिसरी कीन्हि।
मिसरी से कंदा भयो, यही सोहागिनि चीन्हि ॥२॥
दरिया तन से नहिं जुदा, सब किछु तन के माहि।
जोग जुगत सो पाइये, बिना जुगति किछु नाहि ॥३॥
तीनि लोक के ऊपरे, अभय लोक विस्तार।
सत्त सुकृत परवाना पावै, पहुँचे जाय करार ॥४॥

एकै सो अनंत भौ, फूटि डारि बिस्तार।
अंतेहू फिरि एक है, ताहि खोजु निज सार ॥५॥

माला टोपी भेष नहिं, नहिं सोना सिंगार।
सदा भाव सतसग है, जो कोइ गहै करार ॥६॥

कदा=एक प्रकार की जमायी हुई चीनी की मिठाई। अभय लोक=परम पद जिसे दरिया दास ने अन्यत्र छपलोक, अमरपुर जैसे नामो द्वारा भी निर्दिष्ट किया है। सत्त सुकृत=सत्य एव सत्कार्य, कबीर पथानुसार कबीर साहब के सत्ययुगीन अवतार का नाम। परवाना=आज्ञापत्र। करार=सर्वोच्च किनारा, सबसे ऊँचा पद। सदा भाव=सादी वेशभूषा।

## संत चरणदास

संत चरणदास का जन्म मेवात के अतर्गत डेहरा नामक स्थान के एक दूसरे वैश्य-कुल मे हुआ था। इनका पूर्व नाम रणजीत था और ये सं० १७६० की भाद्रपद शुक्ल तृतीया, मंगलवार को उत्पन्न हुए थे। अपने पिता का देहात हो जाने पर ये अपने नाना के घर दिल्ली मे रहने लगे जिन्होंने इन्हे नौकरी मे लगाना चाहा। परतु पाँच-सात वर्षों की अवस्था मे ही इन्हे कुछ आध्यात्मिक बातो से परिचय हो गया था। इस कारण इनके नाना कृतकार्य न हो सके और ये योगाभ्यास मे लग गए। इन्होने अपने गुरु का नाम शुकदेव बतलाया है जो प्रसिद्ध व्यास-पुत्र शुकदेव मुनि से अभिन्न कहे गए है। फिर भी कुछ लोग उन्हे मुजफ्फरनगर के निकट वर्तमान शुकरताल गाँव का निवासी सुखदेवदास अथवा सुखानंद समझते है। संत चरणदास ने गुरु से दीक्षित होकर कुछ दिनो तक तीर्थाटन किया और बहुत दिनो तक व्रजमडल मे निवास कर 'श्रीमद्भागवत' का गभीर अध्ययन किया। उस ग्रन्थ का एकादशवाँ स्कध इनके जीवन-दर्शन का एकमात्र आदर्श-सा जान पड़ता है। इनके अतिम ५० वर्ष अपने मत के प्रचार मे ही बीते और दिल्ली मे ही रहते हुए इन्होने स० १८३९ को अगहन सुदि ४ को अपना चोला छोडा।

संत चरणदास को ग्रन्थ-रचना का अच्छा अभ्यास था। इन्होने लगभग २१ ग्रंथ लिखे थे। इनमे से १५ का एक संग्रह 'श्री वेंकटेश्वर प्रेस' बंबई द्वारा प्रकाशित हुआ है और 'नवल किशोर प्रेस' लखनऊ से भी सबके सब निकल चुके है। इनके मुख्य १२ ग्रंथो के प्रधान विषय योग-साधना, भक्तियोग एव ब्रह्मज्ञान है और इस बात को इन्होने भी स्पष्ट शब्दो मे कहा है। इन्होने 'योग-समाधि' को ही एक प्रकार से 'ज्ञान-समाधि' की भी सज्ञा दी है और ब्रज जैसे तीर्थों को अभौतिक रूप दिया है। ये नैतिक शुद्धता के भी पूर्ण पक्षपाती है और चित्तशुद्धि, प्रेम, श्रद्धा एवं सद्व्यवहार को उसका आधार मानते है। इनकी रचनाओ मे इनकी स्वानुभूति के साथ-साथ अध्ययनशीलता का भी परिचय मिलता है। इनकी वर्णन-शैली पर संत-परपरा के अन्य कवियो के अतिरिक्त सगुणोपासक भक्तो का भी प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इनके नाम से कुछ पुस्तकें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओ पर लिखी गई भी मिलती है।

## पद

सर्वव्यापी ( १ )

हरिको सकल निरतर पाया ।
माटी भाडे खाड खिलौने, ज्यौ तरवर मे छाया ॥१॥
ज्यों कंचन मे भूषण राजै, सूरत दर्पण माही ।
पुतली खंभ खंभ मे पुतली, दुतिया तौ कछु नाही ॥२॥
ज्यो लोहे मे जौहर परगट, सूतहि तानै बानै ।
ऐसे राम सकल घट माही, बिन सतगुरु नहि जानै ॥३॥
मेहंदी में रंग गंध फूलन मे, ऐसे ब्रह्म अरु माया ।
जल मे पाला पाले में जल, चरनदास दरसाया ॥४॥

ज्यों...परगट=जिस प्रकार लोहे के किसी धारदार हथियार मे उसकी ओप लक्षित होती है ।

अद्वैत भाव ( २ )

जबते एक एक करि माना ।
कौन कथे को सुनने हारा, कोहै किन पहिचाना ॥१॥
तब को ज्ञानी ज्ञान कहा है, ज्ञेय कहा ठहराना ।
ध्यानी ध्येय जहा लगि पइये, तहा न पइये ध्याना ॥२॥
जब कहा बंध मुक्त भुगतइया, काको आवन जाना ।
को सेवक अरु कौन सहायक, कहा लाभ कित हाना ॥३॥
जबको उपजै कौन मरत है, कौन करै पछिताना ।
को है जगत जगत को कर्त्ता, त्रैगुण को अस्थाना ॥४॥
तू तू तू अरु मैं मैं नाही, सब ही दे बिसराना ।
चरनदास शुकदेव कहा है, जो है सो भगवाना ॥५॥

ज्ञेय=जानी जाने वाली वस्तु । भुगतइया=भोक्ता । त्रैगुण को अस्थाना=रजोगुण, तमोगुण एवं सतोगुण नामक तीनो गुणो का आधार ।

चेतावनी ( ३ )

जग मे दो तारण को नीका ।
एक तौ ध्यान गुरू का कीजै, दूजै नाम धनीका ॥१॥
कोटि भाति करि निश्चय कीयो, संशय रहा न कोई ।
शास्त्र वेद औ पुराण टटोले, जिनमे निकसा सोई ॥२॥
इनही के पीछे सब जानौ, योग यह तप दाना ।
नौधिधि नौधा नेम प्रेम सब, भक्ति भाव अरु ज्ञाना ॥३॥
और सबै मत ऐसे मानो अन्न बिना भुस जैसे ।
कूटत कूटत बहुतै कूटा, भूख गई नहि तैसे ॥४॥

थोथा धर्म वही पहिचानौ, तामे ये दो नाही ।
चरनदास शुकदेव कहत है, समझि देखि मन माही ।।५।।

वही

( ४ )

भाई रे अवधि बीती जात ।
अंजुली जल घटत जैसे, तारे ज्यो परभात ।।१।।
स्वास पूजी गाठि तेरे, सो घटत दिन रात ।
साधु संगति पैठ लागी, ले लगै सोइ हाथ ।।२।।

बडो सौदा हरि संभारो, सुमिरि लीजै प्रात ।
काम क्रोध दलाल ठगिया, मत बनिज इन हाथ ।।३।।
लोभ मोह बजाज छलिया, लगे है तेरि घात ।
शब्द गुरु को राखि हिरदय, तौ दगा नहि खात ।।४।।

अपनी चतुराइ बुधि पर, मति फिरै इतरात ।
चरनदास शुकदेव चरनन, परस तजि कुल जात ।।५।।

परमपद

( ५ )

ऐसा देस दिवानारे लोगो, जाय सो माता होय ।
बिन मदिरा मतवारे झूमैं, जन्म मरन दुख खोय ।।१।।
कोटि चद सूरज उजियारो, रविससि पहुचत नाही ।
बिना सीप मोती अनमोलक, बहु दामिनि दमकाही ।।२।।

बिन ऋतु फूले फूल रहत है, अमृत रस फल पागे ।
पवन गवन बिन पवन बहत है, बिन बादर झरि लागे ।।३।।
अनहद शब्द भंवर गुजारै, संख पखावज बाजे ।
ताल घट मुरली घन घोरा, भेरि दमामे गाजे ।।४।।

सिद्धि गर्जना अतिही भारी, घुघरू गति झनकारैं ।
रभा नृत्य करै बिन पगसू, बिन पायल ठनकारैं ।।५।।
गुरु शुकदेव करै जब किरपा, ऐसो नगर दिखावैं ।
चरनदास वा पगके परसे, आवागमन नसावे ।।६।।

झरि लागे=वृष्टि हुआ करती है । रंभा=अप्सरा ।

### सवैया

आदिहु आनंद, अंतहु आनद, मध्यहु आनंद ऐसेहि जानो ।
बंदहु आनंद, मुक्तहु आनंद, आनद ज्ञान अज्ञान पिछानो ।।
लेटेहु आनंद बैठेहु आनद, डोलत आनंद, आनंद आनौ ।
चरनदास विचारि सबै कछु, आनद छाडिकै दुक्ख न ठानौ ।।१।।

आदिहु चेतन अंतहु चेतन, मध्यहु चेतन माया न देखी ।
ब्रह्म अद्वैत अखंड निरालभ, और न दूसरो आनंद ऐखी ।।
सिन्धु अथाह अपार विराजत, रूप न रंग नही कछु देखी ।
चरनदास नही, शुकदेव नही, तहंना कोइ मारग ना कोइ भेखी ।।२।।

श्वास उसास चलै जब आपहि, है जु अखंड टरै नहिं टारो।
भीतर बाहर है भरपूर सो ढूढौ, कहा नहिं नाहिन न्यारो॥
चरनदास कहैं गुरु भेद दियो, भ्रम दूरि भयो जु हुतो अतिभारो।
दृष्टि अदृष्टि जु रामको देखत, राम भयो पुनि देखन हारो॥३॥

निरालभ = अलभ्य। पखी = देखा। न्यारो = विलग।

## छप्पय

माला तिलक बनाय, पूर्व अरु पच्छिम दौरा।
नाभि कमल कस्तूरि, हिरन जंगल भो बौरा॥
चाद सूर्य थिर नही, नही थिर पवन न पानी।
तिरदेव थिर नही, नही थिर माया रानी॥
चरनदास लख दृष्टि भर, एक शब्द भरपूर है।
निरखि परखि ले निकट ही, कहन सुनन कू दूर है॥१॥

हिरन........बौरा = हिरन की भाँति जंगलो मे पागल बना घूमा।

## साखी

सतगुरु सब्दी लागिया, नावक का सा तीर।
कसकत है निकसत नही, होत प्रेम की पीर॥१॥
ऐसा सतगुरु कीजिए, जीवत डारै मारि।
जन्म जन्म की बासना, ताकू देवै जारि॥२॥
प्रेम छुटावै जक्त सू, प्रेम मिलावै राम।
प्रेम करै गति औरही, लै पहुँचै हरि धाम॥३॥
पीव चहौ कै मत चहौ, वह तौ पी की दास।
पिय के रंग राती रहै, जग सू होय उदास॥४॥
रंग होय तौ पीव को, आन पुरुष विष रूप।
छाह बुरी पर घरन की, अपनी भली जु धूप॥५॥
हद्द कहूं तौ है नही, बेहद कहूं तौ नाहिं।
ध्यान स्वरूपी कहत हौ, बैन सैन के माहिं॥६॥
मम हिरदय मे आय के, तुमही कियो प्रकास।
जो कछु कहौ सो तुम कहौ, मेरे मुख सो भास॥७॥
तप के बरस हजारहू, सत संगत घडि एक।
तौहू सरवरि ना करै, शुकदेव किया बिबेक॥८॥
अपने घर का दुख भला, परघर का सुख छार।
ऐसे जानै कुलवधू, सो सतवंती नार॥९॥
जग माहै ऐसे रहो, ज्यों अंबुज सर माहि।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहि॥१०॥
शील न उपजै खेत में, शील न हाट बिकाय।
जो हो पूरा टेक का, लेवै अंग उपजाय॥११॥

नावक = मधुमक्खी का डंक, एक प्रकार का छोटा, किन्तु तीखा बाण। जक्त

=जगत्, संसार। सतवंती=पतिव्रता। बरबर=बबूल। ले तीन=जो उसमे लीन होता है। चोकायल=चौकन्ना। साजै=सजाता। बुदगल=बुलबुला।

## संत शिवनारायण

संत शिवनारायण के जन्म और मरण की तिथियाँ अभी तक निश्चित रूप से विदित नहीं हैं। उनकी रचना 'संत सुन्दर' मे किये गए कतिपय उल्लेखो के आधार पर उनके जीवन-काल के विषय मे कुछ अनुमान किया जा सकता है। उस ग्रंथ मे स्पष्ट लिखा मिलता है कि जिस समय दिल्ली का सुलतान अहमद शाह आगरा मे रहा करता था और इलाहाबाद का सूबा गाजीपुर से आरम्भ होता था, उसी समय गाजीपुर जिले के परगना जहूराबाद मे, उसकी रचना सं० १८११ के अंतर्गत किसी समय हुई। उसी परगने के चंदवार नामक एक गाँव के किसी नरौनी क्षत्रिय कुल मे उनका जन्म भी हुआ था। उनके एक अन्य ग्रंथ 'गुरु अन्यास' से भी पता चलता है कि उसकी रचना स० १७९१ मे हुई थी, जबकि दिल्ली का बादशाह मुहम्मद शाह था। इस प्रकार संत शिवनारायण का जन्म-काल, अनुमानतः विक्रम की १८वी शती के तृतीय चरण मे किसी समय ठहराया जा सकता है। उधर शिवनारायणी संप्रदाय की एक पुस्तक 'मूल ग्रंथ' से भी प्रकट होता है कि उनका जन्म कार्त्तिक सुदि ३, बृहस्पतिवार को, आधी रात के समय रोहिणी नक्षत्र मे सं० १७७३ मे हुआ था। सात वर्ष की अवस्था मे उन्हे गुरु दुखहरण ने दीक्षित किया था और स० १८४८ मे वे मर थे। उनके पिता का नाम बाघराय, उनकी माता का नाम सुन्दरी, उनकी स्त्री का नाम सुमति कुवरि तथा उनके पुत्र एव पुत्री के भी नाम उसमें क्रमशः जैमल और सलीता दिये गए दीख पडते है। इनकी पुष्टि अभी तक अन्य आधारों पर भी नही हुई है। अपने गुरु का नाम उन्होने स्वयं भी दुखहरण बतलाया है जो उनके अनुयायियो के अनुसार ससना बहादुर (जि० बलिया) के थे।

संत शिवनारायण के चार प्रमुख शिष्यो ने उनके मत का प्रचार पहले-पहल आरम्भ किया था। कहा जाता है कि स्वयं उन्होने बादशाह मुहम्मदशाह तक को प्रभावित कर उससे अपने लिए एक मुहर प्रमाणस्वरूप ले ली थी। शिवनारायणी सप्रदाय का वर्मा, सीलोन, अदन, बिलोचिस्तान आदि देशो तक प्रचलित होना बतलाया जाता है। संत शिवनारायण की १६ रचनाएँ प्रसिद्ध है, किंतु उनमे से संभवत: 'गुरु अन्यास, शब्दावली, शब्द ग्रन्थ, सत विलास, लव-परवाना, सत अक्षरी एवं संत वजन' ही अभी तक प्रकाशित हो सकी है। अपनी पुस्तको मे उन्होने सबसे अधिक ध्यान, पूर्ण संत की स्थिति प्राप्त करने की ओर दिया है और उसे स्वानुभूति पर ही आश्रित बतलाया है। संत की उस दशा को वे 'सतदेश' की स्थिति के रूप मे अभिहित करते हैं और यह नाम भी वैसा ही प्रतीत होता है जैसा अन्य सतो के सतलोक, अमरलोक आदि अनेक नामो द्वारा प्रकट होता है। प्रत्येक मानव मे इनके अनुसार, चालीस प्रकार की त्रुटियां है जिन्हे दूर कर नैतिक आचरण अपना लेने पर वैसी स्थिति आप-से-आप आ सकती हैं। स्वावलंबन एवं स्वानुभूति संत शिवनारायण द्वारा बतलायी गई साधना के शिलाधार स्वरूप हैं। प्रत्येक व्यक्ति को सत्य का अनुभव, उसकी साधना एवं पहुँच के अनुपात से ही हुआ करता है, अतएव प्रत्येक की स्थिति भी, उनके अनुसार, पृथक्-पृथक् ही संभव है। उनकी रचनाओ मे प्राय एक ही प्रकार की बातें सर्वत्र कही गई दीख पडती हैं। फिर भी उनकी कथन-शैली बहुत ओजपूर्ण है। जान पडता है कि

अपनी अनुभूत बातो की महत्ता मे दृढ आस्था रखने के कारण, उन्होने उन्हे बार-बार एव भिन्न-भिन्न प्रकार से कहने की चेष्टा की है। उनकी भाषा भोजपुरी का उनकी रचनाओं पर बहुत प्रभाव है जिस कारण उनमे अधिक सरसता आ गई है।

पद

वास्तविक गुरु (१)

अंजन आजिए निज सोइ ॥टेक॥
जेहि अंजन से तिमिर नासे, दृष्टि निरमल होइ।
वैद सोइ जो पीर मिटावे, बहुरि पीर न होइ ॥१॥

धेनु सोइ जो आपु स्रवै, दूहिए बिनु नोइ।
अंबु सोइ जो प्यास मेटे, बहुरि प्यास न होइ ॥२॥
सरस साबुन सुरति धोबिन, मैलि डारे धोइ।
गुरू सोइ जो भ्रम टारैं, द्वैत डारैं धोइ ॥३॥

आवागमन के सोच मेटैं, सब्द सरूपी होइ।
शिव नारायण एक दरसे, एकतार जो होइ ॥४॥

स्रवै=दूध देवे। नोइ=गाय के पिछले पैर बाँधने की रस्सी। अंबु=पानी। सरस=जिसमें विकारो को दूर कर देने का गुण हो। सुरति=आत्मा। एकतार=निरत।

उपदेश (२)

सिपाही मन दूर खेलन मत जैये ॥टेक॥
घट ही मे गगा घट ही मे जमुना, तेहि बिच बैठि नहैये ॥
अछैहो विरिछ की शीतल जुड़ छहिया, तेहि तरे बैठि नहैये ॥
मात पिता तेरे घटही मे, निति उठि दरसन पैये।
शिव नारायन कहि समुझावे, गुरु के सबद हिये कैये ॥१॥

दूर=अन्यत्र। खेलन.. जैये=अपने को व्यस्त न करो। घट ही...नहैये=शरीर के ही भीतर गंगा एवं यमुना की भाँति मोक्षदायिका ईडा एवं पिंगला नाम की नाड़ियाँ हैं, उनकी मध्यवर्त्तिनी सुषुम्ना मे प्रवेश कर लीन हो जाओ। अछैहो विरिछ=अक्षय वृक्ष, परमात्म तत्त्व।

मिलन (३)

प्रेम मंगल आलि सब मिलि गाई ॥टेक॥
घर घर कोहबर रुचिर बनाई, जहां बैठे दुलहिनि दुलहा सोहाई।
सब सखियाँ मिलि मन मत लाई, दुलहा के रूप देखि कछु न सोहाई।
दुखहरन गुरु सब सुधि पाई, देस चंद्रवार मे सुरति लगाई ॥१॥

घर...बनाइ=हृदय-क्षेत्र को ही वर-वधू के मिलन का सुदर स्थान ठीक किया। मन मत लाई=एकमत हो गई। देस चद्रवार=ब्रह्माड का वह स्थान जहाँ से अमृत-स्राव होता है। सत शिवनारायण के जन्म-स्थान का नाम भी चद्रवार है।

मनोमारण-महत्त्व (४)

विषय वासना छुटत न मन से, नाहक नर वैराग करो ।
जैसे मीन वाफु बसी मंह, जिम्या कारन प्रान हरो ।
सो रसना वस कियो न जोगी, नाहक इद्री साधि मरो ॥१॥

जैसे मृगा चरत जगल मे, न काहू सो वैर करो ।
बसी के तान लगी श्रवननि मे, व्याधा बान सो प्रान हरो ॥२॥
जैसे फतिगा परै दीप मे, नैना कारन प्रान हरो ।
नासा कारन भंवर नास भयो, पाचो रसवस पाच मरो ॥३॥

तीरथ जाके पाहन पूजे, मौनी ह्वै के ध्यान धरो ।
शीवनरायन ई सभ झूठा, जब लग मन नहि हाथ करो ॥४॥

पाचो रसवस = पचेंद्रियो के स्वाद के कारण ।

चेतावनी (५)

सुनु सुनु रे मन कहल मोर । चेत करहु घर जहा तोर ॥टेक॥
मोह भया भ्रम जल गंभीर । बहै भयावन रहै न थीर ॥
लहरि झकोरै लै दूसरि आस । काल करम कर निकट बास ॥१॥

आपु देखि पंथ धरु सवेर । का भुलि भुलि जग करु अबेर ।
साझ समै जब घेरु अंधार । तब कैसे जइब उतर पार ॥२॥
फिर पछतइब समै जात । चलहु आपन घर मानहु बात ।
देश आपना आपन जोग । जहा बसहि सब सत लोग ॥३॥

अपन अपन घर करत वास । केहु न काहुक करत आस ।
शीवनरायन शब्द विचारी । अनत सखिन संग रचु धमारी ॥४॥

लै...आस = दूसरो के कथन मात्र पर विश्वास कर चलने से ।

साखी

संतमंत सबत परे, जोग भोग सब जीति ।
अदग अनद अभै अधर, पूरन पदारथ प्रीति ॥१॥
चालिस भरि करि चाशि धरि, तत्तु तौलु करु सेर ।
ह्वै रहु पूरन एक मन, छाडु करम सब फेर ॥२॥
एक एक देख्यो सकल घट, जैसे चंद की छाह ।
वैसे जानो काल जग, एक एक सब माह ॥३॥
जह लगि आये जगत मह, नाम चीन्ह नहि कोय ।
नाम चिन्हे तौ पार ह्वै, सत कहावत सोय ॥४॥
दुनिया को मद कर्म है, संतन को मद प्रेम ।
प्रेम पाय तौ पार है, छुटै कर्म अरु नेम ॥५॥
जब मन बहकै उडि चलै, तब आनै ब्रह्म ग्यान ॥
ग्यान खडग के देखते, डरपे मनके प्रान ॥६॥

निराधार आधार नहिं, बिन अधार की राह।
शिवनारायन देश कह, आपुहि आपु निबाह ॥७॥

संतमंत=संतमत। अदग=शुभ्र, अमिश्रित। पूरन पदार्थ=पूर्ण पदार्थ, परमतत्त्व, परमात्मा। चालिस...धरि=चालिस प्रकार के नैतिक गुणो के अनुसार आचरण करो। छाह=प्रतिबिंब। एक-एक=वही एक परमात्मा ही। निराधार... राह=संतों का मार्ग किसी के आश्रय वा अवलंब की अपेक्षा नही करता। देश... निबाह=संतों की स्थिति की उपलब्धि स्वानुभूति द्वारा ही संभव है।

## संत भीखा साहब

भीखा साहब का पूर्व नाम भीखानंद चौबे था और उनका जन्म, जिला आजमगढ़ के परगना मुहम्मदाबाद के अंतर्गत खानपुर वोहना गाँव मे हुआ था। आठ वर्ष की अवस्था से ही ये साधुओं के संपर्क मे आने लगे थे और बारहवें वर्ष विवाह के समय घर छोड कर भाग निकले थे। भ्रमण करते हुए काशी पहुँचकर इन्होने पहले ज्ञानार्जन करना चाहा, किन्तु जी न लगने के कारण वहाँ से घर की ओर लौट पड़े। मार्ग में इन्हे, गाजीपुर जिले के सैदपुर भीतरी परगने के अभुआरा गाँव के एक मंदिर मे किसी गवैये के मुख से एक ध्रुपद गायी जाती सुन पड़ी। उसके द्वारा ये अत्यंत प्रभावित हो गये और उसके रचयिता का पता पूछ कर उसकी खोज में आगे बढे। उस पद के बनाने वाले संत गुलाल साहब थे जो उसी जिले के भुरकुडा गाँव में अपने शिष्यों के साथ सत्संग करते हुए मिले। ये उनके व्यक्तित्व और व्यवहार के प्रभाव में आकर आनंदित हो उठे और उनके उपदेशो को श्रवण कर उनके शिष्य तक बन गए। इन सभी बातों का वर्णन इन्होने अपने शब्दो में भी किया है और अपने गुरु गुलाल साहब की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। भीखा साहब तब से बराबर वही रहने लगे और गुलाल साहब का देहात हो जाने पर उनके उत्तराधिकारी भी बने। ये सं० १८१७ से लेकर ३१ वर्षो तक भुरकुडा की गद्दी पर आसीन रहे और सं० १८४८ में इन्होने शरीर छोड़ा। इनके जीवन की अन्य घटनाओं का कोई विवरण अभी तक नही मिलता।

भीखा साहब की रचनाओं मे १. राम कुडलिया, २. राम सहस्र नाम, ३. राम सबद, ४ रामराग, ४ राम कवित्त और ६ भगतबच्छावली प्रसिद्ध हैं। किंतु इनका अधिकाश 'बेलवेडियर प्रेस' द्वारा प्रकाशित 'भीखा साहब की बानी' तथा भुरकुडा केंद्र की ओर से छपी हुई 'महात्माओं की वाणी' में पाया जाता है और उनमे कुछ इनकी अन्य फुटकर रचनाएँ भी मिलती हैं। इसका सबसे बडा ग्रंथ 'रामसबद' तथा इनकी 'भगतबच्छावली' अभी तक कदाचित् कही से भी प्रकाशित नही है। भीखा साहब की रचनाओं मे उनके आत्मनिवेदन का भाव बहुत स्पष्ट रूप मे लक्षित होता है। इनकी दार्शनिक विचारधारा वेदात के सिद्धातो द्वारा प्रभावित जान पडती है जिसे कही-कहो इन्होंने किसी-न-किसी रूप मे स्वीकार कर लिया है। इनकी भाषा मे भी इनके गुरु गुलाल साहब की भाँति, भोजपुरी के शब्दो तथा मुहावरो के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इनकी रचना मे गेयत्व भी कम नही। इन्होने विविध छंदो के सफल प्रयोग किये हैं और इनकी वर्णन-शैली सरल एवं सुबोध है।

## पद

**विचित्र संसार** (१)

जग के कर्म बहुत कठिनाई, तातें भरमि भरमि जंहडाई ।।टेक।।
ज्ञानवंत अज्ञान होत है, बूढ करत लरिकाई ।
परमारथ तजि स्वारथ सेवहिं, यह धौ कौन बडाई ।।१।।

वेद वेदान्त को अर्थ विचारहिं, बहुविधि ढंचा उपाई ।
माया मोह ग्रसित निसि बासर, कौन बडो सुखदाई ।।२।।
लेहिं बिसाहि काच को सौदा, सोना नाम गंवाई ।
अमृत तजि विष अंचवन लागे, यह धौ कौनि मिठाई ।।३।।

गुरु परताप साध की सगति, करहु न काहे भाई ।
अंत काल जब काल गरसिहै, कौन करी चतुराई ।।४।।
मानुष जनम वहुरि नहिं पैहो, वादि चला दिन जाई ।
भीखा को मन कपट कुचाली, धरत धरै मुरखाई ।।५।।

जंहडाई = ठगे जाते है । ढंचा उपाई = प्रपच रचकर । बिसाहि = वेसाह, मोल । अंचवन = पीने । वादि = व्यर्थ । धरन = टेक ।

**दुराग्रही मन** (२)

मन तोहि कहत कहत सठ हारे ।
ऊपर और अतर कछु औरै, नहिं बिस्वास तिहारे ।।टेक।।
आदिहिं एक अत पुनि एकै, मद्धमहुं एक विचारे ।
लवज लवज एहवर ओहवर करि, करम दुइत करि डारे ।।१।।

विषयारत परपंच अपरबल, पाप पुन्न परचारे ।
काम क्रोध मद लोभ मोह कव, चोर चहत उजियारे ।।२।।
कपटी कुटिल कुमिति विभिचारी, हो वाको अधिकारे ।
महा निलज कछु लाज न तोको, दिन दिन प्रति मोहिं जारे ।।३।।

पाच पचीस तीन मिलि चाह्यो, बनलिउ बात बिगारे ।
सदा करेहु बैपार कपट को, भरम बजार पसारे ।।४।।
हम मन ब्रह्म जीव तुम आतम, चेतन भिन्नि तन धारे ।
सकल दोस हमको काहे दइ, होन चहत ही न्यारे ।।५।।

खोलि कहौ तोरंग नहिं फेर्यो, यह आपुहिं महिमा रे ।
बिन फेरे कछु भयो न ह्वै है, हम का करहिं बिचारे ।।६।।
हमरी रुचि जग खेल खेलौना, बालक साझ सबारे ।
पिता अनादि अरख नहिं मानहि, राखत रहहिं दुलारे ।।७।।
जप तप भजन सकल है बिरथा, व्यापक जबहिं बिसारे ।
भीखा लखहु आपु आतम कह, गुनना तजहु खमारे ।।८।।

लवज...करि = शब्दो के हेर-फेर द्वारा । बनलिउ = बनी हुई भी । बैपार = व्यापार । खोलि...फेर्यो = मैं स्पष्ट कहता हूँ, अपने रंग न बदला करो । साझ सबारे = सुबह-शाम का । अरख = बुरा । खमा = गुप्त, भीतरी ।

मायाजाल (३)

मोहि डाहतु है मन माया ।।टेक।।
एकै शब्द ब्रह्म फिरि एकै, फिरि एकै जग छाया ।
आतम जीव करम अरुझाना, जड़ चेतन बिलमाया ।।१।।

परमारथ को पीठ दियो है, स्वारथ सनमुख धाया ।
नाम नित्य तजि अनितै भावै, तजि अमृत बिष खाया ।।२।।
सतगुरु कृपा कोऊ कोउ बाचै, जो सोधै निज काया ।
भीखा यह जग रतो कनक पर, कामिनि हाथ बिकाया ।।३।।

डाहतु है=दुःख देती है । अनितै=अनित्य ही ।

अंतर्ध्वनि (४)

धुनि बजत गगन मंह बीना, जंह आपु रास रस भीना ।।टेक।।
भेरी ढोल संख सहनाई, ताल मृदंग नवीना ।
सुर जैह बहुतै मौज सहज उठि, परत है ताल प्रबीना ।।१।।

बाजत अनहद नाद गहागह, धुधुकि धुधुकि सुरभीना ।
अंगुली फिरत तार सातहुं पर, लय निकसत भिन भीना ।।२।।
पाँच पचीस बजावत गावत, निर्त चारु छबि दीना ।
उघरत तननन ध्रिता ध्रिता, कोउ तायेइ थेइ तत कीना ।।३।।

बाजत जल तरंग बहु मानो, जंत्री जंत्र कर लीना ।
सुनत सुनत जिव थकित भयो, मानो ह्वै गयौ शब्द अधीना ।।४।।
गावत मधुर चढाय उतारत, रुनझुन रुनझुन धीना ।
कटि किंकिनि पउ नूपुर की छबि, सुरति निरति लौलीना ।।५।।

आदि शब्द ओंकार उठतु है, अटुट रहत सब दीना ।
लागी लगन निरंतर प्रभुसो, भीखा जल मन मीना ।।६।।

भिन-भीना=भीनी-मीनी वा भिन्न-भिन्न । निर्त=नृत्य । उघरत=निकलता है । धीना=ताधिन-ताधिन । सब दीना=सब दिन, निरंतर ।

प्रीति की रीति (५)

प्रीति की यह रीति बखानौ ।।टेक।।
कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन कमल कर ध्यानौ ।
हो चैतन्य बिचारि तजो भ्रम, खाड धूरि जनि सानौ ।।१।।

जैसे चात्रिक स्वाति बूंद बिनु, प्रान सम न ठानौ ।
भीखा जेहि तन राम भजन नहिं, काल रूप तेहि जानौ ।।२।।

प्रेम का सौदा (६)

कहा कोउ प्रेम बिसाहन जाय ।
महग बडा गथ काम न आवै, सिरके मोल बिकाय ।।टेक।।
तन मन धन पहिले अरपन करि, जग के सुख न सोहाय ।
तजि आपा आपुहि ह्वै जावै, निज अनन्य सुखदाय ।।१।।

यह केवल साधन को मत है, ज्यो गूगे गुड खाय ।
जानहि भले कहै सो कासौ, दिल की दिलहिं रहाय ॥२॥
बिनु पग नाच नैन बिनु देखै, बिनु करताल बजाय ।
बिनु सरवन धुनि सुनै विविधि विधि, बिन रसना गुन गाय ॥३॥
निरगुन मे गुन क्योकर कहियत, व्यापकता समुदाय ।
जहं नाहि तहं सब कछु दिखियत, अघरन की कठिनाय ॥४॥
अजपा जाप अकथ को कथनो, अलख लखन किन पाय ।
भीखा अविगति की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय ॥५॥

बिसाहन=मोल लेने । गथ...आवै = द्रव्यादि से काम नही चलता । अनन्य =केवल वही एक मात्र । सरवन = श्रवण, कान । समुदाय = सर्वत्र ।

सच्ची भक्ति ( ७ )

प्रीतिसो हरि भजन है साची ॥टेक॥
यहि बिनु भक्ति भाव फल देखा, रूप थको अतर गति काची ॥१॥
जोग जग्य तीरथ व्रत पूजा, मन माया आशा लिये नाची ॥२॥
प्रीतिवंत हरिपद अनुरागी, भयो अजाच फेरि काहु न जाची ॥३॥
सतगुर ग्यान वेदात मता जोइ, भीखा खोलि लिखा सोइ बाची ॥४॥

रूप = बाहर से देखने पर । अंतर गति = अतर्गत, भीतर से । अजाच = संतुष्ट । बाची = पढ लिया, समझ लिया ।

## रेखता

भयो अचेत नर चित्त चिंता लायो, काम अरु क्रोध मद लोभ राते ।
सकल सरपंच मे खूब फाजिल हुआ, माया मद चाखि मन मगन माते ॥
बढ्यो दीमाग मगरूर हय गज चढा, कह्यो नहिं फौज तूमार जाते ।
भीखा यह ख्वाब की लहरि जग जानिये, जागि करि देखु सब झूठ नाते ॥१॥

झूठ मे साच इक बोलता ब्रह्म है, ताहि को भेद सतसंग पावै ।
धन्य सो भाग जो सरन सेवाटहल, रात दिन प्रीति लवलीन गावै ॥
बचन लै जुक्ति सो सिद्धि आसन करै, पवन संग गवन करि गगन जावै ।
प्रकट परभाव गुरुगम्य परचौ इहै, भीखा अनहद्द पहिले सुनावै ॥२॥

शब्द परकास के सुनत अरु देखते, छूटि गई बिषै बुधि बास काची ।
सुरति गै निरति घर रूप अयो दृष्टि पर, प्रेम की रेख परतीत खाची ॥
आतमा राम भरिपूर परगट रह्यो, खुलि गई ग्रंथि निज नाम बाची ।
भीखा यो पगि गयो जीव सोई ब्रह्म मे, सीव अरु सक्ति की मिलन साची ॥३॥

ब्रह्म भरिपूर चहु ओर दसहूं दिसा, भाव आकासवत नाम गहना ।
अजर सो अमर आबरन अबिगति सदा, आतमा राम निज रूप लहना ॥
सत्त सो एक अवलंब करु आपनो, तजो बकवाद बहु फूहस कहना ।
भीखा अलेख कौ देखि कै मिलि रह्यौ, मुष्टि का बाधि चुप लाइ-रहना ॥४॥

फाजिल=निपुण, निष्णात । तूमार = विस्तार । बास = वासना । अयो= आयो, आ गया । गंथि=बंधन की गाँठ । पगि गयो = हिलमिल गया । साची=

वास्तविक बात है। आवरन=अवर्ण, बिना किसी रंग का। फुहस=भद्दी, बे-सिर-पैर की। मुष्टि का...रहना=अंत में मुट्ठी बाँधकर मौन बन जाना है।

## साखी

तूमा तन मन रूप है, चेतनि आब भराय।
पीवत कोई संत जन, अमृत आपु छिपाय ॥१॥
पौवा अधर अधार को, चलत सो पाव पिराय।
जो जावै सो गुरु कृपा, कोउ-कोउ सीस गंवाय ॥२॥

सकल संत कै रेनुलै, गोला गोल बनाय।
प्रेम प्रीति घसि ताहि को, अंग बिभूति लगाय ॥३॥
भिच्छा अनुभव अन्न लै, आतम भोग बिचार।
रहै सो रहति अकासवत, बरजित जानि अहार ॥४॥

संत चरनि मे लगि रहे, सो जन पावे भेव।
भीखा गुरु परताप तें, काढ़े कपट जनेव ॥५॥
जोग जुक्ति अभ्यास करि, सोहं शब्द समाय।
भीखा गुरु परताप तें, निज आतम दरसाय ॥६॥

जाय जपै जो प्रीति सों, बहु बिधि रुचि उपजाय।
सांझ समय औ प्रात लगु, तत्त पदारथ पाय ॥७॥
भीखा केवल एक है, पिरतम भयो अनंत।
एकै आतम सकल घट, यह गति जानहिं संत ॥८॥

जोती ज्वाला जीव की, फैलि रह्यो सब अंग।
चेतनि अस प्रकास है, मन पवना के संग ॥९॥

शब्द नाम गुरु एक है, करता करम अधीन।
देह आतमा द्वै नही, जीव ब्रह्म नहिं चीन ॥१०॥

कोटि कला जो करि मरै, बिनु गुरु लहै न भेद।
अंत कोई नहिं पावई, पढ़ै जो चारो वेद ॥११॥

करम को करता जीव है, अवर न दूजा कोइ।
भीखा हरि बिनु जो करै, अंत भोगता होइ ॥१२॥

राम को नाम अनंत है, अंत न पावै कोय।
भीखा जस लघु बुद्धि है, नाम तवन सुख होय ॥१३॥

एक सप्रदा सबद घट, एक द्वार सुख संच।
इक आतम सब भेष मों, दूजो जग परपंच ॥१४॥

तूमा=तुंबा। आब=जल। पौवा=पादस्थान। अधर=आकाश, शून्य स्थान। आधार को=आधार वा आश्रम के लिए। भेव=भेद, आध्यात्मिक रहस्य। जोती ज्वाला=ज्वलंत ज्योति। चीन=चीन्हता, पहचानता। कला=प्रयत्न। भोगता=भोक्ता, भोगने वाला। तवन=तितना, तैसा। संप्रदा=संप्रदाय, मत। संच=समुदाय, ढेरी। भेष मों=रूपों के अंतर्गत।

## सहजो बाई

सहजो बाई ने अपने ग्रंथ 'सहजप्रकाश' के अंतर्गत जो आत्म-परिचय दिया है, उससे केवल इतना ही पता चलता है कि इनका भी जन्म अपने गुरु चरणदास की भाँति, ढूसर (वैश्य) कुल मे हुआ था। ये किसी हरिप्रसाद की पुत्री थी। उक्त पुस्तक मे यह भी लिखा मिलता है कि सं १८०० के फाल्गुन मास (शुक्ल पक्ष) की अष्टमी तिथि को, बुधवार के दिन, इन्होने उसकी रचना आरंभ की थी तथा दिल्ली नगर के प्रीछितपुर (कदाचित् परीक्षितपुर नामक किसी भाग) मे उसकी समाप्ति हुई थी। इनके विषय मे यह भी प्रसिद्ध है कि ये अपने जीवन भर क्वाँरी एवं ब्रह्मचारिणी रही और अपने गुरु के निकट रह कर उनके सत्संग से सदा लाभ उठाती रही।

इनका 'सहजप्रकाश' ग्रंथ 'वेलवेडियर प्रेस' द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इसमे इनकी प्रगाढ गुरु-भक्ति, संसार की ओर से पूर्ण विरक्ति तथा साधु, मानव-जीवन, प्रेम, निर्गुण-सगुण भेद, नाम-स्मरण जैसे विषयो पर व्यक्त किये गए इनके विचारो का अच्छा परिचय मिल जाता है। इसमे दोहे, चौपाई, कुडलियाँ छंदो की संख्या अधिक है। इनकी वर्णन शैली मे कोई विशेषता नही दीखती। हाँ, इनके सगुण रूप वर्णन मे सगुणोपासक कृष्ण-भक्तो की शैली अवश्य लक्षित होती है।

### पद

उपदेश (१)

बाबा काया नगर बसावो।
ज्ञान दृष्टि सू घट मे देखो, सुरति निरति लौ लावो ॥१॥
पाच मारि मन बस करि अपने तीनो ताप नसावो।
सत सन्तोष गहो दृढ सेती, दुर्जन मारि भजावो ॥२॥
सील छिमा धीरज कू धारो, अनहद बंब बजावो।
पाप बानिया रहन न दीजै, धरम बजार लगावो ॥३॥
सुबस बास होवै तब नगरी, बैरी रहै न कोई।
चरन दास गुरु अमल बतायो, सहजो संभालो सोई ॥४॥

बंब=नगारा। सभालो - व्यवहार किया।

सगुण रूप में (२)

मुकट लटक अटकी मन माही।
नृत तन नटवर मदन मनोहर, कुडल झलक अलक बिथुराई ॥१॥
नाक बुलाक हलत मुक्ताहल, होठ मटक गति भौह चलाई।
ठुमुक ठुमुक पग धरत धरनि पर, बाह उठाय करत चतुराई ॥२॥
झुनक झुनक नूपुर झनकारत, तता थेई थेई रीझ रिझाई।
चरन दास सहजो हिय अन्तर, भवन करौ जित रहौ सदाई ॥३॥

बिथुराई=छिटकी हुई। नृत तन=नृत्य करता हुआ शरीर। चतुराई=भावा-चतुर्य।

विनय ( ३ )

तुम गुनवंत मै औगुन भारी ।
तुम्हरी ओट खोट बहु कीन्हे, पतित उधारन लाल बिहारी ॥१॥
खान पान बोलत अरु डोलत, पाप करत है देह हमारी ।
कर्म बिचारी तौ नहिं छूटौ, जो छूटौ तौ दया तुम्हारो ॥२॥

मैं अधीन मायाबस हो करि, तुव सुधीन माया सू न्यारे ।
मैं अनाथ तुम नाथ गुसाईं, सब जीवन के प्रान पियारे ॥३॥
भौ सागर मैं डर लागत मोहिं, तारौ बेगहि पार उतारी ।
चरन दास गुर किरपा सेती, सहजो पाई सरन तिहारी ॥४॥

औगुन=अवगुणपूर्ण । तुम्हारी ओट = तुमसे छिपाकर । सुधीन=स्वाधीन ।

## साखी

सहजो गुरु रंगरेज सा, सबही कू रंग देत ।
जैसा तैसा बसन ह्वै, जो कोइ आव सेत ॥१॥
साध मिले हरिही मिले, मेरे मन परतीति ।
सहजो सूरज धूप ज्यों, जल पाले की रीति ॥२॥

जो सोवै तौ सुन्न में, जो जागे हरि नाम ।
जो बोलै तौ हरिकथा, भक्ति करै निःकाम ॥३॥
जब लग चावल धान मे, तब लग उपजै आय ।
गज छिलके सू तजि निकस, मुक्ति रूप ह्वै जाय ॥४॥

जग देखत तुम जावगे, तुम देखत जग जाय ।
सहजो योही रीति है, मत कर सोच उपाय ॥५॥
साहन कू तौ भय घना, सहजो निर्भय रंक ।
कुजर कै पग बेडियां, चीटी फिरै निसंक ॥६॥

हंसा सोहं तार कर, सुरति मकरिया पोय ।
उतर उतर फिरि-फिरि चढ़ै, सहजो सुमिरन होय ॥७॥

सेत=शुद्ध हृदय के साथ । जग छिलके=सासारिक प्रपंच । साहन कू=धनवानों की । मकरिया=चक्की में लगी हुई मकरी नाम की लकड़ी । पोय=गूंथ दो ।

## संत दयाबाई

दयाबाई का एक अन्य नाम दया कुँवरि भी मिलता है । इनके ग्रंथ 'दयाबोध' से पता चलता है कि ये संत चरणदास की शिष्या थी और उसकी रचना इन्होने सं० १८१८ की चैत सुदि ७ को की थी । प्रसिद्ध है कि अपनी गुरु बहन सहजो बाई की भाँति ये भी ढूसर (वैश्य) कुल की ही कन्या थी और अपने गुरु के साथ दिल्ली मे रहा करती थी । इनकी रचना 'दयाबोध' के साथ 'विनयमालिका' नाम की एक अन्य छोटी-सी पुस्तक भी 'बेलवेडियर प्रेस' द्वारा प्रकाशित हुई है जिसके रचयिता का नाम दयादास जान पडता है । दोनों के संपादक ने दयाबाई और दयादास को अभिन्न माना है जो असंभव नही जान पड़ता । इनके विषय मे और कुछ विदित नही है ।

इनकी रचनाओ मे गुरु-भक्ति के अतिरिक्त प्रेम, वैराग्य, अजपाजाप आदि विषयों का वर्णन अन्य संतो की ही भाँति दीख पडता है। 'विनयमालिका' के अन्तर्गत प्रदर्शित की गई एकातनिष्ठा का भाव तथा इनके आत्मनिवेदन का दैन्यपन इनके सच्चे हृदय के परिचायक है। इनके आत्मसमर्पण मे, एक निराश्रित की शक्तिहीनता के साथ साथ अपने इष्ट के प्रति दृढ विश्वास का सहारा भी लक्षित होता है। 'विनय-मालिका' की भाषा मे 'दयाबोध' से कही अधिक प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति है।

## साखी

गुरु किरपा बिन होत नहिं, भाव भक्ति विस्तार।
जोग जज्ञ जप तप 'दया', केवल ब्रह्म विचार ॥१॥
सूरा सन्मुख समय मे, घायल होत निसक।
यो साधू ससार मे, जगके सहे कलंक ॥२॥

'दया' प्रेम उन्मत्त जे, तनकी तनि सुधि नाहिं।
भुके रहैं हरिरस छके, थके नेम व्रत माहिं ॥३॥
हसि गावत रोवत उठत, गिरि गिरि परत अधीर।
पै हरिरस चसको 'दया', सहै कठिन तन पीर ॥४॥

स्वासउ स्वास विचार करि, राखै सुरति लगाय।
दया ध्यान त्रिकुटी घरै, परमातम दरसाय ॥५॥
वही एक व्यापक सकल, ज्यो मनिका मे डोर।
थिरचर कीट पतग मे, 'दया' न दूजो और ॥६॥

—दयाबोध से

समय=संग्राम। तनि=तनिक भी। भुके रहैं=सदा और भी हरिरस पीने के इच्छुक बने रहते हैं। थके...माहिं=विधि-निषेधादि से सदा उदासीन रहा करते है। चसको=चसका, स्वाद। मनिका=मनको की माला।

पैरत थाको हे प्रभू, सूझत वार न पार।
मेहर मौज जब ही करो, तब पाऊ दरबार ॥७॥
निर पच्छी के पच्छ तुम, निराधार के धार।
मेरे तुमही नाथ इक, जीवन प्रान आधार ॥८॥

ठग पापी कपटी कुटिल, ये लच्छन मोहि माँहि।
जैसो तैसो तेरिही, अरु काहू को नाहिं ॥९॥
दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहिं वैकुठ बेवान।
चरन कमल चित चहत हौं, मोहि तुम्हारी आन ॥१०॥

देह धरी संसार मे, तेरो कहि सब कोय।
हासी होय तौ तेरि ही, मेरी कछू न होय ॥११॥
सीस नवै तौ तुमहिं कू, तुमहिं सू भाखू दीन।
जो झगरौ तौ तुमहिं सू, तुम चरनन आधीन ॥१२॥

—विनयमालिका से

मौज=लहर। धार=धारा, लहर। तेरिही=तेरा ही। बेवान=विमान। आन=शपथ।

## संत रामचरन

संत रामचरन का जन्म जयपुर राज्य के अंतर्गत, ढूढाण प्रदेश के सूरसेन अथवा सोडा गाँव मे सं० १७७६ मे हुआ था। इनका पहला नाम रामकृष्ण था, किंतु इनके प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं का कोई पता नही चलता। ये बीजावर्गीय वैश्य कुल के थे। प्रसिद्ध है कि अपनी आयु के इकतीसवें वर्ष मे इन्होने किसी रात को स्वप्न मे देखा कि मुझे कोई महात्मा नदी मे बहने से बचा रहे हैं। जगने पर घटना की सत्यता में विश्वास करते हुए ये उस महात्मा की खोज मे निकल पड़े और दातडा जाकर सं० १८०८ मे कृपाराम जी से दीक्षित हुए। ये कृपाराम जी स्वामी रामानद की परम्परा के प्रसिद्ध अग्रदास की पाँचवी पीढ़ी के सतदास के शिष्य थे। संत रामचरन ने सं० १८०८ में वैराग्य लेकर गूदड धारण किया था, किन्तु वहाँ इन्हे पूर्ण सन्तोष न हो सका और इन्होने निजी अनुभव के अनुसार मत निश्चित किया। अंत मे शाहपुरा में आकर रहने लगे और वही पर इन्होंने अपने मत-प्रचार का प्रधान केन्द्र स्थापित किया। इनका देहान्त सं० १८५५ मे हुआ और इनका चलाया पंथ 'रामसनेही सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है।

इनके अनुसार सर्वश्रेष्ठ साधना निर्गुण राम का स्मरण है और ऐहिक सुख तथा ईश्वर-प्राप्ति प्रेम के आधार पर ही सम्भव है। इनके अनुयायी अहिंसा के महत्त्व पर अधिक जोर देते है और उनकी कई एक बातें जैन धर्मानुयायियों के समान दीख पड़ती है। संत रामचरन ने लगभग दो दर्जन छोटे-बड़े ग्रन्थों की रचना की थी जिनका एक बृहत् संग्रह 'अणभैवाणी' नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी रचनाओं के अन्तर्गत विशेष ध्यान गुरु-भक्ति, साधु-महिमा, सादा जीवन, सदाचरण और भक्ति पर दिया गया है। इनकी प्रवृत्ति किसी विषय का स्पष्ट विवरण देने की ओर अधिक जान पडती है और ये उसे पूरी शक्ति के साथ व्यक्त करते हैं। जान पडता है कि इन्होने प्रत्येक बात का अध्ययन मनोयोगपूर्वक किया है और उसे स्वानुभूति के बल पर बतला रहे हैं। इनकी रचनाओं की भाषा प्रधानत. राजस्थानी है, किन्तु इनकी वर्णन-शैली बहुत सरल और प्रसादपूर्ण है। उनमे आलंकारिक भाषा के प्रयोग प्रचुर मात्रा में नही मिलते और उनमें पहेलियों की ही भरमार है।

संत रामचरन के 'रामसनेही सप्रदाय' के अतिरिक्त हरिरामदास द्वारा प्रवर्त्तित 'रामसनेही पंथ' भी खैड़ापा (बीकानेर) में प्रसिद्ध है जो इससे भिन्न है।

### पद

आत्मनिवेदन (१)

रमइया मोरि पलक न लागै हो।
दरस तुम्हारै कारणै, निसिबासर जागै हो ।।टेक।।
दसू दिशा जातर करूं, तेरो पंथ निहारूं हो।
राम राम की टेर दे, दिन रैण पुकारूं हो ।।१।।

नैन दुखी दीदार बिन, रसना रस आशै हो।
हिरदो हुलसै हेतकू, हरि कब परकाशै हो ।।२।।
स्वाति बूंद चातक रटै, जल और न पीवै हो।
घन आशा पूरै नही, तो कैसे जीवै हो ।।३।।

दास की या अरदास सुण, पिया दरसन दीजै हो।
राम चरण बिरहिनि कहै, अब विलम न कीजै हो ॥४॥

जातर=यात्रा, भ्रमण। अरदास=प्रार्थना, विनती।

### कुंडलिया

निस्प्रेही, निर्वैरता, निराकार, निरधार।
सकल सृष्टि मे रमि रह्यौ, ताको सुमिरन सार ॥
ताको सुमिरन सार, राम सो ताहि भणीजै।
दृष्टि मुष्टि आकार रूप माया ज गिणीजै ॥
रामचरण व्यापक व्योम ज्यो, ताको सुमिरन सार।
निस्प्रेही, निर्वैरता, निराकार, निरधार ॥१॥

जिज्ञासु जरणा लिया, संजम राखै मन्न।
धर्म माहि धारा सदा, तनको नाहि जतन्न ॥
तनको नाहि जतन्न, अन्न जल संजम लेवै।
राम भजन मे निरत, नित्य निर्मल जल सेवै ॥
रामचरण मे धारणा, कहा ग्रेही कहा वन्न।
जिज्ञासु जरणा लिया, संजम राखै मन्न ॥२॥

इतना चहिये साधुको, छादन भोजन नीर।
रामचरण एता अधिक, ले सो नही फकीर ॥
ले सो नही फकीर, भार काहे सिर धरिये।
आतम भाडा देय, राम का सुमिरण करिये ॥
जगत छाडि ऐसी करी, ज्या परस्या पूरा पीर।
इतना चहिये साधुकों, छादन भोजन नीर ॥३॥

साधू सुमिरे राम, काम माया से नाही।
छादन भोजन हेतु बसै, नहि दुनिया माही ॥
पर इच्छा की भीख, पाय वरते निज देहा।
अपणा निज घर छाडि, करै नहि पर घर नेहा ॥
आशा बाध्या ना फिरै, बिचरै सहज सुभाय।
रामचरण ऐसा जती, रामकृपा से पाय ॥४॥

आनदघन सुखराशि, चिदानद कहिये स्वामी।
निरालंब निरलेप, अकल हरि अतरयामी ॥
वार पार मधि नाहि, कून बिधि करिये सेवा।
नहि निराकार आकार, अजन्मा अवगत देवा ॥
रामचरण वन्दन करै, अलहं अखंडति तूर।
सूक्ष्म स्थूल खाली नही, रह्यो सकल भरपूर ॥५॥

राम राम मुख गाय, ब्रह्म का पद कू पायो।
जैसे सरिता नीर धाय, धुरि समंद समायो ॥
जल की उत्पति लोण, उलटि अपणो पद पायो।
पालो पाणी मांहि गल्या, नांहि दूजा दरसायो ॥

ज्यों जलकेरा बुदबुदा, जल से न्यारा नाँहि ।
रामचरण दरियाव की, लहर्‌या दरिया माँहि ॥६॥

मुष्टि=माप । ग्रेही=गृह, घर । जरणा=आत्मसात् करने की साधना । छादन=पहनने के लिए वस्त्रादि । ज्यां...पीर=जिसे आत्मानुभूति हो गई, जिसने पूर्ण तत्त्व का अनुभव कर लिया । अवगत=अविगत, अज्ञात । खाली=पोपला, भीतर शून्यवत् । दरियाव=समुद्र, जलराशि ।

## अरिल्ल

बिरह घटा घररात नैंण नीझर झरै ।
चित चमंकै बीज कि हिरदो ओल्हरै ॥
बिरहिन ह्वँ बेहाल दया कर न्हालियो ।
परिहा, रामचरण कू राम बेग सम्हालियो ॥१॥

बिरहा कर ले करद कलेजा काटिहै ।
पीव न सुणै पुकार कि हिवरा फाटिहै ॥
सबै बटाऊ लोग न पूछै पीडरे ।
परिहा, रामचरण बिन राम करै कुण भीडरे ॥२॥

बिरह सपीडा सास वहै उर करद रे ।
घाव गयो है फाटि बध्यो अति दरद रे ॥
निस दिन करे पुकार बैद्य हरि आवही ।
परिहा, रामचरण बिन राम भरै नहिं पाव ही ॥३॥

सूई कर निज सार सूर हित कीजिये ।
अपना हाथा आप घाव सी लीजिये ॥
अब नहिं कीजै ढील घाव अति बिस्तरे ।
परिहां, रामचरण बेहाल बिरहनी दुखभरे ॥४॥

गुरां बताया निकट दूर कैसे भया ।
मोहा माया की बाड़ आसरे होय रह्या ॥
मैं निर्बल निरधार न टूटै बाड जी ।
परिहा, तुम समर्थ बल जोर की पडदा फाड़ जी ॥५॥

घररात=घहराती है । बीज=बिजली ।

# आधुनिक युग

## (सं० १८५० से आगे)

### सामान्य परिचय

सत-साहित्य के इतिहास के आधुनिक युग का आरम्भ उस समय से होता है, जबकि अग्रेजो के इस देश मे निश्चित रूप से शासन-भार सँभालने लगने के साथ ही विज्ञान-प्रेरित पश्चिमी विचारधाराओ का कुछ-न-कुछ प्रभाव भी यहाँ पडने लगा था। यहाँ की शिक्षित जनता क्रमश. आत्मनिरीक्षण एव समाज-सुधार-सम्वन्धी प्रयत्नो मे लगती जा रही थी। इस काल के कई भारतीय सुधारको ने अपने धर्म, समाज एवं साहित्य की प्रचलित बातो पर एक नवीन दृष्टिकोण से विचार किया और उन्हे फिर से व्यवस्थित करना चाहा। पुनरुत्थान की चेतना की एक लहर दौड़ पडी। फलतः इस युग की एक प्रधान विशेषता संतो के अपने मूल एव शुद्ध मतमत को एक वार फिर से अपनाने की ओर प्रवृत्त होने तथा इसके लिए वर्तमान त्रुटियो को दूर कर वास्तविक मार्ग सुझाने मे भी लक्षित हुई। इस समय के सतों मे प्राय. सभी शिक्षित और अनुभवी थे और उनमे कई उच्चकोटि के विद्वान् एव अध्ययनशील भी थे। इस कारण उन्होने मध्ययुगीन प्रवृत्तियो के प्रभाव मे आकर पतनोन्मुख सत-परंपरा को सचेत एव सावधान करने मे अपनी विद्वत्ता का भी उपयोग किया। उन्होने अनेक विवादास्पद बातो की युक्तिसगत व्याख्या एव विवेचन द्वारा नवीन सुझाव उपस्थित किये। परन्तु इनमे से जिन लोगो ने इधर अधिक ध्यान नही दिया, उन्होने व्यापक नियमो की ओर निर्देश करते हुए सात्त्विक जीवन का महत्त्व ठहराया।

इस काल के संतो मे से रामरहस दास एव निश्चलदास ने, क्रमश कबीर पथ एव दादू पथ के पक्के अनुयायी होते हुए भी, सतमत की प्रमुख बातो को स्पष्ट करने के लिए भाष्य की रचना-पद्धति अथवा विषय-विवेचन-शैली का माध्यम स्वीकार किया। सत तुलसी साहब ने इसी प्रकार कई सांप्रदायिक प्रश्नो का व्यापक दृष्टि के साथ समाधान किया और उससे परिणाम निकाले। संत शिवदयाल एव सालिगराम ने अपना 'सत्संग' पृथक् रूप से स्थापित करते तथा उसके द्वारा रहस्यमयी साधनाओ का अभ्यास बतलाते हुए भी, मूल सतमत का ही समर्थन किया। सत डेढराज ने अपने सम्प्रदाय मे समाज-शुद्धि का कार्यक्रम रखा। स्वामी रामतीर्थ ने तथा महात्मा गाधी ने भी अपने-अपने सात्त्विक जीवन के आधार पर आदर्श सत-स्वरूप का स्पष्ट परिचय देते हुए इस कार्य मे प्रारम्भिक काल के सतो की भाँति नितात स्वतन्त्र एव निरपेक्ष रूप से पूरा सहयोग प्रदान किया। इस काल के सतो की कृतियो मे सन्तुलित विचारो के साथ-साथ एक अपूर्व गाभीर्य एव भावोन्माद भी लक्षित होता है जो अत्यन्त पक्की और गहरी अनुभूति के ही कारण सम्भव हो सकता है। इससे आकृष्ट एव प्रभावित हो जाना कुछ भी कठिन नही है। इस विशेषता ने ही उनकी कथन-शैली मे उस खरापन और चुटीलेपन का भी समावेश कर दिया है जो कबीर आदि सतो मे ही दीख पडता था। इस काल के संतो मे पलटू साहब एव स्वा० रामतीर्थ की मस्ती और भावावेश विशेष रूप से उल्लेख-

नीय है। इसी प्रकार तुलसी साहब की स्पष्टवादिता और खरी आलोचना की भी चर्चा किये बिना हम नही रह सकते।

इस काल के सतो की रचनाओ मे फारसी एव उर्दू भाषा की वर्णन-शैलियो का प्रभाव भी स्पष्ट लक्षित होता है। पलटू साहब, तुलसी साहब, संत शिवदयाल, सालिग-राम एव स्वामी रामतीर्थ मे ऐसे प्रयोगो की प्रवृत्ति क्रमश बढती चली गई है। इनमे से प्रथम दो सत जहाँ सूफी मत से न्यूनाधिक प्रभावित होने के ही कारण, इस प्रकार के उदाहरण उपस्थित करते है, वहाँ शेष तीन सतो मे इस प्रकार की प्रवृत्ति स्वाभाविक-सी जान पडती है। वे इसे अपनाते समय अपनी नैसर्गिक प्रतिभा भी दिखलाते है। स्वामी रामतीर्थ की उर्दू 'बह्र' वाली रचनाओ मे जिस मौलिकता और प्रवाह का चमत्कार है, वह उनकी इस विशेषता के कारण और भी अधिक बढ गया है। उनकी भावोन्माद भरी पंक्तियाँ अधिकतर इसी शैली द्वारा व्यक्त की गई हैं जो अत्यन्त मार्मिक और चुटीली हैं। रामरहस दास एव निश्चलदास की विषय-प्रतिपादन-शैली इसके नितांत विपरीत जाती हुई जान पडती है। इसमे विषय की गंभीरता का भारीपन पग-पग पर दीख पड़ता है और उस पर सर्वत्र पडिताऊपन की छाप लगी रहती है। राम-रहस दास की वर्णन-शैली मे तो रहस्यगोपन की भी चेष्टा दिखलायी पडती है। निश्चलदास की समास-शैली विशेषत स्पष्ट है जहाँ सत्सग के उपर्युक्त दोनों सतो की रचनाओं मे साधनादि के बर्णन विस्तार की शैली के अनुसार किये गए है। कविसुलभ प्रतिभा के विचार से इस काल के सतो में केवल पलटू साहब एव स्वामी रामतीर्थ के ही नाम लिये जा सकते है।

## सत रामरहस दास

रामरहस दास का पूर्वनाम रामरज द्विवेदी था और उनका जन्म स० १७८२ मे किसी समय बिहार प्रान्त के अन्तर्गत हुआ था। वे सुयोग्य पडित थे और बहुत दिनो तक काशी मे रह कर उन्होने दर्शन-साहित्य का गम्भीर अध्ययन एव अनुशीलन किया था। उन्होंने कबीरचौरा (काशी) के महत शरणदास से दीक्षा ग्रहण की थी। 'बीजक' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ पर पूर्णरूप से मनन एव चितन कर उसके आधार पर उन्होने अपनी पुस्तक 'पंचग्रथी' का निर्माण किया था। वे गया नगर के कबीर बाग मे रहा करते थे। उनकी पुस्तक 'पचग्रथी' का स्थान कबीर पंथीय साहित्य मे बहुत ऊँचा है और पंथ का अध्ययन करने वालो का आदर्श ग्रन्थ है। उन्होने कई एक फुटकर पदो और साखियों की रचना की है। उनकी शैली अधिकतर समास-पद्धति का अनुसरा करती है। रामरहस दास सत्य की खोज बडी गहराई तक पैठ कर करना जानते थे ण उनका देहात सं० १८६६ मे हुआ था।

### पद

प्रभु की लीला

प्रभुजी तुम बिन कौन छुडावै।
महा कठिन जम जाल फास है, तासो कौन बचावै ॥१॥
नाना फांस फंसाय जीवको अपनो रूप छिपावै।
पंच कोष ह्वै परगट ग्रासे, तेहि को कौन लखावै ॥२॥

आपुहि एक अनेक कहावै, त्रिविध सरूप बनावै।
सन्निपात होय दृष्ट सो, परलय अत दिखावै ।।३।।

विषय विकार जगत अरुझावै, जहा तहा भटकावै ।
योग ध्यान विगुर्चन भारी, ताहि सुरति अटकावै ।।४।।

आस नाम नौका बैठावै, भवकी धार बहावै ।
तत्त्वमसी कहि ताहि डुबावै, अत कोइ नहि पावै ।।५।।

चारि मुक्ति जोइनि चौरासी, तेहि मिलि हेत बढावै ।
नेम धर्म पूजा और सजम, बहुविधि लागि लगावै ।।६।।

भेष अलेख करे को पावै, जीवहि चैन न आवै ।
चार वेद षट अष्ट दसो लौं, शून्यहि शून्य समावै ।।७।।
काल चक्र बसि उत्पति परलय, जीव दुसह दुख पावै ।
साहेब दया कीन्ह परखाये, राम रहस गुण गावै ।।८।।

पच कोष=शरीरस्थ आवरण ।

## साखी

द्वन्द्वज सत्य असत्य को, जहा नही कुछ लेश ।
सो प्रकाशक गुरु परख है, मेटत सकल कलेश ।।१।।
प्रथमहि शब्द सुधारिके, टारे त्रयविध जाल ।
झाई मेटत सधिको, ऐसो शरण दयाल ।।२।।
राम रहस साहब शरण, अभय अशक उदोत ।
आवागमन की गम नही, भोर साझ नहि होत ।।३।।

झाई=झलक, आरोपित छाया ।

## सत पलटू साहब

पलटू साहब के आविर्भाव-काल का ठीक-ठीक सवत् विदित नही । किन्तु ऐसा अनुमान किया जाता है कि विक्रम की १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ये वर्तमान थे और किसी समय उसके अत मे ही इनका देहावसान भी हुआ। ये भीखा साहब के शिष्य गोविन्द साहब के शिष्य थे । इनका जन्म नगपुर जलालपुर गाँव (जिला फैजाबाद) मे हुआ था जो आजमगढ जिले की पश्चिमी सीमा से मिला हुआ है। ये जाति के कादू बनिया थे और पहले अपने पुरोहित गोविन्द के साथ किसी साधु जानकीदास के शिष्य हो गए थे । किन्तु जब गोविन्द को अपने उस गुरु के उपदेशो द्वारा पूरी शान्ति नही मिली तो वे जगन्नाथपुरी की ओर चल पडे । मार्ग मे ही भीखा साहब से उनकी भेंट हो गई और उनके सत्सग द्वारा प्रभावित होकर वे फिर से दीक्षित हो गए। गोविन्द के फिर घर लौट आने पर उनकी पलटू साहब से भेंट हुई जिन्होने उन्हे उस नवीन दशा मे पाकर अपना गुरु स्वीकार कर लिया । पलटू साहब की एकाध पंक्तियो से यह भी विदित होता है कि इस बार दीक्षित हो जाने पर इन्होने अपने गृहस्थाश्रम का भी परित्याग कर दिया । ये 'मू ड मुडा कर' तथा 'करधनी तोड कर' पूरे विरक्त बन गए। इन्होने अपना प्रधान केन्द्र अयोध्या को बना रखा था जहाँ के वैरागी इनसे प्राय जला करते थे । कदाचित् उन्ही के कारण इनकी असामयिक मृत्यु भी हो गई ।

पलटू साहब मस्तमौला संत थे। अपनी आध्यात्मिक अनुभूति के नशे मे ये सदा चूर बने रहते थे। इनका सत्सग वेदान्ती लोगो तथा सूफियो के साथ भी रह चुका था। इस कारण, ये उनसे भी बहुत-कुछ प्रभावित थे। पलटू साहब की बहुत-सी रचनाएँ मिलती हैं जिनमे से इनकी कुडलियाँ अधिक प्रसिद्ध है। इनके पदो, रेखतो, झूलनो, अरिल्लो, कुडलियो तथा साखियो का एक अच्छा सग्रह 'बेलवेडियर प्रेस' प्रयाग द्वारा तीन भागो मे प्रकाशित हो चुका है। इनकी रचनाओ पर कबीर साहब की गहरी छाप दीख पडती है। ये 'द्वितीय कबीर' कहलाकर भी प्रसिद्ध हैं। वास्तव मे, ये उच्चकोटि के अनुभवी सत, निर्भीक आलोचक तथा निर्द्वन्द्व जीवन व्यतीत करने वाले महात्मा थे। इसी कारण, ये बहुत लोकप्रिय भी है। इनकी भाषा पर फारसी-अरबी का प्रभाव पर्याप्त मात्रा मे लक्षित होता है। इनकी स्पष्टवादिता इनकी प्रत्येक पक्ति मे व्यक्त होती है।

## पद

सच्चा गुरु

(१)

गगन की धुनि जो आनई, सोई गुरु मेरा।
वह मेरा सिरताज है, मै वाका चेरा ॥टेक॥
सुन मे नगर बसावई, सूतत मे जागै।
जल में अगिन छपावई, सग्रह मे त्यागै ॥१॥
जंत्र बिना जत्री बजै, रसना बिनु गावै।
सोहं सब्द अलापि कै, मनको समुझावै ॥२॥
सुरति डोर अमृत भरै, जह कूप अरध मुख।
उलटै कमलहिं गगन मे, तब मिलै परम सुख ॥३॥
भजन अखडित लागई, जस तेल कि धारा।
पलटू दास दडौत करि, तेहि बारंबारा ॥४॥

सृष्टि रहस्य

(२)

ऐसी कुदरति तेरी साहिब, ऐसो कुदरति तेरी है ॥टेक॥
धरती नभ दुइ भीत उठाया, तिसमे घर इक छाया है।
तिस घर भीतर हाट लगाया, लोग तमासे आया है ॥१॥
तीन लोक फुलवारी तेरी, फूलि रही बिनु माली है।
घट घट बैठा आपै सीचै, तिल भर कही न खाली है ॥२॥
चारि खान औ भुवन चतुरदस, लख चौरासी बासा है।
आलमतोहि तोहि तोहि मे आलम, ऐसा अजब तमाशा है ॥३॥
नटवा होइ कै बाजी लाया, आपुइ देखन हारा है।
पलटू दास कहौ मैं कासे, ऐसा यार हमारा है ॥४॥

आलम=जगत्, सृष्टि।

जोगी प्रियतम

(३)

प्रेम बान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर ॥टेक॥
जोगिया कै लालि लालि अखिया हो, जस कवल के फूल।
हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनो भये समतूल ॥१॥

जोगिया के लेउ मिर्गछलवा हो, आपन पट चीर।
दूनो के सियब गुदरिया हो, होइ जाब फकीर ॥२॥
गगना मे सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।
चितवनि मे मन हरि लियो हो, जोगिया बड चोर ॥३॥
गग जमुन के बिचवा हो, बहै झिरहिर नीर।
तेहि ठैंया जोरल सनेहिया हो, हरि लै गयो पीर ॥४॥
जोगिया अमर मरै नहि हो, पुजवल मोरी आस।
करम लिखा बर पावल हो, गावै पलटू दास ॥५॥

समतूल=एकसमान। जोरल सनेहिया=प्रेम-बधन मे डाल दिया। झिरहिर=वेगवती धारा मे। ठैंया=स्थान पर।

सच्चा भजन (४)

हम भजनीक मे नाही अवधू, आंखि मूंदि नहि जाही ॥टेक॥
इक भजनीक भजन है इकठो, तब वह भजन मे जावै।
भजनी भजन एक भा दूनो, वाके भजन न आवै ॥१॥
खसम की मजा परी है जिनको, सो क्या नैहर आवै।
हुमा पच्छी रहै गगन मे, वाके जगत न भावै ॥२॥
बुंद परा सागर के माही, वह ना बुंद कहावै।
लोन की डेरी परी पानी मे, कहवा से फिर पावै ॥३॥
तेल की धार लगी निसि वासर, जोति मे जोति समानी।
पलटूदास जो आवै जावै, सो चौथाई ज्ञानी ॥४॥

हुमा पच्छी = आकाश मे ही रहने वाली एक प्रसिद्ध चिडिया जिसकी छाया पडने पर मनुष्य बादशाह हो जाता है। डेरी=डली।

मूर्ख जीवात्मा (५)

धूबिया रहै पियासा जल बिच, लागि जाय मुह लासा ॥टेक॥
जल मे रहै पिये नहि मूरख, सुन्दर जल है खासा।
अपने घर सन्देस पठावै, करै धोविनि कै आसा ॥१॥
एक रती को सोर लगावै, छूटि जाय भर मासा।
आपै बटै करम की रसरी, अपने गल कर फासा ॥२॥
आपुइ रोवै आपुइ धोवै, आपुइ रहै उदासा।
दाग पुराना छूटै नाही, लील बिषै की वासा ॥३॥
साबुन ज्ञान लेइ नहि मूरख, है सतन के पासा।
पलटूदास दाग कस छूटै, आछत अन्न उपासा ॥४॥

धूबिया=जीवात्मा। जल=आतम-सागर। लागि..लासा=चसका लग जाता है। धोबिनि=माया। बासा=वासना।

## कुंडलिया

(१)

साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ॥
साहिब तेरे पास याद करु होवै हाजिर।
अदर धसिकै देखु मिलेगा साहिब नादिर ॥

मान मनी हो फना नूर तब नजर मे आवै ।
बुरका डारै टारि खुदा बाखुद दिखरावै ।।
रूह करे मेराज कुफरका खोलि कुलाबा ।
तीसो रोजा रहै अदर मे सात रिकाबा ।।
लामकान मे रब्ब को पावै पलटूदास ।
साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास ।।१।।

नादिर=अनुपम । मनी=मनका । फना=नष्ट । बुरका=पर्दा । बाखुद=स्वय । मेराज=चढाई । कुलाबा=जजीर । रिकाबा=पदस्थान । लामकान=बिना मकान ।

(२)

लहना है सतनाम का जो चाहै सो लेय ।।
जो चाहै सो लेय जायगी छूट औराई ।
तुमका लुटिहौ यार गाव जब दहिहै लाई ।।
ताकै कहा गंवार मोट भर बाध सिताबी ।
लूट मे देरी करै ताहि की होय खराबी ।।
बहुरि न ऐसा दाव नही फिर मानुष होना ।
क्या ताकै तू ठाढ हाथ से जाता सोना ।।
पलटू मैं उतृन भया मोर दोस जिन देय ।
लहना है सतनाम का जो चाहै सो लेय ।।२।।

लहना=उधार । छूट=सुभीता । औराई=समाप्त । लाई=आग । सिताबी=झटपट । उतृन=उत्तीर्ण, पार ।

(३)

एक भक्ति मै जानौ और झूठ सब बात ।।
और झूठ सब बात करै हठजोग अनारी ।
ब्रह्मदोष वो लेय काया कौ राखै जारी ।
प्रान करै आयाम कोई फिर मुद्रा साधै ।।
धोती नेती करै कोई लै स्वासा बाधै ।।
उनमुनि लावै ध्यान करै चौरासी आसन ।
कोई साखी सबद कोई तप कुसकै डासन ।।
पलटू सब परपंच है करै सो फिर पछितात ।
एक भक्ति मै जानौ और झूठ सब बात ।।३।।

जारी=जलाकर, कष्ट देकर । प्रान करै आयाम=प्राणायाम करता है । मुद्रा, नेती, धोती, उनमुनि=हठयोग की विविध साधनाएँ ।

(४)

सिध चौरासी नाथ नौ बीचै सबै भुलान ॥
बीचै सबै भुलान भक्ति की मारग छूटी ।
हीरा दिहिन है डारि लिहिन इक कौडी फूटी ॥
राड माड मे खुसी जगत इतनै मे राजी ।
लोक बडाई तुच्छ नरक मे अटकी बाजी ॥
झूठ समाधि लगाय फिरै मन अतै भटका ।
उहा न पहुचा कोय बीच मे सब कोइ अटका ॥
पलटू अठए लोक मे पडा दुपट्टा तान ।
सिध चौरासी नाथ नौ बीचै सबै भुलान ॥४॥

सिध  नौ = ८४ सिद्ध और ९ नाथ। राड . खुसी=थोडे मे ही सतुष्ट हो गए। अतै=अन्यत्र।

(५)

रन का चढना सहज है मुसकिल करना योग ॥
मुसकिल करना योग चित्तको उलटि लगावै ।
विषय वासना तजै प्रान ब्रह्माड चढावै ।
साधै वायू प्रान कुडली करै उथपना ।
अष्ट कवल दल उलटि कवल दल द्वादस लखना ॥
इगला पिगला सोधि बक के नाल चढावै ।
चार कला को तोडि चक्र पट जाय बिधावै ॥
पलटू जो सजम करै करै रूप से भोग ।
रनका चढना सहज है मुसकिल करना योग ॥५॥

उथपना=ऊर्ध्वमुखी कर दे। बिधावै=वेध देवे।

(६)

उलटा कूवा गगन मे तिसमे जरै चिराग ॥
तिसमे जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती ।
छह रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती ॥
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजरि मे आवै ।
बिनु सतगुरु कोउ होय नही वाको दरसावै ॥
निकसै एक अवाज चिराग की जोतिहि माही ।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाही ॥
पलटू जो कोऊ सुनै ताके पूरे भाग ।
उलटा कूवा गगन मे तिसमे जरै चिराग ॥६॥

उलटा  चिराग=अधोमुख सहस्रार चक्र मे ज्योति जलती है। रोगन=तेल। रहत जरतै=प्रकाशमान रहती है। निकसै  माही=उस ज्योति के भीतर से अनाहत ध्वनि सुन पडती है। ज्ञान समाधी=उसे एकाग्र विचारपूर्वक समझने वाला। और.. नाही=दूसरो को उसकी अनुभूति नही होती।

( ७ )

जियते मरना भला है नाहिं भला बैराग ।।
नाहिं भला बैराग अस्त्र बिन करै लडाई ।
आठ पहर की मार चुके से ठौर न पाई ।।
रहै खेत पर ठाढ सीस को लेय उतारी ।
दिन दिन आगै चलै गया जो फिरै पछारी ।।
पानी मागै नाहिं नाहिं काहु से बोलै ।
छकै पियाला प्रेम गगन की खिडकी खोलै ।।
पलटू खरी कसौटी चढै दाग पर दाग ।
जियते मरना भला है नाहिं भला बैराग ।।७।।

गया=कहीं का न रहा ।

## रेखता

धन्य है सत निज धाम सुख छाडि कै,
आनके काज को देह धारा ।
ज्ञान समसेर लै पैठि ससार मे,
सकल ससार का मोह टारा ।।
प्रीति सब सौ करै मित्र और दुष्ट से,
भली अरु बुरी दोउ सील धारा ।
दास पलटू कहै राम नहिं जानहू,
जानहू सत जिन जक्त तारा ।।१।।
सत औ राम को एक कै जानियै,
दूसरा भेद ना तनिक आनै ।
लाली ज्यो छिपी है मिहदी के पात मे,
दूध मे घीव यह ज्ञान ठानै ।।
फूल मे बास ज्यो काठ मे आग है,
सत मे राम यहि भाति जानै ।
दास पलटू कहै सत मे राम है,
राम मे संत यह सत्य मानै ।।२।।
बिना सतसग ना कथा हरिनाम की,
बिन हरिनाम ना मोह भागै ।
मोह भागै बिना मुक्ति ना मिलैगी,
मुक्ति बिनु नाहिं अनुराग लागै ।।
बिना अनुराग से भक्ति नहिं मिलैगी,
भक्ति बिनु प्रेम उर नाहिं जागै ।
प्रेम बिनु ना नाम बिनु सत ना,
पलटू सतसग बरदान मागै ।।३।।

प्रेम को घटा मे बूद परै पटापट,
गरज आकाज बरसात होती ।
गगन के बीच मे कूप है अधोमुख,
कूप के बोच इक बहै सोती ॥
उठत गुजार है कुज की गली मे,
फोरि आकास तव चली जोती ।
मान सरोवर मे सहसदल कवल है,
दास पलटू हस चुगै मोती ॥४॥
नाचना नाच तो खोलि घूघट कहै,
खोलि कै नाच ससार देखै ।
खसम रिझाव तो ओट को छोडि दे,
भर्म ससार की दूरि फेकै ॥
लाज किसकी करै खसम मे काम है,
नाचु भरि पेट फिर कौन छेकै ।
दास पलटू कहै तुही सोहागिनी,
सोव सुख सेज तू खसम एकै ॥५॥
इधर से उधर तू जायगा किधर को,
जिधर तू जाय मै उधर आवौ ।
कोस हज्जार तू जाय चलि पलक मे,
ज्ञान की कुटी मै उहै छावौ ॥
सुमति जजीर की गले मे डारि कै,
जहा तू जाय मै खीच लावौ ।
दास पलटू कहै मारिहौ ठौर मे,
जहा मैदान मे पकरि पावौ ॥६॥
सुन्य के सिखर पर अजब मडप बना,
मन औ पवन मिलि करै बासा ।
एक से एक अनेक जगल जहा,
भवर गुजार इक भरै स्वासा ॥
नाम सागर भरा झिलमिल मोती झरै,
चूनै कोइ प्रेम रस हंस खासा ।
दास पलटू परै जबे दिव्र दृष्टि ते,
जरै सब भर्म तब छुटै आसा ॥७॥

## अरिल्ल

जप तप ज्ञान वैराग जोग ना मानिहौ ।
सरग नरक बैकुठ तुच्छ सब जानिहौ ।

लोक बेद ना सुनो आपनी कहौगा।
अरे हा, पलटू एक भक्ति सिर धरौ सरन ह्वै रहौगा ॥१॥

टोप टोप रस आनि मक्खी मधु लाइया।
इक लै गया निकारि सबै दुख पाइया॥
मोको भा बैराग ओहि को निरखि कै।
अरे हा, पलटू माया बुरी बलाय तजा मै परखि कै ॥२॥

कौन सकस करि जाय नाहि कछु खबर है।
बीच मे सबके देइ बडा वह जबर है॥
हरि धरि मेरो रूप करै सब काम है।
अरे हा, पलटू बीच मंहै इक नाम मोर बदनाम है॥३॥

अरध उरध के बीच बसा इक सहर है,
वीच सहर मे बाग बाग मे लहर है॥
मध्य अकास मे छुटै फुहारा पवन का।
अरे हा, पलटू अदर घसि कै देखु तमासा भवन का॥४॥

## साखी

पलटू ऐसी प्रीति करु, ज्यो मजीठ को रंग।
टूक टूक कपडा उड़े, रग न छोड़ै सग॥१॥

लगा जिकिर का बान है, फिकिर भई छयकार।
पुरजे पुरजे उडि गया, पलटू जीति हमार॥२॥

बखतर पहिरे प्रेम का, घोडा है गुरु ज्ञान।
पलटू सुरति कमान लै, जीति चलै मैदान॥३॥

आठ पहर लागी रहै, भजन तेल की धार।
पलटू ऐसे दास को, कोउ न पावै पार॥४॥

जैमे काठ मे अगिन है, फूल मे है ज्यो बास।
हरिजन मे हरि हरत है, ऐसे पलटू दास॥५॥

साध परखिये रहनि मे, चोर परखिये रात।
पलटू सोना कसे मे, झूठ परखिये बात॥६॥

पलटू तीरथ को चला, बीचे मिलिगे सत।
एक भुक्ति के खोजते, मिलि गइ मुक्ति अनत॥७॥

पलटू गुनना छोडि दे, चहै जो आतम सुक्ख।
संसय सोइ ससार है, जरा मरन को दुक्ख॥८॥

मरने वाला मरि गया, रोवै सो मरि जाय।
समझावै सो भी मरै, पलटू को पछिताय॥९॥

चारि बरन को मेटि कै, भक्ति चलाया मूल।
गुरु गोबिंद के बाग मे, पलटू फूला फूल॥१०॥

## संत तुलसी साहिब

सत तुलसी साहिब वा 'साहिब जी' के लिए प्रसिद्ध है कि वे पूना के पेशवा बाजीराव द्वितीय के बडे भाई थे। अपने पिता की गद्दी का अधिकारी होते हुए भी उन्होने उसके प्रति उदासीनता प्रकट कर अपना जन्म-स्थान त्याग दिया और उत्तरी भारत मे चले आए। इधर वे हाथरस नामक स्थान मे रहा करते थे। कहा जाता है कि एक बार उनसे बाजीराव द्वितीय से भेट भी हुई थी, परन्तु वे बहुत आग्रह किये जाने पर भी, फिर पूना जाकर नही ठहरे और अत तक हाथरस मे ही रह गए। उनके 'घटरामायन' नामक ग्रथ में उनका अपने पूर्वजन्म मे प्रसिद्ध गोस्वामी तुलसीदास होना लिखा है, किंतु ऐसी बाते विश्वसनीय नही जान पडती। वे हाथरस मे रहते समय अपने शरीर पर केवल एक कम्बल डाले हाथ मे डडा लेकर दूर-दूर तक घूमते-फिरते चले जाते और सत्सग किया करते। वे बडे स्पष्टवादी थे और किसी को फटकारने मे तनिक भी सकोच नही करते थे। उसके सत्सग की अनेक बाते सवादो के रूप मे उनकी रचनाओ मे लिखी पायी जाती है जिनसे उनके खरा आलोचक होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। उनका देहान्त अनुमानत ८० वर्ष की अवस्था मे स० १८९९ अथवा स० १९०० की जेठ सुदि २ को हुआ था। उनके अनन्तर उनके शिष्यो ने उनके नाम पर 'साहिब पथ' के प्रचार का यत्न किया था, किन्तु अनुयायियो की सख्या अधिकन हो सकी।

तुलसी साहिब को अपने पूर्ववर्ती सतो के नामो पर प्रचलित पथो वा सप्रदायो मे से किसी के शुद्धमतावलम्बी होने मे विश्वास न था। वे बहुधा कहा करते थे कि कबीर साहब, गुरु नानकदेव, दादूदयाल प्रभृति सन्तो ने जो मत प्रवर्त्तित किया था, वही सच्चा सतमत था। उसे उक्त पंथो के अनुयायियो ने अपनी नासमझी के कारण भुला दिया और निरी बाह्य विडबनाओ मे फँस गए। वे इसी कारण चाहते थे कि ऐसे लोग उसका मूल रूप फिर एक बार जानने की चेष्टा करे और उसी का प्रचार करे। इस दृष्टि से वे पक्के सुधारवादी थे और सतमत की पुन प्रतिष्ठा के लिए उन्होने बहुत कुछ यत्न किये। उनकी 'घटरामायण', 'रत्नसागर' तथा 'शब्दावली' नाम की रचनाएँ 'बेलवेडियर प्रेस' द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। इनमे विविध प्रकार के छन्दो द्वारा, उनके आदर्श सतमत का वर्णन तथा प्रचलित पाखडादि का खडन पाया जाता है। वे अपने विषय को विस्तार देकर लोगो को समझाया करते थे और ऐसा करते समय भिन्न-भिन्न भाषाओ के प्रयोग भी कर देते थे। उनकी वर्णन-शैली वैसी गम्भीर नही थी।

### (पद)

साधनानुभूति (१)

बरसे रस धारा गगन घटा ।।टेक।।
उमडि घुमडि बदरी घन गरजै, बीज कडक मानो अगिनि अटा ।।१।।
मैं तो खडी पिय पौर किवारी, महल लखन मन मगन नटा ।।२।।
गिरत परत गइ अधर अटारी, चढि विप नागिनि लगन लटा ।।३।।
झझरी परखि हरखि पिउ प्यारी, निरखि परखि पद पग न हटा ।।४।।
सुख मनि सुन्न जोति त्रिकुटी मे, तुलसि दरद दिल दगन मिटा ।।५।।

अटा = फिरती है। नटा = नाच उठता है। लगन लटा = प्रेमानुरक्त होकर। विष नागिनि = कुंडलिनी। दगन = दाग, चिह्न।

### न्यारी संत-गति (२)

एरी सिखर पर सुरत समानी, संत लखन पद पार री ॥टेक॥
जोगी जोत होत लखि जानै, पाचोइ तत्त पसार री ॥१॥
पासे सार संत गति न्यारी, पारे परखि निहार री ॥२॥
तुलसी तोल बोल जब पावे, करे कृपा निरधार री ॥३॥

### प्रोत्साहन (३)

लाज कहा कीजै री, घूघट खोलो आज ॥टेक॥
लाजहि लाज अकाज भयो है, सु दर यह तन काज ॥१॥
सब तन अग निहग निहारे, परदे प्रगट बिराज ॥२॥
स्वामी सब अतरगति जाने, व्याकुल सकल समाज ॥३॥
तुलसी तन मन बदन सम्हारो, सोई साहिब सिरताज ॥४॥

निहग = नि सग, एकाकी, परमात्मा।

## रेखता

(१)

पैठ मन पैठ दरियाव दर आप मे,
कवल बिच झाज मे कमठ राजै ॥१॥
होत जह सोर घनघोर घट मे लखै,
निरख मन मौज अनहद वाजै ॥२॥
गगन की गिरा पर सुरति से सैल कर,
चढै तिल तोड घर अगम साजै ॥३॥
दास तुलसी कहै पछिम के द्वार पर,
साहिब घर अजब अदभुत बिराजै ॥४॥

झाज = जहाज। झाज राजै = एक सच्चे कर्मठ की भाँति उस आधार पर जा विराजो।

(२)

अरे किताब कुरान को खोजले,
अलह अल्लाह खुद खुदा भाई ॥१॥
कौन मक्कान महजीत मस्सीत मे,
जिमी असमान बिच कौन ठाई ॥२॥
हर वक्त रोजा निमाज और बाँग दे,
खुदा दीदार नहि खोज पाई ॥३॥
खोजते खोजते खलक सब खप गया,
टेक ही टेक खुद खुदी खाई ॥४॥
दास तुलसी कहै खुदा खुद आप है,
रूहसे निरख दिल देख जाई ॥५॥

( ३ )

अगम इक चौज मे मौज न्यारी लखो,<br>
　　अड बिच निरख ब्रह्म ड सारा ।।१।।<br>
सुरति की सैल नित महल मे बस रही,<br>
　　निकरि पट खोल गई गगन पारा ।।२।।<br>
अकल औ सकल लख लोक न्यारो भई,<br>
　　गई घर अधर पर सुरति लारा ।।३।।<br>
आद औ अंत घर सत पहिचानिया,<br>
　　दास तुलसी आज अमर न्यारा ।।४।।

चौज = चोज, चमत्कारपूर्ण उक्ति मे ही । अकल = अखड । लारा = साथ-साथ, पीछे-पीछे । सकल = सभी कलाओ से पूर्ण ।

## कुंडलिया

( १ )

सब्द सब्द सब कहत है, सब्द सुन्न के पार ।।<br>
सब्द सुन्न के पार, सार सोइ सब्द कहावै ।<br>
पच्छिम द्वार के पार, पार के पार समावै ।।<br>
दो दल कवल मझार, मद्ध के मधि मे आवै ।<br>
सतन दिया लखाय, सार सोइ सब्द कहावै ।।<br>
तुलसी सत सतलोक से, कहु कछु भेद निनार ।<br>
सब्द सब्द सब कहत है, सब्द सुन्न के पार ।।१।।

दो दल कवल = अज्ञा चक्र जो दोनो भ्रुवो के बीच मे है। निनार = न्यारा, भिन्न ।

( २ )

यह गत बिरले बूझिया, चौथे पद मतसार ।।<br>
चौथे पद मतसार, लार सतन के पावै ।<br>
कोटिन करे उपाय, लखन मे कबहु न आवै ।।<br>
लख अलक्ख औ खलक खोज कोइ चिह्न न पावै ।<br>
सतगुरु मिलै दयाल भेद छिन मे दरसावै ।।<br>
तुलसी अगम अपार जो, को लखि पावै पार ।<br>
यह गत बिरले बूझिया, चौथे पद मतसार ।।२।।

( ३ )

जग जग कहते जुग भये, जगा न एकौ बार ।।<br>
जगा न एकौ बार, सार कहो कैसे पावै ।<br>
सोवत जुग जुग भये संत बिन कौन जगावै ।।<br>
पडे भरम के माहि बंद से कौन छुडावै ।<br>
जो कोइ कहै बिबेक ताहि की नेक न भावै ।।

तुलसी पडित भेष से, सब भूला ससार।
जग जग कहते जुग भये, जगा न एको बार ।।३।।

### साखी

अदर की आखी नही, बाहर की गइ फूटि।
बिन सतगुरु औघट बहै, कभी न बधन छूटि ।।१।।

उत्तम औ चाडाल घर, जह दीपक उजियार।
तुलसी मते पतंग के, सभी जोत इक सार ।।२।।

मकरी उतरै तार से, पुनि गहि चढत जो तार
जाका जासो मन रम्यो, पहुचत लगै न बार ।।३।।

सूरज बसै आकास मे, किरन भूमि पर बास।
जो अकास उलटे चढै, सो सतगुरु का दास ।।४।।

जल मिसरी कोइ ना कहै, सर्बत नाम कहाय।
यो घुल के सतसंग करै, काहे भर्म समाय ।।५।।

सुरत सिखर अदर खडी, चढी जो दीपक बार।
आतम रूप अकास का, देखै बिमल बहार ।।६।।

तुलसी मै तू जो तजै, भजै दीन गति होय।
गुरु नवै जो सिष्य को, साध कहावै सोय ।।७।।

मन तरग तन मे चलै, आठो पहर उपाव।
थाह कधो पावै नही, छिन छिन चल परभाव ।।८।।

जल ओला गोला भयो, फिर घुलि पानी होय।
सत चरन गुरु ध्यान से, मन घुलि जावै सोय ।।९।।

सूप ज्ञान सज्जन गहै, फूकर देत निकार।
सार हिये अदर धरै, पल पल करत बिचार ।।१०।।

भक्ति भाव बूझे बिना, ज्ञान उदै नहि होय।
बिना ज्ञान अज्ञान को, काढ सकै नहि कोय ।।११।।

घडी घडी स्वासा घटै, आसा अंग बिलाय।
चाह चमारी चूहडी, घर-घर सबको खाय ।।१२।।

फूकर=भूसी, चोकर। चूहडी=भगिन।

## साधु निश्चलदास

साधु निश्चलदास की जन्म-तिथि का पता नही चलता। केवल इतना ही विदित है कि उनका जन्म-स्थान पूर्वी पजाब प्रान्त के हिसार जिले की हासी तहसील का कूगड नामक गाँव था। वे जाति के विचार से जाट थे। उनका शरीर बहुत सुन्दर और सुडौल था। उनकी बुद्धि तीव्र थी तथा उन्हे विद्योपार्जन की लगन भी थी। सस्कृत पढने की लालसा से उन्होने अपने को ब्राह्मण बालक घोषित कर काशी के पडितो से सभी शास्त्रो का अध्ययन किया। व्याकरण, दर्शन, साहित्य, आदि मे पारगत होकर वे एक प्रकाड विद्वान् हो गए। किन्तु पहले से ही दादू पथ मे दीक्षित हो चुकने तथा जाट जाति का होने के कारण उन्हे काशी मे विरोध का भी सामना करना पडा। अन्त मे वे

वहाँ से चले आए। कहते है कि न्यायशास्त्र का विशेष अध्ययन उन्होने नदिया (बगाल) जाकर किया था और छन्दशास्त्र प्रसिद्ध विद्वान् 'रसपुंज' से पढा था। उन्होने किहडौली मे एक पाठशाला वेदान्त पढाने के लिए खोली और बूँदी जाकर वहाँ के राजा रामसिंह से बहुत सम्मान प्राप्त किया। उनके ग्रन्थो मे 'विचारसागर' तथा 'वृत्तिप्रभाकर' अधिक प्रसिद्ध है। इनमे उनके प्रखर पाडित्य एव परिष्कृत विचारो का अच्छा परिचय मिलता है। उनका देहान्त स० १९२० मे हुआ था।

### कवित्त

दीनता कू त्यागि नर अपनो स्वरूप देखि,
 तू तो शुद्ध ब्रह्म अज दृश्य को प्रकासी है।
आपने अज्ञान तै जगत सब तू ही रचै,
 सर्व को सहार करै आप अबिनासी है॥
मिथ्या परपच देखि दु ख जिन आनि जिय,
 देवन को देव तू तौ सब सुखरासी है।
जीव गज ईस होय, माया मे प्रभासै तू ही।
 जैसे रज्जु साप सीप रूप ह्वै प्रभासी है॥१॥

रूप = चाँदी।

### साखी

अतर बाहिर एकरस, जो चेतन भर पूर।
बिभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर॥१॥
ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मबित, ताकी बानी वेद।
भाषा अथवा सस्कृत, करत भेद भ्रम छेद॥२॥
सत्यबध की ज्ञान तै, नही निवृत्ति सयुक्त।
नित्य कर्म सतत करै, भयो चहै जो मुक्त॥३॥
भ्रमन करत ज्यू पवन तै, सूको पीपर पात।
शेष कर्म प्रारब्ध तै, क्रिया करत दरसात॥४॥

बिभु = व्यापक। नहि दूर = उसके लिए निकट वा दूर का कोई प्रश्न नही है। अहि = है। करत...छेद = सशय का निराकरण।

## सत शिवदयाल सिंह (स्वामीजी महाराज)

लाला शिवदयाल सिंह 'राधास्वामी सत्सग' के मूल प्रवर्त्तक थे। वे 'स्वामीजी महाराज' कहला कर प्रसिद्ध थे। उनका जन्म आगरा नगर के पन्नी गली मुहल्ले में सं० १८७५ की भादो बदि ८ को खत्री-परिवार मे हुआ था। उनके पिता पहले नानक पथ, फिर तुलसी साहिब के 'साहिब पथ' के अनुयायी थे। उनके परिवार के अन्य अनेक सदस्य भी 'साहिब पथ' द्वारा प्रभावित थे। तदनुसार युवक शिवदयाल सिंह पर भी उसका बहुत प्रभाव पडा। वे अपने को कमरे मे बन्दकर एकान्त चिंतन के अभ्यासी हो गए। अन्त मे स० १९१७ को वसन्त पचमी के दिन से उन्होने बाहर बैठकर सत्सग करना और उपदेश देना भी आरम्भ कर दिया। उनका विवाह भी हुआ था, किन्तु कोई सन्तान न थी। जिस प्रकार उनके अनुयायी उन्हे 'स्वामी' कहते थे, उसी प्रकार उनकी

पत्नी को 'राधा' कहा करते थे। सत की दशा को प्राप्त कर उन्होने अपने छोटे भाई प्रताप सिंह द्वारा अपने लेन-देन के कारोवार को समाप्त करा दिया। जिन-जिन कर्जदारो ने अपने जिम्मे का रुपया खुशी के साथ दिया, उनसे लेकर शेष लोगो के कागज फाडकर फेकवा दिया। नगर मे सत्सग के कारण अधिक भीड होती देख वे पीछे उसके वाहर वैठने लगे थे। वह स्थान आजकल 'स्वामी वाग' के नाम से प्रसिद्ध है। उनका देहान्त स० १६३५ की आपाढ कृष्ण प्रतिपदा के दिन हुआ था। उनकी समाधि उक्त 'स्वामी वाग' मे ही वर्तमान है।

राधास्वामी सत्सग की साधना-सम्वन्धी वाते अधिकतर गुप्त रखी जाती है और सर्वसाधारण को उनका परिचय नही है। उसके अनुयायी अपने गुरु के प्रति पूरी निप्ठा प्रदर्शित करते है और उसी के सकेतो पर आध्यात्मिक साधना का अभ्यास करते है। 'स्वामी जी महाराज' की दो प्रधान रचनाएँ प्रकाशित है जिनमे से पहली पद्य मे तथा दूसरी गद्य मे है और दोनो के नाम 'सारवचन' है। सगृहीत पदो मे रचयिता की गम्भीर साधना, उसकी आध्यात्मिक दशा एव तज्जन्य उल्लास का परिचय सर्वत्र मिलता है। भिन्न-भिन्न भीतरी 'पदो' के उन्होने वहुत स्पष्ट सजीव वर्णन किये हैं और गुरु-भक्ति को उन्होने अपनी सारी सफलता का श्रेय प्रदान किया है। किसी वात का पूरा विवरण देने अथवा उसके विपय को वार-वार दुहराने मे भी उन्हे एक अपूर्व आनन्द मिलता है। उनकी भापा सीधी-सादी है,किन्तु कुछ शव्दो को उन्होने कही-कही विकृत कर दिया है और छन्दोनियम के अक्षरश पालन की भी चेष्टा नही की है।

## पद

(१)

मतसार

गुरु विना कभी न उतरे पार। नाम विन कभी न होय उधार ॥१॥
सग विन कभी न पावे सार। प्रेम विन कभी न पावे यार ॥२॥
जुक्ति विन चढे न गगन मझार। दया विनु खुले न वज्र किवार ॥३॥
सुरत विन होय न शव्द सम्हार। निरत विन होय न धुन आधार ॥४॥
गुरु से करना पहिले प्यार। नाम रस पीना मन को मार ॥५॥
काल घर जान तजा मसार। द्याल घर आई जन्म सुधार ॥६॥
मत गति पाई गुरु की लार। शव्द सग मिली मिला पद चार ॥७॥
कहा राधास्वामी अगम विचार। सुने और माने करे निरवार ॥८॥

द्याल=राधास्वामी दयाल। लार=सग मे रहकर।

(२)

गुरु-भक्ति

प्रेमी सुनो प्रेम की वात ॥टेक॥
सेवा करो प्रेम से गुरु की और दर्शन पर वल वल जात ॥१॥
वचन पियारे गुरु के ऐसे जस माता सुत तोतरि वात ॥२॥
जस कामी को कामिन प्यारी अस गुरुमुख को गुरु का गात ॥३॥
खाते पीते चलते फिरते सोवत जागत विसरि न जात ॥४॥
खटकत रहे भाल ज्यो हियरे दर्दी के ज्यो दरद समात ॥५॥
ऐसी लगन गुरु सग जाकी वह गुरुमुख परमारथ पात ॥६॥

जब लग गुरु प्यारे नहिं ऐसे तब लग हिरसी जानो जात ॥७॥
मनमुख फिरे किसी का नाही कहो क्योकर परमारथ पात ॥८॥
राधास्वामी कहत सुनाई अब सतगुरु का पकडो हाथ ॥९॥

खटकत = चुभता। पात = पाता है। हिरसी = केवल देखा-देखी काम करने वाला। मनमुख = निगुरा।

## साधना-परिचय (३)

घर आग लगावे सखी, सोइ सीतल समुद समावे ॥१॥
जड चेतन की गाठ खुलानी, बुन्दा सिन्ध मिलावे ॥२॥
सुरत शब्द की क्यारी सींचे, फल और फूल खिलावे ॥३॥
गगन मडल का ताला खोले, लाल जवाहिर पावे ॥४॥
सुन्न सिखर का मन्दिर झाके, अद्भुत रूप दिखावे ॥५॥
मान सरोवर निरमल धारा, ता विच पैठ अन्हावे ॥६॥
सन्तन साथ हाथ फल लेवे, धृग धृग जगत सुनावे ॥७॥
महासुन्न का नाका तोडे, भ वर गुफा ढिग जावे ॥८॥
सतनाम पद परस पुराना, अलख अगम को धावे ॥९॥
राधास्वामी सतगुरु पावे, तब घर अपने आवे ॥१०॥

नाका तोडे = घेरा तोडे, प्रवेश करे। परस = स्पर्श करके।

## सुरत की साधना (४)

सुर्त पनिहारी सतगुरु प्यारी चली गगन के कूप ॥१॥
प्रेम डोर ले पनघट आई भरी गगरिया खूब ॥२॥
शब्द पिछान अमीरस पागी देखा अद्भुत रूप ॥३॥
नगर अजायब मिला डगर मे जहा छाह नहिं धूप ॥४॥
पहुची जाय अगम पुर नामी दरस किया राधास्वामी भूप ॥५॥

पिछान = पहचान कर, परिचित होकर।

## मन की साधना (५)

धुन धुन डालू अव मन को। मैं धुनिया सतगुरु चरनन को ॥१॥
मन कपास सूरत कर रूई। काम बिनौले डाले खोई ॥२॥
हुई साफ धुनकी सुधि पाई। नाम धुना ले गगन चढाई ॥३॥
गाली मनमा गाले कर्मा। चरखा चमा कते सब भर्मा ॥४॥
मूत सुरत बारीक निकासा। कुकडी कर किया शब्द निवासा ॥५॥
चित्त अटेरन टेग सुनाई। फेर फेर कवलन पर लाई ॥६॥
कवल कवल लीला कहा गाऊ। सुन सुन धुन निज मन समझाऊ ॥७॥
सुरत रगी करे शब्द विलासा। तजी वासना वेची आसा ॥८॥
निकट पिंड सुन पैठ समाई। सौदा पूरा किया बनाई ॥९॥
राधास्वामी हुए दयाला। नफा लिया खोला घट ताला ॥१०॥

गाली=धुनी हुई रूई की गोली जो चर्खे पर कातने के लिए बनायी जाती है, पूनी। कुकडी=कच्चे सूत का लपेटा हुआ लच्छा जो कात कर तकले पर से उतारा जाता है, अटी। अटेरन=सूत की आटी बनाने का लकडी का एक यन्त्र, ओयना। सुन पैठ=शून्य की पैठ वा वाजार मे।

आत्मशुद्धि (६)

चूनर मेरी मैली भई, अब कापै जाऊ धुलान ॥१॥
घाट घाट मैं खोजत हारी, धुबिया मिला न सुजान ॥२॥
नइहर रहु कस पिया घर जाऊ, बहुत मरे मेरे मान ॥३॥
नित नित तरसू पलपल तडपू, कोइ धोवे मेरी चूनर आन ॥४॥
काम दुष्ट और मन अपराधी, और लगावे कीचड सान ॥५॥
कासे कहूं सुने नहि कोई, सब मिल मरते मेरी हान ॥६॥
सखी सहेली सब जुड आई, लगी भेद बतलान ॥७॥
राधास्वामी धुबिया भारी, प्रगटे आय जहान ॥८॥

बहुत मान=अब तो पूरी फजीहत हो चुकी। सान=गोला कर-करके। हान=हानि, अनिष्ट, बुराई। भेद=यहाँ पर उपाय, युक्ति।

साधना की सफलता (७)

देव री सखी मोहि उमंग बधाई। अब मेरे आनद उर न समाई ॥१॥
छिन छिन हरखू पल पल निरखू। छवि राधास्वामी मोसे कही न जाई ॥२॥
आरत थाली लीन सजाई। प्रेम सहित रस भर भर गाई ॥३॥
चरन सरन गुरु लाग बढाई। अधिक बिलास रहा मन छाई ॥४॥
कहा कहू यह घडी सुहाई। सुरत हसनी गइ है लुभाई ॥५॥
शब्द गुरु धुन गगन सुनाई। अमी धार धुर से चल आई ॥६॥
रोम रोम और अग अग न्हाई। बरन बिनोद कहूं कस भाई ॥७॥
लिख लिख कर कुछ मैन जनाई। जानेगे मेरे जो गुरुभाई ॥८॥
राधास्वामी कहत बनाई। चार लोक मे फिरी है दुहाई ॥९॥
सत्तनाम धुन बीन बजाई। काल बली अति मुरछा खाई ॥१०॥
अलख अगम दोउ मेहर कराई। राधास्वामी राधास्वामी दरस दिखाई ॥११॥

लाग=लगन, सम्बन्ध। धुर=केन्द्र। बरन बिनोद=वरण कर लेने पर जो आनन्दातिरेक मिला। मेहर=दया, कृपा।

## साखी

बैठक स्वामी अद्भुती, राधा निरख निहार।
और न कोई लख सके, शोभा अगम अपार ॥१॥
गुप्त रूप जहा धारिया, राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहि पावई, जहा कोई बिसराम ॥२॥

मोटे बन्धन जगत के, गुरु भक्ति से काट ।
झीने बन्धन चित्त के, कटे नाम परताप ॥३॥
मोटे जब लग जाय नहिं, झीने कैसे जाय ।
ताते सबको चाहिये, नित गुरु भक्ति कमाय ॥४॥
सत दिवाली नित करे, सत्तलोक के माहिं ।
और मते सब काल के, योंही धूल उड़ाहिं ॥५॥
सुरत रूप अति अचरजी, वर्णन किया न जाय ।
देह रूप मिथ्या तजा, सत्तरूप हो जाय ॥६॥

स्वामी =आदि शब्द । राधा=आदि सुरत । मते =दूसरे पथ, सम्प्रदायादि । अचरजी =अद्भुत ।

## संत सालिगराम रायबहादुर ( हुजूर महाराज साहेब )

राय सालिगराम उपनाम 'हुजूर महाराज साहेब' राधास्वामी सत्संग के द्वितीय गुरु थे और उनका जन्म भी, आगरा नगर के ही पीपलमडी मुहल्ले मे स० १८८५ की फागुन सुदि ८ को, प्रतिष्ठित माथुर कायस्थ-कुल मे हुआ था। उन्होने पहले फारसी मे शिक्षा पायी थी और फिर अग्रेजी मे उस समय की सीनियर कक्षा तक पढे थे जो कदाचित् आजकल की बी० ए० श्रेणी के बराबर थी। वे स० १९०४ मे डाक विभाग की नौकरी मे भर्त्ती हुए और अन्त मे स० १९३८ मे 'पोस्टमास्टर जनरल' के पद तक पहुँच कर अलग हुए। उनकी योग्यता तथा परिश्रम के ही कारण उन्हे रायबहादुर की पदवी मिली थी। उन्हे सिखो की पुस्तक 'पजग्रथी' के कुछ अंशो का वास्तविक अभिप्राय जानने के लिए सयोगवश सत शिवदयाल जी के सम्पर्क मे आना पडा जिनसे वे बहुत प्रभावित हुए। वे उनके व्यक्तित्व से यहाँ तक आकृष्ट हो गए कि उन्हे अपना गुरु स्वीकार कर लिया और क्रमश उनकी सेवा-टहल तक करने लगे। उन्होने अपने गुरु की सुश्रूषा करते समय उनके आराम के लिए सभी प्रकार के काम किये और अपने धनादि को भी उन्हे समर्पित कर दिया। अपने गुरु का देहान्त हो जाने पर 'हुजूर महाराज साहेब' उनकी जगह सत्सग कराने लगे। सत्सग के अनुयायियो की एक अच्छी सख्या बढाने, उसे सगठित करने तथा कई रचनाओ को प्रस्तुत करने के अनन्तर उन्होने स० १९५५ मे अपना चोला बदला।

'हुजूर महाराज साहेब' का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक था। उनकी बानियो मे भी स्वानुभूति के ही उद्गार अधिक मिलते है। उनकी पद्य-रचनाओ का प्रधान सग्रह 'प्रेम-बानी' के नाम से प्रकाशित है जिसके चार भाग है। उनकी गद्य पुस्तके भी कई है। उनकी अग्रेजी पुस्तक 'राधा सोआमी मत प्रकाश' सत्सग के मुख्य सिद्धान्त जानने के लिए बहुत उपयोगी ग्रथ है। वे अपने पदो द्वारा अपने सुखद अनुभव की बाते बार-बार कहा करते रहे और अपने शब्दो द्वारा उसका सजीव चित्र खीचते रहे। अपने गुरु के प्रति वे परम कृतज्ञ है और उनकी महत्ता उन्हे 'परमपुरुष पूरनधनी राधास्वामी' कह कर प्रकट करते है। हुजूर महाराज साहेब की भाषा स्पष्ट तथा सरल है और उनकी पुनरुक्ति मे भी प्राय नीरसता नही जान पड़ती।

### पद

अपनी बात

(१)

सतगुरु पूरे परम उदारा। दया दृष्टि से मोहिं निहारा ॥१॥
दूर देश से चल कर आया दरशन कर मन अति हरखाया ॥२॥

सुन सुन बचन प्रीत हिय जागी । चरन सरन मे सूरत पागी ॥३॥
करम भरम सशय सब भागा । राधास्वामी चरन बढा अनुरागा ॥४॥
सुरत शब्द मारग दरसाया । विरह अग ले ताहि कमाया ॥५॥
कुल कुटुम्ब का मोह छुडाना । सतसगत मे मन ठहराना ॥६॥
सुमिरन भजन रसीला लागा । सोता मन धुन सुन कर जागा ॥७॥
मेहर हुई स्रु त नभ पर दौडी । त्रिकुटी जा गुर चरनन जोड़ी ॥८॥
अचरज लीला देखी सुन मे । मुरली धुन अब पडी श्रवन मे ॥९॥
पहुची फिर सतगुरु दरबारा । अलख अगम को जाय निहारा ॥१०॥
वहा से भी फिर अधर सिधारी । मिल गए राधास्वामी पुरुष अपारी ॥११॥
वहा जाय कर आरत गाई । पूरन दया सामने पाई ॥१२॥

कमाया=अर्जन किया, अभ्यास किया । लागा=जान पडने लगा । स्रु त=सुरत । जोडी=जुड गई । अधर=शून्य स्थान ।

वही (२)

जगत मे खोज किया बहु भात । न पाई मैने घट मे शात ॥१॥
गौर कर देखा जग का हाल । फसे सब करम भरम के जाल ॥२॥
फैल रहे जग मे मते अनेक । धार रहे थोथे इष्ट की टेक ॥३॥
भेद कोइ घर का नहि जाने । भरम बस सीख नही माने ॥४॥
मान मे खप रहे पण्डित भेख । कर्म मे बध रहे मुल्ला शेख ॥५॥
भाग मेरा जागा अजब निदान । मिला मै राधास्वामी सगत आन॥६॥
सुनी मैं महिमा अचरज बोल । करी मै राधास्वामी मत की तोल ॥७॥
भरम और सशय उठ भागे । विरह अनुराग हिये जागे ॥८॥
पता निज मालिक का पाया । भेद निज घर का दरसाया ॥९॥
समझ मे आई भक्ती रीत । शब्द की धारी मन परतीत ॥१०॥
सुरत का पाया अजब लखाव । सिफत सुन गुरु की बाढ़ा भाव ॥११॥
कहू क्या महिमा सतसंग सार । भरम और सशय दीने टार ॥१२॥
प्रीत नित बढती गुरु चरना । धार लई मनमे गुरु सरना ॥१३॥
समझ मैं मनमे अस धारी । सत बिन जाय न कोइ पारी ॥१४॥
बना उन सरन न उतरे पार । शब्द बिन होय न कभी उधार ॥१५॥
सराहू छिन छिन भाग अपना । मिला मोहि सुरत शब्द गहना ॥१६॥
हुआ मेरे हिरदे मे उजियार । दया राधास्वामी कीन्ह अपार ॥१७॥
पकड धुन चढता नभ की ओर । जोत लख सुनता अनहद घोर ॥१८॥
सुन्न धुन सुनकर चढी आगे । गुफा मे जहा सोहग जागे ॥१९॥
सत्तपुत दरश पुरुष कीन्हा । परे तिस अलख अगम चीन्हा ॥२०॥
वहा से लखिया राधास्वामी धाम । मिला अब निज घर किया बिस्राम ॥२१॥

भेख=साप्रदायिक विचारो वाले । सिफत=विशेषता, परिचय । पारी=अतिम लक्ष्य । गहना=पहुँच । गहना मिला=वहाँ तक का परिचय मिल गया । परे-तिस=उसके आगे ।

वही (३)

प्रेम भक्ति गुरु धार हिये मे, आया सेवक प्यारा हो ॥टेक॥
उमग उमग कर तन मन धन को, गुरु चरनन पर वारा हो ॥१॥
गुरु दरसन कर विगसत मन मे, रूप हिये मे धारा हो ॥२॥
आठ पहर गुरु सग रहावे, जग से रहता न्यारा हो ॥३॥
मन माया को आँख दिखावे, गुरुबल सूर करारा हो ॥४॥
शब्द डोर गह चढता घट मे, पहुंचा गगन मझारा हो ॥५॥
आगे चल सुनी सारग किंगरी, मुरली बीन सितारा हो ॥६॥
राधास्वामी मेहर से दीन्हा, निज पद अगम अपारा हो ॥७॥

करारा=दृढ।

अपनी विरह-दशा (४)

सावन मास मेघ घिर आये। गरज-गरज धुन शब्द सुनाये ॥१॥
रिमझिम बरखा होवत भारी। हिय बिच लागी बिरह कटारी ॥२॥
प्रीतम छाय रहे परदेसा। बूझत रही नहिं मिला सदेसा ॥३॥
रैन दिवस रहू अति घबराती। कसक कसक मेरी कसके छाती ॥४॥
कासे कहू कोइ दरद न बूझै। विन पिय दरस नही कुछ सूझै ॥५॥
चमके बीज तडप उठे भारी। कस पाऊ पिया प्रान अधारी ॥६॥
रोवत बीते दिन और राती। दरद उठत हिये मे बहु भाती ॥७॥
ढूढत ढूढत वन बन डोली। तब राधास्वामी की सुन पाई बोली ॥८॥
प्रीतम प्यारे का दिया सदेसा। शब्द पकड जाओ उस देसा ॥९॥
सुरत शब्द मारग दरसाया। मन और सुरत अधर चढवाया ॥१०॥
कर सतसग खुले हिये नैना। प्रीतम प्यारे के सुने वही बैना ॥११॥
जब पहिचान मेहर से पाई। प्रीतम आप गुरु बन आई ॥१२॥
दया करी मोहि अग लगाया। दुक्ख दरद सब दूर हटाया ॥१३॥
क्या महिमा राधास्वामी गाऊ। तन मन वारू बलबल जाऊ ॥१४॥
भागे जगे गुरु चरन निहारे। अब कहू धन धन राधास्वामी प्यारे ॥१५॥

चमके बीज=कभी-कभी रहकर सुध आ जाती रही तो। बोली=सकेत। प्रीतम आई=प्रियतम इष्टदेव एव गुरु मे कोई भेद नही रह गया।

वही (५)

मेरे उठी कलेजे पीर घनी ॥टेक॥
बिन दरसन जियरा नित तरसे, चरन ओर रहे दृष्टि तनी ॥१॥
नित्त पुकार करू चरनन मे, दरस देव मेरे पूरन धनी ॥२॥
घट का पाट खोलिये प्यारे, जल्दी करो हुई देर घनी ॥३॥
जब लग दरस न पाऊ घट मे, तब लग नहिं मेरी बात बनी ॥४॥
हरष हुलास न आवे मन मे, चिंता मे रहे बुद्धि सनी ॥५॥
अब तो मेहर करो राधास्वामी, चरनन की रहू सदा रिनी ॥६॥

तनी=खिची हुई, आकृष्ट। रिनी=ऋणी, कृतज्ञ।

## उलटा व्यवहार (६)

होली खेल न जाने बावरिया, सतगुरु को दोष लगावे ॥१॥
जगत लाज मरजाद मे अटकी, घूघट खोल न आवे ॥२॥
प्रेम रग घट भरन न जाने, भरम गुलाल घुलावे ॥३॥
डगमग भक्ती चाल अनेडी, जग सग झोके खावे ॥४॥
निंदा धूल से उड उड भागे, सतसग निकट न आवे ॥५॥
पांच दृष्ट का रग ले साथा, नित पिचकार छुडावे ॥६॥
आदर मान भरा मन भीतर, दीन अग नहिं लावे ॥७॥
वचन सुने पर चित न समावे, छिन छिन काल भुलावे ॥८॥
मन माया ने जाल बिछाया, सब जिव नाच नचावे ॥९॥
दया करें सतगुरु मन मोडे, सो घर की राह पावे ॥१०॥
प्रीति प्रतीत बढावत दिन दिन, राधास्वामी चरन समावे ॥११॥

अनेडी=व्यर्थ, निष्प्रयोजन। छुडावे=छुडवावे, चलवाती है।

## उपदेश (७)

प्रेमी लीजे रे सुध घर की, गुरुसंग शब्द कमाय ॥टेक॥
शब्द धार धुर घर से आई, वही धार गह अधर चढाय ॥१॥
वही धार गुरु चरन कहावे, वामे गहरी प्रीति बसाय ॥२॥
गुरु स्वरूप को सग ले अपने, शब्द-शब्द से मिलना जाय ॥३॥
या विधि चाल चले जो कोई, दिन दिन चरनन प्रेम बढाय ॥४॥
घट मे लीला लखै नियारी, नित नवीन रस आनद पाय ॥५॥
चढ चढ पहुँचे राधास्वामी धामा, दरस पाय निज भाग सराय ॥६॥

नियारी=न्यारी, अनुपम। सराय=सराहे।

## नेक सलाह (८)

अधर चढ परख शब्द की धार ॥टेक॥
गुरु दयाल तोहि मरम लखावें, वचन सुनो उन हिये धर प्यार ॥१॥
विरह अग लेकर अभ्यासा, खोज करो तुम घट धुन सार ॥२॥
गुरु स्वरूप को अगुआ करके, धुन सुन चलो कज के पार ॥३॥
सहस कंवल मे घंटा बाजे, गगन माहिं सुन धुन ओंकार ॥४॥
सुन्न शिखर चढ महा सुन्न पर, भंवर गुफा मुरली झनकार ॥५॥
सत्त शब्द का धरकर ध्याना, सत्त लोक धुन बीन सम्हार ॥६॥
अलख अगम के पार निसाना, राधास्वामी प्यारे का कर दीदार ॥७॥

## प्रेम-महत्व (९)

प्रेम बिन चले न घर की चाल ॥टेक॥
सतसंग करे समझ तब आवे, गुरु चरनन मे प्रीत सम्हाल ॥१॥
गुरु भक्ती की रीत सम्हारे, छोडे जग की चाल औ ढाल ॥२॥
गुरु स्वरूप का धारे ध्याना, शब्द सुने तज माया ख्याल ॥३॥

घट मे देखे बिमल प्रकासा, मगन होय सुन शब्द रसाल ।।४।।
प्रीत प्रतीत बढे तब दिन दिन, पावे राधास्वामी दरस बिसाल ।।५।।

विनय (१०)

रगीले रग देओ चुनर हमारी ।।टेक।।
ऐसा रग रगो किरपा कर, जग से हो जाय न्यारी ।।१।।
यह मन नित्त उपाय उठावत, याको गढ लो सारी ।।२।।
निर्मल होय प्रेम रग भीजे, जावे गगन अटारी ।।३।।
तुम्हरी दया होय जब भारी, सुरत अगम पद धारी ।।४।।
राधास्वामी प्यारे मेहर करो अब, जल्दी लेव सुधारी ।।५।।

चुनरी=मनोवृत्ति। गढ लो सारी= पूर्णत सुधार दो।

साखी

चुपके चुपके बैठकर, करो नाम की याद।
दया मेहर से पाइयो, तुम सतगुरु परसाद ।।१।।
पिया मेरे और मै पिया की, कुछ भेद न जानो कोई।
जो कुछ होय सो मौज से होई, पिया समरथ करे सोई ।।२।।
जो सुख नहि तू दे सके, तो दुख काहू मत दे।
ऐसी रहनी जो रहे, सोई शब्द रस ले ।।३।।

परसाद=प्रसाद, कृपा।

## स्वामी रामतीर्थ

स्वामी रामतीर्थ का जन्म पजाब प्रान्त के गुजरानवाला जिले के अतर्गत मुरारीवाला गाँव मे हुआ था। ये स० १९३० मे उत्पन्न हुए थे और इनके पूर्वज 'गोसाई' वश के ब्राह्मण कहलाते थे जिनमे प्रसिद्ध गोस्वामी तुलसीदास का भी नाम लिया जाता है। ये प्रतिभाशाली व्यक्ति थे और इन्हे उर्दू एव फारसी के अतिरिक्त गणित मे एम० ए० तक शिक्षा मिली थी। इन्होने कुछ दिनो तक अध्यापन-कार्य किया, किन्तु कृष्ण की भक्ति, गीतानुशीलन एव वेदान्त दर्शन की ओर इनका ध्यान क्रमश अधिकाधिक आकृष्ट होता गया। इनके हृदय मे ऐसे भाव जागृत होने लगे जिनके प्रभाव मे आकर इन्होने अपना जीवन बदल डाला। केवल २४ वर्ष की ही अवस्था मे इन्होने एक पत्र द्वारा अपने पिता को सूचित कर दिया कि "आपका पुत्र अब राम के आगे बिक गया, उसका शरीर अब अपना नही रह गया" और हरिद्वार आदि की यात्रा कर ये सं० १९५५ से आत्मानुभूति मे निमग्न हो गये। तब से ये सदा आत्मानन्द की मस्ती मे विभोर हो पर्यटन करने लगे और अपने भावो को व्यक्त करते-करते अमेरिका और जापान तक हो आये। इन्होने कोई सम्प्रदाय नही चलाया और अन्त मे स० १९६३ की कार्त्तिकी अमावस्या के दिन, टिहरी के निकट, इन्होने जल-समाधि ले ली।

स्वामी रामतीर्थ ने 'ब्राह्मी स्थिति' उपलब्ध की थी जिसकी झलक उनकी विविध रचनाओ मे मिला करती है। वे सभी कुछ को आत्म-स्वरूप मे ही देखते थे और अपनी प्रत्येक चेष्टा को भी उन्होने पूर्णत उसी रग मे रँग डाला था। उनकी दशा

कभी-कभी भावोन्माद की कोटि तक पहुँच जाती थी, किन्तु उनके विचारो मे किसी प्रकार की विश्रृंखलता नहीं लक्षित होती थी। अपनी मानसिक स्थिति का परिचय इन्होने एक बार (A state of balanced recklessness) अर्थात् 'सन्तुलित प्रमाद की अवस्था' के द्वारा दिया था। उनकी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति विश्व-कल्याण का लक्ष्य लेकर ही हुआ करती थी। उन्होने 'धर्म' की व्याख्या भी वैसी ही की है जिससे वह अपने चित्त की एक 'बढी-चढी अवस्था' ही सिद्ध होता है। उसमे विश्वात्मा एव जीवात्मा एकाकार हो जाते है और खुदी (देहात्मभाव) खुदाई (ब्रह्मभाव) मे परिणत हो जाती है। स्वामी रामतीर्थ की उपलब्ध रचनाओ मे सच्चे सत के विचार भावावेश की शैली मे व्यक्त किए गये दीख पडते है। उनमे सात्विक जीवन जागरूक बना दीखता है। उनके पद्यो की भाषा मे फारसी तथा अरबी के शब्दो का बाहुल्य है और वे अधिकतर उर्दू की ही बह्रो मे लिखे पाए जाते है। उनमे ओज एव प्रवाह के साथ-साथ सहानुभूति का वह आनन्दोल्लास भी है जो प्राय गम्भीरतम आध्यात्मिक जीवन मे ही सम्भव हुआ करता है।

## ग़ज़ल

### चेतावनी (१)

शाहशाहे जहान है, सायल हुआ है तू।
पैदा कुने ज़मान है, डायल हुआ है तू॥
सौ बार गर्ज होवे तो, धो धो पिये कदम।
क्यो चर्खो मिहरो माह पै, मायल हुआ है तू॥
खजर की क्या मजाल कि इक जख्म कर सके।
तेरा ही है खयाल कि घायल हुआ है तू॥
क्या हर गदाओ शाह का राजिक है कोइ और।
अफलासो तगदस्ती का कायल हुआ है तू।
टाइम है तेरे मुजरे के मौके की ताक मे।
क्यो डर से उसके मुफ्त मे जायल हुआ है तू॥
हम बगल तुझसे रहता है हर आन राम तो।
बन पर्दा अपनी वस्ल मे हायल हुआ है तू॥१॥

शाहशहे जहान=विश्व का सम्राट्। सायल=प्रार्थी, मगन। पैदा कुने ज़मान=काल का भी रचयिता। डायल=Dial घडी व धूपघडी का बनावटी काल-सूचक चेहरा। कदम=पैर। चर्खो माह=आसमान, सूरज और चाँद। मायल=आकृष्ट, इच्छुक, प्रभावित। खजर=तलवार। गदाओ शाह=भिक्षुक तथा महाराजा, राजारक। राजिक=पोषक, अन्नदाता। अफलासो तंगदस्ती=दरिद्रता तथा निर्धनता। कायल=मानने वाला, पीडित। टाइम=Time समय, काल। मुजरा=दृष्टिपात, कटाक्ष। जायल=क्षीण, दुर्बल, शक्तिहीन। हम बगल=एक ही अक मे, एक ही साथ। हर आन=सदा, सर्वदा। वस्ल=मिलन, संयोग। हायल=बाधक।

### उल्लास की अभिव्यक्ति (२)

यह डर है मिहर आ चमका, अहाहा, आहाहा!
उधर मह बीम से लपका, अहाहा, अहाहा!

हवा आठखेंलिया करती है मेरे इक इशारे से !
है कोडा मौत पर मेरा, अहाहा, अहाहा !
इकाई जात मे मेरी असंखो रग है पैदा !
मजे करता हू मैं क्या क्या, अहाहा अहाहा !
कहू क्या हाल इस दिल का कि शादी मौज मारे है।
हैं एक उमडा हुआ दरिया, अहाहा, अहाहा !
यह जिस्मे राम ऐ बदगो ! तसव्वर महज है तेरा।
हमारा विगडता है क्या, अहाहा, अहाहा !

मिहर=सूर्य। मह=चद्र। बीम=भय। हैं मेरा=मृत्यु पर भी मेरा पूर्ण शासन है। जात=स्वरूप। इकाई पैदा=मेरी एकता मे ही अनेकता भासित हुआ करती है। शादी=खुशी, आनद। मौज मारे है=तरगायित होता है। दरिया=समुद्र। जिस्मेराम=स्वामी रामतीर्थ का शरीर। बदगो=अनुचित बाते करने वाला। तसव्वर=कल्पना, खयाल। महज =केवल, मात्र।

---

# पारिभाषिक शब्दावली

यहाँ उन कतिपय शब्दों के साकेतिक अर्थ दे दिये जाते हैं जिनके प्रयोग सगृहीत रचनाओ मे कही-कही दीख पडते हैं। उनका अभिप्राय यथास्थान बतला दिया गया है, किंतु उनके पारिभाषिक रूप को स्पष्ट करने के लिए उनका एक सक्षिप्त परिचय अलग भी दे दिया जाता है।

**अजपाजाप** नाम-स्मरण की वह स्थिति वा पद्धति जिसमे सभी प्रकार के बाह्य साधन, जैसे नामोच्चारण, माला का फेरना, अँगुलियो पर नामो का गिनना, आदि छोड दिये जाते है और उसकी अत क्रिया आपसे आप होने लगती है।

**अनहद :** अनाहत नाद अथवा बिना किसी के कुछ बजाये आपसे आप निरतर होता रहने वाला शब्द जो समाधिस्थ योगियो को अपने शरीर के भीतर एक प्रकार की मधुर ध्वनि के रूप मे सुनायी पडता है और जिसके साथ सत लोग तल्लीनता का अनुभव करते हैं।

**अमृत ·** ब्रह्मरध्र, अर्थात् मस्तक के भीतर शीर्षस्थान मे वर्त्तमान सहस्रदल कमल का विकास नीचे की ओर है। उसके मध्य स्थित चंद्राकार विंदु से एक प्रकार का मदस्राव होता है जिसे महारस भी कहते है। वह निम्न स्थान की ओर क्रमश. प्रवाहित होता हुआ, अत मे मूलाधार चक्र के निकटवर्ती सूर्याकार स्थान तक आकर सूख जाता है। यदि अभ्यास द्वारा इसे ऊपर ही रोक लिया जाय और इसका आस्वादन किया जाय तो शरीर का दीर्घायु अथवा अमर तक हो जाना निश्चित समझा जाता है।

**अलल** अललपक्षी नामक एक विचित्र चिडिया जिसके विषय मे प्रसिद्ध है कि वह सदा आकाश मे उडा करती है और वही रहती हुई अपना अडा भी दिया करती है जो पृथ्वी पर पहुँचने के पहले ही फूट जाता है और बच्चा उडकर माँ से मिल जाता है।

**इडा .** मेरुदड मे वर्तमान वह योग नाडी जो उसकी बायी ओर से उठकर सुषुम्ना मे लिपटती हुई ऊपर की ओर चली जाती है और जो अत मे नाक की बायी ओर समाप्त होती है। इसको चद्र नाडी अथवा गगा नदी भी कहते हैं।

**उन्मन** उनमनी की वह दशा जिसमे चित्तवृत्तियाँ सदा परमात्म तत्त्व मे ही लगी रहती हैं। अन्यमनस्कता, अतिचेतना।

**कुंडलिनी :** मूलाधार चक्र के निकट मेरुदड के मूल मे स्थित वह शक्ति जिसके विषय मे कहा जाता है कि वह किसी सर्पिणी की भाँति साढ़े तीन कुडलो वा लपेटों मे सुप्त-सी पडी रहती है और जो अत साधना द्वारा प्रबुद्ध की जाती है। जागृत होने की दशा मे वह सीधी होकर सुषुम्ना नाड़ी द्वारा क्रमशः ऊपर को अग्रसर होती है और ब्रह्मरध्र के निकट पहुँच कर लीन हो जाती है। उसकी इस अन्तिम दशा को शक्ति का शिव के साथ मिल जाना कहा जाता है। उसका जागृत होना योगी की सिद्धि का परिचायक है।

कुवा सहस्रदल कमल मे स्थित उपर्युक्त चद्राकार विंदु जिसे 'औंधा कुआँ' भी कहा जाता है। इसे ही 'अमृतकूप' भी कहते है।

कुंभक प्राणायाम की वह मध्यक्रिया जिसमे प्राणो का सयमन हुआ रहता है। इसे कही-कही प्राणायाम का पर्याय भी माना गया है।

गगन शरीर के भीतर का वह आकाशवत् अतराल जिसमे ज्योतिर्मय ब्रह्म का प्रकाश दीखता है और जहाँ से अनाहत की ध्वनि सुन पडती है। इसको कभी-कभी 'शून्य' भी कहा करते हैं और इसके विभिन्न स्तरो की भी कल्पना की जाती है।

चद्र इडा नाम की उपर्युक्त योगनाडी अथवा सहस्रार स्थित चद्राकार अमृत-कूप जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

त्रिकुटी भ्रूमध्य मे स्थित वह विंदु जहाँ पर इडा, पिंगला एव सुषुम्ना योग नाडियो का मिलन होता है। इसे इसी कारण 'त्रिवेणी' भी कहा जाता है। योगसाधन मे इस स्थल को कई दृष्टियो से वडा महत्त्व दिया गया है।

दसम दुआर दशम द्वार अर्थात् आँखो के दो छिद्र, कान के दो छिद्र, नाक के दो छिद्र, मुख, गुदा एव लिंग के अतिरिक्त ब्रह्मरध्र नाम का एक दसवाँ छिद्र जो शिर के भीतर शीर्षस्थान मे वर्त्तमान है जिसकी ओर शक्ति की साधना उन्मुख की जाती है।

निरति परमात्मा के साक्षात्कार का आनन्द जो पूर्ण तन्मयता के कारण अनुभव में आता है।

निरवान निर्वाण अर्थात् मोक्ष की वह चरमावस्था, जब आवागमन के चक्र का सदा के लिए अत हो जाता है।

परचा परिचय के ढग से प्राप्त किया हुआ स्वानुभूति-विषयक ज्ञान। पूर्ण परिचय, आत्मज्ञान, परमतत्वोपलब्धि।

पवन प्राणायाम द्वारा परिष्कृत शरीरस्थ वायु।

पिंगला मेरुदड मे वर्त्तमान वह योगनाडी जो उसकी दाहिनी ओर से उठकर सुषुम्ना मे लिपटती हुई उपर की ओर चली जाती है। वह अत मे नाक की दाहिनी ओर समाप्त होती है। इसको सूर्य नाडी अथवा यमुना नदी भी कहते है।

प्राणायाम प्राणो की वह साधना जिसके द्वारा श्वास की एव प्रश्वास की गतियो को सयमित किया जाता है। इसकी तीन वृत्तियाँ है जो पूरक, कुम्भक एव रेचक नामो से अभिहित की जाती हैं। इनके द्वारा क्रमश वाहर की वायु को नियमित ढग से भीतर ले जाना, उसे उदरादि मे भर देना तथा भीतर की वायु को वाहर निकालना सिद्ध किया जाता है। इन क्रियाओ और विशेषकर कुभक क्रिया की साधना से प्राणो का सयमन हो जाता है और चित्त की बहुमुखी वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती है।

वकनाल वह टेढा मार्ग जिससे होकर सुषुम्ना नाडी त्रिकुटी के कुछ और आगे अग्रसर होती है। वह अत्यन्त सूक्ष्म एव वीहड-सा समझा जाता है और उसमे प्रवाहित होने के कारण स्वय सुषुम्ना को भी इसी नाम से पुकारते हैं।

बहत्तर कोठे योगशास्त्रीय शरीर-रचना विज्ञान के अनुसार काया के भीतर ७२ कोठे वा क्षेत्र वर्त्तमान है।

मानसरोवर : उपर्युक्त, अमृतकूप अथवा अमृतकुड जिसके शुभ्र जल मे 'सुरति' मग्न हो जाती हैं।

मुद्रा ' हठयोग द्वारा विहित विशेष प्रकार के अगन्यास जो खेचरी, भूचरी, चाचरी, गोचरी और उन्मुनी नामों से प्रसिद्ध है।

मेरु : मेरुदंड नाम की पीठ के वीच की हड्डी जिसे रीढ भी कहा जाता है।

शब्द वह शब्द जो अनहद के रूप मे शरीर के भीतर सुन पडता है और जो परमतत्त्व का प्रतीक भी समझा जाता है। 'शब्द' नाम बहुधा उस उपदेश अथवा 'जुगति' को भी दिया जाता है जिसे सद्गुरु अपने शिष्य को प्रदान करता है।

शून्य देखिये 'गगन'।

षट्चक्र उपर्युक्त रीढ वा मेरुदड की रचना छोटे-छोटे अस्थिखडो के आधार पर की गई बतलायी जाती है। इनके विविध सधिस्थलों पर सूक्ष्म नाडियो द्वारा निर्मित कतिपय चक्र से बन गए है। इन चक्रो की स्थिति सुषुम्ना से होकर ऊपर की ओर अग्र-सर होने वाली कुडलिनी के मार्ग मे पायी जाती है और इनकी सख्या बहुत है। किंतु इनमे से मुख्य छह ही कहे जाते है जिन्हे नीचे से ऊपर की प्रगति के अनुसार क्रमश मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और अज्ञा कहते है। इनकी रचना कमल के फूलो जैसी जान पडती है और इनके दलो की सख्या, इनके उक्त क्रमानुसार चार, छह, दस, बारह, सोलह एव दो की समझ पड़ती है। इनकी स्थिति भी उसी प्रकार गुदामूल, लिंगमूल, नाभि, हृदय, कण्ठ एव त्रिकुटी के समानातर है। कुडलिनी शक्ति इन छहो चक्रों को क्रमश वेधती हुई आगे बढती और उसी क्रम से साधना मे उत्कर्ष भी बढता जाता है।

सुषमन . सुषुम्ना नाम की योगनाडी जिसकी स्थिति मेरुदड मे है। यह इडा एव पिंगला नाम की दो अन्य वैसी ही नाडियों के मध्य मे नीचे से ऊपर की ओर बढती हुई त्रिकुटी के निकट उन दोनो को भी अपने मे मिला लेती है। फिर आगे सहस्रार के कुछ इधर लुप्त होती है। इसको सरस्वती नदी भी कहते हैं और इसी से होकर कुड-लिनी शक्ति प्रवाहित होती है।

सुमिरन नामस्मरण की साधना जो वस्तुत अनाहत नाद के श्रवण को ही लक्ष्य करती है और जो सुरति-शब्द-सयोग का कारण बनकर सतों के लिए आत्मोपलब्धि मे सबसे प्रधान सहायक है।

सुरति . जीवात्मा अथवा परमात्मा का वह प्रतीक जो उसकी स्मृति वा प्रति-निधि के रूप मे मनुष्य के भीतर वर्तमान है। सुरति का संतों ने अपने पति परमात्मा से बिछुडी हुई दुलहिन के रूप मे भी वर्णन किया है। वह उससे मिलने के लिए आतुर हो नामस्मरण की सहायता से अनाहत शब्द के साथ सयोग कर लेती है जिससे अत मे उसे तदाकारता की उपलब्धि हो जाती है।

सूर्य पिंगला नाम की उपर्युक्त योगनाडी अथवा मूलाधार-स्थित एक शक्ति जो ऊपर से प्रवाहित अमृतस्राव को सोख लेती है।

हंस ' जीवात्मा जो नवद्वार के पिंजड़ों (इस शरीर) मे अपने को आबद्ध पाता है।

## परिशिष्ट

### सहायक साहित्य


१ उत्तरी भारत की सत-परम्परा (ले० परशुराम चतुर्वेदी)—लीडर प्रेस, प्रयाग, स० २००७।

२ कबीर ग्रथावली (स० श्यामसुन्दर दास)—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९२८ ई०।

३ कबीरपथी शब्दावली (स० स्वामी युगलानन्द बिहारी)—गगाविष्णु श्रीकृष्ण दास, कल्याण बबई, स० १९८८।

४ कीर्त्तिलता (विद्यापति)—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, स० १९८६।

५ केसोदास की अमीघूट—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

६ गरीबदास जी की बानी—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

७ गरीबदास जी की वाणी (सं० स्वामी मगलदास)—श्री लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर, सं० २००४।

८ गुरु ग्रथ साहिब जी (आदिग्रंथ)—गुरु खालसा प्रेस, अमृतसर।

९ गुलाल साहब की बानी—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९१० ई०।

१० गोरखबानी (स० डॉ० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल)—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, स० १९९९।

११ घटरामायन (तुलसी साहिब)—सन् १९३२ ई०।

१२ घनानद और आनन्दघन (स० विश्वनाथ प्रमाद मिश्र)—ब्रह्मनाल, काशी।

१३ जगजीवन साहब की बानी—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९२२ ई०।

१४ तुलसी साहिब की शब्दावली, २ भाग—सन् १९३४ ई०।

१५ दयाबाई की बानी—वे० प्रेस, प्रयाग, सन् १९२७ ई०।

१६ दरिया सागर—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

१७. दरिया साहब (मारवाड) की बानी—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

१८. दरिया साहेब (बिहार) के चुने हुए शब्द—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९३१ ई०।

१९ दीवाने गालिब—रामनारायण लाल, प्रयाग, सन् १९१८ ई०।

२० दुलनदास जी की बानी—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९१४ ई०।

२१ धनी धरमदास जी की शब्दावली—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९२३ ई०।

२२ धरनीदास जी की बानी—वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९११ ई०।

२३ नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष ४५, अक १), स० १९९७।

२४ नामदेवाचा गाथा—चित्रशाला प्रेस, पूना (शके १८५३)।

२५ पञ्चामृत (स० स्वामी मंगलदास)—श्री लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर, सन् १९४८ ई०।

२६. पलटू साहिब की बानी, ३ भाग—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् ११२६ ई० ।
२७ पोथी प्रेमबानी, २ भाग—राधास्वामी ट्रस्ट, आगरा, सन् १६३६ ई० ।
२८. वषना जी की वाणी (स० स्वामी मगलदास)—श्री लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर, सन् १६३७ ई० ।
२६ बीजक (स० विचारदास)—रामनारायन लाल, इलाहाबाद, सन् १६२८ ई० ।
३०. बुल्ला साहब का शब्दसार—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १६१० ई० ।
३१ बुल्ला शाह का सीहर्फी—खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, स० १६६० ई० ।
३२ भक्तिसागर—नवल किशोर प्रेस, लखनऊ सन् १६३१ ई० ।
३३. भजन-सग्रह (स० श्री वियोगी हरि)—गीता प्रेस, गोरखपुर, स० १६६० ई० ।
३४. भीखा साहब की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १६२६ ई० ।
३५. मधुकर (जून-जुलाई, सन् १६४६ ई०)—टीकमगढ (मध्य-भारत) ।
३६. मलूकदास जी की वाणी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ।
३७ महात्माओ की वाणी (बाबा रामवरन दास साहब)—भुडकुडा, जि० गाजीपुर, सन् १६३३ ई० ।
३८. यारी साहब की रत्नावली—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १६१० ई० ।
३६. रज्जबजी की वाणी—ज्ञानसागर प्रेस, बम्बई, सं० १६७५ ।
४०. रत्नसागर (तुलसी साहब)—बे० प्रे०, प्रयाग, सन् १६३० ई० ।
४१ रामस्नेही धर्मदर्पण (ले० मनोहर दास)—सुनेल कला रामद्वारा (होल्कर राज्य), सं० २००३ ।
४२. रैदासजी की बानी—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १६३० ई० ।
४३. वैज्ञानिक अद्वैतवाद (ले० रामदास गौड)—ज्ञानमडल प्रेस, काशी, स० १६७७ ।
४४. शब्दावली (संत शिवनारायण)—हस्तलिखित प्रति ।
४५ शब्द ग्रथ सत विलास ।
४६. लव परवाना ।
४७. संत अक्षरी ।
४८ संत वचन—सत समाज प्रबन्धक समिति गुरुद्वारा, कानपुर ।
४६. श्री पोथी विवेक सार—आनन्द भवन, सेनपुरा, चेतगंज, बनारस, सन् १६४६ ई० ।
५० श्री विचारसागर—ब्रजवल्लभ हरिप्रसाद, कालबा देवी रोड, बंबई, सन् १६२६ ई० ।
५१ श्री सत गाथा (गाथा पञ्चक)—त्र्यबक हरी आपटे, पूना ।
५२. श्री स्वामी दादू दयालजी की वाणी (सं० पं० चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी)—वैदिक यत्रालय, अजमेर, सन् १६०७ ई० ।
५३. दादू (बँगला)—आचार्य क्षितिमोहन सेन, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन ।
५४. श्री हरिपुरुषजी की वाणी—वैष्णव साधु देवदास, कटला बाजार, जोधपुर, सं० १६८८ ।

५५. संत अंक (कल्याण)—गीता प्रेस, गोरखपुर, स० १९९४।

५६. सतमाल (ले० महर्षि शिवव्रत लाल)—राधास्वामी धाम, गोपीगज।

५७. सत सिंगाजी (स० श्री सुकुमार पगारे)—सिंगाजी साहित्य शोधक मडल, खण्डवा, १९३६ ई०।

५८. सहजो बाई का सहज प्रकाश—वेल० प्रेस, प्रयाग, सन् १९३० ई०।

५९ साधनाक (कल्याण)—गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० १९९७।

६० सारबचन (नज्म)—राधास्वामी ट्रस्ट, आगरा।

६१ सुन्दर ग्रंथावली (स० पु० हरिनारायण शर्मा)—राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता सं० १९९३।

६२ हिन्दी साहित्य का इतिहास (ले० प० रामचन्द्र शुक्ल)—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० १९८६।

६३ बोधसागर—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुंबई।

६४ साईं दीनदरवेश (गुजराती)—अनवर आगेवान, सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, कालबा देवी रोड, मुंबई।

६५ Kabır Granthavalı (Doha) ın French Translations and Introduction—Ch Vaudeville Institute Francaıs D'ındologıe, Pondıcherry